THE BOOK WAS DRENCHED

श्रीः ।

श्रीमच्छुक्राचार्यविनिर्मित--

# शुक्रनीति ।

लाँखग्रामनिवासिपंडितमिहिरचंद्रजीकृत ।

भाषाटीकासमेत ।



जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई,

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें

मुद्रित कर प्रसिद्ध किया ।

संवत् २०१२, शके १८७७.



मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

मालिक-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, बम्बई.





# प्रस्तावना ।



सर्व सज्जन विद्यानुरागी धार्मिक महाशय इस बातको भली भाँति जानते हैं कि " धर्माधारं हि जीवितम् " आयुष्य धर्मकेही आधार पर है. हमारे पूर्वज ऋषि महर्षि, देवर्षि निर्व्याज धर्माचरणसे कैसे प्रतापी, दीर्घायु और पूज्य होगये हैं। वे तपोधन अपने वंशजोंके कल्याणके लिये उत्तम २ उपदेश कर गये हैं कि जिनके विधिपूर्वक पालन करनेसे सदा मनुष्य इस लोकमे विविध सुख और परलोकमें स्वर्गादिनिवाससे अनन्त लाभ उठा सकते हैं। अर्थात् उनके निर्दिष्ट आचार व्यवहार और प्रायश्चित्तोंके सेवन करनेसे ही मनुष्य उन्नति साधन कर सकते हैं और कभी उनके ऋणसे उऋण नहीं हो सकते। मन्वादिमहर्षियोंने उपदेश किया है कि राजाके विना क्षणमात्र भी इस संसारका व्यवहार नहीं चल सकता। चोर डाकू आदि दुर्वृत्त लोग प्रजाके धन, धर्म जीवनमें महाकष्ट उत्पन्न कर देते हैं। इससे " राजानं प्रथमं विन्देत्ततो भार्यां ततो धनम् । राजन्यसति लोकेऽस्मिन्कुतो भार्या कुतो धनम् "के अनुसार दुष्टनिग्रह पूर्वक सज्जनोंके सुखके निमित्त धार्मिक राजाका होना अत्यावश्यक है। वह राजा किस प्रकार प्रजाओंका संरक्षण करे और नाना जाति विविध धर्मवाली प्रजाके पालनमें किन २ नियमोंकी आवश्यकता है इत्यादि कितने ही व्यवहार इस नीतिमें महात्मा शुक्राचार्यने लिखे हैं कि जिनका विद्वान् शिरसे आदर करते हैं।

बहुत लोगोंकी कल्पना है कि तोप, बन्दूक इत्यादि अस्त्र तथा सैनिकोंकी परिचालनशिक्षा ( कवायद ) आदि जैसी आजकल पाश्चात्यद्वीपनिवासियों ( अङ्गरेजों ) ने उन्नत की है पहिले समयमें ऐसी नहीं थी। पर यह निर्मूल कल्पना है। इसी शुक्रनीतिमें इनका वर्णन बहुत उत्तमताके साथ किया गया है। वह इस बातकी साक्षी देता है कि पहिले जो २ उन्नति इन सबकी भारतवर्षमें हो गयी है वह अन्यत्र कहीं नहीं पायी जाती। इस ग्रन्थमें मुख्य कर तो राजनीति ही वर्णन की गयी है, पर प्रासङ्गिक धर्मतत्त्व तथा व्यवहारपाटव भी इतना है कि एक इसी ग्रन्थसे मनुष्य सब व्यवहारोंमें निपुण हो सकता है।

इन्द्रके सामने कामने अपने बलकी प्रशंसामें कहा है कि "अध्यापितस्योशनसापि नीतिं प्रयुक्तरागप्रणिधिर्द्विषस्ते। कस्यार्थधर्मौविद पीडयामि सिन्धोस्तटावोघ इव प्रवृद्धः" अर्थात् 'शुक्राचार्यने भी जिसको नीति पढ़ाई हो ऐसा मनुष्य यदि आपका शत्रु हो तो अनायाससे उसके धर्म और अर्थकी हानि कर सकता हूं' इससे भी स्पष्ट होता है कि नीतिशास्त्रमें सबकी शिरमौर यही " शुक्रनीति " है।

हमारे कितने ही अनुग्राहक ग्राहकोंने इस नीतिशास्त्रके भाषानुवाद सहित प्रकाश होनेकी इच्छा प्रकाश की थी, इससे हमने पण्डितवर्य महामहोपाध्याय लॉख-ग्रामनिवासी श्रीमिहिरचन्द्रजी द्वारा इसकी भाषाटीका कर शुद्धतापूर्वक इसे मुद्रित कराया था। थोडे ही समयमें प्रथम संस्करणकी सब पुस्तकें बिक गयी। तदनंतर सुपरिमार्जित द्वितीय संस्करणकी सब प्रतियां हाथों हाथ बिकगयीं। अब इसका तृतीय संस्करण हुआ है। इस बार और भी उत्तमता पर ध्यान देकर यथाशक्ति पुस्तककी शुद्धि, छपाई, सफाई इत्यादि की गयी है। आशा है कि विद्यानुरागी इसके अध्ययनसे लाभ उठावेंगे, जिससे हमारा परिश्रम सफल हो।

निवेदक-

**खेमराज श्रीकृष्णदास,**

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई.



श्रीः

भाषाटीकासहित शुक्रनीति-

# अनुक्रमणिका ।


| विषय. | पृष्ठ | श्लो० |
|---|---|---|
| **अध्याय १.** | | |
| राजकृत्य कथन | | |
| मंगलाचरण ... | १ | १ |
| दैत्यप्रश्नानंतर शुक्रोक्ति ... | १ | २ |
| ब्रह्मोक्त कोटि नीतिशास्त्रका सार शुक्रनीति ... | १ | ३ |
| संक्षिप्त नीतिशास्त्रका प्रयोजन | १ | ४ |
| अन्यशास्त्र एक २ कार्यकारी | १ | ४ |
| नीतिशास्त्र सर्वोपकारी ... | १ | ५ |
| नीतिशास्त्रका फल ... | १ | ५ |
| नीतिशास्त्राभ्यासकी आवश्यकता | १ | ६ |
| नीतिशास्त्रसे कुशलत्वप्राप्ति ... | १ | ७ |
| व्यवहारमें व्याकरणादिकोंका अनुपयोग ... | १ | ७ |
| सर्वलोकव्यवहार नीतिके विना नहीं होता है ... | २ | ११ |
| सर्वकल्याणकारक नीतिशास्त्र | २ | १२ |
| वहां नृपको अत्यावश्यक ... | २ | १२ |
| नीतिहीनोंको शत्रु उत्पन्न होते हैं | २ | १३ |
| प्रजापालन और दुष्टनिग्रह यह राजाका धर्म ... | २ | १४ |
| अनीतिसे राजाको भयप्राप्ति... | २ | १५ |
| अनीतिमान् और स्वतंत्र स्वामीकी सेवाका निषेध ... | २ | १६ |
| जहां नीति और बल वहां लक्ष्मी | २ | १७ |
| विना आज्ञाके हितकारक प्रजा हो एसी नीति राजाने धारण करनी .. ... | २ | १८ |
| सर्व राष्ट्र परस्पर भेद पानेको अनीति ही कारण है ... | २ | १९ |
| पूर्वजन्मके तपसे ही राजाको सर्व सामर्थ्यप्राप्ति ... | २ | २० |
| कालका भेदकारण ... | २ | २१ |
| राजा कालका कारण ... | ३ | २२ |
| राजदंडभयसे स्वस्वधर्मप्रवृत्ति | ३ | २३ |
| स्वधर्म ही सर्वसुखसाधन ... | ३ | २४ |
| प्रजाको स्वधर्ममें तत्पर करनेवाले राजाके देवता भी किंकर होते हैं ... ... | ३ | २५ |
| बुद्धिसे अर्थवृद्धि ... | ३ | २८ |
| त्रिविधतपकथन ... | ३ | २९ |
| सात्त्विक राजाका लक्षण ... | ३ | ३१ |
| तामसका लक्षण ... | ३ | ३२ |
| राजसका लक्षण ... | ३ | ३३ |
| अधमका लक्षण .. | ४ | ३४ |
| सत्त्वगुणमेंही मनकी धारणा करे | ४ | ३५ |
| मनुष्यजन्मप्राप्तिका कारण ... | ४ | ३६ |
| कर्म ही सबका कारण ... | ४ | ३७ |
| गुणकर्मासे ब्राह्मणादिक होते हैं | ४ | ३८ |
| ब्रह्माजीसे सबकी उत्पत्ति ... | ४ | ३९ |
| ब्राह्मणका लक्षण ... | ४ | ४० |
| क्षत्रियका लक्षण ... | ४ | ४१ |
| वैश्यका लक्षण ... | ४ | ४२ |
| शूद्रका लक्षण ... | ४ | ४३ |
| म्लेच्छका लक्षण ... | ४ | ४४ |
| पूर्वकर्मके ही अनुसार बुद्धि और फल प्राप्त होता है ... | ४ | ४५ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लो० |
|---|---|---|
| बुद्धिमान् पौरुषको और असमर्थ दैवको मानते हैं ... | ५ | ४८ |
| कर्म दो प्रकारका है ... | ५ | ४९ |
| पूर्वकर्मकी आवश्यकता ... | ५ | ५२ |
| कोई पौरुष ही मानते हैं ... | ५ | ५३ |
| पुरुषार्थसे दैव भी अन्यथा होता है | ५ | ५४ |
| दैव तीन प्रकारका .. | ५ | ५५ |
| प्रतिकूल दैवका उदाहरण ... | ५ | ५६ |
| अनुकूल दैवका उदाहरण ... | ५ | ५७ |
| दैवप्रतिकूलतामें सत्कर्म भी अनिष्ट होता है ... | ६ | ५८ |
| सत्कर्माचरण ही श्रेष्ठ है ... | ६ | ५९ |
| राज्यके सात अंग ... | ६ | ६१ |
| राजाके गुण ... | ६ | ६४ |
| अनीतिमान् राजासे अनर्थ ... | ६ | ६५ |
| धर्माधर्मसे इष्टानिष्ट फल ... | ६ | ६८ |
| इससे धर्मसे ही द्रव्यसञ्चय... | ६ | ६९ |
| इंद्रादिकोंका अंश राजा ... | ७ | ७२ |
| धर्माधर्म और सदसत्कर्मका प्रवर्तक राजा है ... | ७ | ७३ |
| राजाके सात गुणोंका वर्णन | ७ | ७४ |
| नृपको क्षमाकी आवश्यकता... | ८ | ८२ |
| दैवतांश राजाका लक्षण ... | ८ | ८५ |
| राक्षसांश राजाका लक्षण ... | ८ | ८६ |
| राजाको विनयकी आवश्यकता | ८ | ९१ |
| राजाने मनको वश करना ... | ९ | ९७ |
| सब विषय अनर्थहेतु हैं ... | ९ | १०१ |
| शब्दादि पांच विषयोंका उदाह० | ९ | २ |
| मद्यादिकोंकी निंदा और स्तुति | १० | ८ |
| राजाने परस्त्रीकी अभिलाषा नहीं करना ... | १० | १३ |
| बृहत्कार्यमें स्त्री सहाय है ... | १० | १४ |
| मदिरापानकी परिमिति ... | १० | १५ |
| पुण्यका और पापका फल ... | ११ | २१ |
| राजाओंका आठ प्रकारका वृत्त | ११ | २३ |
| अधम राजाका लक्षण ... | ११ | २६ |
| विनाशोन्मुख राजाका लक्षण | ११ | २७ |
| राजाने दूतद्वारा स्ववृत्तका श्रवण करना ... | १२ | २९ |
| लोकापवाद बलवत्तर है ... | १२ | ३४ |
| यौवनादिक ६ छ० चंचल हैं... | १२ | ३८ |
| राजाके दुर्गुण .. | १२ | ३९ |
| राजाको विपत्तिकारण ... | १२ | ४१ |
| राजाको दुःख और सुखका साधन | १२ | ४२ |
| गुरुका सेवन ... | १३ | ४६ |
| पंडित राजाका लक्षण ... | १३ | ४८ |
| आन्वीक्षिक्यादिचतुर्दश विद्या | १३ | ५१ |
| चतुर्दश विद्याओंका विषय ... | १३ | ५२ |
| त्रयीका लक्षण ... | १३ | ५४ |
| वार्तालक्षण ... | १३ | ५५ |
| दंडनीतिशब्दका अर्थ ... | १४ | ५६ |
| अहिंसा परम धर्म है ... | १४ | ५८ |
| सज्जनसंगति करै ... | १४ | ६० |
| दुर्जनसंगतिको त्याग करै ... | १४ | ६२ |
| कठोर भाषण न करै ... | १४ | ६५ |
| मृदु भाषण करै ... | १४ | ६६ |
| दयादिक वशीकरण है ... | १५ | ७० |
| मित्रादिकोंको वश करनेका साधन ... | १५ | ७३ |
| राजाको असाधारण गुणकी आवश्यकता ... | १५ | ७७ |
| पृथ्वी सब धनोंकी खानी है | १५ | ७८ |
| सर्वदा धनका संचय करना | १५ | ८० |
| सामंतादिकोंका लक्षण ... | १६ | ८२ |
| अनुसामंतादिकोंका लक्षण ... | १६ | ८८ |
| ग्रामादिकोंका लक्षण ... | १६ | ९२ |
| ब्रह्माके कोशादिकोंका लक्षण | १६ | ९३ |
| अंगुलादिकोंका प्रमाण ... | १७ | ९५ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लोक. |
|---|---|---|
| प्राजापत्य और मनुमानकी व्यवस्था ... | १८ | ८ |
| भागके विना भूमिको न छोडे | १८ | १० |
| देवतादिकोंके निमित्त पृथ्वीको दे दे ... | १८ | ११ |
| राजधानीस्थानवर्णन .... | १८ | १२ |
| राजगृहनिर्माणप्रकार .. | १८ | १८ |
| इतर गृहादिकोंके सामने द्वार-निषेध ... | १९ | ३२ |
| इतर गवाक्षके सामने गवाक्ष न बनावे ... | २० | ३४ |
| प्राकारका प्रमाण ... | २० | ३६ |
| परिखाका प्रमाण ... | २० | ३९ |
| युद्धसामग्री आदि रहित दुर्गका निषेध ... | २० | ३० |
| राजसभाका प्रमाण और वर्णन | २० | ४२ |
| मन्त्री आदिकोंके लिये सभा | २१ | ४९ |
| सेनानिवेशस्थान ... | २१ | ५१ |
| धनी आदिकोंके गृहोंका क्रम... | २१ | ५१ |
| धर्मशाला वर्णन ... | २१ | ५६ |
| बाजारमे सजातियोंकी पृथक् २ दुकान बनावे ... | २१ | ५७ |
| राजमार्गादिकोंका प्रमाण ... | २१ | ५९ |
| मार्गवर्णन ... | २२ | ६५ |
| धर्मशालाकी व्यवस्था ... | २२ | ६९ |
| पथिकोंकी व्यवस्था ... | २३ | ७४ |
| राजाका रात्रिक पश्चिमभागमें कृत्य ... | २३ | ७५ |
| राजाका दिनका कृत्य ... | २३ | ७८ |
| रात्रिके पूर्वभागमें कृत्य ... | २३ | ८२ |
| कार्यस्थानरक्षणप्रकार ... | २३ | ८६ |
| चोकीदारोंसे राजा गृहवृत्तसुने | २४ | ८९ |
| राजा रात्रिमें चार २ घडी सदा विचरे ... | २४ | ९१ |
| राजाका प्रजाशासनप्रकार ... | २४ | ९२ |

| विषय | पृष्ठ. | श्लो. |
|---|---|---|
| राजाज्ञावर्णन ... | २४ | ९३ |
| अपनी आज्ञाको लिखकर चौराहामे रखना ... | २५ | ३१२ |
| राजाने पथिकोंका रक्षण हरप्रयत्नसे करना ... | २५ | १४ |
| राजाके द्रव्यके ६ छः विभाग | २६ | १६ |
| राजा शूरत्वादिकोंका त्याग न करे .. | २६ | १८ |
| शूरादिकोंका लक्षण ... | २६ | १९ |
| विषयुक्त अन्नकी परीक्षा ... | २६ | २५ |
| अन्नका निषेध ... | २[illegible] | २७ |
| राजा मन्त्रियों सहित कोई निवेदनको सुने ... | २७ | २९ |
| विहार बगीचामें करे ... | २७ | २९ |
| प्रातःकाल और सन्ध्यासमय कवायद्कारावे और करे ... | २७ | ३० |
| मृगयामें गुण और दोष ... | २७ | ३२ |
| गूढचारियोंसे प्रजाआदिकोंका अभिप्राय सुने ... | २७ | ३३ |
| म्लेच्छ राजाके लक्षण ... | २७ | ३६ |
| राजा गूढचारीको पहचाने ... | २७ | ३७ |
| राज्याधिकारिनिर्णय ... | २८ | ४१ |
| राज्यविभागका निषेध ... | २८ | ४५ |
| अन्याधिकारिनिर्णय ... | २८ | ४६ |
| मन्त्रियोंके संग एकान्तका समय | २८ | ५० |
| राजासनादिकोंका स्थान निर्णय | २८ | ५२ |
| भद्रासनपर राजाका वर्तन ... | २९ | ६१ |
| भृत्यका विद्या और कलाओंका अभ्यास करावे ... | ३० | ६६ |
| राजयानपर नीचको न बैठावे | ३० | ७६ |
| प्रतिवर्ष स्वयं ग्रामादिकको देखे | ३० | ७३ |
| अनेक प्रजाद्वेषी अधिकारीको त्याग दे ... | ३० | ७५ |
| भोगयोग्य स्त्रीके लक्षण ... | ३० | ७८ |

| विषय. | पृष्ठ | श्लो० |
|---|---|---|
| राजा दो प्रहर निद्रा करे ... | ३१ | ७९ |
| आपत्तिमें किल्ला, पर्वत इनका आश्रय करे ... | ३१ | ८० |
| उसी समय चोरीसे राज्यग्रहण करे | ३१ | ८१ |
| परस्त्री और कुलीन कन्याको दूषित न करे ... | ३१ | ८४ |
| प्रयत्न विफल देखकर तप कर स्वर्गमें गमन करे | ३१ | ३८५ |

इति नीतिशास्त्र स्वरूपलाभादि कथन प्रथमोऽध्याय ।

अध्याय २.

युवराजादिकृत्यकथन ।

| विषय. | पृष्ठ | श्लो० |
|---|---|---|
| एकाकी राजाको राज्य दुष्कर होता है ... | ३१ | १ |
| व्यवहार मन्त्रियोंके विना न करे | ३१ | २ |
| सभासदादिकोंके मतमें स्थित रहै | ३१ | ३ |
| स्वतन्त्रता अनर्थकारी है ... | ३२ | ४ |
| राजाकोसहायताकी आवश्यकता | ३२ | ५ |
| सहायकोंके गुण ... | ३२ | ८ |
| निन्द्य सहायकसे अनिष्टफल | ३२ | १० |
| युवराजादिक राजाके अंग हैं | ३२ | १२ |
| यौवराज्यके अधिकारी ... | ३२ | १४ |
| अन्य राजपुत्रोंका यत्नसे रक्षण करे ... | ३३ | १७ |
| रक्षण न करनेसे अनर्थ ... | ३३ | २० |
| अपने पुत्रोंको नीतिशास्त्रादिकोंमें कुशल करे ... | ३३ | २२ |
| अविनीत युवराजसे अनर्थ ... | ३३ | २५ |
| दुष्ट भी राजपुत्रका त्याग न करे | ३३ | २६ |
| व्यसनी राजपुत्रका वशोपाय | ३३ | २७ |
| दुष्टदायादको सिंह आदिसे मरवा दे ... | ३४ | २८ |
| दत्त आदिको अपने पुत्र तुल्य न माने ... | ३४ | ३१ |
| औरस पुत्रके अभावमें दौहित्र | ३४ | ३२ |
| दौहित्राभावमें दत्तक पुत्र ... | ३४ | ३३ |
| युवराजका वर्तन ... | ३४ | ३६ |
| पिताकीआज्ञा ही पुत्रको भूषण है | ३४ | ३८ |
| सम्पूर्ण भ्राताओंमें अपनी अधिकता न दिखावै ... | ३४ | ४० |
| पित्राज्ञोल्लंघनका दुष्ट फल ... | ३५ | ४१ |
| पिता प्रसन्न हो एसही आचरण करै ... | ३५ | ४३ |
| चुगुलको महान् दण्ड करे ... | ३५ | ४६ |
| पित्रादिकोंको नमस्कार करै | ३५ | ४७ |
| इस प्रकार आचरणशील राजपुत्रको फल ... | ३५ | ५१ |
| अब मन्त्री आदिकोंके संक्षेपसे कार्य और लक्षण कहते हैं... | ३५ | ५२ |
| केवल जाति और कुलकोही न देखे ... | ३६ | ५४ |
| विवाह और भोजनमें कुल जातिविवेक ... | ३६ | ५६ |
| श्रेष्ठ भृत्यका लक्षण ... | ३६ | ५८ |
| निन्द्यभृत्यका लक्षण ... | ३६ | ६५ |
| दश प्रकृतियोंका नाम ... | ३७ | ६९ |
| आठ प्रकृतियोंका नाम ... | ३७ | ७२ |
| पुरोहितादिकोंका अधिकार... | ३७ | ७४ |
| पुरोहितादिकोंका लक्षण ... | ३७ | ७७ |
| प्रतिनिधिका कार्य .... | ३८ | ८७ |
| प्रधानका कृत्य ... | ३८ | ८९ |
| सचिव कृत्य ... | ३९ | ९४ |
| मन्त्रिकार्य ... | ३९ | ९५ |
| प्राड्विवाक कृत्य ... | ३९ | ९८ |

| विषय. | | पृष्ठ. | श्लो० |
|---|---|---|---|
| पंडितकृत्य | ... | ३९ | ९९ |
| सुमन्त्रकार्य | ... | ३९ | १०१ |
| अमात्यकृत्य | ... | ४० | ३ |
| राजा अन्योन्यक स्थानपर अन्योन्यकी योजना करे | ... | ४० | ७ |
| अधिकारकी व्यवस्था | ... | ४० | ९ |
| अधिकारयोग्यको अधिकार देना | | ४० | ११ |
| उसके अभावमे अन्ययोजना | | ४१ | १४ |
| अन्यकर्मोके सचिवकी योजना | | ४१ | १७ |
| दंडाधिपति आदि ६ छः की योजना | ... | ४१ | २० |
| राजा तपस्वी आदिकोंका रक्षण करे | ... | ४१ | २२ |
| योजना करनेहारा दुर्लभ है | ... | ४१ | २६ |
| गजाधिपतिका लक्षण | ... | ४२ | २७ |
| आधोरणलक्षण | ... | ४२ | २८ |
| अश्वाधिपतिलक्षण | ... | ४२ | २९ |
| सारथिलक्षण | .... | ४२ | ३१ |
| सवारका लक्षण | ... | ४२ | ३२ |
| अश्वशिक्षकलक्षण | ... | ४२ | ३४ |
| अश्वसेवकलक्षण | ... | ४२ | ३६ |
| सेनाधिप और सनिकोंका ल० | | ४२ | ३७ |
| पत्तिपालुआदिकोंका अधिकार | | ४३ | ४० |
| शतानीकादिकोंका लक्षण | ... | ४३ | ४२ |
| सबको अपने २ चिह्नोंसे चिह्नित करे | ... | ४३ | ४७ |
| तित्तिरादिकपोषकोंकी योजना | | ४३ | ४९ |
| कोशाध्यक्षलक्षण | ... | ४४ | ५० |
| वस्त्राधिपकालक्षण | ... | ४४ | ५३ |
| वितानाद्यधिपतिल० | ... | ४४ | ५४ |
| धान्यपतिल० | ... | ४४ | ५५ |
| पाकनायकल० | ... | ४४ | ५६ |
| आरामाधिपतिल० | ... | ४४ | ५७ |
| गृहाद्यधिपतिल० | ... | ४४ | ५७ |

| विषय. | | पृष्ठ | श्लो० |
|---|---|---|---|
| संभाराधिपतिलक्षण | ... | ४४ | ५९ |
| पुजारीका ल० | ... | ४४ | ६२ |
| दानाध्यक्षल० | ... | ४५ | ६३ |
| सभासदल० | ... | ४५ | ६५ |
| सत्राधिपल० | ... | ४५ | ६७ |
| परीक्षकल० | ... | ४५ | ६८ |
| साहसाधिपल० | ... | ४५ | ७० |
| ग्रामाधिपतिल० | . | ४५ | ७० |
| लेखकल० | ... | ४५ | ७२ |
| प्रतिहारल० | ... | ४५ | ७३ |
| शौल्किकल० | ... | ४५ | ७४ |
| तपोनिष्ठल० | ... | ४६ | ७५ |
| दानशीलल० | ... | ४६ | ७६ |
| श्रुतज्ञल० | ... | ४६ | ७७ |
| पौराणिकल० | ... | ४६ | ७८ |
| शास्त्रज्ञल० | ... | ४६ | ७९ |
| ज्योतिषीका ल० | ... | ४६ | ८० |
| मांत्रिकल० | ... | ४६ | ८१ |
| वैद्यल० | ... | ४६ | ८२ |
| तांत्रिकल० | ... | ४६ | ८३ |
| अंतःपुरयोग्यपुरुष ल० | ... | ४६ | ८४ |
| परिचारकल० | .. | ४६ | ८५ |
| गायकाधिपल० | ... | ४७ | ८८ |
| वेश्याल० | ... | ४७ | ९० |
| वेश्याभृत्योंका ल० | ... | ४७ | ९२ |
| वैतालिकल० | ... | ४७ | ९३ |
| शिल्पज्ञोंका लक्षण और नाम | | ४७ | ९३ |
| सत्य और परोपकार श्रेष्ठ है | | ४८ | २०४ |
| संपूर्ण पापोंसे असत्य प्रबल है | | ४८ | ५ |
| सद्भृत्यलक्षण | ... | ४८ | ६ |
| कचहरीमें आज्ञाके विना अन्यको आनेका प्रतिबंध | ... | ४८ | ९ |
| चौकीदारका कृत्य | ... | ४८ | १० |
| राजा विष्णुतुल्य है | ... | ४८ | ११ |

| विषय. | पृष्ठ | श्लो० |
|---|---|---|
| भृत्यका राजसमीप अवस्थान-प्रकार ... | ४८ | १२ |
| सेवक स्वामीपक्षकी पुष्टि करे | ४९ | १४ |
| राजाज्ञामे विवादियोंके मतको युक्तिसे बोले ... | ४९ | १५ |
| राजाको स्वकार्य निवेदनप्रकार | ४९ | १७ |
| राजाके समीप उंचे स्वरसे हँसी वगैरहका निषेध ... | ४९ | १८ |
| हितकारी सेवकका कृत्य ... | ४९ | २१ |
| राजा किसी मिषसे प्रजाको दुःखित न करे ... | ५० | २६ |
| विद्वान् अपने २ कार्यमें नियुक्त रहे ... | ५० | २७ |
| अन्याधिकारकी इच्छा न करे | ५० | २८ |
| स्वामीके गुप्तकार्य और मन्त्रका प्रकाश न करे ... | ५० | ३० |
| राजाको मित्र न माने ... | ५० | ३१ |
| स्त्री आदिकोंका सहवासनिषेध | ५० | ३२ |
| संपन्न होकर भी राजवेष न करे | ५० | ३३ |
| राजदत्त भूषणादिकको सदा धरे | ५० | ३५ |
| आपत्कालमे स्वामीको न त्यागे | ५० | ३७ |
| अन्नदाताका इष्टचिंतन करे ... | ५० | ३८ |
| अत्यन्त सेवनसे अप्रधानभी प्रधान होता है ... | ५१ | ३९ |
| सहसा कार्यको न करे ... | ५१ | ४१ |
| राजप्रियकी अनिष्टचिंतना न करे | ५१ | ४२ |
| सदाचारी राजा और अधिकारी इनकी लक्ष्मी स्थिर होती है | ५१ | ४४ |
| प्रच्छन्न वैरिसेवकोंका लक्षण . | ५१ | ४५ |
| चोरराजाका लक्षण ... | ५१ | ४७ |
| प्रच्छन्न तस्करोंका लक्षण ... | ५१ | ४८ |
| मन्त्री बालक भी राजपुत्रोंका अपमान न करे ... | ५१ | ४९ |
| राजपुत्रका दुराचार राजाको न दिखावे ... | ५१ | ५० |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लो० |
|---|---|---|
| आज्ञामे तत्पर रहे ... | ५२ | ५२ |
| महत्कार्यमे प्राणोंको भी दग्ध कर दे ... | ५२ | ५३ |
| अन्यथा धनहरण स्वनाशक है | ५२ | ५५ |
| राजादिकोंकी योग्यता ... | ५२ | ५६ |
| राजपत्नी आदिकोंका अपमान न करे ... | ५२ | ५८ |
| नृपाहूत त्वरित गमन करे ... | ५२ | ५९ |
| अदत्त राजद्रव्यका निषेध ... | ५२ | ६० |
| द्रव्यलोभसे अन्यकार्यको नष्ट न करे ... | ५२ | ६१ |
| उत्कोचग्रहणनिषेध ... | ५२ | ६२ |
| राज्यरक्षणप्रकार ... | ५२ | ६३ |
| अधार्मिक राजाका लक्षण ... | ५३ | ६४ |
| राष्ट्रविनाशक राजाका त्याग | ५३ | ६५ |
| अस्त्रधारियोंका अवस्थान नियम | ५३ | ६६ |
| सभामे पुरोहितादिकोंका तारतम्य | ५३ | ६७ |
| राजा पुरोहितादिकोंका क्रमसे पुरोगमनादिक सत्कार करे | ५३ | ७१ |
| राजाका त्रिविध वर्तन ... | ५३ | ७३ |
| भृत्यादिके संग परिहासादि करनेसे अनर्थ ... | ५३ | ७५ |
| भृत्य राजलेखके विना कार्य न करे ... | ५४ | ८१ |
| लिखे विना आज्ञा दे और कार्य करे वे दोनों चोर हैं ... | ५४ | ८२ |
| राजादिकोंका लेखका तारतम्य | ५४ | ८४ |
| लेखकी आवश्यकता ... | ५४ | ८८ |
| लेखके दो भेद ... | ५४ | ८९ |
| जयपत्रलक्षण ... | ५५ | ९० |
| आज्ञापत्रलक्षण ... | ५५ | ९१ |
| प्रज्ञापनपत्रलक्षण ... | ५५ | ९२ |
| शासनपत्रलक्षण ... | ५५ | ९३ |

| विषय | | पृष्ठ | श्लो० |
|---|---|---|---|
| प्रसादपत्रलक्षण | ... | ५५ | ९४ |
| भोगपत्रलक्षण | ... | ५५ | ९५ |
| भागलेख्यलक्षण | ... | ५५ | ९६ |
| दानपत्रलक्षण | ... | ५५ | ९७ |
| क्रयणलेख्यलक्षण | ... | ५५ | ९८ |
| संवित्पत्रलक्षण | ... | ५५ | ९९ |
| ऋणलेख्यलक्षण | ... | ५५ | ३०१ |
| शुद्धिपत्रलक्षण | . | ५६ | २ |
| सामयिकपत्रलक्षण | ... | ५६ | ३ |
| संमतिपत्र | ... | ५६ | ४ |
| क्षेमपत्रलक्षण | ... | ५६ | ५ |
| भाषापत्रलक्षण | ... | ५६ | ९ |
| आयधनलक्षण | ... | ५६ | १२ |
| व्ययधनलक्षण | ... | ५६ | १३ |
| संचितधनलक्षण | ... | ५६ | १३ |
| व्यय दो प्रकारका | ... | ५६ | १४ |
| संचित तीन प्रकारका | ... | ५६ | १४ |
| निश्चितान्यस्वामिक संचित त्रिविध है | ... | ५७ | १५ |
| औपनिध्यादिकोंका लक्षण | ... | ५७ | १६ |
| स्वस्वत्वनिश्चित द्विविध | ... | ५७ | १८ |
| साहजिकलक्षण | ... | ५७ | १९ |
| अधिकधनलक्षण | ... | ५७ | २१ |
| पार्थिव आयलक्षण | ... | ५७ | २३ |
| व्ययके दो प्रकार | ... | ५७ | २६ |
| निधि और उपनिधिका लक्षण | | ५८ | २८ |
| विनिमय और अधमर्णका ल० | | ५८ | २९ |
| ऋण दो प्रकारका | ... | ५८ | ३० |
| ऐहिकपारलौकिकोंका ल० | ... | ५८ | ३१ |
| प्रतिदानलक्षण | ... | ५८ | ३२ |
| पारितोषिकलक्षण | ... | ५८ | ३३ |
| उपभोग्यलक्षण | ... | ५८ | ३४ |
| भोग्यलक्षण | ... | ५८ | ३५ |
| आयव्ययलेखनप्रकार | ... | ५८ | ३९ |

| विषय | | पृष्ठ. | श्लोक. |
|---|---|---|---|
| मानादिकोंसे आयादिकोंके अनेक भेद | ... | ५९ | ४२ |
| मानादिकोंका लक्षण | ... | ५९ | ४४ |
| व्यवहारार्थ चांदी आदिको मुद्रित करे | ... | ५९ | ४५ |
| द्रव्य और धनका लक्षण | ... | ५९ | ४६ |
| मूल्यका न्यूनाधिक्यकारण | ... | ५९ | ४९ |
| पत्रलेखनप्रकार | ... | ५९ | ५१ |
| सब लेखपर राजमुद्रा | ... | ६० | ५९ |
| पत्रमें आयव्ययलेखनका स्थान-विचार | ... | ६० | ६३ |
| व्यापकव्याप्यलक्षण | ... | ६० | ६६ |
| स्थानटिप्पणादिक भेद | .. | ६१ | ६९ |
| शेषायव्ययस्थलायव्ययज्ञान | | ६१ | ७२ |
| तिथ्यादिकभी अवश्य लिखनी | | ६१ | ७४ |
| गुंजादिकोंका लक्षण | .. | ६१ | ७७ |
| प्रस्थपादलक्षण | ... | ६१ | ७९ |
| संख्याका प्रमाण | ... | ६२ | ८० |
| संख्या अनन्त है | ... | ६२ | ८१ |
| एकादि पदार्थ संख्याओंका नाम | | ६२ | ८२ |
| कालमान | ... | ६२ | ८२ |
| चांद्रादिकोंकी व्यवस्था | ... | ६२ | ८४ |
| भृति तीन प्रकारकी | ... | ६२ | ८५ |
| कार्यमानादिकोंका लक्षण | ... | ६२ | ८६ |
| मध्यमादि भृतिका लक्षण | ... | ६२ | ८९ |
| पोषणयोग्य भृति नियत करै | | ६२ | ९१ |
| हीन भृति देनेसे अनर्थ | ... | ६२ | ९३ |
| शूद्रादिकोंको अन्नाच्छादनमात्र भृति | ... | ६३ | ९४ |
| भृत्यके तीन भेद | ... | ६३ | ९६ |
| भृत्यको छुट्टी देनेका नियम | ... | ६३ | ९७ |
| रोगके समय भृतिदानप्रकार | | ६३ | ९९ |

| विषय | पृष्ठ | श्लोक. |
|---|---|---|
| वार २ रोगग्रस्तके जगह प्रतिनिधि | ६३ | ४०१ |
| सेवाके विनाही भृतिदान ... | ६३ | २ |
| कटुभाषी भृत्यका भृतिदानप्रकार | ६४ | ७ |
| राजाका भृत्यके संग वर्तन ... | ६४ | ८ |
| भृत्यको कार्यमुद्रासे अंकित करै | ६४ | १५ |
| अपना विशिष्ट चिह्न किसीकोभी न दे ... | ६४ | १७ |
| दश प्रकृतियोंका जातिनियम | ६५ | १८ |
| शूद्रपुरोहितादिकोंका निषेध... | ६५ | १९ |
| भागग्राही ओर साहसाधिपति क्षत्रिय ... | ६५ | १९ |
| ग्रामाधिपादिकोंके विषे जातिनियम . | ६५ | २० |
| सेनापति शूरही नियुक्त करना | ६५ | २२ |
| राजाको त्यागने योग्य दुष्ट गुण | ६५ | २३ |


इति युवराजादिकृत्यकथननाम द्वितीयाऽध्याय ।

## अध्याय ३.

### साधारणनीतिशास्त्रकथन


| विषय | पृष्ठ | श्लोक. |
|---|---|---|
| सबोंकी सुखक अर्थ प्रवृत्ति है | ६५ | १ |
| धर्मके विना सुख नहीं होता | ६५ | २ |
| सर्वसाधारण विहिताचरणकथन | ६५ | ३ |
| निषिद्धाचरणकथन .. | ६६ | ६ |
| दशविधि पाप . | ६६ | ७ |
| दरिद्री आदिकोंका रक्षण करै | ६६ | ८ |
| समयपर हित और मित वचन कहै ... | ६६ | १० |
| दूसरेको अपने अपमान आदिको प्रगट न करे ... | ६६ | १२ |
| पराराधनपंडितपुरुषका वर्तन | ६६ | १३ |
| इंद्रियोको वश करै ... | ६६ | १४ |
| इंद्रियोंको वश न करनेसे अनर्थ | ६६ | १५ |
| स्त्रियोंका स्पर्श भी अनर्थकारक है | ६६ | १६ |
| स्त्रियोंका सम्बोधनप्रकार ... | ६७ | १८ |
| एक क्षण भी स्त्रियोंको स्वातंत्र्य न दे .. | ६७ | १९ |
| यत्नसे स्त्रियोंकी रक्षा करै ... | ६७ | २२ |
| चैत्यादिकोंका अतिक्रमणनिषेध | ६७ | २३ |
| नदीतरणादिनिषेध .. | ६७ | २४ |
| बहुत दिनतक खट्टे पदार्थ न खाय | ६७ | २६ |
| रात्रिके समय वृक्षपर न रहै | ६७ | २७ |
| चत्वरादिकको दिनमें भी न सेवै | ६७ | २८ |
| सूर्यको निरन्तर न देखे ... | ६७ | २९ |
| सन्ध्याके समय भोजनादिकोंका निषेध ... | ६८ | ३० |
| व्यवहारमें लोकही आचार्य है | ६८ | ३१ |
| राजादि सद्धर्ममें दूषण न लगावे | ६८ | ३२ |
| आग्रहपूर्वक भाषण न करै ... | ६८ | ३३ |
| किंचित् भी पापका स्मरण न करै | ६८ | ३५ |
| सामको यत्नसे ग्रहण करै ... | ६८ | ३७ |
| श्रुत्यादिकविहित कर्मको करै | ६८ | ३८ |
| राजा अधर्मनिरत मित्रादिकोंका भी त्याग करै ... | ६८ | ३९ |
| छः आततायियोंका लक्षण ... | ६८ | ३० |
| स्त्री आदिकी एक क्षण भी उपेक्षा न करै ... | ६८ | ४१ |
| जहां विरुद्ध राजादिक हो वहा एक दिन भी न बसै ... | ६८ | ४२ |
| जहां अविवेकी राजादिक हों वहां धनादिककी इच्छा न करै | ६९ | ४४ |
| मात्रादिक पालनादिक न करै तौ शोककी क्या बात है | ६९ | ४६ |
| राजादिकोंकी सावधानपनेसे सेवा करै ... | ६९ | ४९ |
| मात्रादिकोंके संग विरोधादिक न करै ... | ६९ | ५० |
| स्त्री आदिके सङ्ग विवाद न करै | ६९ | ५१ |
| अकेला भोजनादिक न करै | ६९ | ५२ |

| विषय | | पृ | श्लो |
|---|---|---|---|
| अन्यधर्मका सेवन न करै | ... | ६९ | ५३ |
| त्याज्य छः दोष | ... | ६९ | ५४ |
| विनापूछै किसीसे न कहै | ... | ७० | ५९ |
| अनुभवके विना स्वाभिप्रायको न दिखावै | ... | ७० | ६० |
| दंपती आदिकी साक्षि न दे | | ७० | ६१ |
| किसीके मर्मको स्पर्श न करै | | ७० | ६२ |
| अश्लील कीर्तनादिकोंका निषेध | | ७० | ६३ |
| अपने बनाये हेतुसे किसीको कुंठित न करै | .. | ७० | ६४ |
| शत्रुसेभी गुण ग्रहण करने | .. | ७० | ६५ |
| प्रारब्धसे धनी और निर्धन होताहै | | ७० | ६६ |
| दीर्घदर्शीका लक्षण | ... | ७० | ६७ |
| प्रत्युत्पन्नमतिलक्षण | ... | ७० | ६९ |
| आलसी मनुष्यका लक्षण | ... | ७१ | ७० |
| साहसी मनुष्यका लक्षण | ... | ७१ | ७१ |
| चिरकारी मनुष्यका लक्षण | ... | ७१ | ७२ |
| कदापि सहसा कर्मको न करै | | ७१ | ७४ |
| मित्रकी प्राप्तिके लिये यत्न करै | | ७१ | ७६ |
| विश्वस्तका भी अत्यंत विश्वास न करै | ... | ७१ | ७७ |
| प्रामाणिकादिकोंका विश्वास सदैव करै | ... | ७१ | ७८ |
| उग्रदंड और कटुवचनका निषेध | | ७१ | ८१ |
| कटुवचन और मृदुभाषणका फल | | ७१ | ८२ |
| विद्यादिकोंसे प्रमत्त न हो | ... | ७१ | ८३ |
| विद्यामत्तको अनर्थ फल | ... | ७२ | ८४ |
| शौर्यमत्तको अनर्थ फल | ... | ७२ | ८५ |
| श्रीमत्तपुरुषकी स्थिति | ... | ७२ | ८६ |
| अभिजनमत्तकी स्थिति | ... | ७२ | ८७ |
| बलमत्तवर्तन | ... | ७२ | ८८ |
| मानमत्तवर्तन | ... | ७२ | ८९ |

| विषय | | पृष्ठ | श्लो० |
|---|---|---|---|
| विद्यादिकोंका फल | ... | ७२ | ९० |
| गुविद्यादिकको नीचसे भी ग्रहण करै | .. | ७२ | ९३ |
| नष्टवस्तुकी उपेक्षा करे | .. | ७२ | ९४ |
| परद्रव्यहरणादिका निषेध | ... | ७२ | ९५ |
| प्राणनाशादिकोंमे अनृत बोलै | | ७३ | ९७ |
| स्त्रीपुरुष आदिमें भेद न करे | | ७३ | ९८ |
| वार्ता करते हुए पुरुषोंके बीचमे न जाय | ... | ७३ | ९९ |
| पुत्रवाला सपुत्र कन्याको घर न बसावै | ... | ७३ | १ |
| सधन और सभर्तृक भगिनीको घर न बसावै | .. | ७३ | २ |
| अग्नि आदिको अल्प समझके अपमान न करै | .. | ७३ | ३ |
| ऋणादिकोंके शेषकी रक्षा न करै | | ७३ | ४ |
| याचकादिकोंके संग वर्तन | ... | ७३ | ५ |
| दाता आदिकी कीर्तिहीको सुनै | | ७३ | ६ |
| समयपर परिमित भोजन करै | | ७३ | ७ |
| विहारादिकको एकांतमें करै | | ७३ | ८ |
| मधुरादिक षड्रस अन्नको प्रीतिसे भक्षण करै | ... | ७३ | ९ |
| विहार स्वस्त्रीके साथ करै | ... | ७४ | १० |
| दीनादिकोंका उपवास न करै | | ७४ | ११ |
| कार्यसाधकका कृत्य | ... | ७४ | १२ |
| किसीको अनिष्ट न कहै | ... | ७४ | १३ |
| राजादिकोंका आज्ञाभंगनिषेध | | ७४ | १४ |
| असत्यकार्यकारी गुरुको भी बोध करै | ... | ७४ | १४ |
| कार्यबोधक छोटेका भी उल्लंघन न करै | ... | ७४ | १५ |
| तरुणीको स्वतंत्र छोडकर कहीं न जाय | ... | ७४ | १५ |
| साध्वी भार्यादिकोंका यत्नसे पालन करै | ... | ७४ | १७ |

| विषय. | पृष्ठ | श्लो० |
|---|---|---|
| जीतेही मृततुल्य है ... | ७४ | २१ |
| आयुरादिक नव गुप्त करे . | ७५ | २४ |
| देशाटनादिको करे ... | ७५ | २५ |
| देशाटनादिकोंसे लाभ ... | ७५ | २७ |
| केवल स्वार्थ अन्नपचनका निषेध | ७५ | ३४ |
| गुरु आदिकोंको मार्ग छोड दे | ७५ | ३५ |
| शकटादिकोंसे दूर चलनेका नियम ... | ७५ | ३६ |
| शृंगी आदिका विश्वास न करै | ७६ | ३७ |
| गमनादिकोंका निषेध ... | ७६ | ३८ |
| बडोंकी आज्ञाके विना साथ न करै ... | ७६ | ४० |
| निंदित भी कर्म श्रेष्ठको भूषण होता है ... | ७६ | ४१ |
| श्रेष्ठके समुख न टिकै .. | ७६ | ४२ |
| मूर्खको स्वामी बनानेकी इच्छा न करै ... | ७६ | ४३ |
| आवश्यक कार्य पहिले करै ... | ७६ | ४४ |
| मित्राज्ञा श्रेष्ठ है ... | ७६ | ४५ |
| जगत्को वश करनेके उपाय | ७६ | ४७ |
| वश करनेके उपाय दुर्जनके विषय व्यर्थ है ... | ७६ | ४९ |
| श्रुति आदिका अभ्यास हितकारी है ... | ७७ | ५० |
| मनुष्योंके चार व्यसन ... | ७७ | ५१ |
| कूटव्यवहारादिकोंका निषेध | ७७ | ५२ |
| विहितकार्य कथन ... | ७७ | ५३ |
| अनिद्रितका लक्षण ... | ७७ | ५३ |
| श्रेष्ठका अनुकरण न करै ... | ७७ | ५६ |
| सर्प आदिपर एकाकी न गमन करै ... | ७७ | ५७ |
| मारनेवाले गुरुको भी मारै ... | ७७ | ५७ |
| कलहमे सहायता न करै ... | ७७ | ५८ |
| गुरु आदिके आगे प्रौढपाद न बैठे ... | ७७ | ५९ |
| उत्तम पुरुषका लक्षण ... | ७७ | ६० |
| सोलहवर्षसे ऊपर पुत्रको ताडन न करे .. | ७७ | ६१ |
| दौहित्र आदिक पुत्राधिक हैं | ७७ | ६२ |
| स्वामीका लक्षण ... | ७८ | ६४ |
| स्त्रीके संग एकशय्यानिषेध ... | ७८ | ६४ |
| वर और मित्रकी परीक्षा ... | ७८ | ६५ |
| विवाहमे कुलादिकोंकी अपेक्षा | ७८ | ६८ |
| कन्याका लक्षण .. | ७८ | ६९ |
| विद्या और धनका संचय करे | ७८ | ७० |
| धनार्जनका उपयोग ... | ७८ | ७१ |
| विद्या धनसे श्रेष्ठ है ... | ७८ | ७४ |
| अवश्य धन संपादन करे ... | ७९ | ७७ |
| धनका प्रभाव ... | ७९ | ७९ |
| लेखकी आवश्यकता ... | ७९ | ८१ |
| लेखके विना व्यवहारनिषेध | ७९ | ८२ |
| मैत्र्यर्थ विनाब्याज भी धन दे | ७९ | ८३ |
| संबंध इत्यादि अवश्य लिखे | ७९ | ८४ |
| धन देनेका निषेध ... | ७९ | ८६ |
| आहारादिकोंमे लज्जा त्याग दे | ७९ | ८६ |
| यदि मनुष्य जीवेगा तो सैकडों आनदोंको देखेगा ... | ८० | ८९ |
| पिता सदार और प्रौढ पुत्रोंको धनका विभाग करै ... | ८० | ९० |
| विभागके न करनेसे अनर्थ ... | ८० | ९१ |
| व्याजी धनका विभाग करै ... | ८० | ९२ |
| जो ऋण देना हो उसको भी न बांटे | ८० | ९३ |
| विना साक्षी और विना ऋणपत्र धन न दे ... | ८० | ९६ |
| उत्तमोत्तमादिक पुरुषोंका लक्षण | ८० | ९६ |
| दानके विना एक दिन भी व्यतीत न करै ... | ८० | ९९ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लोक |
|---|---|---|
| दान और धर्म अतिशीघ्रतासे करे | ८० | २० |
| दानधर्मके विना परलोकमें सहायक नहीं ... ... | ८१ | १ |
| दानसे शत्रुभी मित्र होता है ... | ८१ | २ |
| पारलोक्यादिदानका लक्षण | ८१ | २ |
| आराध्यदेवको अत्यन्त माने | ८१ | ७ |
| दानके विना वशीकर वस्तु नहीं | ८१ | ८ |
| दानका फल ... | ८१ | ९ |
| विचारकर स्नेह वा द्वेषको करे | ८१ | ९ |
| सब अतिको वर्ज दे ... | ८१ | १० |
| अति क्रौर्यादिकोंसे अनिष्ट फल | ८१ | १२ |
| मध्यम प्रकारका आचरण करे | ८२ | १४ |
| देवादिकोंका स्वामी होनेकी इच्छा न करे ... | ८२ | १५ |
| इनके भजनादिककी इच्छा करे | ८२ | १६ |
| तरुणी आदिको पराधीन न करे | ८२ | १७ |
| अल्प कारणसे बडे अर्थको न त्याग ... | ८२ | १८ |
| अधिक खर्चके भयसे सत्कीर्तिको न त्यागे ... | ८२ | १९ |
| दूसरा उदास हो ऐसे वचनको विनोदम भी न कहे ... | ८२ | २० |
| कठोर वचनसे मित्र भी शत्रु होता है ... | ८२ | २२ |
| स्वबलाधिक शत्रुको कांधेपर भी ले चले ... | ८२ | २३ |
| मनुष्यको सौजन्य भूषण है | ८२ | २४ |
| अश्वादिकोंमें वेगादिक भूषण है | ८२ | २५ |
| इनके विपरीत दुर्भूषण है ... | ८३ | २८ |
| एक ही नायक होय तो शोभा है | ८३ | २९ |
| हिंसककी उपेक्षा न करे .. | ८३ | २९ |
| पैशुन्यादिक दोष गुणियोंके भी गुणोंका छादन करते हैं | ८३ | ३० |
| बाल्यादिक अवस्थामें मात्रादिकोंका नाश यह महा पापका फल है ... | ८३ | ३१ |
| अनिष्टप्राप्तिकारण ... | ८३ | ३२ |
| नररूपधारी पशुका लक्षण ... | ८३ | ३४ |
| खलका लक्षण ... | ८३ | ३६ |
| आशाबद्धको जगत् भी पर्याप्त नहीं है ... | ८३ | ३७ |
| धूर्त पुरुषका कर्म ... | ८४ | ३९ |
| प्रीतिकारक पुत्रका लक्षण ... | ८४ | ४० |
| प्रीतिदा स्त्रीका लक्षण ... | ८४ | ४२ |
| प्रीतिदा और दुःखदा माताका लक्षण ... | ८४ | ४३ |
| प्रीतिकृत्पिताका लक्षण ... | ८४ | ४४ |
| मित्रका लक्षण ... | ८४ | ४५ |
| दारिद्र्यका कारण ... | ८४ | ४६ |
| दुःखके कारण ... | ८४ | ४८ |
| स्त्रियोंकी यथेष्ट कामना न करे वह सुख भागी नहीं होता | ८४ | ५० |
| स्त्री वश होनेका उपाय ... | ८४ | ५१ |
| मधुरभोगी आदिक निर्जनत्वादिककी इच्छा करते हैं | ८५ | ५५ |
| मूर्ख मनुष्यका कृत्य ... | ८५ | ५९ |
| सत्त्वगुणाधिक श्रेष्ठ है ... | ८५ | ६० |
| ब्राह्मण अपने कर्मसे सबसे अधिक होता है ... | ८५ | ६१ |
| स्वधर्मस्थ ब्राह्मणको देखकर क्षत्रियादिक डरते है | ८५ | ६२ |
| जिसमें धर्महानि न हो वही वृत्ति श्रेष्ठ है ... | ८५ | ६३ |
| सबमें कृषिवृत्ति उत्तम है ... | ८५ | ६४ |
| याञ्चा अधमतर वृत्ति है ... | ८५ | ६५ |
| कचित् सेवा भी उत्तम वृत्ति है | ८५ | ६५ |

| विषय. | पृष्ठ | श्लोक |
|---|---|---|
| आश्चर्यवादिकोंसे महाधनी नही होता | ८६ | ६६ |
| राजासेवाके विना विपुल धन नहीं होता . | ८६ | ६७ |
| राजसेवा अति कठिन है | ८६ | ६८ |
| दूरस्थ भी समीप है | ८६ | ७० |
| पहिले निर्धनत्व होना . | ८६ | ७२ |
| पहिले पादगमन सुखदायी है | ८६ | ७३ |
| मृतापत्यत्वसे अनपत्यत्व श्रेष्ठ | ८६ | ७४ |
| अल्पज्ञतासे मूर्खता अच्छी | ८६ | ७५ |
| पहिले सुखकारी पीछे दुःखकारी | ८६ | ७७ |
| कुमन्त्री आदिकोंसे राजादिकोंका नाश होता है ... | ८६ | ७८ |
| हस्त्यादिक ससर्ग गुणधारक है | ८७ | ७९ |
| जयादि त्रितय अधिकारसे मिलता है ... | ८७ | ८० |
| गृहस्थियोंको दश सुखदायक | ८७ | ८१ |
| अन्तःपुरमे नियुक्त करने योग्य . | ८७ | ८२ |
| काल नियमसे कार्योंको करे | ८७ | ८३ |
| अर्थ धर्म आदिमें आत्मा आदिको नियुक्त करे ... | ८७ | ८४ |
| अपत्यरहित भार्या आदिक छः परदेशमे सुखदायी होते हैं | ८७ | ८५ |
| राजा भी हट्टमार्गमें अच्छे यानसे गमन न करे ... | ८७ | ८७ |
| शीघ्र जरा करनेवाले | ८७ | ८९ |
| प्रिय होनेका उपाय ... | ८७ | ९१ |
| अप्रिय होनेका कारण ... | ८८ | ९२ |
| स्तुतिसे देवता भी वशमें होते हैं ... ... | ८८ | ९३ |
| स्वदुर्गुणोंको स्वयं विचारे | ८८ | ९४ |
| सबसे अधिकका लक्षण ... | ८८ | ९४ |
| साधु लक्षण . | ८८ | ९७ |
| खलकर्म ... | ८८ | ९८ |
| कलहकारक क्रीडा न करे .. | ८८ | ९८ |
| विनोदमे भी शाप न दे .. | ८८ | ९९ |
| मित्रकी गोप्य वस्तुका वैरी होनेपर भी प्रकाश न करे | ८८ | ३०० |
| बलवानके विपरीतको न कहे | ८८ | २ |
| पराये घरमें जाकर तत्स्त्रीको न देखे ... | ८८ | ४ |
| अन्यके अपराधी बालकको शिक्षा न दे .. | ८९ | ५ |
| अन्य विवादको ग्रहण कर किसीके संग विवाद न करे | ८९ | ८ |
| पारतन्त्र्यसे परे दुःख और स्वतन्त्रतासे परे सुख नहीं | ८९ | १० |
| प्रत्यक्षादि चार प्रमाणोंसे व्यवहारज्ञान होता है .. | ८९ | १२ |

इति तृतीयाध्याय ।

## अध्याय ४.

मिश्रप्रकरणकथन

| विषय | पृष्ठ | श्लोक |
|---|---|---|
| मित्र और शत्रु चार प्रकारके | ८९ | २ |
| मित्रका लक्षण ... | ८९ | ३ |
| वैरीका लक्षण ... | ८९ | ५ |
| कृत्रिम और सहज ऐसें दो मित्र और शत्रु हैं ... | ९० | १० |
| सहज मित्रका लक्षण ... | ९० | ११ |
| सहज शत्रुका लक्षण ... | ९० | १४ |
| परस्परशत्रुका लक्षण ... | ९० | १५ |
| प्रजाशत्रुका लक्षण ... | ९० | १६ |
| शत्रूदासीन मित्रोंका लक्षण | ९० | १७ |
| मित्र और शत्रुओंके संग राजाका आचरण ... | ९१ | २० |

| विषय. | पृष्ठ | श्लो० |
|---|---|---|
| सामादिकोंका विचार स्वयुक्तियोंसे करे ... | ९१ | २३ |
| मित्रता होनेका कारण ... | ९१ | २४ |
| मित्रके विषय सामादिप्रकार | ९१ | २५ |
| उदासीनभी शत्रु होता है ... | ९१ | २७ |
| शत्रुके लिये सामादिप्रकार ... | ९१ | २८ |
| समादिकोंका क्रम ... | ९२ | ३४ |
| शत्रुभेदसे सामादिकोंकी व्यवस्था | ९२ | ३५ |
| मित्रके लिये साम दान ही होते हैं ... | ९२ | ३६ |
| रिपुपीडितोंका साम और दानसे संग्रह करे ... | ९२ | ३७ |
| स्वप्रजाओंका साम और दानसे ही पालन करे ... | ९२ | ३८ |
| विपरीत करनेसे राज्यनाश होता है ... | ९२ | ३९ |
| दंडका लक्षण ... | ९२ | ४० |
| दंडका प्रभाव ... | ९२ | ४३ |
| राजा सदैव धर्मरक्षाके लिये दंडधारी हो ... | ९३ | ४६ |
| दंड ही संपूर्णधर्मोंका उत्तम शरण है ... | ९३ | ४८ |
| दुर्जनोंकी हिंसा अहिंसा होती है | ९३ | ४९ |
| दंड देनेसे राजाको इष्टानिष्टफलकथनका कारण ... | ९३ | ५० |
| कलियुगमें आधा दंड कहा है | ९३ | ५४ |
| युगप्रवर्तक राजा है ... | ९३ | ५५ |
| धर्मिष्ठ प्रजा होनेका कारण... | ९३ | ५७ |
| पापी राजाके राज्यमें समयपर मेघवृष्टि नहीं होती ... | ९३ | ५८ |
| स्त्रैण और क्रोधी राजाका निषेध ... | ९४ | ५९ |
| राजा काम क्रोध और लोभको त्याग दे ... | ९४ | ६२ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लो० |
|---|---|---|
| सूचकसे देश नष्ट होता है ... | ९४ | ६३ |
| उत्तम राजाका लक्षण ... | ९४ | ६४ |
| राजा पहिले आत्माको नम्र करे | ९४ | ६४ |
| अपराधके चार भेद ... | ९४ | ६५ |
| चार अपराधकी परीक्षा ... | ९४ | ६७ |
| केवल दंडके योग्य पुरुषका लक्षण ... | ९४ | ६९ |
| अवरोधके योग्य पुरुषका ल० ... | ९५ | ७३ |
| सरोध और नीचकर्मके योग्य पुरु० .. | ९५ | ७६ |
| शास्त्रोक्तदंडयोग्यपुरुषलक्षण | ९५ | ७८ |
| यावज्जीव बंधनयोग्यलक्षण.... | ९५ | ७९ |
| मार्गसंस्करणयोग्यपुरुषका ल० | ९५ | ८१ |
| धनगर्वसे अपराध करनेवालेको दंड ... | ९५ | ८२ |
| बंधन और ताडनयोग्यका लक्षण ... | ९५ | ८४ |
| तनुरज्जु सुवेणु ताडनयोग्य लक्षण ... | ९६ | ८५ |
| देहकी पीठपर मारे ... | ९६ | ८६ |
| नीच कर्म करनेवालेको दंड ... | ९६ | ८७ |
| वधकी शिक्षा कदापि न करे | ९६ | ८८ |
| असहायकको दंड न दे .. | ९६ | ९० |
| प्रजा क्षुब्ध होनेका कारण ... | ९६ | ९१ |
| देशपार करने योग्यका लक्षण | ९६ | ९३ |
| मार्गसंरक्षणयोग्योंका लक्षण | ९७ | ५ |
| राजा संसर्गदूषितको दंड देकर सन्मार्गकी शिक्षा दे ... | ९७ | ६ |
| राजादिकोंको बिगाड़ करनेवालको शीघ्रही नष्ट कर दे | ९७ | ७ |
| गणदुष्टता हो तब उपाय ... | ९७ | ८ |
| प्रजा अधर्मशील राजाको सदैव भय दे ... | ९७ | [illegible] |

| विषय. | पृष्ठ | श्लो० |
|---|---|---|
| अधर्मशील राजा और प्रजा तत्काल नष्ट हो जाते हैं ... | ९७ | १० |
| मात्रादिकोंका त्याग करै तो निगडबद्ध न करे ... | ९८ | ११ |
| उत्तमादिक साहस दंडका लक्षण ... | ९८ | १२ |
| पण आदिकोंका लक्षण ... | ९८ | १३ |
| कोशका लक्षण ... | ९८ | १६ |
| कोशसंग्रहका उत्तम प्रयोजन | ९८ | १८ |
| अन्यायोपार्जित कोशसे दुष्टफल | ९८ | २० |
| पात्रका लक्षण ... | ९८ | २१ |
| अपात्रका धन अवश्य हरण करे ... | ९८ | २१ |
| अधर्मशील राजाका धन सब प्रकारसे हरले ... | ९८ | २२ |
| शत्रुके आधीन राज्य होनेका कारण ... | ९८ | २३ |
| तीर्थदेवकरसे कदापि कोश वृद्धि न करे ... | ९९ | २४ |
| आपत्तिमें अधिक धन ग्रहण करे ... | ९९ | २५ |
| आपत्तिरहित हो जाय तब सूद सहित दे ... | ९९ | २६ |
| प्रबलदंडसे अनिष्ट फल ... | ९९ | २७ |
| कोशसंग्रह करनेका प्रमाण ... | ९९ | २८ |
| प्रजासंरक्षणका फल ... | ९९ | २९ |
| राष्ट्रवृद्धिके तीनों कारण ... | ९९ | ३१ |
| नीतिनिपुणतासे कोशवृद्धिका यत्न करे ... | ९९ | ३२ |
| श्रेष्ठ नृपका लक्षण ... | ९९ | ३३ |
| नीच आदि धनका लक्षण ... | ९९ | ३६ |
| प्रजाताप वंशसहित राजाको नष्ट करता है ... | १०० | ४० |
| धान्यसंग्रह करनेका प्रमाण | १०० | ४० |
| संग्रहयोग्य धान्य आदिकी परीक्षा ... | १०० | ४ |
| औषधी आदि सब वस्तुका संचय करे .... | १०० | ४५ |
| संगृहीत धनकी यत्नसे रक्षा करे ... | १०० | ४७ |
| स्वकार्यमें सदा जागृत रहे | १०० | ५० |
| संचयकी रक्षा नहीं करसकता उससे परे मूर्ख नहीं | १०१ | ५१ |
| मूर्खका लक्षण ... | १०१ | ५२ |
| यथार्थ जाननेके लिये स्वयं यत्न करै ... | १०१ | ५४ |
| राजा परीक्षकोंसे और स्वयं रत्नकी परीक्षा करे ... | १०१ | ५५ |
| वज्र आदि नव महारत्न ... | १०१ | ५५ |
| नवरत्नोंके वर्ण और नवग्रह | १०१ | ५७ |
| संपूर्ण रत्नोंमें वज्र रत्न श्रेष्ठ है | १०१ | ६१ |
| श्रेष्ठ रत्नका लक्षण ... | १०१ | ६३ |
| असत् रत्नका लक्षण ... | १०२ | ६६ |
| पद्मराग और वज्र धारण करनेका निषेध ... | १०२ | ६६ |
| बहुत दिन धारण किये मोती और मूँगा हीन होजाते हैं | १०२ | ६७ |
| दोषवर्जित रत्नका लक्षण ... | १०२ | ६८ |
| मोल अधिक और कम होनेका कारण ... | १०२ | ७० |
| मौक्तिककी उत्पत्ति ... | १०२ | ७३ |
| मोतीके रंग और भेद ... | १०२ | ७४ |
| कृत्रिम मोतीकी उत्पत्ति ... | १०२ | ७५ |
| मोतीकी परीक्षा ... | १०२ | ७६ |
| रत्नोंका तुलामान ... | १०३ | ७८ |
| वज्रका मूल्यविचार ... | १०३ | ८० |
| सुवणका प्रमाण ... | १०३ | ८१ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लो० |
|---|---|---|
| काले और रक्त बिंदुवाले रत्नको न धारे ... | १०३ | ८८ |
| माणिक्यादिकोंका मूल्यविचार | १०३ | ८९ |
| गोमेद उन्मानके योग्य नहीं होता ... | १०३ | ९१ |
| अत्यन्त गुणवालोंका मोल मानसे नहीं होता ... | १०४ | ९२ |
| मोतियोंकी मूल्यकल्पना ... | १०४ | ९३ |
| मोतीके भेद और लक्षण ... | १०४ | ९७ |
| सुवर्णादि ७ सात धातु ... | १०४ | ९९ |
| उनका तरतमभाव ... | १०४ | २०० |
| सुवर्णादिकोंके गुण ... | १०४ | १ |
| धातुके मूल्यका प्रमाण .. | १०४ | २ |
| अधिक मूल्यके गौका लक्षण | १०५ | ५ |
| बकरी आदिके मोलका प्रमाण | १०५ | ७ |
| गौआदिका उत्तम मूल्य ... | १०५ | ८ |
| हाथी आदिका उत्तम मूल्य ... | १०५ | ११ |
| उत्तम अश्व आदिका लक्षण और मूल्य ... | १०५ | १२ |
| समयके अनुसार सबकी मोलकल्पना करले ... | १०५ | १५ |
| शुल्कका लक्षण ... | १०५ | १७ |
| वस्तुओंका शुल्क एकवार ही ग्रहण करे ... | १०५ | १८ |
| शुल्कका परिमाण ... | १०६ | १९ |
| किशानसे भाग लेनेका प्रमाण | १०६ | २२ |
| उत्तम कृषिकृत्यका लक्षण ... | १०६ | २४ |
| तडागादिकोंसे संपन्न भूमिके राजभागका तारतम्य ... | १०६ | २५ |
| रजतादियुक्त भूमिके लिये राजभागनियम ... | १०६ | २८ |
| तृण काष्ठादिके बेचनेवालोंसे २० वां भाग कर ले ... | १०६ | ३० |
| अजा आदिके वृद्धिसे आठवां भाग ले ... | १०६ | ३१ |
| कारु आदिसे लेनेका प्रकार ... | १०७ | ३२ |
| भूमिभागादिकको उसी समय ले | १०७ | ३४ |
| किशानको भागपत्र लिख दे | १०७ | ३५ |
| ग्रामधनीके प्रतिभू ग्रहण कर ले | १०७ | ३६ |
| कचित् करलेनेका निषेध ... | १०७ | ३८ |
| व्यापारी आदिसे ३२ वां भाग ले | १०७ | ३९ |
| हाटवाले आदिसे भूमिका कर ले | १०७ | ४० |
| राष्ट्र दो प्रकारका है ... | १०७ | ४२ |
| पृथ्वीमें राजासे अन्य देवता नहीं है ... | १०७ | ४४ |
| राजा देशके पुण्य और पापको भोगता है ... | १०८ | ४७ |
| नरकका लक्षण ... | १०८ | ४७ |
| सर्वधर्मरक्षणसे देशरक्षा होती है | १०८ | ५१ |
| मुख्य जाति चार प्रकारकी है | १०८ | ५२ |
| संकरसे जाति अनंत है ... | १०८ | ५३ |
| जरायुज आदि चार प्राणियोंकी जाति हैं .... | १०८ | ५४ |
| द्विजोंके कर्म .. | १०८ | ५७ |
| ब्राह्मणके कर्म ... | १०८ | ५७ |
| क्षत्रिय और वैश्यके कर्म ... | १०८ | ५८ |
| शूद्र आदिके कर्म ... | १०८ | ५९ |
| ब्राह्मणादिके लिये कृषिभेद ... | १०९ | ६० |
| ब्राह्मणके विना अन्यको भिक्षा निंदित है ... | १०९ | ६१ |
| द्विजाति सांग वेदको पढे ... | १०९ | ६२ |
| गुरुका लक्षण ... | १०९ | ६३ |
| मुख्य विद्या ३२ और कला ६४ हैं | १०९ | ६४ |
| विद्या और कलाओंका लक्षण | १०९ | ६५ |
| वेद और उपवेदके नाम ... | १०९ | ६७ |
| वेदोंके छः अंग ... | १०९ | ६८ |
| मीमांसादि विद्याओंके नाम... | १०९ | ६९ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लोक. |
| --- | --- | --- |
| मंत्र और ब्राह्मण दोनों मिलके वेद कहा है ... | १०९ | ७१ |
| मंत्र और ब्राह्मणका लक्षण ... | १०९ | ७२ |
| ऋग्भागका लक्षण ... | १०९ | ७३ |
| यजुर्वेदका लक्षण ... | ११० | ७४ |
| सामका लक्षण | ११० | ७५ |
| अथर्ववेदका लक्षण ... | ११० | ७६ |
| आयुर्वेदका लक्षण ... | ११० | ७७ |
| धनुर्वेदलक्षण ... | ११० | ७८ |
| गांधर्ववेदलक्षण ... | ११० | ७९ |
| अथर्ववेदलक्षण ... | ११० | ८० |
| शिक्षालक्षण ... | ११० | ८१ |
| कल्पलक्षण ... | ११० | ८२ |
| व्याकरणलक्षण ... | ११० | ८३ |
| निरुक्तलक्षण ... | ११० | ८४ |
| ज्यौतिषलक्षण ... | ११० | ८५ |
| छंदका लक्षण ... | ११० | ८६ |
| मीमांसालक्षण ... | ११० | ८७ |
| तर्कलक्षण ... | १११ | ८८ |
| सांख्यलक्षण ... | १११ | ८९ |
| वेदांतलक्षण ... | १११ | ९० |
| योगलक्षण ... | १११ | ९१ |
| इतिहासलक्षण ... | १११ | ९२ |
| पुराणलक्षण ... | १११ | ९३ |
| स्मृतिलक्षण ... | १११ | ९४ |
| नास्तिकमतलक्षण ... | १११ | ९५ |
| अर्थशास्त्रलक्षण ... | १११ | ९६ |
| कामशास्त्रलक्षण ... | १११ | ९७ |
| शिल्पशास्त्रलक्षण .. | १११ | ९८ |
| अलंकारशास्त्रलक्षण ... ... | १११ | ९९ |
| काव्यलक्षण ... | १११ | २०० |
| देशभाषालक्षण ... | ११२ | १ |
| अवसरोक्तिलक्षण ... | ११२ | २ |
| देयावनमतलक्षण ... | ११२ | ३ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लो० |
| --- | --- | --- |
| देशादिधर्मलक्षण ... | ११२ | ५ |
| गांधर्ववेदोक्त ७ कलाओंका लक्षण ... | ११२ | ८ |
| आयुर्वेदोक्त १० दश कलाओंका लक्षण ... | ११२ | १२ |
| धनुर्वेदोक्त ५ कलालक्षण ... | ११३ | १७ |
| पृथक्चार कला ... | ११३ | २० |
| तडागकरणादिकला ... | ११३ | २२ |
| चार आश्रम ... | ११४ | ३९ |
| चार आश्रमोंमें कृत्य ... | ११५ | ४१ |
| स्त्री और शूद्र देवपूजा न करै | ११५ | ४४ |
| पतिसे पृथक् स्त्रियोंको धर्म नहीं है ... | ११५ | ४४ |
| स्त्रीके नित्यकृत्य ... | ११५ | ४५ |
| साध्वी स्त्री पैशुन्यादिको त्याग दे | ११६ | ५९ |
| इस प्रकार पतिकी सेवा करनेसे पतिलोकमें जाती है | ११६ | ६० |
| स्त्रीके नैमित्तिक कृत्य ... | ११६ | ६१ |
| तहां रजस्वला स्त्रीके नियम ... | ११६ | ६१ |
| रजस्वला शुद्धि ... | ११६ | ६३ |
| पतिके समान नाथ और सुख नहीं है ... | ११६ | ६६ |
| अब शूद्रधर्म कहते हैं ... | ११७ | ६९ |
| संकरजातिके नियम .. | ११७ | ७० |
| राजा स्वर्णकारादिकोंको सदा कार्यमें नियुक्त करे ... | ११७ | ७८ |
| मदिरागृह गांवसे पृथक् करे | ११७ | ७९ |
| मदिरापान दिनमें कभी न करावै ... | ११८ | ८० |
| वृक्षारोपण और पोषणके नियम | ११८ | ८० |
| ग्राम्यवृक्षके नाम और लक्षण | ११८ | ८२ |
| आरण्यवृक्षके नाम और लक्षण | ११८ | ८७ |
| देशमें विपुल जल हो ऐसा करे ... | ११९ | ९४ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लोक. |
|---|---|---|
| चतुष्पथमें विष्णु आदिका मंदिर बनवावे ... | ११९ | ९६ |
| मेरु आदि मन्दिरके सोलह प्रकार हैं ... | १११ | ९७ |
| मेरु आदिका लक्षण .. | ११९ | ४०० |
| मंदिरादिकोंके नाम .. | ११९ | १ |
| वृत्तमंडपका प्रमाण .. | ११९ | ३ |
| सात्विकी आदि तीन प्रकारकी प्रतिमा ... | ११९ | ४ |
| सात्त्विकी आदि प्रतिमोंके लक्षण | ११९ | ५ |
| अंगुलादिकोंका प्रमाण ... | १२० | ९ |
| प्रतिमाकी उंचाईका प्रमाण | १२० | १० |
| अवयवोंका प्रमाण ... | १२० | १३ |
| रम्य प्रतिमाका लक्षण ... | १२१ | २५ |
| अवयवोंके आकृतिका वर्णन ... | १२१ | २७ |
| अवयवोंके अन्तरका प्रमाण ... | १२२ | ३४ |
| अवयवोंके परिधिका प्रमाण | १२२ | ३७ |
| प्रतिमाके दृष्टिका प्रमाण ... | १२३ | ४८ |
| प्रतिमाके आसनका प्रमाण ... | १२३ | ४९ |
| द्वारप्रमाण ... | १२३ | ५० |
| देवालयके उंचाईका प्रमाण ... | १२३ | ५० |
| मञ्जिलका प्रमाण ... | १२३ | ५२ |
| प्रासादकी आकृति ... | १२३ | ५४ |
| चारों दिशाओंमें मण्डप और धर्मशाला बनावे .. | १२३ | ५४ |
| मन्दिरके स्तम्भोंका प्रमाण ... | १२३ | ५४ |
| स्तम्भोंका निषेध ... | १२३ | ५४ |
| विस्तार विचार ... | १२३ | ५५ |
| वाहन विचार ... | १२३ | ५७ |
| प्रतिमाके रूप आयुधका विचार | १२३ | ५८ |
| आयुधस्थान विचार ... | १२३ | ५९ |
| मुख अनेक हों वहां व्यवस्था | १२४ | ६१ |
| अनेक भुजाओंकी व्यवस्था ... | १२४ | ६२ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लो० |
|---|---|---|
| ब्रह्माके मुखोंकी व्यवस्था .. | १२४ | ६२ |
| हयग्रीवादिकोंकी आकृति .. | १२४ | ६२ |
| अनिष्टकारक प्रतिमा .. | १२४ | ६६ |
| सौख्यदायक प्रतिमा ... | १२४ | ६७ |
| सात्त्विकप्रतिमालक्षण ... | १२४ | ६७ |
| विष्णु प्रतिमाके चौवीस भेद | १२४ | ७० |
| लक्षणोंके अभावमें भी दोषरहित प्रतिमा ... | १२४ | ७२ |
| प्रमाणदोषरहित प्रतिमा ... | १२४ | ७३ |
| युगभेदसे वर्णभेदकथन ... | १२५ | ७४ |
| वर्णभेदसे सात्त्विक्यादिकथन | १२५ | ७५ |
| युगभेदसे सौवर्णादिप्रतिमाविभाग ... | १२५ | ७६ |
| अनुक्तप्रतिमास्थापननिषेध ... | १२५ | ७८ |
| भक्तिमान् पूजकके तपोबलसे प्रतिमादोष नष्ट होजाते हैं | १२५ | ८० |
| वाहन स्थापन विचार ... | १२५ | ८१ |
| वाहन लक्षण ... | १२५ | ८५ |
| गजाननकी मूर्तिका लक्षण ... | १२६ | ८७ |
| अवयवोंका प्रमाण ... | १२६ | ९० |
| स्त्रियोंके अवयवोंका प्रमाण... | १२७ | ५०० |
| सबके मुखका प्रमाण ... | १२७ | २ |
| बालकके अवयवोंका प्रमाण... | १२७ | ३ |
| शरीरकी पूर्णता होनेका वर्षप्रमाण ... | १२७ | ६ |
| सप्ततालप्रमाण मनुष्यके अवयवोंका प्रमाण ... | १२७ | ८ |
| अष्टतालके अवयवोंका प्रमाण | १२७ | १० |
| दशतालके अवयवोंका प्रमाण | १२७ | १२ |
| शिल्पी मूर्तियोंकी वृद्धसदृश कल्पना कभी न करे ... | १२८ | १९ |
| राजा ऐसे देवताओंका स्थापन करके प्रतिवर्ष उनका उत्सव करे ... | १२८ | २० |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लो० |
|---|---|---|
| मानहीन और भग्न प्रतिमाका निषेध ... | १२८ | २१ |
| प्रज कृत उत्सवोंकी सदैव पालना करे ... | १२८ | २३ |
| प्रराजा प्रजासुखसे सुखी और प्रजादु:खसे दुःखी हो | १२८ | २३ |
| शत्रु और प्रजापालनके लक्षण | १२८ | २५ |
| अनुनाशन और दुष्ट निग्रहका लक्षण ... | १२८ | २६ |
| व्यवहार लक्षण ... | १२९ | २७ |
| राजा प्राड्विवकादि सहित व्यवहारोंको देखे ... | १२९ | २८ |
| पक्षपातके पांच कारण ... | १२९ | ३१ |
| राजाको अनिष्टकारक हेतु ... | १२९ | ३१ |
| राजा कार्यनिर्णय न करे तब उक्त लक्षण ब्राह्मणको नियुक्त करे ... | १२९ | ३५ |
| ब्राह्मण न मिल तो क्षत्रियादि | १२९ | ३७ |
| उस पदपर शूद्रको यत्नसे वर्जिदे | १२९ | ३७ |
| सभासदलक्षण ... | १२९ | ३९ |
| निर्णयायोग्यपुरुषोंका लक्षण | १३० | ४१ |
| राजा द्विजाति आदिकोंका निर्णय स्वयं न करे ... | १३० | ४२ |
| यज्ञसदृश सभाका लक्षण ... | १३० | ४८ |
| सभामे सुननेवाले वैश्य हों ... | १३० | ४९ |
| सभामे जानेका नियम ... | १३० | ५१ |
| सभामे निर्णय करनेवालेका क्रम | १३१ | ५३ |
| निर्णायकोंका तारतम्य ... | १३१ | ५४ |
| निर्णयक्षमपुरुषका लक्षण ... | १३१ | ५६ |
| धर्मलक्षण ... | १३१ | ५७ |
| अनुचिन्तनप्रकार ... | १३१ | ५७ |
| दश साधनांग ... | १३१ | ५९ |
| यज्ञतुल्यसभाका द्वितीय लक्षण | १३१ | ६० |
| दशांगोंके कर्म ... | १३१ | ६२ |
| गणक और लेखकका लक्षण | १३२ | ६४ |
| धर्माधिकरण लक्षण ... | १३२ | ६५ |
| राजाका सभाप्रवशनप्रकार ... | १३२ | ६६ |
| सभामें राजाका कृत्य ... | १३२ | ६७ |
| राजा पूर्ण विचार करके सब धर्मोंका रक्षण करे ... | १३२ | ६८ |
| देशजातिकुलधर्मोंका पालन करे ... | १३२ | ६९ |
| देशजातिकुलधर्मोंके उदाहरण | १३२ | ७० |
| न्यायादिकोंका समय ... | १३२ | ७४ |
| मनुष्य मारणादिकोंमें समय नियम नहीं ... | १३२ | ७५ |
| राजाके आगे कार्य निवेदन प्रकार ... | १३२ | ७६ |
| अर्थीके लिये राजकार्य ... | १३३ | ७८ |
| तहां लेखकका कृत्य ... | १३३ | ८१ |
| राजा अन्य लेखकको शिक्षा दे | १३३ | ८२ |
| राजाके अभावमे प्राड्विवाक पूछे | १३३ | ८३ |
| प्राड्विवाकशब्दका अर्थ ... | १३३ | ८४ |
| व्यवहारपदकथन ... | १३३ | ८६ |
| राजा वा राजपुरुष स्वयं व्यवहारको पैदा न करे ... | १३३ | ८६ |
| राजा छलादिकको निवेदन विनाभी ग्रहण करले | १३३ | ८८ |
| स्तोभकलक्षण ... | १३४ | ८९ |
| सूचकलक्षण ... | १३४ | ९० |
| पंचाशत् छल ... | १३४ | ९१ |
| दश अपराध ... | १३५ | २ |
| नृपज्ञेय बाईस २२ पद ... | १३५ | ४ |
| दंडयोग्य वादीका लक्षण ... | १३५ | ७ |
| अर्जीका लक्षण ... | १३५ | ८ |
| सबके बोधयोग्य भाषा ... | १३५ | ९ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लो० |
|---|---|---|
| पूर्वपक्षको शुद्ध किये विना जो उत्तर दिवाते हों उनको अधिकारसे निवृत्त करे ... | १३५ | ११ |
| पूर्वपक्ष पूरा हो ले तब वादीको रोकदे ... | १३५ | १३ |
| राजाज्ञा न हो तबतक प्रत्यर्थीको रोक दे ... | १३६ | १५ |
| आसेध चार प्रकारका है ... | १३६ | १६ |
| जिसपर अपराधकी शंका हो वा जो अपराधी हो उसको ही राजा बुलावे ... | १३६ | १९ |
| असमर्थादि अपराधियोंको न बुलावे ... | १३६ | २१ |
| हीनपक्षादि स्त्रियोंकोभी न बुलावे | १३६ | २२ |
| निर्वेष्टकाम आदिकोंका आसेध, निषेध ... | १३६ | २३ |
| जो असमर्थ हों उनको यानमें बुलवावे ... | १३७ | २८ |
| जब अर्थीप्रत्यर्थी अन्यकार्यमें व्याकुल हों तब प्रतिनिधिको करले ... | १३७ | ३० |
| अप्रगल्भ आदिके उत्तरपक्षको वंधु आदि कहें ... | १३७ | ३१ |
| पूर्वपक्ष ठीक २ करदें तो विवादको प्रवृत्त करे ... | १३७ | ३२ |
| जिस किसीसे कार्य कराले वह उसीका किया समझना ... | १३७ | ३२ |
| नियोगित पुरुषको सोलहवां भाग भृति दे .... | १३७ | ३३ |
| अन्यथा भृतिका ग्रहण करनेवालेको दंड दे ... | १३७ | ३४ |
| राजाभी सदा अपनी बुद्धिसे एक नियोगी कर दे ... | १३७ | ३४ |
| नियोगी लोभसे अन्यथा करे तो दंडयोग्य होता है ... | १३७ | ३५ |
| भ्रातादिकको नियोगी न करे | १३७ | ३५ |
| विवादको लगाकर दोनों मरगये तो पुत्र विवाद करे | १३७ | ३७ |
| मनुष्यमारणादि अपराधोंमें प्रतिनिधिको न दे ... | १३७ | ३८ |
| साक्षीका कृत्य ... | १३८ | ४२ |
| प्रतिभूका लक्षण ... | १३८ | ४४ |
| विवादियोंको रोककर वादकी प्रवृत्तिको राजा करे ... | १३८ | ४५ |
| पक्षका लक्षण ... | १३८ | ४७ |
| भाषाके दोष ... | १३८ | ४८ |
| पक्षाभासको वर्जदे ... | १३८ | ४९ |
| अप्रसिद्धलक्षण ... | १३८ | ५० |
| निराबाध और निष्प्रयोजनका लक्षण ... | १३८ | ५० |
| असाध्य और विरुद्धका ल० | १३९ | ५२ |
| निरर्थक वा निष्प्रयोजनका ल० | १३९ | ५४ |
| उत्तरलेखनविचार ... | १३९ | ५६ |
| सन्दिग्धोत्तरका लक्षण ... | १३९ | ५९ |
| दंडयोग्य प्रतिवादीका लक्षण | १३९ | ६१ |
| चार प्रकारका उत्तर ... | १३९ | ६३ |
| सत्यादिकोंका लक्षण ... | १३९ | ६४ |
| मिथ्योत्तर चार प्रकारका ... | १४० | ६६ |
| प्रत्यवस्कंदनलक्षण ... | १४० | ६७ |
| प्राङ्न्यायलक्षण ... | १४० | ६९ |
| प्राङ्न्याय तीन प्रकारका ... | १४० | ६९ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लो० |
|---|---|---|
| व्यवहारके चार पाद ... | १४० | ७२ |
| प्रथम न्याय वा विवादका निर्णय करने योग्य ... | १४० | ७५ |
| एक विवादमें दो वादियोंकी क्रिया नहीं होती ... | १४१ | ७७ |
| भूत और भव्य दो प्रकार ... | १४१ | ७९ |
| तत्त्व और छलका लक्षण ... | १४१ | ७९ |
| साधनके भेद ... | १४१ | ८१ |
| विवादी अपने २ साधन प्रत्यक्ष दिखावे ... | १४१ | ८४ |
| जो दोष गुप्त हों उनको सभासद प्रकट करें ... | १४१ | ८५ |
| कूटसाक्षी और साक्ष्यलोपीको दूना दंड दे ... | १४१ | ८७ |
| लिखित दो प्रकारका ... | १४२ | ८९ |
| वहां लौकिक सात प्रकारका | १४२ | ९० |
| राजशासन तीन प्रकारका ... | १४२ | ९१ |
| साधनक्षमलेख्य लक्षण ... | १४२ | ९२ |
| साधनायोग्यलेख्यका लक्षण | १४२ | ९६ |
| अच्छे लेखसे फल ... | १४२ | ९८ |
| साक्षीके लक्षण और भेद ... | १४२ | ९९ |
| स्त्रियोंकी साक्षी स्त्री करनी | १४३ | ४ |
| बालादिक साक्षियोग्य नहीं हैं | १४३ | ५ |
| राजा साक्षिकथनमें कालक्षेप न करे ... | १४३ | ९ |
| प्रत्यक्ष साक्षीको कहावे ... | १४३ | १० |
| दंड्य और नीच साक्षीका लक्षण ... | १४३ | ११ |
| एक २ से साक्षीका कथन करावे ... | १४४ | १४ |
| साक्षी लेनेका प्रकार ... | १४४ | १५ |
| लेख और साक्षी न मिले तो भोगसे ही विचार करे ... | १४४ | २६ |
| कुशल और कुटिल बनावट लेख कर लेते हैं ... | १४५ | २८ |
| केवल साक्षियोंसे ही कार्यसिद्धि नहीं हो सकती ... | १४५ | २९ |
| केवल भोगोंसे ही कार्यसिद्धि नहीं हो सकती ... | १४५ | ३० |
| अन्यथा शंका करनेसे अनवस्था होती है ... | १४५ | ३२ |
| प्रामाणिक भोगका लक्षण ... | १४५ | ३३ |
| केवल भोगको बतावे वह चोर जानना ... | १४५ | ३४ |
| केवल आगमभी प्रबल नहीं होता | १४५ | ३५ |
| साठ वर्षतक भोग होतो उसको कोई नहीं छीन सकता ... | १४५ | ३८ |
| आधि आदिक केवल भोगसे नष्ट नहीं होता ... | १४५ | ३९ |
| उपेक्षादिकारणसे स्वामी उस फलको प्राप्त नहीं होता ... | १४६ | ४० |
| अब दिव्य कहते हैं ... | १४६ | ४१ |
| त्रिविध साधनके अभावमें तीन प्रकारकी विधि ... | १४६ | ४२ |
| युक्तिका लक्षण ... | १४६ | ४४ |
| कार्य साधक हेतुओंका लक्षण | १४६ | ४५ |
| धन ग्रहण करने योग्य प्रतिवादीका लक्षण ... | १४६ | ४६ |
| युक्ति भी असमर्थ होय वहां दिव्य ... | १४६ | ४७ |
| दुष्कर कर्मके लिये दिव्य ... | १४६ | ४७ |

| विषय. | पृ. | श्लो. |
|---|---|---|
| दिव्यको न माने वह धर्म तस्कर है ... | १४६ | ४९ |
| दिव्यको स्वीकार करनेवाले को उत्तम फल ... | १४६ | ५१ |
| दिव्यनिर्णयमें पदार्थ ... | १४६ | ५२ |
| अग्निदिव्यका प्रकार ... | १४७ | ५४ |
| गर दिव्यका प्रकार ... | १४७ | ५६ |
| घटदिव्यका प्रकार ... | १४७ | ५६ |
| जलदिव्यका प्रकार ... | १४७ | ५७ |
| धर्माधर्म दिव्यका प्रकार | १४७ | ५८ |
| तंडुलदिव्य ... | १४७ | ५८ |
| शपथदिव्य ... | १४७ | ५९ |
| अपराधतारतम्यसे दिव्यतारतम्य ... | १४७ | ६० |
| दिव्यका निषेध ... | १४७ | ६३ |
| शिरके विना दिव्यके अधिकारी | १४८ | ६६ |
| तप्तमाष दिव्यके अधिकारी ... | १४८ | ६८ |
| वादी दिव्यका स्वीकार करे तो फिर साधन न पूछे ... | १४८ | ६९ |
| भाषा पत्रिका होय तो दिव्यसे शोधन करे ... | १४८ | ७० |
| लौकिकसाधन न होय वहां दिव्यको दे ... | १४८ | ७१ |
| साक्षी भेदनको प्राप्त हो जाय तब शपथोंसे निर्णय करे | १४८ | ७४ |
| विवाहादिकोंमें साक्षी ही निर्णय साधन होते हैं ... | १४८ | ७७ |
| द्वार मार्गका करना इत्यादिकोंमें भोगनाही प्रमाण है ... | १४९ | ७८ |
| मानुषी और दैविकी क्रियाओंकी व्यवस्था ... | १४९ | ७९ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लोक. |
|---|---|---|
| आठ तरहका निर्णय ... | १४९ | ८१ |
| सबके अभावमें निश्चय करनेको राजा प्रमाण है ... | १४९ | ८२ |
| राजा धर्मशास्त्रके अविरोधसे नीतिशास्त्रको विचारे ... | १४९ | ८५ |
| विवाद होनेका कारण ... | १४९ | ८६ |
| अधर्ममें प्रवृत्तहुए राजाकी सभासद उपेक्षा न करे ... | १४९ | ८९ |
| धिग्दंड और वाग्दंड ये दोनों सभासदोंके अधीन होते हैं | १४९ | ९० |
| अर्थ दंड और वध राजाधीन होते हैं ... | १५० | ९१ |
| दुबारा कार्यका आरम्भ करनेका कारण ... | १५० | ९१ |
| पौनर्भव विधिका लक्षण ... | १५० | ९३ |
| जयीका लक्षण ... | १५० | ९५ |
| जयीको जयपत्रको देनेका प्रकार ... | १५० | ९६ |
| प्रजाको अनुकूल करनेवाले राजाके गुण ... | १५० | ९८ |
| जीवतेहुए माता पिताके वृद्धभी पुत्रस्वतन्त्र नहीं होता | १५० | ९९ |
| उन दोनोंमें पिता श्रेष्ठ है | १५० | ८०० |
| पिताके अभावमें माता फिर भाई श्रेष्ठ होता है ... | १५० | ८०१ |
| पिताकी सम्पूर्ण पत्नियोंमें माताके समान वर्ताव करे ... | १५० | १ |
| स्वतन्त्रास्वतन्त्रका निर्णय ... | १५० | २ |
| स्वामित्वका निर्णय ... | १५१ | ५ |
| विभाग विचार ... | १५१ | ११ |
| अंशहारीका क्रम निर्णय ... | १५१ | ३१ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लोक. |
|---|---|---|
| सौदायिक धनमें स्त्री स्वतन्त्र होती है ... | १५१ | १४ |
| सौदायिकधनका लक्षण ... | १५१ | १५ |
| अविभाज्यधनका लक्षण ... | १५१ | १६ |
| जलादिकोंसे धनका रक्षण करने वाला दशवां भागको प्राप्त होता है ... | १५२ | १७ |
| शिल्पीका लक्षण ... | १५२ | १९ |
| शिल्पियोंका धनविभाग ... | १५२ | २० |
| नर्तकादिकोंका धनविभाग | १५२ | २१ |
| चोरधनविभाग ... | १५२ | २२ |
| व्यापारी आदिकोंका धनविभाग | १५२ | २६ |
| सामान्यादि नववस्तुओंको आपत्स-मयमे भी न दे ... | १५२ | २६ |
| उत्तम साहस दंडयोग्यका लक्षण | १५२ | २८ |
| अस्वामिक धनको चोरोंसे लेने वालेको दंड ... | १५२ | २९ |
| त्यागयोग्य ऋत्विज और याज्यका लक्षण ... | १५३ | ३० |
| राजा बत्तीसवां या सोलहवां लाभ पुण्यमे नियत करे | १५३ | ३१ |
| व्यापारी धनकी व्यवस्था | १५३ | ३२ |
| मूलसे दूना ब्याज लेलिया हो तो उत्तमर्णको मूलकोही दिलवावे ... | १५३ | ३३ |
| लिखित नष्ट हो जाय तो ... | १५३ | ३५ |
| खोटी वस्तुको वेचनेवालेको दण्ड ... | १५३ | ३७ |
| शिल्पियोंके भृतिका विचार | १५३ | ३८ |
| स्वर्णकारकी भृतिका विचार | १५४ | ४३ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लो० |
|---|---|---|
| धातुओंमे कपट करे तो दूना दण्ड ... | १५४ | ४७ |
| अब दुर्गप्रकरण कहते ह ... | १५४ | ४९ |
| ऐरिण और पारिख दुर्गका लक्षण | १५४ | ५० |
| पारिघदुग और वनदुर्गका लक्षण | १५४ | ५१ |
| धन्वदुग और जलदुर्गका लक्षण | १५४ | ५२ |
| सहायदुर्गका लक्षण ... | १५४ | ५४ |
| ऐरिणादिदुर्गका तारतम्य ... | १५४ | ५४ |
| सेना दुर्गसे महान् लाभ ... | १५५ | ५७ |
| आपत्कालमें अन्य दुर्गोंका आश्रय उत्तम है ... | १५५ | ५८ |
| अत्यन्त श्रेष्ठ दुर्गका लक्षण | १५५ | ६० |
| सहायपुष्ट दुर्गसे विजय निश्चयसे होता है ... | १५५ | ६२ |
| अब सातवें सैन्यप्रकरणको कहते हैं ... | १५५ | ६३ |
| सेनाका लक्षण और भेद ... | १५५ | ६४ |
| स्वगमा और अन्यगमा सेना का लक्षण ... | १५५ | ६५ |
| स्वगमसेनाका दूसरा लक्षण | १५५ | ६६ |
| सेनाका प्रभाव ... | १५५ | ६७ |
| बल छः प्रकारका ... | १५६ | ६८ |
| दो प्रकारका सेनाबल ... | १५६ | ७१ |
| स्वीय और मैत्र सेनाबलका लक्षण ... | १५६ | ७२ |
| मौलादिकोंका लक्षण ... | १५६ | ७४ |
| दुर्बलसेनाका लक्षण ... | १५६ | ७७ |
| शारीरादि बलके वढानेके उपाय | १५७ | ७९ |
| आयुर्बलका लक्षण ... | १५७ | ८२ |

| विषय. | पृष्ठ | श्लो० |
|---|---|---|
| सेनामे पदाति आदिकोंकी संख्याका नियम ... | १५७ | ८३ |
| सेनामे लेखकादिकोंकी संख्याका नियम ... | १५७ | ८८ |
| प्रतिमासमें खर्च करनेका प्रमाण ... | १५७ | ८९ |
| राजाके रथका वर्णन ... | १५८ | ९२ |
| अनिष्ट शुभदायक हाथीका लक्षण ... | १५८ | ९४ |
| हाथीके चार प्रकार ... | १५८ | ९६ |
| भद्र गजका लक्षण ... | १५८ | ९७ |
| मन्द्र गजका लक्षण ... | १५८ | ९७ |
| मृग गजका लक्षण ... | १५८ | ९९ |
| मिश्रगजका लक्षण ... | १५८ | १०० |
| गजमानमें अंगुलादिकोंका प्रमाण ... | १५८ | १ |
| भद्रादि गजोंके शरीरका मान | १५८ | २ |
| सब हाथियोंमे श्रेष्ठ हाथीका लक्षण ... | १५९ | ४ |
| उत्तमोत्तम घोडोंका लक्षण | १५९ | ५ |
| उत्तम और मध्यम घोडोंका लक्षण ... | १५९ | ६ |
| नीच घोड़ोंका लक्षण ... | १५९ | ७ |
| घोडोंके अवयवोंकी कल्पना | १५९ | ७ |
| घोडोंके ऊंचाई और लम्बाईका प्रमाण ... | १५९ | ८ |
| अश्वोंका दूसरा लक्षण ... | १५९ | १० |
| भौंरी घोडी और घोडाके देहमे बांई और दाहिनी तरफ क्रमसे फलदायक होते हैं | १५९ | १३ |
| शुभ आवर्तका लक्षण ... | १५९ | १५ |
| उत्तम और मध्यम घोडोंके आवर्तोंका विचार ... | १६० | १७ |
| सूर्यसंज्ञकअश्वकालक्षणऔरफल | १६० | १९ |
| त्रिकूट अश्वका लक्षण और फल | १६० | १९ |
| अन्य अश्वोंका लक्षण | १६० | २१ |
| शर्व नामादि अश्वोंका लक्षण | १६० | ३१ |
| और फल ... | १६१ | ३१ |
| अनिष्टकारक अश्वोंका लक्षण | १६१ | ३५ |
| आवर्तोंका शुभाशुभत्व कथन | १६१ | ३७ |
| आवर्तोंका नाम और फल | १६२ | ४२ |
| पञ्चकल्याणादि अश्वोंका लक्षण ... | १६२ | ४५ |
| पूज्य श्यामकर्णका लक्षण | १६२ | ४६ |
| जयमंगलका लक्षण ... | १६२ | ४७ |
| निंदित घोड़ेका लक्षण ... | १६२ | ४८ |
| घोडेके श्रेष्ठ गतिका लक्षण | १६२ | ५२ |
| निंदित दलभञ्जी घोडोंका लक्षण ... | १६३ | ५३ |
| आवर्त आदिसे दूषित भी पूजने योग्य अश्वका लक्षण | १६३ | ५४ |
| घोडेके कृशत्वादि दोष उत्पन्न होनेका कारण ... | १६३ | ५५ |
| सुशिक्षकका लक्षण ... | १६३ | ५७ |
| सुशिक्षकका कृत्य ... | १६३ | ५८ |
| अन्यथा ताडन करनेसे अनिष्ट | १६३ | ६३ |
| उत्तम और हीन घोडेकी गतिका प्रमाण ... | १६३ | ६५ |
| सूर्यसंज्ञक अश्वका लक्षण और गतिको बढानेका समय | १६४ | ६८ |
| वर्षाऋतुमें और विषम भूमिमें घोडेको न चलावे | १६४ | ६९ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लो० |
|---|---|---|
| उत्तम गतिसे घोडेको फल | १६४ | ७० |
| थके हुए घोडेको धीरे चलावे | १६४ | ७० |
| घोडेके भक्षणके लिये हितकारक पदार्थ ... | १६४ | ७१ |
| जो गात्र घोडेका घाव आदिसे गिर जाय उस जगह मांसको भरदे ... | १६४ | ७२ |
| घोडा मार्गसे चलकर आया हो उसको लवण और गुड दे | १६४ | ७३ |
| पसीना शांत होजाय तब उसके लगामको उतार ले | १६४ | ७४ |
| गात्रोंको मलकर फेरे ... | १६४ | ७५ |
| मदिरा और जंगली मांसका रस सब रोगोंको हरता है | १६४ | ७६ |
| मसूर और मूंग घोडेके लिये निंदित हैं ... | १६४ | ७८ |
| प्लुत आदि छः गतिके लक्षण | १६५ | ७९ |
| धारादि गतिके लक्षण ... | ६५ | ८२ |
| बैलके मुखका प्रमाण ... | ६५ | ८५ |
| पूजने योग्य सप्तताल बैलका लक्षण ... | ६५ | ८६ |
| श्रेष्ठ ऊंटका लक्षण ... | ६५ | ८८ |
| मनुष्य और हाथियोंके आयुका प्रमाण ... | ६५ | ८८ |
| मनुष्यके बाल्य और मध्यमावस्थाका प्रमाण ... | ६५ | ८९ |
| हाथीकी मध्यमावस्था ... | ६५ | ९० |
| घोडाआदिक आयुका प्रमाण | ६५ | ९१ |
| घोडाआदिकी अवस्थाओंका प्रमाण ... | ६५ | ९१ |
| घोडेके आयुकी दांतोंसे परीक्षा | १६६ | ९२ |
| निंदित घोडेका लक्षण ... | ६६ | ९८ |
| बैलके आयुकी दांतोंसे परीक्षा | १६६ | १००० |
| ऊंटके आयुकी परीक्षा | ६६ | ३ |
| अंकुशका लक्षण ... | ६६ | ३ |
| घोडेके खलीनका वर्णन ... | ६६ | ४ |
| बैल और ऊंटको वशमें करनेका प्रकार ... | १६७ | ६ |
| मलशुद्धिके लिये दंताली | ६७ | ७ |
| बैल आदिकोंके निवासका सुरक्षित स्थल ... | ६७ | ८ |
| बोझ लेचलनेवालोंका तारतम्य | ६७ | १० |
| राजा छोटे भी शत्रुपर अल्प साधनसे गमन न करे | ६७ | ११ |
| युद्धसे भिन्न कार्योंमे अशिक्षितादिकोंको नियुक्त करै | ६७ | १२ |
| संग्राममें अधिक साधनकी आवश्यता ... | ६७ | १३ |
| सन्नद्ध सेनाका माहात्म्य | ६७ | १५ |
| मौल सेनाकी प्रशंसा ... | ६७ | १६ |
| सेनाका अवश्य भेद होनेका कारण ... | १६८ | १७ |
| सेनाका भेद होनेसे अनिष्टफल | ६८ | १८ |
| राजा शत्रुसेनाका भेद अवश्य करै ... | ६८ | १९ |
| शत्रुओंको साधनेका प्रकार | ६८ | २० |
| शत्रुओंके जीतनेका भेदसे अन्य उपाय नहीं है | ६८ | २१ |
| शत्रुकी त्यागी हुई सेनाकी योजना ... | ६८ | २३ |
| मित्रकी सेनाकी योजना | ६८ | २४ |
| अस्त्र और शस्त्रका लक्षण और भेद ... | ६८ | २४ |

| विषय. | पृष्ठ | श्लो० |
|---|---|---|
| मांत्रिक अस्त्रके अभावमें नालिक अस्त्र .... | १६८ | २६ |
| नालिक दोप्रकारका है ... | १६८ | २८ |
| लघुनालिक (बंदूक) का लक्षण | १६८ | २८ |
| बृहन्नालिक ( तोप ) का लक्षण | १६९ | ३१ |
| अग्निचूर्ण ( दारु ) बनानेका प्रकार ... | १६९ | ३४ |
| गोला बनानेका प्रकार ... | १६९ | ३७ |
| नालिककी व्यवस्था ... | १६९ | ३९ |
| दारु बनानेके दूसरे अनेक प्रकार ... | १६९ | ३९ |
| तोपके गोलेको निसाने पर फेकनेकी रीति ... | १६९ | ४२ |
| बाणका लक्षण ... | १७० | ४५ |
| गदा आदिकोंका लक्षण ... | १७० | ४६ |
| खड्गादिकोंका लक्षण ... | १७० | ४७ |
| चक्रादिकोंका लक्षण ... | १७० | ४९ |
| कवचका लक्षण ... | १७० | ५० |
| युद्धकी इच्छा करने योग्य राजाका लक्षण ... | १७० | ५१ |
| युद्धका सामान्य लक्षण | १७० | ५२ |
| युद्धके भेद और उनके लक्षण | १७० | ५३ |
| युद्धके लिये कालका विचार | १७१ | ५६ |
| युद्धके लिये देशका विचार | १७१ | ६० |
| युद्धके लिये सेनाका विचार | १७१ | ६३ |
| मन्त्रके संधि आदि छः गुण | १७१ | ६५ |
| सन्धि आदिकोंका सामान्य लक्षण ... | १७२ | ६६ |
| सन्धिको करनेयोग्य पुरुषका कथन ... | १७२ | ७० |
| उपहाररूपसंधि सबसे श्रेष्ठ है | १७२ | ७२ |
| विग्रहको करनेयोग्य पुरुषका लक्षण ... | १७३ | ८१ |
| लडाई होनेका कारण ... | १७३ | ८४ |
| यानके पांच भेद ... | १७३ | ८५ |
| विगृह्ययानादिकोंका लक्षण | १७३ | ८६ |
| रास्तोंमें सेनाको चलानेकी व्यवस्था, मकरादिव्यूहोंके नाम .. | १७४ | ९३ |
| और उन्हींकी स्थलयोजना | १७४ | ९६ |
| सेनाव्यूह और मकरादि व्यूहोंके लक्षण ... | १७५ | १० |
| आसनका लक्षण ... | १७६ | १७ |
| सन्धायासनका लक्षण ... | १७६ | १९ |
| आश्रयका लक्षण .. | १७६ | २० |
| द्वैधीभावसे वर्तन करने योग्य पुरुषका और द्वैधीभावका लक्षण . | १७६ | २३ |
| राजा भेद और आश्रय इन दोनोंके विना युद्ध न करे | १७६ | २९ |
| अवश्य युद्ध करनेका कारण | १७७ | ३१ |
| युद्धमें पराङ्मुख होनेवालेकी निन्दा ... | १७७ | ३४ |
| ब्राह्मणभी आपत्कालमें युद्ध करे ... | १७७ | ३५ |
| क्षत्रियका महान् अधर्म ... | १७७ | ३६ |
| युद्धमें पराङ्मुख न होनेका और मारनेका उत्तम फल | १७७ | ४० |
| शौर्यकी प्रशंसा ... | १७८ | ४६ |
| प्राणियोंके अन्नका विचार | १७८ | ४७ |
| सूर्यमण्डलको भेदन करनेवाले दो पुरुष ... | १७८ | ४८ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लो. |
| --- | --- | --- |
| ब्राह्मण भी आततायी शूद्रके समान है ... | १७८ | ५० |
| आततायीके मारनेमें कोई भी दोष नहीं होता ... | ७८ | ५१ |
| दुराचारी क्षत्रीको ब्राह्मण नष्ट करदे ... | १७९ | ५६ |
| उत्तम मध्यम और अधम युद्धका लक्षण ... | ७९ | ५८ |
| अस्त्रयुद्धका लक्षण ... | ७९ | ५९ |
| शस्त्रयुद्धका लक्षण ... | ७९ | ६२ |
| वाहुयुद्धका लक्षण ... | ७९ | ६२ |
| युद्धके समय सेनाकी रचना | ७९ | ६३ |
| युद्ध होनेका क्रम ... | ७९ | ६६ |
| सेनाको उपद्रव ... | ७९ | ६८ |
| यानमें योद्धाओंकी भृतिको बढावे .. | १८० | ७२ |
| युद्धमें अपने देहकी रक्षा करे ... | ८० | ७२ |
| युद्धमें नालास्त्रादिकोंकी योजना | ८० | ७३ |
| युद्धमें स्थलारूढादिकोंको मारनेका निषेध ... | ८० | ७६ |
| कूटयुद्धमे पूर्वोक्त नियम नहीं है | ८० | ८० |
| युद्धके समान और युद्ध नहीं है .. | ८० | ८० |
| राजा शत्रुके छिद्रको भली प्रकार देखे ... | १८१ | ८२ |
| सेनापतिका नित्यकृत्य ... | १८१ | ८३ |
| भारी कामको करे उसको पारितोषिक वा उत्तम अधिकार दे | ८१ | ८५ |
| शत्रुको नष्ट करनेका उपाय | ८१ | ८६ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लोक. |
| --- | --- | --- |
| शत्रुकी सेनाको भेद करनेका प्रकार ... | १८१ | ८७ |
| अपने राज्यके अत्यन्त समीप राज्यको दूसरे राजाको न ... | ८१ | ८९ |
| शत्रुओंको जीतनेपर शत्रुकी प्रजाको प्रसन्न करे ... | ८१ | ९२ |
| मन्त्रके विचारमें दूसरे मन्त्रियोंको नियुक्त करे ... | ८१ | ९३ |
| मन्त्री आदिकोंका कृत्य ... | १८२ | ९५ |
| ग्रामसे बाहर समीपमें सैनिकोंको टिकावे ... | ८२ | ९७ |
| ग्रामके निवासी और सैनिकोंका लेनदेन न होने दे ... | ८२ | ९८ |
| सैनिकोंके लिये पृथक् बाजार बनावे ... | ८२ | ९८ |
| सेनाको एक स्थानपर न बसावे | ८२ | ९९ |
| आठवे दिन सैनिकोंको राजाकी शिक्षा ... | ८२ | १२०० |
| सैनिकोंके संग प्रतिदिन व्यूहोका अभ्यास करे | ८२ | ६ |
| सायंकाल और प्रातःकालमें सैनिकोंकी गिनती करे | ८२ | ६ |
| भृत्योंके प्राप्तिपत्रका ग्रहण करके वेतनपत्र उसको दे दे | १८३ | ८ |
| शिक्षित सैनिकको भृति पूर्ण देनी ... | ८३ | [illegible] |
| सुखासक्त भृत्यको त्याग दे | ८३ | १[illegible] |
| अन्तःपुरादिकोंमें नियुक्त करने योग्य भृत्यका कथन | १८३ | ११ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लो० |
|---|---|---|
| शत्रुके भृत्योंका भृतिका विचार | १८३ | १५ |
| जिसका राज्य हरा हो उसके पुत्रादिकोंकी व्यवस्था | १८३ | १७ |
| शत्रुसंचितधनकी व्यवस्था | १८३ | १८ |
| सदाचारिशत्रुका पालन करे | १८४ | २० |
| पहरेदारोंकी व्यवस्था ... | १८४ | २१ |
| राजा पूज्य होनेका कारण ... | १८४ | २८ |
| चिरस्थायी राजाका लक्षण ... | १८४ | २९ |
| शीघ्र ही पदभ्रष्ट होनेवाला राजाका लक्षण ... | १८४ | ३० |
| नीतिभ्रष्ट राजाकोभी अन्य राजा उद्धार करनेको समर्थ होता है | १८५ | ३३ |
| तेजोहीन राजासे बलवान् राजा का छोटा भाई भृत्य तेजस्वी होता है ... | १८५ | ३४ |
| राजाका मुख्य बल ... | १८५ | ३५ |
| हीनराज्य राजाका आचरण | १८५ | ३६ |
| राजा दरिद्री होनेका कारण | १८५ | ३७ |
| धर्मका रक्षण करनेवाला नीच राजाभी श्रेष्ठ होता है .. | १८५ | ३९ |
| धर्म और अधर्मकी प्रवृत्तिमे राजाही कारण होता है | १८५ | ४० |
| मनु आदिके मानेही अर्थ शुक्राचार्यने माने हैं ... | १८५ | ४१ |
| इस नीतिसारमें २२०० बाईस सौ श्लोक कहे हैं ... | १८५ | ४२ |
| नीतिसारका चिन्तन करनेका फल ... | १८५ | ४२ |
| शुक्रनीतिके समान दूसरी नीति नहीं है ... | १८५ | ४३ |
| अब नीतिशेषको कहते हैं ... | १८६ | ४६ |
| शत्रुको नष्ट करनेका प्रयत्न | १८६ | ४८ |
| युद्धमें नियुक्त करने योग्य सेनाका कथन ... | १८६ | ५१ |
| दानमानरहितभी भृत्य अपने राजाको छोडे ... | १८६ | ५२ |
| राजाका द्रव्य मेघोदकके समान पुष्टिदायक है ... | १८६ | ५३ |
| शत्रुका राज्य हरण करनेका उपाय .. | १८६ | ५४ |
| राज्यको वृक्षकी साम्यता ... | १८७ | ५७ |
| राजाको अवश्य पालन करने योग्य नियम ... | १८७ | ५९ |
| पुत्रको राज्य देनेकासमय ... | १८७ | ६४ |
| राज्यको प्राप्त होनेपर राजपुत्रका आचरण .. | १८७ | ६६ |
| राजपुत्रके संग पहिले मंत्रियोंका आचरण ... | १८७ | ६७ |
| अनीतिसे वर्ताव करै तो अनिष्ट फल ... | १८७ | ६८ |
| नवीन जनकी व्यवस्था ... | १८८ | ७० |
| राजा मायावीजनोंका अंतर बडे यत्नसे जानले ... | १८८ | ७२ |
| मायाके पैदा करनेवाले ... | १८८ | ७३ |
| धूर्तका वर्णन ... | १८८ | ७४ |
| मायाके विना अत्यन्त धन नहीं मिलता है ... | १८८ | ७७ |
| संपूर्णपाप आश्रयके भेदसे धर्मरूपसे स्थित ... | १८८ | ८० |
| अत्यन्त दानादिकोंका निषेध | १८८ | ८२ |
| अर्थके लिये अवश्य यत्न करे | १८९ | ८३ |
| अर्थसे सब पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं ... | १८९ | ८४ |
| शौर्यादिक शस्त्रास्त्रादिकोंके विना दुःखदायी होते हैं | १८९ | ८४ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लोक. |
|---|---|---|
| मित्रके समान दूसरा सहाय नहीं है ... | १८९ | ८६ |
| महान वैरका कारण ... | १८९ | ८६ |
| मित्रता होनेका कारण ... | १८९ | ८७ |
| आपत्समयमें राजाका वर्ताव | १८९ | ८७ |
| आपत्तिमें भृतिके विना भी स्वामिकार्यको करनेकी काल मर्यादा ... | १८९ | ९१ |
| प्रशंसाके योग्य भृत्य और स्वामीका वर्णन ... | १८९ | ९४ |
| एक चित्तताप्रभाव ... | १९० | ९६ |
| श्रीकृष्णकी कूटनीतिका वर्णन | ९० | ९७ |
| केवल अपनी रक्षाकी युक्तिको विचार करनेवालेकी निंदा | ९० | ९९ |
| दो प्रकारकी युक्ति ... | ९०१३०० | |
| छद्मचारीके संग छद्म करे | ९०१३०० | |
| छलका वर्णन ... | ९० | ३ |
| तीन प्रकारके भृत्य ... | ९० | ६ |
| उत्तमादि भृत्योंके लक्षण ... | ९० | ७ |

| विषय. | पृष्ठ. | श्लो० |
|---|---|---|
| उपदेशके विना सबका ज्ञान नहीं होता ... | ९१ | ९ |
| कार्य करनेका विचार ... | ९१ | ११ |
| दशग्रामी आदिकोंका वर्ताव | ९१ | १६ |
| उत्तमादि गृह भूमिका प्रमाण | १९२ | २२ |
| नृपकार्यके विना सैनिक ग्राममें न धसे ... | ९२ | २४ |
| राजा सैनिकको शौर्य बढ़ानेवाले धर्मको नित्य श्रवण करवावे | ९२ | २५ |
| शौर्यवृद्धिकारक अन्य उपाय | ९२ | २६ |
| राजा सत्याचार धनिक और किसानोंका विपत्तिमें उद्धार करे | ९२ | २७ |
| परदेशियोंसे व्ययके अनुसार भाग ले ... | ९२ | २८ |
| धनिकोंके धनकी बडे यत्नसे रक्षा करे ... | ९२ | २९ |
| मूल धनकी अपेक्षा चौगुनी वृद्धि ले ली होय तो धनीको कुछ भी धन न दे ... | ९२ | ३० |


इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता।

॥ श्रीः ॥

# शुक्रनीतिः ।

## भाषाटीकासहिता ।

## अध्याय १ ला.

प्रणम्यजगदाधारंसर्गस्थित्यंतकारणम् ॥
संपूज्यभार्गवःपृष्टोवंदितःपूजितःस्तुतः ॥१॥
पूर्वदेवैर्यथान्यायंनीतिसारमुवाचतान् ।
शतलक्षश्लोकमितंनीतिशास्त्रमथोक्तवान्।२

रचने और पालने और नाशके कारण जगत्के आधार (आश्रय) भगवानको नमस्कार करिके पूर्वदेवताओने सत्कारपूर्वक नमस्कार और पूजा और स्तुति की जिनकी ऐसे शुक्राचार्यके न्यायके अनुसार प्रश्न किया वे शुक्राचार्य देवताओके प्रति नीतिका सार कहते भये शुक्र कहते है एक कोटी नीतिशास्त्र ब्रह्माने वर्णन किया ॥ १ ॥ २ ॥

स्वयंभूर्भगवाँल्लोकहितार्थंसंग्रहेण वै ॥
तत्सारंतुवसिष्ठाद्यैरस्माभिर्वृद्धिहेतवे ॥३॥

जगत्के कल्याणके अर्थ संक्षेपसे उसका सार वशिष्ठ आदि हम सम्पूर्ण ऋषियोंने बढनेके अर्थ वर्णन किया ॥ ३ ॥

अल्पायुर्भूभृताद्यर्थंसंक्षिप्तंतर्कविस्तृतम् ।
क्रियैकदेशबोधीनिशास्त्राण्यन्यानिसंतिहि४

तर्कोंसे किया है विस्तार जिसका ऐसा नीतिशास्त्र अल्प है अवस्था जिनकी ऐसे राजाओंके लिये वसिष्ठ आदिकोंने संक्षेपसे किया इतर जो शास्त्र सो एक २ कार्यके बोधक हैं ॥ ४ ॥

सर्वोपजीवकंलोकस्थितिकृन्नीतिशास्त्रकम् ।
धर्मार्थकाममूलंहिस्मृतंमोक्षप्रदं यतः ॥५॥

जिससे धर्म, अर्थ, काम. इनका कारण और मोक्षका दाता कहा है इससे नीतिशास्त्र सम्पूर्ण जगत्का उपकार और मर्यादा पालक है ॥ ५ ॥

अतःसदानीतिशास्त्रमभ्यसेद्यत्नतोनृपः ।
यद्विज्ञानान्नृपाद्याश्चशत्रुजिल्लोकरंजकाः।६॥

इससे राजा नीतिशास्त्रका यत्नसे अभ्यास करै जिसके ज्ञानसे राजा और मंत्री आदि शत्रुओंके जेता और जगत्के प्रिय होते हैं ॥ ६ ॥

सुनीतिकुशलानित्यंप्रभवंतिचभूमिपाः ।
शब्दार्थानांनकिंज्ञानंविनाव्याकरणाद्भवेत ।

राजा इस शास्त्रके ज्ञानसे सुन्दर नीतिमें कुशल होते है शब्द और अर्थका ज्ञान विना व्याकरण क्या नहीं होता ॥ ७ ॥

प्राकृतानापदार्थानांन्यायतर्कैर्विनानकिम् ।
विधिक्रियाव्यवस्थानानाविमीमांसयाविना॥

प्राकृत अर्थात् जगत्के पदार्थोंका ज्ञान न्याय और तर्कके विना और कर्मकाण्डकी व्यवस्थाओंका ज्ञान मीमांसाके विना क्या नही होता ॥ ८ ॥

देहादिनश्वरत्वंवेदांतैर्नविनाहिकिम् ।
स्वस्वाभिमतबोधीनिशास्त्राण्येतानिसंतिहि।

शरीर आदि जगत् नाशवान है यह ज्ञान वेदान्तके विना क्या नहीं हो सकता अपने २ वांछित एक २ वस्तुके बोधक वे पूर्वोक्त सम्पूर्ण शास्त्र हैं ॥ ९ ॥

तत्तन्मतानुगैःसर्वैर्विधृतानिजनैःसदा ।
बुद्धिकौशलमेतद्धितैःकिंस्याद्व्यवहारिणाम्॥

तिस २ मतके अनुयायी सम्पूर्ण जनोंने सदैव रचे हैं परन्तु वे सम्पूर्ण शास्त्र बुद्धिकी चतुराईरूप हैं इसमें व्यवहारियोंका कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता ॥ १० ॥

सर्वलोकव्यवहारस्थितिर्नीत्याविनानहि ।
यथाशनैर्विनादेहस्थितिर्नस्याद्धिदेहिनाम्॥

सम्पूर्ण लोकके व्यवहारकी स्थिति नीतिके विना इस प्रकार नहीं हो सकती जैसे देह-धारियोंके देहकी स्थिति भोजनके विना असम्भव है ॥ ११ ॥

सर्वाभिष्टकरंनीतिशास्त्रंस्यात्सर्वसंमतम् ।
अत्यावश्यंनृपस्यापिससर्वेषांप्रभुर्यतः ।१२।

सबके वांछित कारक नीतिशास्त्र सम्पूर्ण मनुष्योंको सम्मत है और राजाको भी अत्यन्त अवश्य युक्त है क्यों कि यह सम्पूर्ण सम्मत है ॥ १२ ॥

शत्रवोनीतिहीनानांयथाऽपथ्याशिनांगदाः ।
सद्यः केचिच्चकालेनभवंतिनभवंतिच ।१३।

जिस प्रकार अपथ्य भोजन करनेवाले मनुष्योंके रोग इसी प्रकार नीतिसे हीन राजाओंके शत्रु कोई शीघ्र, और कोई कालां-तरमें होते हैं फिर वे नीतिहीनोंका तिरस्कार करते है ॥ १३ ॥

नृपस्यपरमोधर्मः प्रजानांपरिपालनम् ।
दुष्टनिग्रहणंनित्यंननीत्यातौविनह्युभे १४॥

प्रजाओंका पालन और दुष्टोंका नाश ये दो राजाओंके परमधर्म हैं ये दोनों नीतिके विना नहीं हो सकते ॥ १४ ॥

अनीतिरेवसंछिद्रंराज्ञोनित्यंभयावहम् ॥
शत्रुसंवर्धनंप्रोक्तंबलह्रासकरंमहत् ॥१५॥

राजाका अन्याय महान् छिद्र ( दोष ) और भयदायक, शत्रुओंका बढानेवाला अ सेनाकी हानि करनेवाला होता है ॥ १५ ॥

नीतिंत्यक्त्वावर्ततेयःस्वतंत्रःसहिदुःखभाक्
स्वतंत्रप्रभुसेवातुह्यसिधारावलेहनम् ॥१६

नीतिका परित्याग करके जो राजा स्वतं वर्त्ताव करता है वह दुःखका भागी होता और स्वतन्त्र राजाकी सेवा तलवारकी धा के चाटनेके तुल्य है ॥ १६ ॥

स्वाराध्योनीतिमान्राजादुराराध्यस्त्वनीतिमा
यत्रनीतिबलेचोभेतत्रश्रीस्सर्वतोमुखी १७

नीतिमान् राजा सुखसे आराधना करने योग्य है, और अनीतिमान् राजा दुःख आराधना करनेके योग्य हैं जिस राजा नीति और बल दोनों है उसको चारों ओर लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ १७ ॥

अप्रेरितहितकरंसर्वराष्ट्रंभवेद्यथा ॥
तथानीतिस्तुसंधार्यानृपेणात्महितायवै १८

जिस प्रकार विना आज्ञाके हितका सम्पूर्ण देश हों इस प्रकार अपने कल्याण अर्थ राजा नीतिको धारण करै ॥ १८ ॥

भिन्नंराष्ट्रंबलंभिन्नंभित्रोऽमात्यादिकोगणः
अकौशल्यंनृपस्यैतदनीतेर्यस्यसर्वदा १९।

जिस राजाके देश, सेना, मन्त्री आदिक मे परस्पर भेद है यह सर्वकाल नीति ही राजाओकी अकुशलता है ॥ १९ ॥

तपसातेजआदत्तेशास्त्रीपाताचरंजकः ।
नृपःस्वप्राक्तनाद्धत्तेतपसाचमहीमिमाम् २०

तपसे राजा तेजधारी और शास्त्रका ज्ञात और रक्षाका कर्त्ता सबका प्रिय होता है औ राजा अपने पूर्वजन्मके तपसे इस पृथ्वीकी पालना करता है ॥ २० ॥

वृष्टिशीतोष्णनक्षत्रगतिरूपस्वभावतः ।
इष्टानिष्टाधिकंन्यूनाचारैःकालस्तुभिद्यते २१

वर्षा, शीत, उष्ण नक्षत्रोंकी गति आदिके स्वभावसे इष्ट, अनिष्ट, अधिक और न्यून आचरणसे कालका भेद होता है अर्थात् एक ही काल अनेकप्रकारका प्रतीत होता है ॥२१॥

आचारप्रेरकोराजाह्येतत्कालस्यकारणम् ।
यदिकालःप्रमाणंहिकस्माद्धर्मोस्तिकर्तृषु२२

आचरणका प्रेरक राजा है इससे कालका कारण है,जो केवल काल ही प्रमाण हो तो देह धारियोंमे धर्म कहांसे हो, अर्थात् राजाके विना कालसे भी धर्मकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती ॥ २२ ॥

राजदंडभयाल्लोकः स्वस्वधर्मपरोभवेत् ।
योहिस्वधर्मनिरतःसतेजस्वीभवेदिह ॥२३॥

राजदंडके भयसे जगत् अपने २ धर्ममे तत्पर होता है और जो अपने धर्ममे स्थित है वही इस लोकमे तेजधारी होता है ॥२३॥

विनास्वधर्मान्नसुखंस्वधर्मोहिपरंतपः ।
तपः स्वधर्मरूपंयद्वर्धितंयेनवैसदा ॥२४॥

अपने धर्मके विना सुख नहीं होता और अपना धर्म ही परम तप है जिससे तप स्वधर्मरूप है इससे वह स्वधर्मकी सदा वृद्धि करता है ॥ २४ ॥

देवास्तुकिंकरास्तस्यकिंपुनर्मनुजाभुवि ।
सुदण्डैर्धर्मनिरतःप्रजाःकुर्यान्महाभयैः २५

धर्मज्ञ मनुष्यके देवताभी सेवक होते है पृथिवीपर मनुष्य तो क्यों न होंगे धर्ममें स्थित राजा उत्तम और भयानक दंडोंसे प्रजाओंको धर्ममे तत्पर करै ॥ २५ ॥

नृपःस्वधर्मनिरतोभूत्वा तेजःक्षयोऽन्यथा ।
अभिषिक्तोनाभिषिक्तोनृपत्वंयुयदाप्नुयात्॥

राजाको अभिषेक ( पिता आदिके उपदेशद्वारा शास्त्रोक्त विधि ) अथवा स्वयं जब राजपदवीको प्राप्त हो तब राजा धर्ममे तत्पर रहै जो धर्ममे स्थित नहीं उसके तेजका क्षय ( नाश ) होता है ॥ २६ ॥

बुद्ध्याबलेनशौर्येणततोनीत्यानुपालयन् ।
प्रजाःसर्वाःप्रतिदिनमच्छिद्रोदंडधृक्सदा२७

बुद्धि, बल, शूरवीरता और नीतिसे संपूर्ण प्रजाका पालन करता हुआ राजा अच्छिद्र ( दोषरहित ) होकर दंडको सदा धारण करै ॥ २७ ॥

नित्यबुद्धिमतोप्यर्थःस्वल्पकोपिविवर्धते ।
तिर्यञ्चोपिवशंयांतिशौर्यनीतिबलैर्धनैः॥

बुद्धिमान् राजाका अत्यंत अल्प भी अर्थ नित्य बुद्धिको प्राप्त होता है। सर्प आदि भी शूरता, बल, नीति धनसे बश हो जावें हैं ॥ २८ ॥

सात्त्विकंतामसंचैवराजसंत्रिविधंतपः ।
यादृक्तपतियोत्यर्थंतादृग्भवतिसोनृपः २९॥

सत्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी, तीन प्रकारका तप होता है, जो राजा सात्विकगुणी होकर तपता है वह वैसा ही होता है ॥२९॥

योहिस्वधर्मनिरतःप्रजानांपरिपालकः ।
यष्टाचसर्वयज्ञानांनेताशत्रुगणस्यच ॥३०॥
दानशौंडःक्षमीशूरोनिःस्पृहोविषयेष्वपि ।
विरक्तःसात्त्विकःसोहिनृपोंतेमोक्षमन्वियात्॥

जो राजा धर्मनिष्ठ होकर प्रजाका पालक होता है, और सम्पूर्ण यज्ञोंको करता है शत्रुओंका जेता है और दानी है और क्षमावान् है, शूरवीर है निर्लोभी है, विषयोंसे विरक्त है, यह सात्त्विक राजा अंतसमयमें मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

विपरीतस्तामसःस्यात्सोंतेनरकभाजनः ।
निर्घृणश्चमदोन्मत्तोहिंसकः सत्यवर्जितः३२

पूर्वोक्त लक्षणोंसे विपरीत है लक्षण जिसमें ऐसा राजा तामसी और निर्दयी, मदोन्मत्त, हिंसाप्रिय, सत्यहीन, अन्तमे वह नरकगामी होता है ॥ ३२

राजसोदांभिकोलोभीविषयीवंचकःशठः ।
मनसान्यश्चवचसाकर्मणाकलहप्रियः ३३॥

नीचप्रियः स्वतंत्रश्चनीतिहीनश्छलांतरः ।
सतिर्यक्त्वंस्थावरत्वंभवितांतेनृपाधमः ३४॥

दंभी, लोभी, विषयी, वंचक, शठ, मनसा अन्य ( मनमे कपटी ) वाणी और कर्मसे कलहकारी, नीचोंमें प्रेमी, स्वतंत्र, नीतिहीन, मनसे छली ऐसा राजाओंमे अधम राजा रजोगुणी होता है, वह अन्तमें तिरछी अथवा स्थावरयोनिको प्राप्त होता है ॥३३॥३४॥

देवांशान्सात्त्विकोभुंक्तेराक्षमांशास्तुतामसः।
राजसोमानवांशांस्तुसत्त्वेधार्यंमनोयतः ३५

सत्वगुणी देवांशोंको, तमोगुणी राक्षसांशोंको, रजोगुणी मनुष्यांशोंको भोगताहै,इससे सत्त्वगुणहीमे मनकी धारणा करे ॥३५॥

सत्त्वस्यतमसःसाम्यान्मानुषंजन्मजायते ।
यद्यदाश्रयतेमर्त्यस्तत्तुल्योदिष्टतोभवेत् ॥

सत्त्वगुणी, और तमोगुणीकी साम्यतासे मनुष्यजन्म होता है, तिस २ गुणका, आश्रय करता है अपने प्रारब्धके अनुसार तिसके ही तुल्य होता है ॥ ३६ ॥

कर्मैवकारणंचात्रसुगतिंदुर्गतिंप्रति ।
कर्मैवप्राक्तनमपिक्षणंकिंकोस्तिचाक्रियः ॥

इस जगत्में सुगति और दुर्गतिके प्रति कर्म ही कारण है पूर्वकर्मकोही प्रारब्ध कहते हैं क्या कोई जीव क्षणमात्र भी कर्मरहित रह सकता है अर्थात् नहीं रह सकता ॥ ३७ ॥

नजात्याब्राह्मणश्चात्रक्षत्रियोवैश्यएवन ।
नशूद्रोनचवैम्लेच्छोभेदितागुणकर्मभिः ३८

इस जगतमें जन्मसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ, नहीं होते किन्तु गुण और कर्मके भेदसे होते हैं ॥ ३८ ॥

ब्रह्मणस्तुसमुत्पन्नाः सर्वेतेकिंनुब्राह्मणाः ।
नवर्णतोनजनकाद्ब्राह्मतेजः प्रपद्यते ॥३९॥

संपूर्ण जीव ब्रह्मासे उत्पन्न होनेसे क्या ब्राह्मण हो सकते हैं, अर्थात् नहीं, वर्णसे और पितासे ब्रह्मतेजकी प्राप्ति नहीं होसकती ॥

ज्ञानकर्मोपासनाभिर्देवताराधनेरतः ।
शांतोदांतोदयालुश्चब्राह्मणश्चगुणैःकृतः४०

ज्ञान, कर्म, देवता आदिकी उपासना, देवताके आराधनमें तत्पर, और शांत, दांत और दयालु, ऐसा जो मनुष्य वही गुणोंसे ब्राह्मण होता है ॥ ४० ॥

लोकसंरक्षणेदक्षश्शूरोदांतः पराक्रमी ।
दुष्टनिग्रहशीलोयः सर्वैःक्षत्रियउच्यते॥४१॥

लोककी रक्षा करनेमें चतुर शूरवीर, दांत और पराक्रमी, दुष्टोंको दंडका दाता ऐसा जो मनुष्य उसे क्षत्रिय कहते हैं ॥ ४१ ॥

क्रयविक्रयकुशलायेनित्यंपण्यजीविनः ।
पशुरक्षाकृषिकरास्तेवैश्याः कीर्तिताभुवि४२

लेने देनेमें चतुर, व्यवहार है जीवन जिनका और पशुओंकी रक्षा और खेतीके करनेहारे जीव वे पृथ्वीमें वैश्य कहाते है ॥ ४२ ॥

द्विजसेवार्चनरताः शूराःशांताजितेन्द्रियाः ।
सीरकाष्ठतृणवहास्तेनीचाःशूद्रसंज्ञकाः४३

ब्राह्मणकी सेवा और पूजनमें तत्पर शूर, वीर, शांत और जितेन्द्रिय, हल, काष्ठ और तृण इनको ले जानेहारे जो नीच जीव वे शूद्र कहाते हैं ॥ ४३ ॥

त्यक्तस्वधर्माचरणानिर्घृणाः परपीडकाः ।
चंडाश्चहिंसकानित्यंम्लेच्छास्तेह्यविवेकिनः।

त्याग दिया है अपने धर्मका आचरण जिन्होने ऐसे निर्दयी परको पीडा देनेहारे चंड और नित्य हिंसक जो अविवेकी मनुष्य वे म्लेच्छ हैं ॥ ४४ ॥

प्राक्कर्मफलभोगार्हाबुद्धिःसंजायतेनृणाम् ।
पापकर्मणिपुण्येवाकर्तुंशक्तोनचान्यथा४५॥

पूर्वकर्मके फल भोगने योग्य मनुष्यकी बुद्धि पापकर्म अथवा पुण्यमें जब होती है तबही

बुद्धिके अनुसार कर्म कर सकता है अन्यथा नहीं ॥ ४५ ॥

बुद्धिरुत्पद्यतेतादृग्यादृक्कर्मफलोदयः ॥
सहायास्तादृशाएवयादृशीभवितव्यता ४६

जैसे कर्मके फलका उदय होता है वैसी ही बुद्धि उत्पन्न होती है, जैसी भवितव्यता (होनी) होती है वैसेही सहायक होते हैं ॥ ४६ ॥

प्राक्कर्मवशतः सर्वंभवत्येवेतिनिश्चितम् ।
तदोपदेशाव्यर्थाःस्युःकार्याकार्यप्रबोधकाः॥

जो यह निश्चय है कि पूर्वकर्मके अधीन ही संपूर्ण होता है तो कार्यके जनानेवाले उपदेश व्यर्थ हो जायँगे ॥ ४७ ॥

धीमंतोवंद्यचरितामन्यंतेपौरुषंमहत् ।
अशक्तापौरुषंकर्तुंक्लीबादैवमुपासते॥४८॥

बुद्धिमान और माननीय चरित्र मनुष्य पुरुषार्थको बडा मानते हैं और जो नपुंसक पुरुषार्थ करनेको असमर्थ हैं वे दैव (प्रारब्ध) की उपासना करते हैं ॥ ४८ ॥

दैवेपुरुषकारेचखलुसर्वंप्रतिष्ठितम् ।
पूर्वजन्मकृतंकर्मेहार्जितंतद्द्विधाकृतम् ४९॥

प्रारब्ध और पुरुषार्थमें ही निश्चयसे सम्पूर्ण जगत् विद्यमान है पूर्वजन्मका कर्म प्रारब्ध और इस जन्मका कर्म पुरुषार्थ होनेसे एक ही कर्मसे दो प्रकारका होता है ॥ ४९ ॥

बलवत्प्रतिकारिस्याद्दुर्बलस्यसदैवहि ।
सबलाबलयोर्ज्ञानंफलप्राप्त्यान्यथानहि५०

दुर्बलका प्रतिकार करनेवाला उपकारी बलवान् कर्म सर्वदा होता है और प्रबल और दुर्बलका ज्ञान फलप्राप्तिसे हैं अन्यथा नहीं होते ॥ ५० ॥

फलोपलब्धिः प्रत्यक्षहेतुनानैवदृश्यते ।
प्राक्कर्महेतुकीसातुनान्यथेतिनिश्चयः ५१॥

फलकी प्राप्तिका हेतु कोई प्रत्यक्ष नहीं दीखता क्योंकि यह निश्चय है कि फलकी प्राप्ति पूर्व कर्मके अनुसार होती है अन्यथा नहीं हो सकती ॥ ५१ ॥

यज्जायतेल्पक्रिययानृणांवापिमहत्फलम् ॥
तदपिप्राक्तनादेवकेचित्प्रागिहकर्मजम् ५२

जो मनुष्यको अल्प कर्मसे महान् फल होता है वह भी पूर्वकर्मसे ही होता है क्योंकि इस जन्मके कर्मसे पूर्व किंचित् भी नहीं हो सकता ॥ ५२ ॥

वदंतीहैवक्रिययाजायतेपौरुषंनृणाम् ।
सस्नेहवर्तिदीपस्यरक्षावातात्प्रयत्नतः॥५३॥

कोई मतवादी कहते हैं कि इस जन्मके ही कर्मसे मनुष्योंका पुरुषार्थ होता है जैसे तेलबत्ती सहित दीपककी रक्षा पवनसे और यत्नसे करते हैं ॥ ५३ ॥

अवश्यंभाविभावानांप्रतीकारोनचेद्यदि ।
दुष्टानांक्षपणंश्रेयोयावद्बुद्धिबलोदयम् ५४

अवश्य होनेवाली वस्तुका जो प्रतिकार न होता तौ अपने बुद्धि और बलके अनुसार दुष्टोंके नाशसे कुशल कैसे होती अर्थात् पुरुषार्थसे भावी भी अन्यथा हो सकती है ॥ ५४ ॥

प्रतिकूलानुकूलाभ्यांफलाभ्यांचनृपोप्यतः ।
ईषन्मध्याधिकाभ्यांचत्रिधादैवंविचिंतयेत् ॥

इनसे राजा भी अपने प्रतिकूल, अनुकूल और अल्प, मध्यम, उत्तम फलोंसे तीन प्रकारके दैवका विचार करै ॥ ५५ ॥

रावणस्यचभीष्मादेर्वनभंगेचगोगृहे ।
प्रातिकूल्यंतुविज्ञातमेकस्माद्वानरान्नरात् ५६

रावणके वनका भंग एक वानर (हनुमान) से हुआ और भीष्मका गोगृहमें एक नर (अर्जुन) से भंग भया इससे कर्मकी प्रतिकूलता भी ज्ञाता होती है ॥ ५६ ॥

कालानुकूल्यंविस्पष्टंराघवस्यार्जुनस्यच ।
अनुकूलेयदादैवेक्रियाल्पासुफलाभवेत्५७।

रामचन्द्र और अर्जुनकी काल सम्बन्धी अनुकूलता स्पष्टतर है क्योंकि जब दैव अनुकूल

होता है तब स्वल्प क्रिया भी सफल होती है ॥ ५७ ॥

महती सत्क्रियानिष्टफलास्यात्प्रतिकूलके ।
बलिर्दानेनसंबद्धोहरिश्चंद्रस्तथैवच ॥५८॥

प्रारब्धकी प्रतिकूलतामें महान् भी सत्कर्म अनिष्ट फलदायक होता है बलि और राजा हरिश्चन्द्र दानसे भी बंधनको प्राप्त हुए ॥ ५८ ॥

भवतीष्टंसत्क्रिययानिष्टंतद्विपरीतया ॥
शास्त्रतः सदसज्ज्ञात्वात्यक्त्वाऽसत्सत्समाचरेत् ॥ ५९ ॥

सत्कर्मसे इष्ट और असत्कर्मसे अनिष्ट होता है इससे शास्त्र द्वारा सत् और असत्का ज्ञान और असत्का परित्याग करके सत् ( श्रेष्ठ ) कर्मका ही आचरण करे ॥ ५९ ॥

कालस्यकारणंराजासदसत्कर्मणस्त्वतः ।
स्वक्रौर्योद्यतदंडाभ्यांस्वधर्मेस्थापयेत्प्रजाः ॥

कालका कारण राजा है सत् और असत् कर्मके प्रभावसे अपनी क्रूरता और उसे अपने २ कर्ममें प्रजाका स्थापन राजा करे ॥ ६० ॥

स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानिच ।
सप्तांगमुच्यतेराज्यंतत्रमूर्धानृपः स्मृतः ६१

राजा, मन्त्री, मित्र, कोश, देश, दुर्ग,किला, सेना ये सात अंग राज्यके हैं तिन सातोंमे राजा प्रधान है ॥ ६१ ॥

दृगमात्यासुहृच्छ्रोत्रंमुखंकोशाबलंमनः ।
हस्तौपादौदुर्गराष्ट्रौराज्यांगानिस्मृतानिहि

मन्त्री, नेत्र, मित्र, कर्ण, कोश, मुख, सेना, मन, दुर्ग हाथ, देश पाद, ये राज्यके अंग कहे हैं ॥ ६२ ॥

अंगानांक्रमशोवक्ष्येगुणान्भूतिप्रदान्सदा ।
येर्गुणास्तुसुसंयुक्तावृद्धिमंतोभवंतिहि।६३॥

भूतिके देनेवाले अंगोंके गुण क्रमसे कहते हैं जिन गुणोंसे संयुक्त मनुष्य वृद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ६३ ॥

राजास्यजगतोहेतुर्वृद्धेर्वृद्धाभिसंमतः ।
नयनानंदजनकः शशांकइवतोयधेः ॥६४॥

राजा इस जगत्की वृद्धिका हेतु है और वृद्धोंका मान्य है नेत्रोंको इस प्रकार आनंद देता है जैसे चन्द्रमा समुद्रको ॥ ६४ ॥

यदिनस्यान्नरपतिः सम्यङ्नेताततः प्रजाः ।
अकर्णधाराजलधौविप्लवेतेहनौरिव ॥६५॥

जो उत्तम नीतिमान् राजा न हो तो प्रजा इस प्रकार नष्ट हो जाय जैसे मलाहके विना समुद्रमें नाव ॥ ६५ ॥

नतिष्ठंतिस्वस्वधर्मेविनापालेनवैप्रजाः ।
प्रजयातुविनास्वामीपृथिव्यांनैवशोभते ६६

पालकके विना प्रजा अपने २ धर्ममें नहीं टिकती और पृथिवीपर प्रजाके विना स्वामी भी शोभाको प्राप्त नही होता ॥ ६६ ॥

न्यायप्रवृत्तोनृपतिरात्मानमथचप्रजाः ।
त्रिवर्गेणोपसंधत्तेनिहंतिध्रुवमन्यथा ॥६७॥

न्यायमें प्रवृत्त राजा अपनी और प्रजाकी धर्म अर्थ काममें धारणा करता है और अन्यथा पूर्वोक्तोंको नष्ट करता है ॥ ६७ ॥

धर्माद्वैपवनोराजाविधायबुभुजेभुवम् ।
अधर्माच्चैवनहुषः प्रतिपेदेरसातलम् ॥६८॥

धर्मसे पवन राजा पृथ्वीको जीतकर भोगता भया और राजा नहुष अधर्मसे पातालमें प्राप्त हुआ ॥ ६८ ॥

वेनोनष्टस्त्वधर्मेणपृथुर्वृद्धस्तुधर्मतः ।
तस्माद्धर्मंपुरस्कृत्ययतेतार्थायपार्थिवः ६९

राजा वेन अधर्मसे नष्ट हुआ, और राजा पृथु धर्मसे वृद्धिको प्राप्त हुआ तिससे राजा धर्मको प्रधान रखकर द्रव्यके संचयमें यत्न करै ॥ ६९ ॥

**योहिधर्मपरोराजादेवांशोन्यश्चरक्षसाम्।**
**अंशभूतोधर्मलोपीप्रजापीडाकरोभवेत्॥७०॥**

जो राजा धर्ममें तत्पर है वह देवताओंके अंश है और इतर राजा राक्षसोंके अंश है राक्षसोंका अंश धर्मका लोपकर्त्ता प्रजाका पीडा करनेहारा होता है॥ ७० ॥

**इंद्रानिलयमार्काणामग्नेश्चवरुणस्यच।**
**चन्द्रवित्तेशयोश्चापिमात्रानिर्हृत्यशाश्वतीः॥**
**जंगमस्थावराणांचहीशः स्वतपसाभवेत्।**
**भागभाग्रक्षणेदक्षोयथेंद्रोनृपतिस्तथा॥७२॥**

इंद्र, पवन, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चंद्र, कुबेर इनके स्वाभाविक अंशोंसे और अपने तपके प्रतापसे जगम और स्थावरोका स्वामी-राजा होता है राजा अपने अंश (कर) का भोगनेहारा रक्षा करनेमें चतुर इस प्रकार होता है जैसा स्वर्गका रक्षक इद्र॥ ७१ ॥ ७२ ॥

**वायुर्गंधस्यसदसत्कर्मणःप्रेरकोनृपः।**
**धर्मप्रवर्त्तकोऽधर्मनाशकस्तमसोरविः॥७३॥**

पवन सुगंधका जैसे प्रेरक है तैसे सत् और असत् कर्मका प्रेरक राजा होता है। धर्मका प्रवर्त्तक और अधर्मका नाशक राजा इस प्रकार होता है जैसे अंधकारका नाशक सूर्य होता है॥ ७३ ॥

**दुष्कर्मदंडकोराजायमः स्याद्दंडकृद्यमः।**
**अग्निशुचिस्तथाराजारक्षार्थंसर्वभागभुक्॥**

दुष्टकर्मके दंडका दाता होनेसे यमराजके समान दंडका कारक होता है राजा अग्निके समान शुद्ध होता है और रक्षाके अर्थ अपने भाग (कर) को भोगता है॥ ७४ ॥

**पुष्यत्यपांरसैः सर्ववरुणः स्वधनैर्नृपः।**
**करैश्चंद्रोह्लादयतिराजास्वगुणकर्मभिः ७५॥**

जलोंसे सबका पोषक राजा जलरूप और अपने धनोंसे पुष्ट करनेसे वरुणरूप है चंद्रमाकी किरणोंके समान अपने गुण और कर्मोंसे सबको प्रसन्न रखता है॥ ७५ ॥

**कोशानांरक्षणेदक्षःस्यान्निधीनांधनाधिपः।**
**चंद्रांशेनविनासर्वैरंशैर्नोभातिभूपतिः॥७६॥**

धनकी रक्षा करनेमें चतुर और कोशमे कुबेरके समान सर्वगुणी भी राजा चंद्रमांश (प्रकाश) के विना शोभित नहीं होता॥ ७६ ॥

**पितामातागुरुर्भ्राताबंधुर्वैश्रवणोयमः।**
**नित्यंसप्तगुणैरेषांयुक्तोराजानचान्यथा७७॥**

पिता, माता, गुरु, भ्राता, बंधु, कुबेर, यम इनके सात गुणोसे युक्त ही राजा होता है अन्यथा नही होता॥ ७७ ॥

**गुणसाधनसंदक्षः स्वप्रजायाः पिता यथा।**
**क्षमयित्र्यपराधानांमातापुष्टिविधायिनी ७८**

पिताके समान अपनी प्रजाके गुणोकी सिद्धिमे तत्पर रहै और प्रजाके अपराधोंको क्षमा करिके पुष्टि इस प्रकार करै जैसे माता पुत्रके अपराधोको क्षमा करिके पुष्टि करती है॥ ७८ ॥

**हितोपदेष्टाशिष्यस्यसुविद्याध्यापकोगुरुः।**
**स्वभागोद्धारकृद्भ्रातायथाशास्त्रंपितुर्धनात्॥**

जिस प्रकार गुरु शिष्यको उत्तम विद्याध्ययन कराता है और उसके हितोका उपदेश भी कराता है जिस प्रकार भ्राताके धनमेसे शास्त्रके अनुसार अपने भागको ग्रहण करता है इस प्रकार राजा भी पितोपदेशपूर्वक शास्त्रके अनुसार ही कर (दंड) ग्रहण करे॥ ७९ ॥

**आत्मस्त्रीधनगुह्यानांगोप्ताबंधुस्तुमित्रवत्।**
**धनदस्तुकुबेरःस्याद्यमःस्यात्सुदंडकृत्८०**

बन्धु जिस प्रकार मित्रके समान अपने स्त्री धन गोप्य वस्तु इनकी रक्षा करता है इसी प्रकार राजा भी करै और प्रजाकी विपत्तिमे धनके देनेसे कुबेर और अपराधके अनुसार दंड देनेसे यमरूप राजा होता है॥ ८० ॥

प्रवृद्धिमतिसंराज्ञिनिवसंतिगुणाअमी।
एतेसप्तगुणाराज्ञानहातव्याः कदाचन ८१॥

श्रेष्ठ बुद्धिमान् उत्तम राजामें ये पूर्वोक्त सातों गुण बसते हैं इससे राजा इन सातों गुणोंका कदाचित् भी परित्याग न करै ॥ ८१ ॥

क्षमतेयोपराधं स शक्तः स दमनेक्षमी।
क्षमयानुविनाभूपोनभात्यखिलसद्गुणैः ८२

जो अपराधोंकी क्षमा करै वह राजा क्षमावान् है और जो दमन दंड देनेमें समर्थ है वह शक्त है क्षमाके विना राजा सम्पूर्ण भी उत्तम गुणोंसे शोभित नहीं होता है ॥ ८२ ॥

स्वान्दुर्गुणान्परित्यज्यह्यतिवादांस्तितिक्षते।
दानैर्मानैश्चसत्कारैः स्वप्रजारंजकः सदा८३

अपने निन्दित गुणोंका परित्याग करिके निन्दाको सहा करै दान मान सत्कारसे अपनी प्रजाको सदा प्रसन्न रक्खै ॥ ८३ ॥

दांतः शूरश्चशस्त्रास्त्रकुशलोरिनिषूदनः।
अस्वतंत्रश्चमेधावीज्ञानविज्ञानसंयुतः॥८४॥

दमनशील शूरवीर शस्त्र और अस्त्रमें कुशल शत्रुओंका नाशक शास्त्रके अनुसार आचरण करनेहारा बुद्धिमान् ज्ञान और विज्ञानसयुक्त राजा सदा रहै ॥ ८४ ॥

नीचहीनोदीर्घदर्शीवृद्धसेवीसुनीतियुक्।
गुणिजुष्टस्तुयोराजासज्ञेयोदेवतांशकः ८५॥

नीचोंसे रहित दीर्घदर्शी वृद्धोंका सेवक उत्तम नीतिमान् गुणियोंसे युक्त ऐसाजो राज वह देवताओंका अंश है ॥ ८५ ॥

विपरीतस्तुरक्षोंशः सवैनरकभोजनः।
नृपांशसदृशोनित्यंतत्सहायगणः किल ८६

पूर्वोक्त गुणोंसे विपरीत है गुण जिसमें वह राजा राक्षसोंका अंश है और जिस अंशका राजा होता है उसके सहायकोंका समूह भी उसी अंशका होता है ॥ ८६ ॥

तत्कृतंमन्यतेराजासंतुष्यतिचमोदते।
तेषामाचरणैर्नित्यंनान्यथानियतेर्बलात् ८७

सहायकोंके लिये कार्यको उनके आचरणोंसे राजा मानता है और सन्तोष करता है और दैवके अनुसार प्रसन्न होता है अन्यथा नहीं ॥ ८७ ॥

अवश्यमेवभोक्तव्यंकृतकर्मफलंनरैः।
प्रतिकारैर्विनानैवप्रतिकारकृतेसति ॥८८॥

किये हुए कर्मका फल मनुष्यको अवश्य ही भोगना पडताहै प्रतिकारके विना प्रतिकार (निवृत्तिका उपाय) किये पीछे भी अवश्य भोगने योग्य है ॥ ८८ ॥

तथाभोगायभवतिचिकित्सितरगदोयथा।
उपदिष्टेनिष्टहेतौतत्तत्कर्तुंयतेतकः ॥८९॥

जिस प्रकारसे रोगकी चिकित्सा होगी उसी प्रकारके भोगोंकी प्राप्ति होगी जो अनिष्ट फलके हेतुका उपदेश करता है उसके करनेमें कोई भी यत्न नहीं करता ॥ ८९ ॥

रज्यतेसत्फलेस्वांतंदुष्फलेनहिकस्यचित्।
सदसद्बोधकान्येवदृष्ट्वाशास्त्राणिचाचरेत् ९०

मनुष्यका मनउत्तम है फल जिसका ऐसे कर्ममें लगताहै और अनिष्ट है फल जिसका उसमें किसीका भी मन नहीं लगता है इससे सत् और असत्के बोधक शास्त्रोंको देखकर ही राजा आचरण करै ॥ ९० ॥

नयस्यविनयोमूलंविनयः शास्त्रनिश्चयात्।
विनयस्येंद्रियजयस्तद्युक्तःशास्त्रमृच्छति ॥९१॥

नीतिका कारण विनय है विनय शास्त्रके निश्चयसे होता है विनयका हेतु इन्द्रियोंका जय है इन्द्रियोंके जयसे ही शास्त्रकी प्राप्ति होती है ॥ ९१ ॥

आत्मानंप्रथमंराजाविनयेनोपपादयेत्।
ततःपुत्रांस्ततोमात्यांस्ततोभृत्यांस्ततःप्रजाः

इससे राजा प्रथम अपने आत्माके निरन्तर विनययुक्त करै फिर पुत्रोंको फिर अमात्योंको फिर सेवकोंको फिर प्रजाको विनय युक्त करै ॥ ९२ ॥

परोपदेशकुशलः केवलोनभवेन्नृपः।
प्रजाधिकारहीनःस्यात्सगुणोपिनृपःक्वचित्॥

दूसरेके उपदेशोंमे ही केवल राजा कुशल न रहै किन्तु आप भी विनयशील रहै क्योंकि विनयहीन सगुण भी राजा प्रजाके अधिकार से कदाचित् हीन हो जाता है ॥ ९३ ॥

नतुनृपविहीनस्याद्दुर्गुणाप्यपितुप्रजा।
यथानविधवेंद्राणीसर्वगातुतथाप्रजा ॥९४॥

दुर्गुण भी प्रजा राजासे हीन कोई इस प्रकार नहीं होती जैसे इन्द्रकी स्त्री कभी विधवा नहीं होती है ॥ ९४ ॥

भ्रष्टश्रीः स्वामिताराज्ञोनृपएवनमंत्रिणः।
तथाविनीतदायादोदांता पुत्रादयोपिच॥९५

जैसे राजाकी भ्रष्टश्रीका कारण राजा ही है मन्त्री नहीं तिसी प्रकार जिस राजाके पुत्र आदि अविनीत होते है वही राजा भ्रष्टश्री अर्थात् राज्यसे हीन हो जाता है ॥ ९५ ॥

सदानुरक्तप्रकृतिः प्रजापालनतत्परः।
विनीतात्माहिनृपतिर्भूयसीश्रियमश्नुते९६॥

जिस राजामे प्रजाका अनुराग होता है और जो प्रजाके पालनमे तत्पर है और विनीत है वह राजा अत्यन्त श्रीको भोगता है ॥ ९६ ॥

प्रकीर्णविषयारण्यधावंतंविप्रमाथिनम्।
ज्ञानांकुशेनकुर्वीतवशमिंद्रियदंतिनम् ॥९७॥

राजा गहन विषयरूपी वनमें मदसे दौडते हुए इन्द्रियरूपी हस्तीको ज्ञानरूपी अंकुशसे वशमें करै ॥ ९७ ॥

विषयामिषलोभेनमनःप्रेरयतींद्रियम्।
तन्निरुंधेत्प्रयत्नेनजितेतस्मिञ्जितेन्द्रियः९८॥

विषयरूप मांसके लोभसे इन्द्रियोंको मन प्रेरता है तिसके प्रयत्नसे मनको रोके क्योंकि मनके जीतनेसे राजा जितेन्द्रिय होता है ॥ ९८ ॥

एकस्यैवहियोशक्तोमनसः सन्निबर्हणे।
महींसागरपर्यंतांसकथंह्यवजेष्यति ॥९९॥

जो राजा एक मनके वश करनेमे असमर्थ है वह राजा सागरपर्यंत पृथ्वीको किस प्रकार जीतेगा ॥ ९९ ॥

क्रियावसानविरसैर्विषयैरपहारिभिः।
गच्छत्याक्षिप्तहृदयः करीवनृपतिर्ग्रहम्१००

आरम्भमे और अन्तमे विरस क्रियाओंसे आक्षिप्त ( वशीभूत ) मन जिसका ऐसा राजा हस्तीके समान बन्धनको प्राप्त होता है ॥ १०० ॥

शब्दः स्पर्शश्चरूपंचरसोगंधश्चपंचमः।
एकैकस्त्वलमेतेषांविनाशप्रतिपत्तये ॥१॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इनमेंसे एक २ भी विषय विनाश करनेको समर्थ है ॥ १ ॥

शुचिर्दर्भांकुराहारोविदूरभ्रमणेक्षमः।
लुब्धकोद्गीतमोहेनमृगोमृगयतेवधम् ॥२॥

शुद्ध, और कुशाओंके अंकुरोंका भक्षक और अत्यन्त दूर देशमे भ्रमणशील मृग लुब्धकके गीतसे मोहित होकर वधको प्राप्त होता है अर्थात् एक श्रवण इन्द्रियके ही वश होकर मृत्युको प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥

गिरिशिखराकारोलीलयोन्मूलितद्रुमः।
करिणीस्पर्शसंमोहाद्बंधनंयातिवारणः ॥३॥

पर्वतकी शिखरके समान है आकार जिसका और लीलासे उखाडे है वृक्ष जिसने ऐसा हस्ती हस्तिनीके भोगके संमोहसे बन्धनको प्राप्त होता है अर्थात् लिंगइन्द्रियकेही वशीभूत होकर बन्धनको भोगता है ॥ ३ ॥

स्निग्धदीपशिखालोकविलोलितविलोचनः
मृत्युमृच्छतिसंमोहात्पतंगः सहसापतन् ४

स्निग्ध ( रमणीय ) दीपककी शिखा देखनेसे चंचल हैं नेत्र जिसके ऐसा पतं

दीप शिखापर गिरता हुआ मृत्युको प्राप्त होता है अर्थात् नेत्र इन्द्रिय ही इसके वधका हेतु हो जाता है ॥ ४ ॥

अगाधसलिलेमग्नोदूरोऽपिवसतोवसन्। मीनस्तुसामिषंलोहमास्वादयतिमृत्यवे॥५॥

अगाधजलमें डूबा हुआ और दूर बसता हुआ भी मीन अपनी मृत्युके अर्थ मांस सहित लोहेको ग्रहण करता है अर्थात् एक जिह्वा इन्द्रियसेही मर जाता है ॥ ५ ॥

उत्कर्तितुंसमर्थोपिगंतुंचैवसपक्षकः। द्विरेफोगंधलोभेनकमलेयातिबंधनम् ॥६॥

कमलके कतरनेमें समर्थ और अपने पंखोंसे गमन करनेमे सम्पन्न भी भ्रमर गन्धके लोभसे कमलके विषे बँध जाता है अर्थात् घ्राण इन्द्रियसे मरणको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

एकैकशोविनिघ्नन्तिविषया विषसन्निभाः। किंपुनः पंचमिलिताः नकथंनाशयंतिहि ७॥

विषके तुल्य विषय एक २ भी हनते हैं तो पांचों मिलकर नाश क्यों नहीं करेंगे अर्थात् अवश्य करेंगे ॥ ७ ॥

द्यूतंस्त्रीमद्यमेवैतत्त्रितयंबह्वनर्थकृत्। अयुक्तंयुक्तियुक्तंहिधनपुत्रमतिप्रदम् ॥८॥

अयोग्य द्यूत, स्त्री, मदिरा, अत्यन्त अनर्थके कर्त्ता है, यदि युक्त अर्थात् इनका सेवन योग्यतापूर्वक होय तो क्रमसे धन, पुत्र, मति इनके दायक होते है ॥ ८ ॥

नलधर्मप्रभृतयः सुद्यूतेनविनाशिताः। सकापट्यंधनायालंद्यूतंभवतितद्विदाम् ॥९॥

नल और युधिष्ठर आदि राजाओंको द्यूतने नष्ट कर दिया, द्यूतके जाननेवालोंको कपट सहित द्यूत धनके देनेमें समर्थ है ॥ ९ ॥

स्त्रीणानामापिसंह्लादिविकरोत्येवमानसम्। किंपुनर्दर्शनंतासांविलासोल्लासितभ्रुवाम् ॥

आनन्दका दाता स्त्रियोंका नाम भी मनको विकारी करता है और विलासकरिके उल्लास ( शोभा ) को प्राप्त हुई है भ्रुकुटी जिनकी उनका दर्शन तो क्यों नहीं विकारको करेगा अर्थात् अवश्य करेगा ॥ १० ॥

रहःप्रचारकुशलामृदुगद्गदभाषिणी। कंननारीवशीकुर्यान्नरंरक्तांतलोचना ॥११॥

एकान्त कार्यमें कुशल और कोमल गद्गद बोलनेमे तत्पर लाल है नेत्रोंका समीप जिसका ऐसी स्त्री किस मनुष्यको वशमें न करेगी अपितु सबकोही वश कर सकती है ॥११॥

मुनेरपिमनोवश्यंसरागंकुरुतेंगना। जितेंद्रियस्यकावार्ताकिंपुनश्चाजितात्मनाम्॥

जितेंद्रिय मुनिके मनकोभी वशीभूत और सराग ( विषयाभिलाषी ) स्त्री करतीहै, अजितात्माओंके मनको तो वशीभूत क्यों नहीं करैगी ॥१२॥

व्यायच्छंतश्चबहवः स्त्रीपुनाशंगताअमी। इंद्रदंडक्यनहुषरावणाद्याः सदाह्यतः ॥१३॥

परस्त्रियोंकी इच्छा करनेहारे ये राजा नाशको प्राप्त हुए, इन्द्र, दंडक्य, नहुष और रावण आदि ॥१३॥

अतत्परनरस्यैवस्त्रीसुखायभवेत्सदा। साहाय्यिनीगृहकृत्येतांविनान्यानविद्यते ॥

जो मनुष्य स्त्रीके विषे तत्पर (अधीन) नहीं उसीको स्त्री सुखदायक होती है क्योंकि गृहके कार्यमे उसके विना और कोई भी सहायक नहीं है ॥१४॥

अतिमद्यंहिपिबतोबुद्धिलोपोभवेत्किल। प्रतिभांबुद्धिवैशद्यंधैर्यंचित्तविनिश्चयम् १५ तनोतिमात्रयापीतंमद्यअन्यद्विनाशकृत्। कामक्रोधौमद्यतमौनियोक्तव्यौयथोचितम्॥

अत्यन्त मदिरा पीनेवाले मनुष्यकी बुद्धिका लोप होता है, और परिमित पिई हुई मदिरा बुद्धिकी स्फुरणा और श्रेष्ठता, धीरता, चित्तको निश्चय इनको विस्तार करती है,अधिक मदिरा विनाश करती है और मदिरासे भी काम,क्रोध होता है इनको यथोचित रोकै ॥ १५ ॥ १६ ॥

कामः प्रजापालनेचक्रोधःशत्रुनिर्बहणे ।
सेनासंधारणेलोभोयोज्योराज्ञाजयार्थिना ॥

विषयकी इच्छावाला राजा प्रजाके पालनमें कामना और शत्रुओंके नष्ट करनेमें क्रोध और सेनाकी धारणामें लोभको क्रमसे नियुक्त करै अन्यत्र नहीं ॥ १७ ॥

परस्त्रीसंगमेकामोलोभोनान्यधनेषुच ।
स्वप्रजादंडनेक्रोधोनैवधार्योनृपैः कदा१८॥

परस्त्रीके संगममे काम और अन्यके धनमे लोभ और अपनी प्रजाके दंडमे क्रोधका धारण राजा कदापि न करै ॥ १८ ॥

किमुच्येतकुटुंबीतिपरस्त्रीसंगमान्नरः ।
स्वप्रजादंडनाच्छूरोधनिकोन्यधनैश्चकिम्॥

परस्त्रीके सङ्गसे कुटुबी और अपनी प्रजाको दंड देनेसे शूरवीर और अन्यके धनोंसे धनिक क्या मनुष्य कहा जाता है अपितु कदाचित् भी नहीं कहाता ॥ १९ ॥

अरक्षितारंनृपतिंब्राह्मणंचातपस्विनम् ।
धनिकंचाप्रदातारंदेवाघ्नंतित्यजंत्यधः॥२०॥

रक्षाके न करनेहारे राजाको और अतपस्वी ब्राह्मणको और अदाता धनिकको देवता हतते हैं और नरकमे गेरते है ॥ २० ॥

स्वामित्वंचैवदातृत्वंधनिकत्वंतपःफलम्
एनसः फलमर्थित्वंदास्यत्वंचदरिद्रता२१॥

स्वामिता दातृता धनिकता ये तपका फल है और याचकता दासता दरिद्रता ये पापका फल है ॥ २१ ॥

दृष्ट्वाशास्त्राण्यतोत्मानंसन्नियम्ययथोचितम्
कुर्यान्नृपःस्ववृत्तंतुपरत्रेहसुखायच ॥२२॥

इससे राजा शास्त्रोंको देख और मनको रोककर यथोचित अपने आचरणको इसलोक और परलोकके सुखके अर्थ करै ॥२२॥

दुष्टनिग्रहणंदानंप्रजायाःपरिपालनम् ।
यजनंराजसूयादेः कोशानांन्यायतोर्जनम्॥

करदीकरणंराज्ञांरिपूणांपरिमर्दनम् ।
भूमेरुपार्जनंभूयोराजवृत्तंतुचाष्टधा ॥२४॥

दुष्टोंको दंड और प्रजाका पालन और राजसूय आदि यज्ञोंका करना और न्यायसे कोश खजानेका बढाना और राजाओंको करका दाता करना शत्रुओंका मर्दन करना और भूमिका वारंवार सम्पादन करना यह आठप्रकारका राजाओंका वृत्त आचरण है॥२३॥२४॥

नवर्धितंबलंयैस्तुनभूपाः करदीकृताः ।
नप्रजाः पालिताः सम्यक्तेवैषंढतिलानृपाः

जिन राजाओंने सेनाओंकी वृद्धि न की और अन्य राजाओंका करके दाता न किया और प्रजायोंकी सम्यक् पालना न की वे राजनिष्फल तिलके समान है ॥२५॥

प्रजासमुद्विजेतयस्माद्यत्कर्मपरिनिंदति ।
त्यज्यतेधनिकैर्यस्तुगुणिभिस्तुनृपाधमः ॥

जिस राजासे प्रजा कापती है और प्रजा जिस राजके कायकी निंदा करती है जिस राजाको धनी और गुणी त्यागते हैं वह राजा अधम है ॥२६॥

नटगायकगणिकामल्लषंढाल्पजातिषु ।
योतिशक्तोनृपोनिंद्यः सहिशत्रुमुखेस्थितः॥

नट गायक वेश्या नपुसक और नीचजातिओंमें जो राजा अत्यन्त आसक्त है वह राजा निंद्य है और शत्रुके मुखमे विद्यमान है ॥ २७ ॥

बुद्धिमंतंसदाद्वेष्टिमोदतेवंचकैः सह ।
स्वदुर्गुणंनवै वेत्तिस्वात्मनाशायसोनृपः२८

जो राजा बुद्धिमानसे सदा द्वेष करै वंचकोंसे सदा प्रसन्न और अपने दुर्गुणको न जानें वह राजा अपने नाशका कारण होता है ॥

नापराधंहिक्षमतेप्रदंडोधनहारकः ।
स्वदुर्गुणश्रवणतोलोकानांपरिपीडकः २९॥

नृपोयदातदालोकः क्षुभ्यतेभिद्यतेयतः ।
गूढचारैः श्रावयित्वास्ववृत्तंदूषयंतिके ३०॥

जो राजा अपराधकी क्षमा न करै, उत्तम दंडको दे, धनको हरै और अपने दुर्गुणोंको श्रवण करिके लोगोंको राजा जब पीडित करता है तब लोक क्षोभ और भेदको प्राप्त होता है इससे गुप्त दूतोंके द्वारा अपने वृत्त (आचरण) को कौन दूषित करता है यह श्रवण करावै ॥२९॥३०॥

भूषयंतिच कैर्भावैरमात्याद्याश्चतद्विदः।
मयिकीदृक्चसंप्रीतिः केषामप्रीतिरेववा ॥

और कौन २ वृत्तके ज्ञाता मन्त्री आदि मेरे वृत्तकी प्रशंसा करते हैं और मेरे विषे किस २ की उत्तम प्रीति और अप्रीति है ॥ ३१ ॥

ममागुणैर्गुणैर्वापिगूढसंश्रुत्यचाखिलम् ॥
चारैःस्वदुर्गुणंज्ञात्वालोकतः सर्वदानृपः ॥
सुकीर्त्यै त्यजेन्नित्यंनावमन्येतवैप्रजाः।
लोकोनिंदतिराजंस्त्वांचारैः संश्रावितोयदि।

मेरे गुण और दुर्गुणोंसे कौन २ प्रसन्न और अप्रसन्न हैं इस प्रकार सम्पूर्ण गुप्तव्यवहार श्रवण करके सम्पूर्ण कालमें लोकसे अपने दुर्गुणोंको राजा जानकर अपनी सुकीर्तिके अर्थ प्रजाको त्याग (छोड) दे अर्थात् दंड न दे और प्रजाका अपमान न करे जिस राजाने लोकोंसे यह श्रवण किया हो कि हे राजन् लोक तेरी निंदा करते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

कोपंकरोतिदौरात्म्यादात्मदुर्गुणलोपकः।
सीतासाध्व्यपिरामेणत्यक्तालोकापवादतः॥

जो राजा अपने दुर्गुणोके छिपानेके निमित्त कोप करता है वह दुरात्मा है साधुस्वभाव भी सीताजी लोकके अपवादसे रामचन्द्रजीने त्याग दी ॥ ३४ ॥

शक्तेनापिहिनधृतोदंडोल्पोरजकेक्कचित्।
ज्ञानविज्ञानसंपन्नेराजदत्ताभयोपिच ॥३५॥

समर्थ होकर भी ज्ञानविज्ञानयुक्त राजाने दिया है, अभयदान जिसका ऐसे रजक(धोबी) को अल्प भी दंड न दिया ॥३५॥

समक्षंवाक्तिनभयाद्राज्ञोगुर्वपिदूषणम्।
स्तुतिप्रियाहिवैदेवाविष्णुमुख्याइतिश्रुतिः॥

राजाके अधिक दूषण कोई नहीं कहता है विष्णु आदि देवताभी स्तुतिको प्रिय मानते हैं यह श्रुति है ॥ ३६ ॥

किंपुनर्मनुजानित्यंनिंदाजःक्रोधइत्यतः।
राजासुभागदंडीस्यात्सुक्षमीरंजकःसदा ३७

मनुष्य तो नित्य स्तुतिप्रिय क्यों न होंगे जिससे क्रोध निन्दासे उत्पन्न होता है इससे राजा सुभाग (सूक्ष्म) दंड दाता और उत्तम क्षमाशील और प्रजाका रंजक (प्रसन्न कारक) सदा रहै ॥३७॥

यौवनंजीवितंचित्तंछायालक्ष्मीश्चस्वामिता।
चञ्चलानिषडेतानिज्ञात्वाधर्मरतोभवेत् ३८।

यौवन, जीवन, वित्त, छाया, लक्ष्मी, स्वामिता ये छै ६ चञ्चल हैं यह जानकर राजा धर्ममें तत्पर रहै ॥३८॥

अदानेनापमानेनछलाच्चकटुवाक्यतः।
राज्ञःप्रबलदंडेननृपंमुंचातिवैप्रजा ॥३९॥

कृपणता, तिरस्कार, छल, कटुवचन, राजाका प्रबलदंड, इनसे राजाको प्रजा त्याग देती है ॥ ३९ ॥

विपरीतगुणैरेभिःसान्वयारज्यतेप्रजा।
एकस्तनोतिदुष्कीर्तिदुर्गुणःसंघशोनकिम्॥

और पूर्वोक्तगुणोंके विपरीत गुणोंसे प्रजा सदा प्रसन्न रहती है, एक भी दुर्गुण कुकीर्ति करता है तो दुगुणोंका समूह दुष्कीर्ति क्यों नहीं करेगा ॥४०॥

मृगयाक्षास्तथापानंगर्हितानिमहीभुजाम्।
दृष्टास्तेभ्यस्तुविपदोपांडुनैषधवृष्णिषु ४१।

मृगया, द्यूत, मदिरा, ये तीनों राजाओंको निंदित हैं, क्योंकि इन तीनोंसे ही नैषध पांडु यादवोंमें विपत्ति देखी है ॥ ४१ ॥

कामक्रोधस्तथामोहोलोभोमानोमदस्तथा।
षड्वर्गमुत्सृजदेनमस्मिंस्त्यक्तेसुखीनृपः॥

काम, क्रोध, मोह, लोभ, मान, मद इन छःओंको राजा त्याग दे क्योंकि इनके त्यागनेसे राजा सुखी होता है ॥ ४२ ॥

दंडक्योनृपतिः कामात्क्रोधाच्चजनमेजयः।
लोभादैलस्तुराजर्षिर्मोहाद्वातापिरासुरः४३॥
पौलस्त्योराक्षसोमानान्मदाद्दंभोद्भवोनृपः॥
प्रयातानिधनंह्येतेशत्रुषड्वर्गमाश्रिताः ४४

दंडक्य कामसे, जनमेजय, क्रोधसे, ऐल राजर्षि लोभसे, वातापि असुर मोहसे, रावण-राक्षस मानसे, दंभसे उत्पन्न राजा मदसे ये पूर्वोक्त राजा षड्वर्ग रूप शत्रुओंके आश्रयसे मरणको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

शत्रुषड्वर्गमुत्सृज्य जामदग्न्यःप्रतापवान्।
अंबरीषोमहाभागोबुभुजातेचिरंमहीम् ४५

और शत्रुओंके षड्वर्गको त्यागकर प्रतापी परशुराम और महाभाग अम्बरीष चिरकालतक पृथ्वीको भोगते भये ॥ ४५ ॥

वर्धयन्निहधर्मार्थौसेवितौसद्भिरादरात्।
निगृहीतेंद्रियग्रामोकुर्वीतगुरुसेवनम्॥४६॥

सज्जनोंने किया है सेवन जिनका ऐसे धर्म और अर्थकी वृद्धिके अर्थ इन्द्रियोंको वशीभूत (जीत) कर गुरुका सेवन करे ॥ ४६ ॥

शास्त्रायगुरुसंयोगःशास्त्रंविनयवृद्धये।
विद्याविनीतोनृपतिःसतांभवतिसंमतः॥४७॥

गुरुका संयोगशास्त्रके अर्थ और शास्त्रविनय (नम्रता) की वृद्धिके अर्थ विद्या और विनयसे युक्त राजा सत्पुरुषोंको सम्मत होता है ॥४७॥

प्रेर्यमाणोप्यसद्वृत्तैर्नाकार्येषुप्रवर्तते।
श्रुत्यास्मृत्यालोकतश्चमनसासाधुनिश्चितम्
यत्कर्मधर्मसंज्ञंतद्व्यवस्यतिचपंडितः।
आदानप्रतिदानकलासम्यङ्महीपतिः ४९

असत् है आचरण जिनका तिनकी प्रेरणासे भी जो निन्दित कर्ममे प्रवृत्त नहीं होता और वेद और स्मृति ( धर्मशास्त्र ) और लोकसे मनके द्वारा साधु निश्चित किया जो धर्मसम्बन्धी कर्म उसे जो करता है वह राजा पण्डित है समयके अनुसार धन लेने और देनेसे राजा साधु होता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

जितेंद्रियस्यनृपतेर्नीतिशास्त्रानुसारिणः।
भवंत्युच्चलितालक्ष्म्यःकीर्तयश्चनभस्पृशः॥

जितेन्द्रिय और नीतिशास्त्रके अनुसारी राजाको लक्ष्मी अधिक और कीर्ति स्वर्गगामिनी होती है ॥ ५० ॥

आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तादंडनीतिश्चशाश्वती।
विद्याश्चतस्रएवैता अभ्यसेन्नृपतिःसदा५१॥

ब्रह्मविद्या, वेदान्त, वेदत्रयी, ( ३ वेद ) वार्त्ता, दण्डनीति, ये चारों विद्याओंका राजा सदा अभ्यास करे ॥ ५१ ॥

आन्वीक्षिक्यां तर्कशास्त्रंवेदांताद्यंप्रतिष्ठितम्।
त्रय्यांधर्मोह्यधर्मश्चकामेऽकामःप्रतिष्ठितः५२

आन्वीक्षिकीमे न्यायशास्त्र और वेदान्त आदि है और वेदत्रयीमे धर्म अधर्म कामना और मोक्ष है ॥ ५२ ॥

अर्थानर्थौतुवार्तायांदंडनीत्यांनयानयौ।
वर्णाःसर्वाश्रमाश्चैवविद्यास्वासुप्रतिष्ठिताः५३

अर्थ और अनर्थ वार्त्तामे, न्याय और अन्याय दंडनीतिमे वर्ण, और आश्रम इन सम्पूर्ण विद्याओंमे विद्यमान है ॥ ५३ ॥

अंगानिवेदाश्चत्वारोमीमांसान्यायविस्तरः।
धर्मशास्त्रपुराणानित्रयीदंसर्वमुच्यते ॥५४॥

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द ये वेदके ६ अङ्ग है, और ४ वेद, मीमांसा न्यायका विस्तार, धर्मशास्त्र, पुराण इनसम्पूर्णोंको त्रयी कहते है ॥ ५४ ॥

कुसीदकृषिवाणिज्यंगोरक्षावार्तयोच्यते।
संपन्नोवार्तयासाधुर्नवृत्तेर्भयमृच्छति ॥५५॥

सूदलेना खेती व्यापार गोरक्षा इन्हें वार्त्ता कहते है वार्त्तासे सम्पन्न जो राजा वह आचरणसे भयको प्राप्त नहीं होता ॥ ५५ ॥

दमोदंडइतिख्यातस्तस्माद्दंडोमहीपतिः ।
तस्यनीतिर्दंडनीतिर्नियनान्नीतिरुच्यते ५६

दमको दंड कहते हैं इससे राजा दंडरूप है तिस राजाकी नीतिको दंडनीति कहते हैं और नय ( न्याय ) को नीति कहते हैं ॥ ५६ ॥

आन्वीक्षिक्यात्मविज्ञानाद्धर्षशोकौव्युदस्यति । उभौलोकाववाप्नोतित्रय्यांतिष्ठन्यथाविधि ॥ ५७ ॥

आन्वीक्षिकी विद्या आत्माके ज्ञानसे आनन्द और शोकको नष्ट करती है, त्रयीमें टिकता हुआ राजा दोनों लोकोंको प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥

आनृशंस्यंपरोधर्मस्सर्वप्राणभृतांयतः ।
तस्माद्राजानृशंस्येनपालयेत्कृपणंजनम् ५८

जिससे सम्पूर्ण जीवोंकाआनृशंस्य(अहिंसा) परम धर्म है तिससे राजा अहिंसासे दुःखी जनकी रक्षा करै ॥ ५८ ॥

नहिस्वसुखमन्विच्छन्पीडयेत्कृपणंजनम् ।
कृपणःपीड्यमानःस्वमृत्युनाहंतिपार्थिवम् ॥

अपने सुखकी इच्छा करता हुआ राजा कृपण ( दीन ) मनुष्यको दुःख न दे क्योंकि पीड्यमान कृपण मृत्युसे राजा को हतता है ॥ ५९ ॥

सुजनैःसंगमंकुर्याद्धर्मायचसुखायच ।
सेव्यमानस्तुसुजनैर्महानातिविराजते ॥६०॥

उत्तम जनोंके साथ, धर्म और सुखके अर्थ सङ्ग करै सुजनोंसे सेवित राजा अत्यंत महत्त्वको प्राप्त होता है ॥ ६० ॥

हिमांशुमालीवतमानमोत्फुल्लोत्पलंसरः ।
आनंदयतिचचांसियथासुजनचेष्टितम् ६१॥

सुजनकी चेष्टा इस प्रकार चित्तको आनन्द करती है जैसे चन्द्रमा नव खिले हैं कमल जिसमें ऐसे तलावको ॥ ६१ ॥

ग्रीष्मसूर्यांशुसंतप्तमुद्वेजनमनाश्रयम् ।
मरुस्थलमिवोदग्रंत्यजद्दुर्जनसंगतम् ६२॥

ग्रीष्मकालके सूर्यकी किरणोंसे सन्तप्त और कम्पनका हेतु और आश्रय रहित मरुदेशके समान उद्दंड दुर्जनके समागमको त्याग करै ॥ ६२ ॥

निःश्वासोद्गीर्णहुतभुग्धूमधूम्रीकृताननैः ।
वरमाशीविषैःसंगंकुर्यान्नत्वेवदुर्जनैः ॥६३॥

श्वाससे उत्पन्न अग्निके धूएँसे श्याम है मुख जिनका ऐसे सर्पोका सङ्ग तौ उत्तम है परन्तु दुर्जनका सङ्ग कदापि उत्तम नहीं है ॥ ६३ ॥

क्रियतेभ्यर्हणीयायसुजनाययथांजलिः ।
ततःसाधुतरःकार्योदुर्जनायहितार्थिना ६४॥

जिस प्रकार सुजनके प्रति पूजाके अर्थ, अञ्जलि की जाती है उससे अच्छी तरह दुर्जनको पूजाके अर्थ, अञ्जली, अपने हितका अभिलाषी करै ॥ ६४ ॥

नित्यंमनोपहारिण्यावाचाप्रह्लादयेज्जगत् ।
उद्वेजयतिभूतानिक्रूरवाग्धनदोपिसन् ॥६५॥

मनोहरवाणीसे सदा जगत्को प्रसन्न रक्खे क्योंकि कुबेरके समान भी कठोरवाणी पुरुष भूतोंको कंपित करता है ॥ ६५ ॥

हृदिविद्धइवात्यर्थंयथासंतप्यतेजनः ।
पीडितोपिहिमेधावीनतांवाचमुदीरयेत् ६६

जिस वाणीसे हृदयमें तपायमानके समान जन दुःखी हो उस वाणीको पीडित हुआ भी बुद्धिमान् न कहै ॥ ६६ ॥

प्रियमेवाभिधातव्यंनित्यंसत्सुद्विषत्सुवा ।
शिखीवकेकामधुरांवाचंब्रूतेजनप्रियः ॥६७॥

सुजन और दुर्जनोंके प्रति नित्य जो प्रिय वचन ही कहता है वह मनुष्य मधुरवाणी कहनेहारे मयूरके समान सबको प्रिय होता है ॥ ६७ ॥

मदरक्तस्यहंसस्यकोकिलस्यशिखंडिनः ।
हरंतिनतथावाचोयथावाचोविपश्चिताम् ६८

मदसे संयुक्त हंस और कोकिल और मयूर इनकी वाणी ऐसी मनको नहीं

हरती, जैसी पंडितोंकी वाणी मनको हरती है ॥ ६८ ॥

येप्रियाणिप्रभाषंतेप्रियामिच्छंतिसत्कृतम् ।
श्रीमंतोवंद्यचरितादेवास्तेनराविग्रहाः॥६९॥

जो मनुष्य प्रिय वचन बोलते है, और प्रियके सत्कारकी इच्छा करते है वे श्रीमान् नमस्कारके योग्य है चरित्र जिनके मनुष्यके और शरीर भारी देवताका है ॥ ६९ ॥

नहीदृशंसंवननंत्रिषुलोकेषुविद्यते ।
दयामैत्रीचभूतेषुदानंचमधुराचवाक् ७०॥

सब भूतोपर दया और मित्रता और दान और मधुरवाणी ऐसा वशीकरण और कोई तीनों लोकोमे नहीं है ॥ ७० ॥

श्रुतिरास्तिक्यपूतात्मापूजयेद्देवतांसदा ।
देवतावद्गुरुजनमात्मवच्चसुहृज्जनान् ७१॥

वेदकी आस्तिकता ( सत्य बुद्धिसे पवित्र ) है आत्मा जिसका ऐसा राजा देवताओंका सदा पूजन करै, देवताओके समान गुरुजनोंका और आत्माके समान मित्रजनोंक पूजन करै ॥ ७१ ॥

प्रणिपातेनहिगुरून्सतोनूचानचेष्टितः ।
कुर्वीताभिमुखान्देवान्भूत्यैसुकृतकर्मणाम् ॥

वेदपाठियोंसे संयुक्त होकर राजा अपनी कीर्तिके अर्थ प्रणामसे गुरु और सत्पुरुषोंको और उत्तम कर्मसे देवताओको अपने अभिमुख ( अनुकूल ) करै ॥ ७२ ॥

सद्भावेनहरेन्मित्रंसद्भावेनचबांधवान् ।
स्त्रीभृत्यौप्रेममानाभ्यांदाक्षिण्येनेतरजनम् ॥

श्रेष्ठभाव ( प्रीति ) से मित्रको और बंधुओंको, प्रेमसे स्त्रीको, मानसे भृत्य ( सेवक ) को चतुरतासे इतर जनोंको वश करै ॥ ७३ ॥

बलवान्बुद्धिमान्शूरोयोहियुक्तपराक्रमी ।
वित्तपूर्णांमहींभुंक्तेसभूपोभूपतिर्भवेत् ॥७४॥

जो राजा बलवान् और बुद्धिमान् और शूरवीर और युक्त पराक्रमी है वह राजा द्रव्यसे पूर्ण पृथ्वीको भोगता है और वही राजा भूमिका पति होता है ॥ ७४ ॥

पराक्रमोबलंबुद्धिःशौर्यमेतेवरागुणाः ।
एभिर्हीनोन्यगुणयुग्महीभुक्सधनोपिच७५॥

पराक्रम, बल, बुद्धि, शूरता ये गुण उत्तम हैं इन गुणोसे हीन और इतर गुणोसे युक्त राजा बहुत धनवाला होय तो भी ॥ ७५ ॥

महास्वल्पांनैवभुंक्तेद्रुतंराज्याद्विनश्यति ।
महाधनाच्चनृपतेर्विभात्यल्पोपिपार्थिवः ७६

पूर्वोक्त राजा स्वल्प भी मही ( भूमि ) को नहीं भोगता और शीघ्र राज्यसे भ्रष्ट होता है और महाधनी राजा अल्प ही शोभाको प्राप्त होता है ॥ ७६ ॥

अव्याहताज्ञस्तेजस्वीएभिरेवगुणैर्भवेत् ।
राज्ञःसाधारणास्त्वन्येनशक्ताभूप्रसाधने७७।

पूर्वोक्त गुणोसे युक्त राजा अनाहताज्ञ ( जिसकी आज्ञाका कोई भी अवलंघन न करे) और तेजस्वी होताहै और राजाके साधारण गुण पृथ्वीके वश करनम समर्थ नहीहै ॥७७॥

खनिः सर्वधनस्येयंदेवदैत्यविमर्दिनी ।
भूम्यर्थेभूमिपतयःस्वात्मानंनाशयंत्यपि७८।

यह पृथ्वी सम्पूर्ण धनोंकी खानि है और देव दैत्योंकी नाशक है क्योंकि भूमिके अर्थ भूमिपति ( राजा ) अपने आत्माको भी नष्ट कर देते हैं ॥ ७८ ॥

उपभोगायचधनंजीवितंयेनरक्षितम् ।
नरक्षितातुभूर्येनकिं तस्यधनजीवितैः॥७९॥

जीवितकी रक्षाकारक धन उपभोगके अर्थ है जिस राजाने भूमिकी रक्षा नहीं की उसके धन और जीवनसे क्या है ॥ ७९ ॥

नयथेष्टव्ययायालंसंचितंतुधनंभवेत्।
सदागमाद्विनाकस्यकुबेरस्यापिनांजसा८०

सदा प्राप्तिके विना कुबेरका भी धन सुखपूर्वक इच्छाके अनुसार व्यय ( खर्च ) करनेको

समर्थ नहीं होता और तो किसका सचित धन समर्थ होगा ॥ ८० ॥

पूज्यस्त्वेभिर्गुणैर्भूपोनभूपःकुलसंभवः ।
नकुलेपूज्यतेयादृग्बलशौर्यपराक्रमैः ॥८१॥

इन गुणोंसे ही राजा पूजाके योग्य होता है और उत्तम कुलके उत्पन्न होनेसे पूज्य नही होता क्योंकि जैसा बलबुद्धि पराक्रमसे पूजित होता है ऐसा कुलसे नहीं होता ॥ ८१ ॥

लक्षकर्षमितोभागोराजतोयस्यजायते ।
वत्सरेवत्सरेनित्यंप्रजानांत्वविपीडनैः ॥८२॥
सामंतःसनृपःप्रोक्तोयावल्लक्षत्रयावधि ।
तदूर्ध्वंदशलक्षांतोनृपोमांडलिकःस्मृतः८३॥
तदूर्ध्वंतुभवेद्राजायावद्विंशतिलक्षकः ।
पंचाशल्लक्षपर्यंतोमहाराजःप्रकीर्तितः ॥८४॥

जिस राजाके राज्यमें वर्ष वर्षमे विना प्रजा की पीडाके भी एकलक्ष राजाका भाग सचित होता है उसे सामन्त कहते हैं उससे अधिक तीन लक्ष पर्यंत जिसका भाग सचित हो वह राजा मांडलिक कहाता है और दश १० लक्षसे बीस लक्ष पर्यंतका भागी राजा और बीस लक्षसे पचासलक्ष पर्यंतका भागी महाराज होता है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

ततस्तुकोटिपर्यंतःस्वराट्सम्राट्ततःपरम् ।
दशकोटिमितोयावद्विराट्तुतदनंतरम् ८५॥
पंचाशत्कोटिपर्यंतंसार्वभौमस्ततःपरम् ॥
सप्तद्वीपाचपृथिवीयस्यवश्याभवेत्सदा ८६॥

दश लक्षसे कोटि पर्यंतका भागी स्वराट् और एक कोटिसे दश कोटि पर्यंतका भागी सम्राट् और दश कोटिसे पचास कोटि पर्यंतका भागी विराट् और जिसके सप्तद्वीपा पृथ्वी बशमें हो वह राजा सार्वभौम होता है ॥ ८५ ॥

स्वभागभृत्यादास्यत्वेप्रजानांचपन्तःकृतः ।
ब्रह्मणास्वामिरूपस्तुपालनार्थंहिसर्वदा ॥

राजाके भागरूप भृति ( वेतन ) के देनेसे प्रजाओंको दासरूप और प्रजाओके पालनसे स्वामिरूप राजा ब्रह्माने किया है ॥ ८७ ॥

सामंतादिसमायेतुभृत्याअधिकृताभुवि ।
तेनसामंतसंज्ञाः स्यूराजभागहराः क्रमात् ॥

जो भूमिमे अधिकृत भृत्य ( नौकर ) सामंतादिक तुल्य हैं और राजाके भागको ग्रहण करते हैं ये अनुसामंतक होते हैं ॥ ८८ ॥

सामंतादिपदभ्रष्टास्तत्तुल्यंभृतिपोषिताः ॥
महाराजादिभिस्तेतुहीनसामंतसंज्ञकाः८९॥

जो सामंत आदि पदवीसे तो महाराजादिकोने भ्रष्ट कर दिये हैं परन्तु सामंतोंके समान भृति ( नौकरी ) को भोगते है वे हीनसामंत कहाते है ॥ ८९ ॥

शतग्रामाधिपोयस्तुसोपिसामंतसंज्ञकः ॥
शतग्रामेचाधिकृतोनुसामंतोनृपेणसः ॥९०॥

शतग्रामोंका जो अधिपति वह भी सामंत कहाता है और ग्रामोंपर जो राजाका अधिकारी ( नियमित ) है वह अनुसामंत कहाता है ॥ ९० ॥

अधिकृतोदशग्रामेनायकः सचकीर्तितः ॥
आशापालोयुतग्रामभागभाक्चस्वराडपि ।

दश ग्रामोंमे जो अधिकृत वह नायक कहाता है दश सहस्र ग्रामोंके भागोंका जो भागी वह आशापाल और स्वराट् भी कहाता है ॥ ९१ ॥

भवेत्क्रोशात्मकोग्रामोरूप्यकर्षसहस्रकः ।
ग्रामार्धकंपल्लिसंज्ञंपल्ल्यर्धंकुंभसंज्ञकम् ९२॥

एक कोशका जिसका प्रमाण और एक हजार रुपयेका जिसमे राजाका भाग हो उसे ग्राम कहते हैं और ग्रामका आधापल्ली और पल्लीका आधा कुंभ होता है ॥ ९२ ॥

करैःपंचसहस्रैर्वाक्रोशःप्रोक्तःप्रजापतेः ॥
हस्तैश्चतुःसहस्रैर्वा मनोः कोशस्यविस्तरः॥

पांच हजार हाथका कोशविधि ब्रह्माका होता है और चार हजारका मनुका होता है ॥ ९३ ॥

सार्धद्विकोटिहस्तैश्चक्षेत्रंकोशस्यब्रह्मणः।
पंचविंशशतैःप्रोक्तंक्षेत्रंताद्विनिवर्तनैः ॥९४॥

अढाई कोटिकोशका ब्रह्मका क्षेत्र पच्चीससे कोशका क्षेत्र विनिवर्तनोंसे मनु आदिकोंने कहा है ॥९४॥

मध्यमामध्यमपर्वदैर्घ्यंयच्चतदंगुलम्।
यवोदरैरष्टभिस्तद्दैर्घ्यंस्थौल्यंतुपंचभिः ९५॥

मध्यमा बीचकी अगुलीके मध्यम पर्व अर्थात मध्यम रेखाओंके बीचके भागके तुल्य और आठ जौ लंबा और पाच जौ मोटा उसे अगुल कहते है ॥ ९५ ॥

चतुर्विंशत्यंगुलैस्तैःप्राजापत्यःकरःस्मृतः।
सश्रेष्ठोभूमिमानेतुतदन्यास्त्वधमामताः९६॥

चौबीस २४ अगुलोंका कर प्रजापति कहाता है वही कर पृथिवी प्रमाणोंमें श्रेष्ट है और इतर कर अधम है ॥ ९६ ॥

चतुःकरात्मकोदंडोलघुः पंचकरात्मकः।
तदङ्गुलपंचयवैर्मानवंमानमेवतत् ॥९७॥

चार हाथका दंड लघु और पांच हाथका दंड दीघ होता है उस करके अगुल पांच यवक होते है क्योकि ये पूर्वोक्त दड मनुके मानसे है ॥९७॥

वसुषण्मुनिसंख्याकैर्यवैर्दंडः प्रजापतेः।
यवोदरैः षट्शतैस्तुमानवोदंडउच्यते॥९८॥

सातसौ अडसठ ७६८ यवोंका प्रजापतिका और ६०० छे सै यवोका मनुका दंड होता है ॥ ९८ ॥

पंचविंशतिभिर्दंडैरुभयोस्तुनिवर्तनम्।
त्रिंशच्छतैरंगुलैर्यवैस्त्रिपंचसहस्रकैः ॥९९॥

पच्चीससे २५०० दडोंका दोनोका निवर्त्तन होता है अथवा तीससै३००० अगुलोका अथवा तीन सहस्रयवोका अथवा पांच सहस्रयवोंका दोनोंका दंड क्रमसे होता है ॥९९॥

सपादशतहस्तैश्चमानवंतुनिवर्तनम्।
ऊनविंशतिसाहस्रैर्द्विशतैश्चयवोदरैः ॥१००॥

सवासै १२५ हाथका मानव (मनुका) निवर्त्तन अथवा उन्नीसहजार दोसौ १९२०० यवोंका पूर्वोक्त निवर्तन होता है ॥१००॥

चतुर्विंशशतैरेवह्यंगुलैश्चनिवर्तने।
प्राजापत्यंतुकथितंशतैश्चैवकरैः सदा ॥१॥

चौबीससौ २४०० अगुलों का अथवा सौ १००करोका प्रजापतिका निवर्तन कहा है ॥१॥

सपादषट्शतंदंडाउभयोश्चनिवर्तने।
निवर्तनान्यपिसदोभयोर्वैपंचविंशतिः ॥२॥

सवाछैसे ६२५ दड दोनोके निवर्तनमे होते हैं निवर्तनभी दोनोके सदा पच्चीस होते हैं ॥२॥

पंचसप्ततिसाहस्रैरंगुलैःपरिवर्तनम्।
मानवंषष्टिसाहस्रैःप्रजापत्यंतथांगुलैः ॥३॥

पचहत्तर हजार ७५००० अंगुलोका मानव और साठहजार ६०००० अंगुलोंका प्रजापतिका परिवर्तन होता है ॥३॥

पंचविंशाधिकैर्हस्तैरेकत्रिंशच्छतैर्मनोः।
परिवर्तनमाख्यातंपंचविंशशतैःकरैः ॥४॥

सवाइकत्तीश ३१२५ शत हस्तोका मनुका और पच्चीससै २५०० हस्तोका प्रजापतिका परिवर्तन कहा है ॥ ४ ॥

प्राजापत्यंपादहीनचतुर्लक्षयवैर्मनोः।
अशीत्यधिकसाहस्रचतुर्लक्षयवैःपरम् ॥५॥

तीनलाख यवोंका प्रजापतिका और चार लाख अस्सीहजार ४८०००० यवोंका मनुका निवर्तन होता है ॥ ५ ॥

निवर्तनानिद्वात्रिंशन्मनुमानेनतस्यवै।
चतुःसहस्रहस्ताःस्युर्दंडाश्चाष्टशतानिहि ६॥

मनुके मानसे बत्तीस निवर्तनोके चार हजार हाथ और आठसै दंड होते हैं ॥६॥

पंचविंशतिभिर्दंडैर्भुजःस्यात्परिवर्तने।
करैरयुतसंख्याकैःक्षेत्रं तस्यप्रकीर्तितम् ॥७॥

पचीस दंडोंकी परिवर्तनकी भुज होती है दश हजार हाथोंका परिवर्तनका क्षेत्र होता है ॥ ७ ॥

चतुर्भुजैःसमंप्रोक्तंकष्टभूपरिवर्तनम् ।
प्राजापत्येनमानेनभूभागहरणंनृपः ॥ ८ ॥
सदाकुर्याच्चस्वापत्तौमनुमानेननान्यथा ।
लोभात्संकर्षयेद्यस्तुहीयतेसप्रजोनृपः ॥९॥

भूमिका परिवर्तन चतुर्भुजके सम् कहा है। राजा पृथिवीके भागका ग्रहण प्रजापतिके प्रमाणसे करै और अपनी आपत्तिके समय मनुके मानसे करै अन्यथा नहीं जो राजा लोभसे प्रजाको संकर्षित अर्थात् प्रजासे अधिक कर लेता है वह प्रजासहित हीनता को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

नदद्याद्द्व्यंगुलमपिभूमेःस्वत्वनिवर्तनम् ।
वृत्त्यर्थंकल्पयेद्वापियावद्राहस्तुजीवति१०

दो अंगुलकी भूमिको भी कर (भाग) के विना न छोडै अथवा अपनी आजीविकाके अर्थ भागका ग्रहण करै, क्योंकि इतनेकर करका ग्रहण करैगा तबतकही जीवैगा ॥ १० ॥

गुणीतावद्देवतार्थेविसृजेच्चसदैवहि ।
आरामार्थंगृहार्थंवादद्याद्दृष्ट्वाकुटुंबिनम् ॥

गुणवान् राजा देवताओंके मंदिर बगीचेके निमित्त और कुटुंबवारे मनुष्यको देखकर गृहके निमित्त पृथ्वीको देदे ॥११॥

नानावृक्षलताकीर्णेपशुपक्षिगणावृते ।
सबहूदकधान्येचतृणकाष्ठसुखेसदा ॥१२॥
आसिंधुनौगमाकूलेनातिदूरमहीधरे ।
सुरम्यसमभूदेशेराजधानींप्रकल्पयेत् ॥१३॥

अपनी राजधानी राजा ऐसी जगह बनावे जहां नानाप्रकारके वृक्ष और लता हों और पशु और पक्षियोंके गणसे युक्त देश हो और जिसमें अधिक अन्न और जल हों और जिसमें काष्ठ और तृणका सुख हो और समुद्रपर्यंत नावके गमनकाजहां अनुकूल हो और जहां पर्वत समीप हो रमणीक और समभूमि जहां हो ॥ १२ ॥ १३ ॥

अर्धचंद्रांवर्तुलांवाचतुरस्त्रांसुशोभनाम् ।
सप्राकारांसपरिखांग्रामादीनांनिवेशिनीम्

अर्धचन्द्रके आकार हो और गोल अथवा चौकोर हो शोभायमान हो प्राकार सहित हो परिखा (खाई) युक्तहो ग्राम और पुर जिसके मध्य वसते हों ऐसी राजधानी राजा बनावै ॥ १४ ॥

सभामध्याकूपवापीतडागादियुतांसदा ।
चतुर्दिक्षुचतुर्द्वारासुमार्गारामवीथिकाम् १५

और सभा जिसके मध्यमें हो, कूप, वापी (बावडी) तलाव इनसे सदा युक्त हो और चारों ओर दिशोंमें जिसके चार द्वार हो और मार्ग बगीचे गली जिसमें सुन्दर हों ॥ १५ ॥

दृढसुरालयमठपांथशालाविराजिताम् ।
कल्पयित्वावसेत्तत्रसुगुप्तःसप्रजोनृपः ॥१६॥

दृढ देवस्थान, मठ, धर्मशाला इनसे शोभित ऐसी पूर्वोक्त राजधानीको रचकर गुप्त होकर प्रजासहित राजा उसमें बसै ॥१६॥

राजगृहंसभामध्यंगवाश्वगजशालिकम् ।
प्रशस्तवापीकूपादिजलयंत्रैःसुशोभितम् १७

सभा जिसके मध्यमें हो, गौ, अश्व, हस्ती इनकी शाला जिसमें हों और उत्तम बावडी कूप आदि जलयंत्रोंसे शोभित राजा गृहको बनावे ॥ १७ ॥

सर्वतःस्यात्समभुजंदक्षिणोच्चमुदङ्नतम् ।
शालांविनानैकभुजंतथाविषमबाहुकम् १८

जिसकी चारों भुजा सम हों दक्षिणकी ओर ऊंचाऔर उत्तरको नीचा हो और शालाके बिना एक भुज (पाखा) विषम भुज न हो ॥१८॥

नायःशालानैकभुजाचतुःशालंविनाशुभा ।
शस्त्रास्त्रधारिसंयुक्तंप्राकारंसुष्ठुयंत्रकम्१९

बहुधा शाला एकभुज नहीं होती चौकोरके विनाभीशुभहै शास्त्र और अस्त्रधारियोंसे संयुक्त

और उत्तम यंत्रोंसे संयुक्त प्राकार (परकोटा) बनावै ॥ १९ ॥

सात्रिकक्षचतुर्द्वारंचतुर्दिक्षुसुशोभनम् ।
दिवारात्रौसशस्त्रास्त्रैःप्रतिकक्षासुगोपितम्॥
चतुर्भिःपंचभिःषड्भिर्यामिकैःपरिवर्तकैः ।
नानागृहोपकार्याट्टसंयुतंकल्पयेत्सदा २१॥

तीन कक्षा (श्रेणी) से युक्त चारों दिशाओंमे चार शोभायमान द्वार हों, रात्र दिन शस्त्र और अस्त्रोंसे संपूर्ण कक्षाओंमे गुप्त हो ॥ २० ॥ चार पाच छै परिवर्त्तक (चौकीदार) प्रहर २ मे घूमनेवाले हों जिसमे और नाना प्रकारकी सामग्री सहित अट्टाअटारी संयुक्त गृहको बनावे ॥ २१ ॥

वस्त्रादिमार्जनार्थंचस्नानार्थंयजनार्थकम् ।
भोजनार्थंचपाकार्थंपूर्वस्यांकल्पयेद्गृहान् ॥

वस्त्रो धोना,स्नान,पूजन,भोजनकेऔरपाकके अर्थ पूर्वदिशामे घर बनावे ॥ २२ ॥

निद्रार्थंचविहारार्थंपानार्थंरोदनार्थकम् ।
धान्याद्यर्थंघरट्टार्थंदासीदासार्थमेवच २३॥
उत्सर्गार्थंगृहान्कुर्याद्दक्षिणस्यामनुक्रमात् ।
गोमृगोष्ट्रगजाद्यर्थंगृहान्प्रत्यक्प्रकल्पयेत् ॥

शयनके, क्रीडाके, पीनेके, रोनेके, अन्नके घरट्ट (जात)के, दासीके, दासके और मलमूत्रके त्यागके अर्थ दक्षिण दिशामे गृहबनावे और गो मृग, ऊट, हस्ती इनके अर्थ पश्चिममे गृह बनावे ॥ २३ ॥ २४ ॥

रथवाज्यस्त्रशस्त्रार्थंव्यायामायामिकार्थकम् ।
वस्त्रार्थकंतुद्रव्यार्थंविद्याभ्यासार्थमेवच २५॥
उदग्गृहान्प्रकुर्वीतसुगुप्तान्सुमनोहरान् ।
यथासुखानिवाकुर्याद्गृहाण्येतानिवैनृपः ॥

रथ, अश्व, अस्त्र, शस्त्र, व्यायाम (कसरत) आयाम(घूमना),वस्त्र, द्रव्य, विद्याके अभ्यासके अर्थ उत्तरदिशामें गृहोंकी रचना करावै अथवा अपने सुखके अनुसार राजा पूर्वोक्त गृहोंको बनावै ॥ २५ ॥ २६ ॥

धर्माधिकरणंशिल्पशालांकुर्यादुदग्गृहात् ।
पंचमांशाधिकोच्छ्रायाभित्तीर्विस्तारतोगृहे॥

धर्माधिकार (कचहरी) शिल्पशाला इन्हें गृहसे उत्तरदिशामे बनावे, गृहके भागसे पंचम भाग ऊची भित्ति (दिवाल) बनावे ॥ २७ ॥

कोष्ठविस्तारषडंशस्थूलासाचप्रकीर्तिता ।
एकभूमेरिदंमानमूर्ध्वंमूर्ध्वंसमंततः ॥२८॥

कोष्ठक विस्तारसे षष्ठांश (छठा-भाग) स्थूल भित्ति कही है, यह प्रमाण एक भूमि (एक मजले) स्थानका है इसके आगे इसी प्रकार वृद्धि कही है ॥ २८ ॥

स्तंभैश्चभित्तिभिर्वापिपृथक्कोष्ठानिसंन्यसेत् ।
त्रिकोष्ठंपंचकोष्ठंवासप्तकोष्ठंगृहंस्मृतम् २९

स्तंभ और भित्तियोंके पृथक् २ कोठे बनावै तीन पांच अथवा सात हैं कोठे जिसमें ऐसा गृह कहा है ॥ २९ ॥

द्वारार्थमष्टधाभक्तंद्वारस्यांशौतुमध्यमौ ।
द्वौद्वौज्ञेयौचतुर्दिक्षुधनपुत्रप्रदौनृणाम् ३०॥

द्वारके वास्ते आठ भाग घरके करै और द्वारके भाग मध्यम हों चारों दिशाओंमें द्वारके अर्थ दो दो धन पुत्रके दाता है ॥ ३० ॥

तत्रैवकल्पयेद्द्वारंनान्यथातुकदाचन ।
वातायनपृथक्कोष्ठेकुर्याद्यादृक्सुखावहम् ३१॥

उन्हीं मध्यभागोंमें द्वार बनावेअन्यथाकदापि न बनावे सुख कोठों जैसे सुखके दाता हों इस प्रकार पृथक्२वातायन(झरोखे) बनावै ॥३१॥

अन्यगृहद्वारविद्धंगृहद्वारं न चिंतयेत् ।
वृक्षकोणस्तंभमार्गपीठकूपैश्चवेधितम्॥३२॥

इतर गृहोंके द्वार और वृक्ष कोण स्तंभ मार्ग चौंतरा कूप इनसे विन्धा अर्थात् इनके सामने गृहका द्वार न बनावै ॥ ३२ ॥

प्रासादमंडपद्वारेमार्गवेधोनाविद्यते ।
गृहपीठंचतुर्थांशमुद्रायस्यप्रकल्पयेत्॥३३॥

मन्दिर और मण्डपके द्वारमें मार्गका वेध नहीं है गृहपीठके चतुर्थांशका जिस मण्डपका प्रमाण हो ॥ ३३ ॥

**प्रासादानांमंडपानामर्धांशंवापरेजगुः ।**
**परवातायनैर्विद्धंनापिवातायनंस्मृतम् ॥ ३४ ॥**

कोई ऋषि प्रासाद और मंडपका अर्द्धभागके प्रमाणसे द्वारको कहते है दूसरके गवाक्ष (झरोखे) से विधा गवाक्ष न हो ॥ ३४ ॥

**विस्तारार्धांशमूलोच्चाच्छर्दिः खर्परसंभवा ।**
**पतितंतुजलंतस्यांसुखंगच्छतिवाप्यधः ३५ ॥**

विस्तारके भागसे अर्द्ध है मूलोच्चभाग जिसका ऐसी खपरोंकी छाज बनावै जिसमें गिरा जल सुखसे नीचे गिरे ॥ ३५ ॥

**हीनानिम्नाछर्दिर्नस्यात्तादृक्कोष्ठस्यविस्तरः ।**
**स्वोच्छ्रायस्यार्धमूलोवाप्राकारः सममूलकः ॥**

जैसा कोष्ठका विस्तार हो उससे हीन और नीचा न हो अथवा अपनी उंचाईसे आधा हो अथवा सम हो विस्तार जिसका ऐसा प्राकार ( परकोटा ) हो ॥ ३६ ॥

**तृतीयांशकमूलोवाह्युच्छ्रायार्धप्रविस्तरः ।**
**उच्छ्रितस्तुतथाकार्योदस्युभिर्नविलंघ्यते ॥**

तृतीय भाग है मूल जिसका ऐसा ऊँचाईसे आधा विस्तार हो और ऊंचा ऐसा हो जो चोरोंसे न लंघा जाय ॥ ३७ ॥

**यामिकैरक्षितोनित्यंनालिकास्त्रैश्चसंयुतः ।**
**सुबहुदृढगुल्मश्चसुगवाक्षप्रणालिकः ॥ ३८ ॥**

चौकीदारोंसे नित्य रक्षित नालिकास्त्रों (तोपों)से संयुक्त और अच्छी तरह दृढ है गुल्म और गवाक्षोंकी प्रणाली जिसमें ऐसा घर बनावै ॥ ३८ ॥

**स्वहीनप्रतिप्राकारोह्यसमीपमहीधरः ।**
**परिखाचततः कार्याखाताद्द्विगुणविस्तरा ॥**

परकोटेसे हीन प्रति प्राकार ऐसा हो जिसके समीप पर्वत न हो और खानसे द्विगुणित है विस्तार जिसका ऐसी परिखा हो ॥ ३९ ॥

**नातिसमीपप्राकाराह्यगाधसलिलाशुभा ।**
**युद्धसाधनसंभारैः सुयुद्धकुशलैर्विना ॥ ४० ॥**

नही है अत्यन्त समीप प्राकार जिसके और अगाध है जल जिसमें ऐसी परिखा हो और युद्धकी सामग्री और युद्ध करनेम कुशल पुरुषों के विना दुर्ग श्रेष्ठ नही ॥ ४० ॥

**नश्रेयसेदुर्गवासोराज्ञः स्याद्बंधनाय सः ।**
**राज्ञाराजसभाकार्या सुगुप्तासुमनोरमा ४१ ।**

पूर्वोक्त दुर्ग ( किला ) राजाका कल्याणकारी नही प्रत्युत बन्धनका हेतु है और राजा ऐसी राजसभा बनावे जो अत्यन्त गुप्त और मनोहर हो ॥ ४१ ॥

**त्रिकोष्ठैःपञ्चकोष्ठैर्वासप्तकोष्ठैःसुविस्तृता ।**
**दक्षिणोदक्तथादीर्घाप्राक्प्रत्यग्द्विगुणाथवा ।**

जो सभा तीन, पांच, सात कोष्ठोंसे सुविस्तृत हो और दक्षिण उत्तर लम्बी अथवा पूर्व पश्चिम द्विगुण हो ॥ ४२ ॥

**त्रिगुणावायथाकाममेकभूमिर्द्विभूमिका ।**
**त्रिभूमिकावाकर्तव्यासोपकार्याशिरोगृहा ॥**

अथवा अपनी इच्छाअनुसार त्रिगुणा हो और एक मञ्जली अथवा द्विमञ्जली अथवा त्रिमञ्जली हो और जिसके ऊपरका गृह सम्पूर्ण युद्ध आदिकी सामग्रीसहित हो ॥ ४३ ॥

**परितः प्रतिकोष्ठेतुवातायनविराजिता ।**
**पार्श्वकोष्ठात्तुद्विगुणोमध्यकोष्ठस्यविस्तरः ॥**

चारों ओर प्रति कोष्ठमें गवाक्षोंसे विराजमान हो और पार्श्व कोठेसे मध्य कोठेका द्विगुण विस्तार हो ॥ ४४ ॥

**पञ्चमांशाधिकंत्वौच्चंमध्यकोष्ठस्यविस्तरात् ।**
**विस्तारेणसमंत्वौच्चंपञ्चमांशाधिकंतुवा ४५ ॥**

विस्तारसे पञ्चमभाग उंचाई मध्य कोष्ठाकी हो अथवा विस्तारके समान ऊंची हो ऐसी सभा राजा बनावै ॥ ४५ ॥

**कोष्ठकानांचभूमिर्वाछर्दिर्वातत्रकारयेत् ।**
**द्विभूमिकेपार्श्वकोष्ठेमध्यमंत्वेकभूमिकम् ॥**

कोठेकी छत पृथ्वीकी हो अथवा खपरैल की हो पार्श्वके कोठे दुमञ्जले और मध्यका कोष्ठ (कमरा) इकमञ्जला हो ॥४६॥

पृथक्स्तंभांतसत्कोष्ठाचतुर्मार्गागमाशुभा ।
जलोर्ध्वपातियंत्रैश्चयुतासुस्वरयंत्रकैः॥४७॥

पृथक् २ हैं स्तम्भ जिनमें ऐसे उत्तम कोष्ठ चारों भागोंमें जिसके दरवाजे हों और फुवारे और बाजोंसे सुशोभित हो ॥४७॥

वातप्रेरकयंत्रैश्चयंत्रैः कालप्रबोधकैः ।
प्रतिष्ठिताचस्वादर्शैस्तथाचप्रतिरूपकैः ४८॥

वायुके प्रेरक और समयके बोधक यन्त्रोंसे और उत्तम २ आदर्श (सीसे) और प्रतिरूप (तसवीर) इनसे शोभित हो ॥४८॥

एवंविधाराजसभामंत्रार्थाकार्यदर्शने ।
तथाविधामात्यलेख्यसभ्याधिकृतशालिका

ऐसी राजसभा कार्यके देखने और मन्त्रके अर्थ हो और ऐसाही मन्त्री (सेवक) और सभाओंके अधिकारियोंकी हो ॥४९॥

कर्तव्याश्चपृथक्त्वेतास्तद्यथाश्चपृथक्पृथक् ।
शतहस्तमितांभूमिंत्यक्त्वाराजगृहात्सदा ॥

इन राजसभा आदिको पृथक् २ करै इनके कार्य भी पृथक् २ हों और राजाके घरमें शतहस्त भूमिको छोडकर पूर्वोक्त सभाओंको बनावे ॥५०॥

उदग्दिशतहस्तांप्राक्सेनासंवेशनार्थिकाम् ।
आराद्राजगृहस्यैवप्रजानांनिलयानिच ५१

पूर्व अथवा उत्तर दिशामें दोसौ २०० हाथ गृहके अन्तरसे सेवानिवास, और राजाके घरके समीप प्रजाके स्थान बनवावे ॥५१॥

सधनश्रेष्ठजात्यानुक्रमतश्चसदाबुधः ।
समंताच्चचतुर्दिक्षुविन्यसेच्चततः परम्॥५२॥

धनी और उत्तम जाति इनके क्रमसे चारों तरफ और चारों दिशाओंमें गृहोंका विन्यास करावै ॥५२॥

प्रकृत्यनुप्रकृतयोह्यधिकारिगणस्ततः ।
सेनाधिपाःपदातीनांगणः सादिगणस्ततः ॥

प्रकृति (दिवान आदि) अनुप्रकृति (उत्तम सेवक) फिर अधिकारियोंके गण फिर सेनाके अधिपति, फिर पदाति (सिपाही), फिर सवार इस क्रमसे गृह बनावै ॥५३॥

साश्वश्वसगजश्चाधिगजपालगणस्ततः ।
गृहन्नालिकयंत्राणिततः स्वतुरगीगणः ५४

सवार, हाथीवान, हस्तीके रक्षकोंका समूह और बडे नालियोंका यन्त्र और उसके अनन्तर घोडियोंके समूह ॥५४॥

ततःस्वगोपकगणो ह्यारण्यकगणस्ततः ।
क्रमादेषांगृहाणिस्युः शोभनानिपुरेसदा ॥

इसके अनन्तर गोपालोंके गणफिर बनवासी (भिल्ल) आदिकोंके गण इस क्रमसे शोभायमान इनके घर पुरमें सदा बनावै ॥५५॥

पांथशालाततः कार्यासुगुप्तासुजलाशया ।
सजातीयगृहाणांहिसमुदायेनपंक्तितः ५६॥

फिर पांथशाला सुगुप्त और जलाशय (कूप) आदि सुन्दर हैं जिसमें ऐसी बनावै और फिर सजातीय गृहोंके समुदाय (मुहल्ले) पृथक् २ बनावे ॥५६॥

निवेशनंपुरेग्रामेप्रागुदङ्मुखमेववा ।
सजातिपण्यनिवहैरापणेपण्यवेशनम् ॥५७॥

पुर और ग्राममें पूर्व और उत्तराभिमुख स्थान बनावै और आपण (बाजार) में सजातियोंकी पृथक् २ दुकान बनावै ॥५७॥

धनिकादिक्रमेणैवराजमार्गस्यपार्श्वयोः ।
एवंहिपत्तनंकुर्याद्ग्रामंचैवनराधिपः ॥५८॥

धनिक आदिके क्रमसे राजमार्ग दोनों पार्श्वोंमें पण्य (दुकानें) बनावे इस प्रकार पत्तन और ग्रामको राजा बनावे ॥५८॥

राजमार्गास्तुकर्तव्याश्चतुर्दिक्षुनृपगृहात् ।
उत्तमोराजमार्गस्तुत्रिंशद्धस्तमितोभवेत् ॥

राजगृहसे चारों दिशाओंमें राजमार्ग(सडक) बनावे और तीस हाथका राज मार्ग उत्तम है ॥५९॥

मध्यमोविंशतिकरोदशपंचकरोऽधमः ।
पण्यमार्गास्तथाचैतेपुरग्रामादिषुस्थिताः ॥

वीस हाथका मध्यम और पन्द्रह हाथका राजमार्ग अधम होता है और पण्यके मार्ग भी ऐसेही पुर और ग्रामादिकोंके होते हैं ॥६०॥

करत्रयात्मिकापद्यावीथिःपंचकरात्मिका ।
मार्गोदशकरःप्रोक्तोग्रामेषुनगरेषुच ॥६१॥

तीन हाथकी पद्या और पांच हाथकी बीथि और दश हाथका मार्ग ग्राम और नगरोंमें कहा है ॥६१॥

प्राक्पश्चाद्दक्षिणोदक्तान्ग्राममध्यात्प्रकल्पयेत् ।
पुरंदृष्ट्वाराजमार्गान्सुबहून्कल्पयेन्नृपः ॥६२॥

पूर्वसे पश्चिम और दक्षिणसे उत्तर ग्रामके मध्यसे राजमार्ग आदिको रचे और उन्हें पुरके अनुसार बहुत बनावे ॥६२॥

नवीथिंनचपद्यांहिराजधान्यांप्रकल्पयेत् ।
षड्योजनांतरेरण्येराजमार्गंतुचोत्तमम् ६३॥

तीन और पांच हाथका मार्ग राजधानीमे न बनावे चौबिसकोस बनके अंतरसे राजमार्ग उत्तम होता है ॥६३॥

कल्पयेन्मध्यमंमध्येतयोर्मध्येतथाधमम् ।
दशहस्तात्मकंनित्यंग्रामेग्रामेनियोजयेत् ॥

और वनके मध्यमे बारह कोसके अंतरमे मध्यम और उत्तमसे भी मध्यममे अधम मार्ग बनावे और दश हाथका मार्ग ग्राम ग्राममे हो ॥६४॥

कूर्मपृष्ठामार्गभूमिःकार्याग्राम्यैः सुसेतुका ।
कुर्यान्मार्गान्पार्श्वखातान्निर्गमार्थंजलस्यच॥

मार्गकी भूमि कछुवेकी पीठके समान और उत्तम पुल हैं जिसमे ऐसी बनानी और जलके गमनके निमित्त दोनों पाश्वोंमें खाई जिसमे ऐसें मार्ग बनावे ॥६५॥

राजमार्गमुखानिस्युर्गृहाणिसकलान्यपि ।
गृहपृष्ठेदासवीथिंमलनिर्हरणस्थलम् ॥६६॥

राजमार्गमे हैं दरवाजे जिनके ऐसे सम्पूर्ण गृह बनावै और गृहके पिछवारे मल आदिके दूर करनेकी गली बनावै ॥६६॥

पंक्तिद्वयगतानांहिगेहानांकारयेत्तथा ।
मार्गान्सुधाशर्करैर्वाघटितान्प्रतिवत्सरम् ६७

दोनो पंक्तियोंमे विद्यमान गृहोंके मार्ग ऐसे प्रतिवर्ष बनावै जो चूना शर्करा ( कंकर ) आदिसे कूटा हो ॥६७॥

अभियुक्तानिरुद्धैर्वाकुर्यात्ग्राम्यजनैर्नृपः ।
ग्रामद्वयांतरेचैवपांथशालाःप्रकल्पयेत् ६८॥

अभियुक्त ( मजूर ) निरुद्ध ( कैदी ) ऐसें ग्रामीणोसे मार्गको बनवावे और ग्रामोंके मध्य मे पाठशाला बनावे ।' ६८ ॥

नित्यंसंमार्जितांचैवग्रामपैश्चसुगोपिताम् ।
तत्रागतंतुसंपृच्छेत्पांथशालाधिपैःसदा ६९॥

ग्रामके अधिपतियोंसे पांथशालाको प्रतिदिन संमार्जित (स्वच्छ) रक्खै और उस पांथशालामे आये पथिकको उक्तशालाका अधिपति यह पूछे ॥६९॥

प्रयातोसिकुतःकस्मात्कगच्छसिऋतंवद ।
ससहायोऽसहायोवाकिंशस्त्रःकिंसवाहनः ॥

कहासे आयेहो और किस हेतुसे और कहां जाते हो और कौन सग है अथवा एकाकी हो और कौन तुम्हारे पास शस्त्र हैं और कौन तुम्हारे वाहन(सवारी)है यह सत्य बताओ॥७०

काजातिःकिंकुलंनामास्थितिःकुत्रास्तितेचिरम्
इतिपृष्ट्वालिखेत्सायंशस्त्रंतस्यप्रगृह्यच ॥७१॥

और कौन जाति कुल नाम है और कहांके वासी हो यह पूछे और उसके शस्त्रको ग्रहण करके सायंकाल के समय लिखलें ॥७१॥

सावधानमनाभूत्वास्वापंकुर्वितिशासयेत् ।
तत्रस्थान्गणयित्वातुशालाद्वारंपिधायच ७२

संरक्षयेद्यामिकैश्चप्रभातेतान्प्रबोधयेत्।
शस्त्रंदद्याच्चगणयेद्वारमुद्राव्यमोचयेत् ७३॥

और सावधानतासे सोवे यह शिक्षा दे और वहांके टिके हुए सम्पूर्ण मनुष्योंको गिनकर और शालाके दरवाजेको लगाकर चौकीदारोंसे रक्षा करावै और प्रातःकाल जगवा दे और शस्त्रको दे और दरवाजे खोलकर प्रभात छोड दे॥ ७२॥ ७३॥

कुर्यात्सहायंसीमांतंतेषांग्राम्यजनस्सदा।
प्रकुर्याद्दिनकृत्यंतुराजधान्यांवसन्नृपः ७४॥

और पथिकोंकी सीमातक ग्रामका मनुष्य रक्षा करैं और राजधानीमें वसता हुआ राजा दिनमें करने योग्य काम करैं॥ ७४॥

उत्थायपश्चिमेयामेमुहूर्तद्वितयेनवै।
नियतायश्चकत्यास्तिव्ययश्चनियतःकति॥
कोशभूतस्यद्रव्यस्य व्ययःकतिगतस्तथा।
व्यवहारेमुद्रिनायव्ययशेषंकतीतिच ७६॥
प्रत्यक्षतोलेखतश्चज्ञात्वाचाद्यव्ययःकति।
भविष्यतिचतत्तुल्यंद्रव्यंकोशात्तुनिर्हरेत् ७७

रात्रिके पश्चिम भागमें दो मुहूर्त (चार घडी) रात्रि से उठकर कितना आजका आय (आमदनी) और कितना व्यय (खर्च) नियमित है और कोशमेंसे कितना व्यय हुआ है और व्यवहारमें कितना रुपया आया और कितना व्यय हुआ प्रत्यक्ष और लेखसे यह जानकर और आज कितना व्यय होगा यह निश्चय करिके उतना ही द्रव्य कोशमेंसे निकाले॥ ७५॥ ७६॥ ७७॥

पश्चात्तुवेगनिर्मोक्षंस्नानंमौहूर्तिकंमतम्।
संध्यापुराणदानैश्चमुहूर्ताद्वितयंनयेत्॥७८॥

पीछेसे मलका परित्याग करिके एकमुहूर्तमें स्नान करैं और दो मुहूर्तको सन्ध्या पुराण श्रवण और दानमें व्यतीत करैं॥ ७८॥

पारितोषिकदानेनमुहूर्ततुनयेत्सुधीः।
धान्यवस्त्रस्वर्णरत्नसेनादेशविलेखनैः ७९॥

और पारितोषिकके देनेसे मुहूर्त व्यतीत करै अन्न वस्त्र सुवर्ण रत्न सेना और देश इनके देखनेसे एक मुहूर्त व्यतीत करै॥ ७९॥

आयव्ययैर्मुहूर्तानांचतुष्कंतुनयेत्सदा॥
स्वस्थचित्तोभोजनेनमुहूर्तंससुहृन्नृपः ८०॥

चार मुहूर्त आय और व्ययमें व्यतीत करै फिर मित्रोंसहित राजा भोजन करिके एक मुहूर्त स्वस्थचित्त रहै॥ ८०॥

प्रत्यक्षीकरणाज्जीर्णनवीनानांमुहूर्तकम्।
ततस्तुप्राड्विवाकादिबोधितव्यवहारतः८१

पुरानी और नई वस्तुओंके देखनेमें एक मुहूर्त व्यतीत करै फिर एक मुहूर्त वकीलोंसे बोधित (जताये) व्यवहारसे व्यतीत करै॥ ८१॥

मुहूर्तद्वितयंचैवमृगयाक्रीडनैर्नयेत्।
व्यूहाभ्यासैर्मुहूर्ततुमुहूर्तसंध्ययाततः॥८२॥

दो मुहूर्त मृगयाकी क्रीडासे एक मुहूर्त व्यूहाभ्यास (कवायद) से फिर एक मुहूर्त सन्ध्यासे व्यतीत करै॥ ८२॥

मुहूर्तभोजनेनैवाद्विमुहूर्तचवार्तया।
गूढचारैः श्राविततयानिद्रयाष्टमुहूर्तकम् ८३॥

एक मुहूर्त्त भोजनसे दो मुहूर्त्त गूढचारी पुरुषने सुनाई हुई वार्त्ता व्यवहारसे और आठ मुहूर्त्त निद्रामें व्यतीत करै॥ ८३॥

एवंविहरतोराज्ञःसुखंसम्यक्प्रजायते।
अहोरात्रंविभज्यैवंत्रिंशद्भिस्तुमुहूर्तकैः ८४॥
नयेत्कालंवृथानैवनयेत्स्त्रीमद्यसेवनैः।
यत्कालेह्युचितंकर्तुंतत्कार्यंद्रागशंकितम्॥

इस प्रकार विहार करते राजाको सुख अच्छी तरह होता है इस प्रकार तीस मुहूर्त्तसे रात्रिदिनका विभाग करके कालको व्यतीत करै स्त्री और मदिरादिसे कालको न बितावै और जिस समय जो करनेको उचित हो उसी समय उस कार्यको निःशंक होकर शीघ्रही करै॥८४॥८५॥

कालेवृष्टिःसुपोषायह्यन्यथासुविनाशिनी।
कार्यस्थानानिसर्वाणियामिकैरभितोनिशम्

समयकी वृष्टि भले प्रकार पुष्टिके अर्थ है और अकालवृष्टि शीघ्र विनाशका हेतु है सपूर्ण कार्यस्थानोंकी चारों ओरसे यामिक ( चौकी-दारों ) से रात्रि दिन रक्षा करै ॥ ८६ ॥

नयवान्नीतिनीतिविवित्सिद्धशस्त्रादिकैर्वरैः ।
चतुर्भिःपंचभिर्वापिषड्भिर्वागोपयेत्सदा ॥

न्याय, नीति, नेति इनका ज्ञाता सिद्ध (ज्ञात) है शस्त्रादि जिनको ऐसे चार, पांच, छै यामिकोंसे कार्यस्थानोंकी रक्षा करै ॥ ८७ ॥

तत्रत्यानिदैनिकानि शृणुयाल्लेखकाधिपैः ।
दिनेदिनेयामिकानांप्रकुर्यात्परिवर्तनम् ८८॥

कार्यस्थानोमे जो दैनिक है उन्हे लेखा-धिपोंमे सुनै और दिन २ मे यामियोंका परि-वर्तन ( बदली ) करै ॥ ८८ ॥

गृहपंक्तिमुखेद्वाःकर्तव्ययामिकैःसदा ।
तत्तद्वृत्तंतुशृणुयाद्गृहस्थभृतिपोषितैः ८९

गृहोकी पंक्तिके मुखपर यामिक (चौकीदार) सदा द्वार करै उन्ही यामिकोंसे गृहोके वृत्तान्त राजा सुने और वे यामिक गृहस्थ भृति ( गृह-स्थके पालन योग्य वेतन) से पुष्ट रहे ॥ ८९ ॥

निर्गच्छंतिचयेग्रामाद्येग्रामप्रविशंतिच ।
तान्सुसंशोध्ययत्नेनमोचयेद्दत्तलग्नकान् ९०

जो मनुष्य ग्राममे जायँ और जो ग्राममे प्रविष्ट हों उन्हे भलीभांति शोधन और चिह्न सहित करके छोड दे ॥ ९० ॥

प्रख्यातवृत्तशीलांस्तुह्यविमृश्यविमोचयेत् ।
वीथिवीथिषुयामार्धेनिशिपर्यटनंसदा ९१॥

और प्रसिद्ध है आचरण और शील जिनका उन्हे विना विचारेही छोड दे और रात्रिमे चार २ घटी गली २ मे सदा विचरै ॥ ९१ ॥

कर्तव्यंयामिकैरेवंचौरजारनिवृत्तये ।
शासनंत्वीदृशंकार्यंराज्ञानित्यंप्रजासुच ९२॥

यामिकोंको चौर और जारकी निवृत्तिके अर्थ गली २ मे विचरना और राजा प्रजामे इस प्रकार शिक्षा करनी कि ॥ ९२ ॥

दासेभृत्येथभार्यायांपुत्रेशिष्येपिवाक्कचित् ।
वाग्दंडपरुषान्नैवकार्यंमद्देशसंस्थितैः ॥९३॥

जो मनुष्य मेरे देशमे रहते हैं उन्हें दास भृत्य, भार्या, पुत्र, शिष्य इनके विषय कठोर वचनका दण्ड नही देना अर्थात् कठोरवचन नहीं कहना ॥ ९३ ॥

तुलाशासनमानानांनाणकस्यापिवाक्कचित् ।
निर्यासानांचधातूनांसजातीनांघृतस्यच ९४
मधुदुग्धवसादीनांपिष्टादीनांचसर्वदा ।
कूटंनैवतुकार्यस्याद्बलाच्चलिखितंजनैः ९५॥

तुला, आज्ञा, मान, सिक्का, निर्यास (गोंद) धातु, सजाति, घृत, मधु, दूध, बसा, पिष्ट ( आटा ) इनके लेखको मनुष्य बलसे मिथ्या न करै ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

उत्कोचग्रहणान्नैवस्वामिकार्यविलोभनम् ।
दुर्वृत्तकारिणंचोरंजारमद्वेषिणांद्विषम् ९६॥
नरक्षंत्वप्रकाशंहितथान्यानपकारकान् ।
मातृणांपितृणांचैवपूज्यानांविदुषामपि ९७॥

उत्कोच ( कोड ) के ग्रहण कर्त्ता, स्वामी कार्यके नाशक, दुराचारी और चौर और जार और राजाका अद्वेषी और द्वेषीइतर अपकारी इनकी प्रत्यक्ष रक्षा कोई न करै, माता पिता पूज्य और विद्वान इनका तिरस्कार कोई न करै ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

नावमानंनोपहासंकुर्युःसद्वृत्तशालिनाम् ।
नभेदंजनयेयुर्वैनृनार्योःस्वामिभृत्ययोः ९८॥

और सदाचारमे तत्परोंका भी तिरस्कार न करै और स्त्री, पुरुष, स्वामी, भृत्य इनके भेद ( फूट ) को कोई उत्पन्न न करै ॥ ९८ ॥

भ्रातृणांगुरुशिष्याणांनकुर्युःपितृपुत्रयोः ।
वापीकूपाराममसीमाधर्मशालासुरालयान् ॥
मार्गान्नैवप्रबाधेयुर्हीनांगविकलांगकान् ।
द्यूतंचमद्यपानंचमृगयांशस्त्रधारणम् १००॥

भ्राता, गुरु, शिष्य, पिता, पुत्र इनके भी भेदको न करै,और वापी, कूप, आराम, सीमा,

धर्मशाला, देवमंदिर और मार्ग, हीनअंगवाला पुरुष, इनको कोई पीडा न दे, और द्यूत मद्यपान, मृगया, शस्त्रधारण, इन सबको राजाके विना न करै। ९९ ॥ १०० ॥

गोगजाश्वोष्ट्रमाहिषीनृणांवैस्थावरस्यच ।
रजतस्वर्णरत्नानांमादकस्यविषस्यच ॥१॥
क्रयंवाविक्रयंवापिमद्यसंधानमेवच ।
क्रयपत्रदानपत्रमृणनिर्णयपत्रकम् ॥२॥
राजाज्ञयाविनानैवजनैः कार्यचिकित्सितम् ।
महापापाभिशपनंनिधिग्रहणमेवच ॥३॥

गौ, हस्ती, ऊंट, भैस, मनुष्य, स्थावर, चांदी सोना, रत्न, मादकवस्तु, विष इनका लनदेन और मदिरा निकासना, लेनेका पत्र, देनेका पत्र, ऋणके निर्णयका पत्र, चिकित्सा (इलाज) महापापका अभिशपन अर्थात् महापापका दोष लगाना, निधि(खजाना) का ग्रहण इतने कार्य राजाकी आज्ञाके विना कोई भी मनुष्य न करै ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

नवसमाजनियमंनिर्णयंजातिदूषणम् ।
अस्वामिनाष्टिकधनंसंग्रहंमंत्रभेदनम् ॥४॥

नये समाजका नियम, निर्णय, जातिका दोष, जिसका कोई स्वामी न हो उस वस्तुका ग्रहण, और मंत्र सलाह इनका भेद कोई न करै ॥ ४ ॥

नृपदुर्गुणलोपंतुनैवकुर्युःकदाचन ।
स्वधर्महानिमनृतंपरदाराभिमर्शनम् ॥५॥

राजाके दुर्गुणोंका लोप कोई पुरुष कदाचित् भी न करैं, अपने धर्मका त्याग असत्य भाषण अन्यस्त्रीका सग कोई न करै ॥ ५ ॥

कूटसाक्ष्यकूटलख्यमप्रकाशप्रतिग्रहम् ।
निर्धारितकराधिक्यस्तेयंसाहसमेवच ॥६॥

झूठी साक्षी, झूठा लेख, गुप्त प्रतिग्रह, नियमित करसे अधिक कर, चोरी, साहस, इन्हे कोई न करै ॥ ६ ॥

मनसापिनकुर्वंतुस्वामिद्रोहंतथैवच ।
भृत्याशुल्केनभागेनवृद्ध्यादर्पबलाच्छलात् ७

वेतन शुल्क ( महसूल ) भाग, सूत, अहंकार, बल, छल इनके द्वारा मनसे भी कोई अपने स्वामीका द्रोह न करै ॥ ७ ॥

आधर्षणंनकुर्वंतुयस्यकस्यापि सर्वदा ।
परिमाणोन्मानमानंधार्यंराजविमुद्रितम् ८॥

सम्पूर्ण कालमे किसीका भी आधर्षण ( दबाकर दुःखित करना ) न करै, परिमाण उन्मान, ( द्रोण ) आदि मान ( तोल ) इनको राजाकी मुद्रायुक्त रक्खे ॥ ८ ॥

गुणसाधनसंदक्षाभवंतुनिखिलाजनाः ।
साहसाधिकृतेदद्युर्विनिगृह्याततायिनम् ॥९॥

गुणोकी सिद्धिमे सम्पूर्ण जन चतुर हों और अपराधी को पकडकर साहससे अधिकारी ( फौजदारी के हाकिम ) को सौंपदे ॥ ९ ॥

उत्सृष्टावृषभाद्यायैस्तैस्तेधार्याःसुयंत्रिताः ।
इतिमच्छासनंश्रुत्वायेऽन्यथावर्तयन्तितान्॥
विनेष्यामिचदंडेनमहतापापकारकान् ।
इतिप्रबोधयेन्नित्यंप्रजाःशासनडिंडिमैः ११

जिन पुरुषोंने वृषभ आदि छोड हैं वेही उनको बडे यत्नसे रक्खें, इस मेरी आज्ञाको सुनकर जो अन्यथा वर्तेंगे, उन पापियोंको मैं महान् दण्डसे शिक्षा दूंगा यह नित्यडिंडिमें (ढढोरा) से राजा प्रबोधित करावे ॥ १० ॥ ११

लिखित्वाशासनंराजाधारयतिचतुष्पथे ।
सदाचोद्यतदंडःस्यादसाधुषुचशत्रुषु॥१२॥

अपनी आज्ञाको लिखकर राजा चतुष्पथ ( चौराहा ) मे रख दे और असाधु शत्रु इनमें दण्डको सदा उद्यत रक्खे ॥ १२ ॥

प्रजानांपालनंकार्यंनीतिपूर्वंनृपेणहि ।
मार्गसंरक्षणंकुर्यान्नृपःपांथसुखायच॥१३॥

राजा प्रजाका पालन नीतिसे करै और पथिकोंके सुखके निमित्त मार्गकी सदा रक्षा करै ॥ १३ ॥

पांथप्रपीडकायेयेहंतव्यास्तेप्रयत्नतः ।
त्रिभिरंशैर्बलंधार्यंदानमर्धांशकेनच ॥१४॥

पथिकोंके जो २ पीडाकारक हैं तिन २ को यत्नसे मारे और तीन भागोंसे सेनाको धारण करै और आधेभागसे दानको धारे ॥ १४ ॥

अर्धांशेनप्रकृतयोह्यर्धांशेनाधिकारिणः ।
अर्धांशेनात्मभोगश्चकोशोंशेनसरक्ष्यते ॥

आधेभागसे प्रकृति ( दिवान आदि ) आधे भागसे अधिकार ( दरबार ) आधेभागसे अपना भोग, चौथेभागसे कोश ( खजाना ) इस प्रकार भागोंसे अपने द्रव्यको भुगतावे ॥१५॥

आयस्यैवंषड्विभागैर्व्ययंकुर्यात्तुवत्सरे ।
सामंतादिषुधर्मोयंनन्यूनस्यकदाचन १६॥

इस प्रकार आय (आमदनी) का वर्षभरमें व्यय ( खर्च ) करै यह सामन्त (मन्त्री) आदि का धर्म है न्यूनका नहीं ॥ १६ ॥

राज्यस्ययशसःकीर्तेर्धनस्यचगुणस्यच ।
प्राप्तस्यरक्षणेन्यस्यहरणेचोद्यमोपिच॥ १७॥

राज्य, यश, कीर्ति, धन, गुण, आदि प्राप्तोकी रक्षामें न्यास अर्थात् व्याज आदिमें बढाना और हरण अर्थात् इतर राज्य आदिके छीननेमें यत्न करे ॥ १७ ॥

संरक्षणेसंहरणेसुप्रयत्नोभवेत्सदा ।
शौर्यपांडित्यवक्तृत्वंदातृत्वंनत्यजेत्कचित् ॥

भलीप्रकार रक्षा और हरणमें अच्छे प्रकारसे यत्न करै । शूरता, पांडित्य, वक्तृता, दातृता इनको कदापि न त्यागे ॥ १८ ॥

बलंपराक्रमंनित्यमुत्थानंचापिभूमिपः ।
समितौस्वात्मकार्येवास्वामिकार्येतथैवच॥

बल, पराक्रम, नित्य उत्थान (चढाई) इनको भी न त्यागे, संग्राम अपने और स्वामीके कार्यमें प्राणोंका भय न करै ॥ १९ ॥

त्यक्त्वाप्राणभयंयुध्येत्सशूरस्त्वविशंकितः ।
पक्षंसंत्यज्ययत्नेनबालस्यापिसुभाषितम ॥
गृह्णातिधर्मतत्त्वंचव्यवस्यतिसपंडितः ।
राज्ञोपिदुर्गुणान्वक्तिप्रत्यक्षमविशंकितः२१॥

प्राणोंके भयको त्याग और निःशंकहोकर जो युद्ध करै वही शूर है पक्षपातको छोडकर बालककेभी उत्तम कथनको ग्रहण करै और धर्मके तत्त्वका निश्चय करै और निःशंक होकर राजाके प्रत्यक्ष राजाकेभी अपगुणोंको जो कहै वही पंडित है ॥ २० ॥ २१ ॥

सवक्तागुणतुल्यांस्तान्नप्रस्तौतिकदाचन ।
अदेयंयस्यनैवास्तिभार्यापुत्रादिकंधनम्२२॥

वही वक्ता है जो गुणोंके तुल्य यथार्थ स्तुति करै और अधिक न करै और भार्या, पुत्र, धन आदिमें जिसको अदेय न हो वही राजा है ॥ २२ ॥

आत्मानमपिसंदत्तेपात्रेदातासउच्यते ।
अशंकितक्षमोयेनकार्यंकर्तुंबलंहितत् ॥२३॥

जो सुपात्रको अपने आत्माकोभी दे दे वही दाता है और जिससे निःशंक होकर कार्यको करै वही बल है ॥ २३ ॥

किंकराइवयेनान्येनृपाद्याःस पराक्रमः ।
युद्धानुकूलव्यापारउत्थानमतिकीर्तितम् ॥

जिससे इतर राजा किंकरके समान होजाय वही पराक्रम है और युद्धका संपादक जो व्यापार उसे उत्थान कहते है ॥ २४ ॥

विषदोषभयादन्नंविमृश्यकपिकुक्कुटैः ।
हंसाःस्खलंतिकूजंतिभृंगानृत्यंतिमायुराः ॥
विरौतिकुक्कुटोमत्तःक्रौंचोवैरंचतेकपिः ।
हृष्टरोमाभवेद्बभ्रुः सारिकावमतेतथा ॥२६॥

विषके दोषभयसे वानर मुरगोसे अन्नकी परीक्षा करै क्योंकि विषके भक्षणसे हंस स्खलित (अडबंड) बोलते हैं भ्रमर शब्द करते हैं मोर नाचते है,मुरगा अत्यंत शब्द करता है, क्रौंच मत हो जाता है, वानर वमन करदेता है,नोलेकी रोम खडी हो आती है, सारिकाभी वमन करती है,यदि ये पूर्वोक्त जीव जिसअन्नभक्षणसे उक्त कार्यकारी हो जायं तो उस अन्नको कदाचिदपि भक्षण न करै ॥२५॥२६॥

दृष्ट्वैवंसविषंचान्नंतस्माद्भोज्यंपरीक्षयेत ।
भुंजीतषड्रसंनित्यंनद्वित्रिरससंकुलम् २७॥

इस प्रकार विष सहित अन्नको देखकर पश्चाद्भोजनके योग्यकी परीक्षा करे अर्थात् छै रसहैं जिसमे उसे भक्षण करे और दो अथवा तीन रस जिसमे हों उसे भक्षण न करे॥२७॥

हीनातिरिक्तंनकटुमधुरक्षारसंकुलम् ।
आवेदयतियत्कार्यंशृणुयान्मंत्रिभिःसह ॥

न्यून और अधिक है, कटु, मधुर, खार जिसमें उसे भक्षण न करे, जो कोई मनुष्य कार्यको निवेदन करै उसे मंत्रियों सहित राजा सुने ॥२८॥

आरामादौप्रकृतिभिः स्त्रीभिश्चनटगायकैः ।
विहरेत्सावधानस्तुमागधैरैंद्रजालिकैः २९॥

प्रजा, स्त्री, नट, गानेवाले, भाट, इन्द्रजाली इनके संग सावधान होकर आराम (बगीचा) आदिमे विहार करै॥२९॥

गजाश्वरथयानंतुप्रातः सायंसदाभ्यसेत् ।
व्यूहाभ्यासंसैनिकानांस्वयंशिक्षेच्चशिक्षयेत्।

प्रातःकाल और सन्ध्यासमय, हस्ति अश्व, रथ इनके यत्नका अभ्यास करै और सेनाके मनुष्योंको व्यूह (कवायद) अभ्यास करावै और आप भी करै ॥३०॥

व्याघ्रादिभिर्वनचरैर्मयूराद्यैश्चपक्षिभिः ।
क्रीडयेन्मृगयांकुर्याद्दुष्टसत्त्वान्निपातयन् ॥

सिंह आदि वनचर और मयूर आदि पक्षी इनके सङ्ग क्रीडा और मृगया करै और दुष्ट जीवोंको नष्ट करै ॥३१॥

शौर्यंप्रवर्धतेनित्यंलक्ष्यसंधानमेवच ।
अकातरत्वंशस्त्रास्त्रशीघ्रपातनकारिता ३२॥

शूरताकी वृद्धि और लक्ष्य (निशाने) का सन्धान, अकातरता शस्त्रास्त्रका शीघ्र चलाना ये मृगयासे होते हैं ॥३२॥

मगयायांगुणाएतेहिंसादोषोमहत्तरः ।
इंगितंचेष्टितंयत्नात्प्रजानामाधिकारिणाम् ॥

मृगयामें ये गुण हैं परन्तु हिंसा दोष महान् है प्रजा और अधिकारी इनका मनोरथ और चेष्टा गुप्तचारोंसे सुने ॥३३॥

प्रकृतीनांचशत्रूणांसैनिकानांमंतंचयत् ।
सभ्यानांबांधवानांचस्त्रीणामंतःपुरेचयत् ॥
शृणुयादगूढचारेभ्योनिशिचात्ययिकेसदा ।
सावधानमनाःसिद्धशस्त्रास्त्रःसंल्लिखेच्चतत् ॥

प्रजा, शत्रु, सेना के मनुष्य और सभासद बन्धु, अन्तःपुर, स्त्री, इनका आचरण नित्य पिछली रात्रिको विचरनेहारे गूढचारियोंसे सुने और सावधानतासे शस्त्रअस्त्रको धारण करिकै उसे लिखे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

असत्यवादिनंगूढचारंनैववशास्तियः ।
सनृपोम्लेच्छइत्युक्तःप्रजाप्राणधनापह ॥

झूठगुप्तचारीको जो राजा शिक्षा नहीं देता वह राजा प्रजाके प्राण और धनका अपहारी म्लेच्छ है ॥ ३६ ॥

वर्णीतपस्वीसंन्यासीनीचासिद्धस्वरूपिणम् ।
प्रत्यक्षेणच्छलेनैवगूढचारंविशोधयेत् ३७॥

ब्रह्मचारी, तपस्वी, संन्यासी, नीच लिङ्गमें है रूप जिसके ऐसे गूढचारीको प्रत्यक्ष अथवा छलसे शोधै अर्थात् पहचाने ॥ ३७ ॥

विनातच्छोधनात्तत्त्वंनजानातिचनाप्यते ।
अशोधकनृपान्नैवबिभ्यत्यनृतवादने ३८॥

गूढचारीके शोधे विना राजाको तत्त्वका ज्ञान और प्राप्ति नहीं होती और जो राजा इनका शोधन नहीं करता उससे गूढ बोलनेमे वे नहीं हारते ॥ ३८ ॥

प्रकृतिभ्योधिकृतेभ्योगूढचारंसुरक्षयेत् ।
सदैकनायकंराज्यंकुर्यान्नबहुनायकम्॥३९॥

प्रकृति और अधिकारी इनसे गूढचारीकी रक्षा करै और राज्यका स्वामी एकही करै बहुत नहीं ॥ ३९ ॥

नानायकंक्वचिदपिकर्तुमीहेतभूमिपः ।
राजकुलेतुबहवः पुरुषायदिसंतिहि ॥४०॥

तेषुज्येष्ठोभवेद्राजाशेषास्तत्कार्यसाधकाः ।
गरीयांसोवराःसर्वसहायेभ्योभिवृद्धये ४१॥

राजा किसी स्थानकी भी अनायक ( स्वामीरहित ) करनेकी चेष्टा न करै यदि राजाके कुलमें बहुतपुरुषहोंय तो उनमें ज्येष्ठ राजा होता है शेष उसके कार्यसाधक होते हैं राजाकी वृद्धिके अर्थ और बन्धु इतर सहायोंसे श्रेष्ठ है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

ज्येष्ठोपिबधिरःकुष्ठीमूकोंधःषंढएवयः ।
सराज्यार्होभवेन्नैवभ्रातातत्पुत्रएवहि ४२॥

यदि ज्येष्ठ भ्राताभी बधिर, कुष्ठी, मूक, अन्ध नपुंसक होय तो वह राज्यके योग्य नहीं होता भ्राता अथवा उसका पुत्र राज्यका अधिकारी होता है ॥ ४२ ॥

स्वकनिष्ठोपिज्येष्ठस्यभ्रातुःपुत्रस्तुराज्यभाक्
दायादानामैकमत्यं राज्ञःश्रेयस्करंपरम ४३

अपना कनिष्ठज्येष्ठ भ्राता अथवा भ्राताका पुत्र राज्यका अधिकारी होता है और दायाद अंशभागिनियों की एक मति राज्यके परम कल्याणको करती है ॥ ४३ ॥

पृथग्भावोविनाशायराज्यस्यचकुलस्यच ।
अतःस्वभोगसदृशान्दायादान्कारयेन्नृपः ॥

अंशभागियोंका जो पृथक् भाग वह राज्य और कुलके विनाशका हेतु है इससे राजा हिस्सदारोंको अपने भागके सदृश करै ॥ ४४ ॥

राज्यविभजनाच्छ्रेयोनभूपानांभवेत्खलु ॥
अल्पीकृतंविभागेनराज्यंशत्रुर्जिघृक्षति४५ ॥

राज्यके विभागसे राजाओंको कल्याण नहीं होता क्योंकि विभागसे स्वल्पहुए राज्यको शत्रु ग्रहण करनेकी इच्छा करता है ॥ ४५ ॥

राज्यतुर्यांशदानेनस्थापयेत्तान्समंततः ।
चतुर्दिक्ष्वथवादेशाधिपान्कुर्यात्सदानृपः ॥

राज्यके चतुर्थ भागको देकर कनिष्ठ बंधुओंको चारों ओर नियत करै अथवा चारों दिशाओंमें देशोंके अधिपति करै ॥ ४६ ॥

गोगजाश्वोष्ट्रकोशानामधिपत्येनियोजयेत् ।
मातामातृसमायाचसानियोज्यामहासने ॥

गौ, हस्ति, अश्व, ऊंट, कोश (खजाना) इनके अधिपति करै माता और माताके जो तुल्य है उसे सिंहासन पर नियुक्त करै ॥ ४७ ॥

सेनाधिकारेसंयोज्याबांधवाःश्यालकाःसदा ।
स्वदोषदर्शकाः कार्यागुरवःसुहृदश्चये ४८॥

सेनाके अधिकारमें बन्धु और शालोंको नियुक्त करै, अपने दोषोंके दिखानेमें गुरु अथवा मित्रोंको नियुक्त करै ॥ ४८ ॥

वस्त्रालंकारपात्राणांस्त्रियायोज्याःसुदर्शन ।
स्वयंसर्वंतुविमृशेत्पर्यायेणचमुद्रयेत् ॥४९॥

वस्त्र, आभूषण, पात्र, इनके भली प्रकार देखनेसे स्त्रियोंको नियुक्त करै और संपूर्णको आप विचारै और राजमुद्रासे अंकित करै ॥ ४९ ॥

अन्तर्वेश्मनिरात्रौवादिवारण्येविशोधिते ।
मन्त्रयेन्मंत्रिभिःसार्धंभाविकृत्यंतुनिर्जने ५०

गृहके भीतर अथवा वनमें दिनके समय एकान्तमें मंत्रियोंके सग भाविकार्यको विचारै ॥ ५० ॥

सुहृद्भिर्भ्रातृभिःसार्धंसभायांपुत्रबांधवैः ।
राजकृत्यंसेनपैश्चसभ्याद्यैश्चिंतयेत्सदा ५१

मित्र, भ्राता, पुत्र, बन्धु, सेनाके अधिप, सभा सद इनके सङ्ग राजकृत्यका सदा चिन्तन करै ॥ ५१ ॥

सभायांप्रत्यगर्धस्यमध्येराजासनंस्मृतम् ।
दक्षसंस्थावामसंस्थाविशेयुःपार्श्वकोष्ठगाः ॥

सभामें पश्चिमदिशाके मध्य भागमें राजाका आसन कहा है और पासके बैठनेहारे दक्षिण अथवा वामभागमें बैठे ॥ ५२ ॥

पुत्राःपौत्राभ्रातरश्चभागिनेयाःस्वपृष्ठतः ।
दौहित्रादक्षभागात्तुवामसंस्थाःक्रमादिमे ॥

पुत्र, पौत्र, भ्राता, भानजे, ये अपने पृष्ठ भागमें बैठे, दौहित्र ( पुत्रीकेपुत्र ) दक्षिणभाग से वामभागमे क्रमसे बैठें ॥ ५३ ॥

पितृव्याः स्वकुलश्रेष्ठाः सभ्याः सेनाधिपास्तथा।
स्वाग्रेदक्षिणभागेतुप्राक्संस्थाःपृथगासनाः॥

पितृव्य ( चाचा ताऊ ) अपने कुलके श्रेष्ठ सभासद, सेनाके अधिप ये अपने आगे दक्षिण भागमे पूर्वदिशामे बैठें ॥ ५४ ॥

मातामहकुलश्रेष्ठामन्त्रिणोबांधवास्तथा।
श्वशुराश्चैवश्यालाश्चवामाग्रेचाधिकारिणः॥

मातामहके कुलके श्रेष्ठ, मन्त्री, बन्धु, श्वशुर, श्याल ये वामभागमें अग्रभागके अधिकारी हैं॥ ५५ ॥

वामदक्षिणपार्श्वस्थौजामाताभागिनीपतिः।
स्वसदृशःसमीपेवास्वार्धासनगतःसुहृत्॥

वाम और दक्षिण पार्श्वमे जमाई,और भनोई बैठें और अपने तुल्य मित्र अपने समीपमे वा अपने आधे आसनपर बैठें ॥ ५६ ॥

दौहित्रभागिनेयानांस्थानेस्युर्दत्तकादयः।
भागिनेयाश्चदौहित्राःपुत्रादिस्थानसंश्रिताः॥

दौहित्र, भानज इनके स्थानमे दत्तकादि पुत्र बैठें और भानज और दौहित्र पुत्र आदि के स्थानमे बैठें ॥ ५७ ॥

यथापितातथाचार्यःसमश्रेष्ठासनेस्थितः।
पार्श्वयोरग्रतःसर्वेलेखकामंत्रिपृष्ठगाः॥५८॥

पिताके समान गुरु होता है इससे पिताके समान श्रेष्ठ आसनपर बैठे और दोनों पार्श्वमें अग्रभाग विषे सम्पूर्ण लेखक मंत्रियोंके पीछे बैठें ॥ ५८ ॥

परिचारगणाःसर्वेसर्वेभ्यःपृष्ठसंस्थिताः।
स्वर्णदंडधरौपार्श्वेप्रवेशनतिबोधकौ॥५९॥

सम्पूर्ण सेवकोंके गण सबके पीछे बैठें और सभामे प्रवेश ( आने ) के जताने और राजा को इतरकी प्रणामके बोधक सुवर्णके दण्डको ग्रहण करके दो मनुष्य राजाके दोनों पार्श्वमे बैठें ॥ ५९ ॥

विशिष्टचिह्नयुग्राजास्वासनेप्राविशेत्सुखम्।
सुभूषणःसुकवचःसुवस्त्रोमुकुटान्वितः ६०

श्रेष्ठ चिह्नवाला राजा अच्छे भूषण और श्रेष्ठ कवच और श्रेष्ठ मुकुट इनको धारण करके सुन्दर आसनपर सुखसे बैठे ॥ ६० ॥

सिद्धास्त्रोनग्नशस्त्रस्सन्सावधानमनाःसदा।
सर्वस्मादधिकोदाताशूरस्त्वंधार्मिकोह्यसि॥

सिद्ध है अस्त्र जिसको ऐसा राजा नग्न शस्त्रको ग्रहण करके सदा सावधानमन रहे और आप सबसे अधिक दाता, शूर और धार्मिक हो इस वाणीको न सुने ॥ ६१ ॥

इतिवाचनंश्रृणुयाच्छ्रावकावंचकास्तुये।
रागाल्लोभाद्भयाद्राज्ञःस्युर्मूकाइवमंत्रिणः॥

और जो पूर्वोक्त वाणीके सुनानेवाले हैं और जो ठग हैं और जो राजाके मन्त्री किसी की प्रीति, राग लोभसे मूक हो जायं अर्थात् यथार्थ न्यायमे सम्मति न दें उन्हे राजा अपने अनुमत न जाने ॥ ६२ ॥

नताननुमतान्विद्यान्नृपतिःस्वार्थसिद्धये।
पृथक्पृथङ्मतंतेषांलेखयित्वाससाधनम्॥

अपने कार्यकी सिद्धिके निमित्त पूर्वोक्तोंको अनुमत नही समझे किन्तु उनका मत युक्तिसहित पृथक् २ लिखकर आप विचारै ॥ ६३ ॥

विमृशेत्स्वमतेनैवयत्कुर्याद्बहुसम्मतम्।
गजाश्वरथपश्वादीन्भृत्यान्दासांस्तथैवच॥

और जो कार्य बहु सम्मतभी किया हो उसे भी अपने मतसे करै। हस्ती, घोडे, रथ, पशु आदि भृत्य और दास ॥ ६४ ॥

संभारान्सैनिकान्कार्यक्षमान्ज्ञात्वादिनेदिने।
संरक्षयेत्प्रयत्नेनसुजीर्णान्संत्यजेत्सुधीः६५।

और सेनाके सम्भार इनकी प्रतिदिन यत्नसे रक्षा करके कार्यके योग्य करे और जो जीर्ण ( पुराने ) हों उन्हें त्याग दे ॥ ६५ ॥

अयुतक्रोशजांवार्तांहरेदेकदिनेनवै ।
सर्वविद्याकलाभ्यासेशिक्षयेद्भृतिपोषितान् ॥

दशसहस्र कोशकी वार्ताको एकही दिनमें जानले और भृत्योंको सम्पूर्ण विद्याओंकी कलाओंके अभ्यासमें शिक्षित करै ॥ ६६ ॥

समाप्तविद्यंसंदृष्ट्वातत्कार्येतंनियोजयेत् ।
विद्याकलोत्तमान्दृष्ट्वावत्सरेपूजयेच्चतान् ॥

उसकी पूरी विद्याको देखकर उसे कार्यमे नियुक्त करै और विद्याकी कलामें उत्तम देखकर उन्हें प्रतिवर्ष पूजे अर्थात् उनकी विद्याके अनुसार उनका सत्कार करे ॥ ६७ ॥

विद्याकलानांवृद्धिःस्यात्तथाकुर्यान्नृपःसदा ।
पृष्ठाग्रगान्क्रूरवेषान्नतिनीतिविशारदान् ६८ ॥

जैसे विद्याकी कला वृद्धिको प्राप्त हो तैसे राजा सदा करै पृष्ठभाग और अग्रभागमें विद्यमान जो पुरुष वे नति ( प्रणाम ) और नीतिमे चतुर और भयानक वेषधारी हों ॥ ६८ ॥

सिद्धास्त्रनग्रशस्त्रांश्चभटानारान्नियोजयेत् ।
पुरेपर्यटयेन्नित्यंगजस्थोरंजयन्प्रजाः ॥६९ ॥

और वे ज्ञात हैं अस्त्र जिन्हे ऐसे हों और नग्नशस्त्र हों ऐसे भटों ( नौकरों ) को समीप नियुक्त करै और हस्तीपर चढकर प्रजाको प्रसन्न करता राजा आप भी अपने नगरमें फिरै ॥ ६९ ॥

राजयानारूढितः किंराज्ञाश्वानसमोपिच ।
शुनासमोनकिंराजाकविभिर्भाव्यतेजमा ७० ॥

जो राजा अपने यान ( सवारी ) पर श्वान अथवा नीचको बैठा ले तो ज्ञानी पुरुष राजा भी श्वानके समान क्या नहीं जानेंगे अर्थात् अवश्य जानेंगे ॥ ७० ॥

अतःस्वबांधवैर्मित्रैःस्वसाम्यप्रापितैर्गुणैः ।
प्रकृतीभिर्नृपोगच्छेन्ननीचैस्तुकदाचन ७१ ॥

इससे राजा अपने बन्धु और मित्र और जो गुणोंसे अपनी तुल्यताको प्राप्त हुएहैं उन और प्रकृतियों सहित गमन करे नीचोंके संग कदाचिदपि गमन न करै ॥ ७१ ॥

मिथ्यासत्यमदाचारैर्नीचःसाधुःक्रमात्स्मृतः
साधुभ्योतिस्वमृदुत्वंनीचाःसंदर्शयन्तिहि ॥

झूठसे नीच, सत्य और श्रेष्ठ आचरणसे साधु होता है क्योंकि नीचे भी साधुओंसे कोमल अपने आचरणको दिखाते हैं ॥ ७२ ॥

ग्रामान्पुराणिदेशांश्चस्वयंसंवीक्ष्यवत्सरे ।
अधिकारिगणैःकाश्चरंजिताःकाश्चकर्षिताः

ग्राम पुर देश इनको स्वयं प्रतिवर्ष देखै और अधिकारियोंने कौनसी प्रजा प्रसन्नकी और कौनसी दुःखी की यहभी देखै ॥ ७३ ॥

प्रजास्तासांतुभूतेनव्यवहारंविचिंतयेत् ।
नभृत्यपक्षपातीस्यात्प्रजापक्षंसमाश्रयेत् ॥

उन प्रजाओंके वर्तावसे व्यवहारका चिंतन करै और अपने भृत्य ( नौकरों ) का पक्षपाती नहो किन्तु प्रजाका पक्षपाती ही हो ॥ ७४ ॥

प्रजाशतेनसंदिष्टंसंत्यजेदधिकारिणम् ।
अमात्यमपिसंवीक्ष्य नकृदन्यायगामिनम् ॥
एकांतेदंडयेत्स्पष्टमभ्यासागस्कृतंत्यजेत् ।
अन्यायवर्तिनांराज्यंसर्वस्वंचहरेन्नृपः ७६ ॥

जो अधिकारी अनेक प्रजाओंका द्वेषी है उसको त्यागदे और मंत्रीको एकबार अन्यायगामी अर्थात् अनीतिकारक देखकर एकांतमे दण्ड दे और प्रगट जो अपना अपराधी है उसे त्याग दे अर्थात् उसे दण्ड न दे और अन्यायवर्तियोंके राज्य और सर्वस्वको राजा हरले ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

जितानांविषयेस्थाप्यंधर्माधिकारणंसदा ।
भृतिंदद्यान्निर्जितानांतच्चारित्र्यानुरूपतः ७७

जीतेहुओंके राज्यमें धर्मसे सदा अधिकार करै और जीतेहुओंको उनके खरचके अनुसार भृति ( नौकरी ) दे ॥ ७७ ॥

स्वानुरक्तांसुरूपांचसुवस्त्रांप्रियवादिनीम् ।
सुभूषणांसुसंशुद्धांप्रमदांशयनेभजेत् ॥७८॥

अपने विषे अनुरक्त (प्रीतिमती), सुरूप, सुवस्त्र, प्रियवादिनी, सुन्दर भूषणोंवाली और शुद्ध जो हो उस स्त्रीको शय्यापर भजे अर्थात् ऐसी स्त्रीके संगही भोग करै ॥ ७८ ॥

यामद्वयंशयानोहित्वत्यंतंसुखमश्नुते।
नसंत्यजेत्स्वस्थानंनीत्याशत्रुगणंजयेत् ७९

जो राजा दो प्रहर शयन करता है वह अत्यंत सुखको भोगता है और अपने स्थानका परित्याग राजा न करै किन्तु नीतिसे ही शत्रुओंके गणको जीते ॥ ७९ ॥

स्थानभ्रष्टानोविभांतिदंताःकेशानखानृपाः।
संश्रयेद्गिरिदुर्गाणिमहापादिनृपःसदा ॥८०॥

अपने स्थानसे भ्रष्ट (पतित) दन्त, केश नख, राजा ये शोभाको प्राप्त नहीं होते और महान आपत्तिमें राजा किला पर्वत इनका आश्रय ले ॥ ८० ॥

तदाश्रयाद्दस्युवृत्त्यास्वराज्यंतुसमाहरेत्।
विवाहदानयज्ञार्थविनाप्यष्टांशशेषितम् ८१

उनके आश्रयसे चोरीसे अपने राज्यको ग्रहण करै और विवाह, दान, यज्ञ इनके अर्थ अष्टांशशेषके विनाभी सत्रसे द्रव्यको ग्रहण करै ॥ ८१ ॥

सर्वतस्तुहरेद्दस्युरसतामखिलंधनम्।
नैकत्रसंवसेन्नित्यंविश्वसन्नैवकंप्रति ॥८२॥

सब प्रकार चोरीसे असज्जनोंके धनको ग्रहण करै और प्रतिदिन एकस्थानमे न वसे और किसीका विश्वास न करै ॥ ८२ ॥

सदैवसावधानः स्यात्प्राणनाशंनचिंतयेत्।
क्रूरकर्मासदोद्युक्तोनिर्घृणोदस्युकर्मसु ८३

राजा सदा सावधान रहै और प्राणोंके नाश की चिंता न करै क्रूर (कठोर) कर्मको करै और सदा उद्योगी रहै, और चोरोंके कर्ममे दया न करै ॥ ८३ ॥

विमुखःपरदारेषुकुलकन्याप्रदूषणे।
पुत्रवत्पालिताभृत्याःसमयेशत्रुतांगताः ८४॥

परस्त्री और कुलीन कन्याके दूषणसे पराङ्मुख रहै और पुत्रके समान पाले भृत्य भी समयमे शत्रु हो जाते हैं ॥ ८४ ॥

नदोषःस्यात्प्रयत्नस्यभागधेयंस्वयंहितत्।
दृष्ट्वासुविफलंकर्मतपस्तप्त्वादिवंव्रजेत् ८५

और प्रयत्न करनेमे राजाको कुछ दोष नहीं क्योंकि प्रयत्नमे राजाका भाग्यही होता है और कर्मको अच्छीतरह विफल (निष्फल) देखकर और तपको करिके स्वर्गमें राजा गमन करै ॥ ८५ ॥

उक्तंसमासतोराज्यकृत्यंमिश्रेधिकंब्रुवे।
अध्यायःप्रथमःप्रोक्तोराजकार्यनिरूपकः ॥

इस प्रकार संक्षेपसे राजकार्य है जिसमें ऐसा यह राजकार्य निरूपक प्रथमाध्याय हुआ आगे विस्तारसे कहेंगे ॥ ८६ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः पूर्तिमगात् ॥१॥

# अध्याय २.

यद्यप्यल्पतरंकर्मतदप्येकेनदुष्करम्।
पुरुषेणासहायेनकिमुराज्यंमहोदयम् ॥१॥

अल्पसे अल्पभी कार्य एक असहाय मनुष्यसे दुःखसे किया जाता है, महोदय (अतिमहान्) राज्य तो क्यों नहीं दुष्कर होगा ॥ १ ॥

सर्वविद्यासुकुशलोनृपोह्यपिसुमंत्रवित्।
मंत्रिभिस्तुविनामंत्रंनैकोर्थंचिंतयेत्कचित् २

सर्व विद्याओंमें अच्छीतरह कुशल और सुमंत्रका वेत्ता (जाननेवाला) भी राजा एकाकी मंत्रियोंके विना व्यवहारको कदापि चिंता न करै ॥ २ ॥

सभ्याधिकारिप्रकृतिसभासत्सुमतेस्थितः।
सर्वदास्यान्नृपःप्राज्ञःस्वमतेनकदाचन ॥३॥

विद्वान् राजा सभ्य अधिकारी प्रकृति सभासद इनके मनमें सदा स्थित रहैं और अपने मतमें कदापि स्थित न रहैं ॥ ३ ॥

प्रभुःस्वातंत्र्यमापन्नोह्यनर्थायैवकल्पते ।
भिन्नराष्ट्रोभवेत्सद्योभिन्नप्रकृतिरेवच ॥४॥

स्वतंत्रताको प्राप्त होकर राजा अनर्थ करता है और उसका राज्य भिन्न हो जाता है और प्रकृति भी पृथक् हो जाती है ॥ ४ ॥

पुरुषेपुरुषेभिन्नंदृश्यतेबुद्धिवैभवम् ।
आप्तवाक्यैरनुभवैरागमैरनुमानतः ॥५॥

पुरुष २ में भिन्न २ बुद्धिका प्रताप दीखता है यथार्थ वक्ताओंके वाक्यसे और अनुभवसे और आगम और अनुमानसे ॥ ५ ॥

प्रत्यक्षेणेचसादृश्यैःसाहसैश्चछलैर्बलैः ।
वैचित्र्यंव्यवहाराणामौन्नत्यंगुरुलाघवैः ६
नहितत्सकलंज्ञातुंनरेणैकेनशक्यते ।
अतःसहायान्वरयेद्राजाराज्यविवृद्धये ॥७॥

प्रत्यक्षसे, सादृश्यसे और साहस, छल बल इन पूर्वोक्त सम्पूर्ण साधनोंमे व्यवहारोंकी विचित्रता और गुरुलाघवसे ऊँचाई इनको एक मनुष्य नहीं जान सकता इससे राज्यकी वृद्धिके अर्थ सहायोंको अङ्गीकार राजा अवश्य करे ॥ ६ ॥ ७ ॥

कुलगुणशीलवृद्धाञ्छूरान्भक्तान्प्रियंवदान् ।
हितोपदेशकान्क्लेशसहान्धर्मरतान्सदा ॥८॥

कुल, गुण, शील इनसे वृद्ध, शूर, वीर, भक्त, प्रियवक्ता, हितके उपदेष्टा, क्लेशके सहनशील, सदा धर्ममें रत ऐसे सहायोंको राजा रक्खे ॥ ८ ॥

कुमार्गगंनृपमपिबुद्ध्याोद्धर्तुंक्षमाञ्छुचीन् ।
निर्मत्सरान्कामक्रोधलोभहीनान्निरालसान्

जो सहायक कुमार्गगामी राजाको भी अपनी बुद्धिसे निवृत्त करनेको समर्थ हो और शुद्ध हो और मत्सरी न हो काम, क्रोध, लोभ, आलस्य इनसे रहित हो उन्हें रक्खे ॥ ९ ॥

हीयतेकुसहायेनस्वधर्माद्राज्यतोनृपः ।
कुकर्मणाप्रनष्टास्तुदितिजाःकुसहायतः १०

निंदित सहायकसे राजा अपने धर्म और राज्यसे हीन हो जाता है क्योंकि निंदित कर्म और निंदित सहायकसे दैत्य नष्ट होगये ॥१०॥

नष्टादुर्योधनाद्यास्तुनृपाःशूराबलाधिकाः ।
निरभिमानोनृपतिःसुसहायोभवेदतः ॥११॥

निंदित सहायक आदिसे शूरवीर और बलवान् दुर्योधनादिक भी नष्ट हो गये इससे राजा निरभिमानी और सुसहायकरहै ॥११॥

युवराजोमात्यगणोभुजावेतौमहीभुजः ।
तावेवनयनेकर्णौदक्षसव्यौक्रमात्स्मृतौ १२॥

राजाके युवराज और मंत्रियोंका समूह क्रममे दक्षिण वाम भुजा नेत्र और कर्ण कहे हैं ॥ १२ ॥

बाहुकर्णाक्षिहीनःस्याद्विनाताभ्यामतोनृप ।
योजयेच्चिंतयित्वातौमहानाशायचान्यथा ॥

युवराज और मंत्रियोंके विना राजा बाहु, कर्ण, नेत्र इनसे हीन होता है इससे इन दोनोंको विचारके युक्त करै अन्यथा नियुक्त किये हुए ये दोनों महानाशके कर्ता होते हैं ॥ १३ ॥

मुद्रांविनाखिलंराजकृत्यंकर्तुक्षमंसदा ।
कल्पयेद्युवराजार्थमौरसंधर्मपत्निजम् १४

जो मुद्राके विना सपूर्ण राजकृत्य करनेको सदा समर्थ हो ऐसे धर्मपत्नीके औरस पुत्रको युवराजके अर्थ कल्पित करै ॥ १४ ॥

स्वकनिष्ठंपितृव्यंवानुजंवाग्रजसंभवम् ।
पुत्रंपुत्रीकृतंदत्तंयौवराज्येभिषेचयेत् १५

अपने कनिष्ठ पितृव्य (चाचा) अथवा कनिष्ठ भ्राताके अथवा ज्येष्ठ भ्राताके पुत्रको अथवा पुत्रीकृत पुत्रको अथवा दत्त पुत्रको युवराजपदवीपर नियुक्त करै ॥ १५ ॥

क्रमादभावेदौहित्रंस्वस्त्रीयंवानियोजयेत् ।
स्वहितायापिमनसानैतान्संकर्षयेत्क्वचित् १६

क्रमसे पूर्वोक्त पुत्र आदिके अभावमे दौहित्र या भानजाको नियुक्त करे और अपने हितके लिये भी कदाचित इनको मनसे दुःखी न करै ॥ १६ ॥

स्वधर्मनिरताच्छूरान्भक्तान्नीतिमतः सदा ।
संरक्षयेद्राजपुत्रान्बालानपिसुयत्नतः ॥१७॥

अपने धर्ममे तत्पर, शूर, भक्त, नीतिवाले जो राजाओके पालक पुत्र उनकी बडे यत्नसे रक्षा करै ॥ १७ ॥

लोलुभ्यमानास्तेर्थैर्हन्युरेनमरक्षिताः ।
रक्ष्यमाणायदिच्छिद्रंकथंचित्प्राप्नुवंतिते ॥

यदि राजा इतर राजपुत्रोभी यत्नसे रक्षा करैं तौ वे द्रव्यके लोभको प्राप्त और अरक्षित हुए इस राजाको मार देगे यदि रक्षासे भी वे छिद्रको प्राप्त हो जाय तौ ॥ १८ ॥

सिंहशावाइवघ्नंतिरक्षितारंद्विपंद्रुतम ।
राजपुत्रामदोद्धूतागजाइवनिरंकुशाः १९॥

वे राजपुत्र जैसे सिहका बालक हस्तीको इस प्रकाररक्षक राजाको हत देते है निरकुश गजके समान मदसे उन्मत्त राजपुत्र, पिता आदिको भी हत देते है ॥ १९ ॥

पितरंचापिनिघ्नंतिभ्रातरंत्वितरंनकिम ।
मूर्खोबालोपीच्छतिस्मस्वाम्यंकिंनुपुनर्युवा ॥

पिता और भ्राताको भी हत देते है तौ इतरको क्यो नही हतेगे क्योकि मूर्ख और बालक भी अपने स्वल्पराज्यकी इच्छा करता है तौ युवा क्यो नही करैगा ॥ २० ॥

स्वात्यंतसन्निकर्षेणराजपुत्रांस्तुरक्षयेत् ।
सद्भृत्यैश्चापितत्स्वांतंछलैर्ज्ञात्वासदास्वयम्

और अपने सुपात्र भृत्योंसे उसके स्वांत जिल ) को आप जानकर और अपने बहुत निकट रखकर राजपुत्रोंकी रक्षा करै ॥ २१ ॥

सुनीतिशास्त्रकुशलान्धनुर्वेदविशारदान् ।
क्लेशसहांश्चवाग्दंडपारुष्यानुभवान्सदा २२

श्रेष्ठ नीतिशास्त्रमे कुशल धनुषविद्यामे चतुर क्लेशके सहनेवाले और वाग्दण्ड ( कठोर वचन ) उनके ज्ञाता अपने पुत्रोको राजाकरै२२

शौर्ययुद्धरतान्सर्वकलाविद्याविदोजसा ।
सुविनीतान्प्रकुर्वीतह्यमात्याद्यैर्नृपःसुतान् ॥

वीरता और युद्धमे रत सम्पूर्ण विद्याओकी कलाके यथार्थ ज्ञाता और अच्छे विनीत( नम्र ) अपने पुत्रोको मन्त्रियोंके द्वारा राजा करै॥२३

सुवस्त्राद्यैर्भूषयित्वालालयित्वासुक्रीडनैः ।
अर्हयित्वासनाद्यैश्च पालयित्वासुभोजनैः ॥

अच्छे वस्त्रो आदिसे भूषित और अच्छी क्रीडाओमे लाडिला और अच्छे आसन आदिसे सत्कार और अच्छे भोजनोसे पालन करै ॥ २४ ॥

कृत्वातुयौवराज्यार्हान्यौवराज्येभिषेचयेत् ।
अविनीतकुमारंहिकुलमाशुविनश्यति २५

और यौवराज्यके योग्य करिके यौवराज्यके लिये अभिषेक दे दे क्योंकि जिस कुलमे राजकुमार अविनीत है वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ २५ ॥

राजपुत्रः सुदुर्वृत्तः परित्यागंहिनार्हति ।
क्लिश्यमानः सपितरंपरानाश्रित्यहंतिहि २६

दुष्ट भी राजाका पुत्र त्याग करनेके योग्य नही होता और वह क्लेशको प्राप्त होकर और इतर राजाओके अधीन होकर अपने पिताको मार देता है ॥ २६ ॥

व्यसनेसज्जमानंतंक्लेशयेद्व्यसनाश्रयैः ।
दुष्टंगजमिवोद्वृत्तंकुर्वीतसुखबन्धनम् २७॥

जो राजपुत्र व्यसन ( द्यूत आदि ) में आसक्त हो जाय तौ व्यसनके अधिपतियोंसे दुःखित करै उद्वृत (उन्मत्त) दुष्ट गजक

समान उसका सुखसे बन्धन करे अर्थात् शांति आदिके उपायस वश करे ॥ २७ ॥

**सुदुर्वृत्तास्तुदायादाहंतव्यास्तेप्रयत्नतः ।**
**व्याघ्रादिभिःशत्रुर्निर्वाछलै राष्ट्रविवृद्धये२८**

दुराचारी जो दायाद ( हिसेदार ) है उनको बडे यत्नके साथ सिंह आदि अथवा शत्रु और छलसे अपने राज्यकी वृद्धिके अर्थ मरवा दे ॥ २८ ॥

**अतोन्यथाविनाशायप्रजायाभूपतेश्चते ।**
**तोषयेयुर्नृपंनित्यंदायादाः स्वगुणैः परैः२९**

अन्यथा प्रजा और राजाको वे दायाद नाशके हेतु होते हैं क्योंकि दायाद अपसे श्रेष्ठ गुणोंसे राजाको नित्य प्रसन्न करते हैं ॥ २९ ॥

**भ्रष्टाभवंत्यन्यथातेस्वभागाज्जीवितादपि ।**
**स्वसापिंडयविहीनायेह्यन्योत्पन्नानराःखलु ॥**

अन्यथा वे अपने भाग और जीवनसे हीन हो जाते हैं जो नर अपने सपिण्डसे भिन्न हो और अन्यसे उत्पन्न हैं उन्हे ॥ ३० ॥

**मनसापिनमंतव्यादत्ताद्याः स्वसुताइति ।**
**तद्दत्तकत्वमिच्छंतिदृष्ट्वायंधनिकंनरम् ३१**

मनसे भी दत्त आदि अपने पुत्र है ऐसा न मानै जिस धनिक मनुष्यको देखकर तिसके दत्तककी इच्छा करते है ॥ ३१ ॥

**स्वकुलोत्पन्नकन्यायाःपुत्रस्तेभ्योवरोह्यतः ।**
**अंगादंगात्संभवतिपुत्रवद्दुहितानृणाम् ३२**

उनस अपने कुलसे उत्पन्न हुई कन्याका पुत्र श्रेष्ठ है क्योंकि पुत्रके समान मनुष्यके अङ्ग २ से कन्या उत्पन्न होती है ॥ ३२ ॥

**पिंडदानेविशेषोनपुत्रदौहित्रयोस्त्वतः ।**
**भूप्रजापालनार्थंहिभूपोदत्तंतुपालयेत् ॥३३॥**

और जिससे पुत्र दौहित्रके पिंडदानमें विशेष नहीं है पृथ्वी और प्रजाके पालनाके अर्थ राजा दत्तकपुत्रकी भी पालना करै ॥३३॥

**नृपः प्रजापालनार्थंसधनश्चेन्नचान्यथा ।**
**परोत्पन्नेस्वपुत्रत्वंमत्वासर्वंददातितम् ॥३४॥**

राजा और धनी केवल प्रजाके पालनार्थ हैं अन्यथा नहीं परसे उत्पन्नके विष अपना पुत्रभाव मानकर उसीको सर्वस्व देता है॥३४॥

**किमाश्चर्यमतोलोकेनददातियजत्यपि ।**
**प्राप्यापियुवराजत्वंप्राप्नुयाद्विकृतिंनच ३५**

इससे अधिक क्या आश्चर्य है कि न धन को लोकमे देता है और न यज्ञ करता है और युवराजपदवीको प्राप्त होकर भी जो विकार को नहीं प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

**स्वसंपत्तिमदान्नैवमातरंपितरंगुरुम् ।**
**भ्रातरंभगिनींवापिह्यन्यान्वाराजवल्लभान् ॥**

अपनी सम्पत्तिके मदसे माता, पिता, गुरु, भ्राता, भगिनी(बहन) और इतर राजाके वल्लभ (मन्त्री) आदिका अपमान न करै ॥ ३६ ॥

**महाजनांस्तथाराष्ट्रेनावमन्येन्नपीडयेत् ।**
**प्राप्यापिमहतींवृद्धिंवर्तेतपितुराज्ञया ॥३७॥**

राज्यके महाजनोंको अपमान और पीडा न दे और अधिक वृद्धिको प्राप्त होकर भी पिताकी आज्ञामे वर्तै ॥ ३७ ॥

**पुत्रस्यपितुराज्ञापिपरमंभूषणंस्मृतम् ।**
**भार्गवेणहतामाताराघवस्तुवनंगतः ॥३८॥**

पिताकी आज्ञाही पुत्रका परमभूषण कहा है, परशुरामजीने पिताकी आज्ञासे माताका हनन किया और रामचन्द्रजी पिताकी आज्ञा-से वनको गये ॥ ३८ ॥

**पितुस्तपोबलात्तौतुमातरंराज्यमापतुः ।**
**शापानुग्रहयोःशक्तोयस्तस्याज्ञागरीयसी३९**

और पिताके तपोबलसे वे दोनों माता और राज्यको क्रमसे प्राप्त हुए जो शाप और अनुग्रहमें समर्थ हैं उसकी आज्ञा ही सर्वोपरि है ॥ ३९ ॥

**सोदरेषुचसर्वेषुस्वस्याधिक्यंनदर्शयेत् ।**
**भागार्हभ्रातृणांनष्टोह्यवमानात्सुयोधनः४०॥**

संपूर्ण भ्राताओंमें अपनी अधिकता नदिखावै क्योंकि भागके योग्य भ्राताओंके अपमानसे दुर्योधन नष्ट हो गया ॥ ४० ॥

पितुराज्ञोल्लंघनेनप्राप्यापिपदमुत्तमम् ।
तस्माद्भ्रष्टाभवंतहिदासवद्राजपुत्रकाः ४१

पिताकी आज्ञाके अवलंघनसे उत्तम पदको प्राप्त होकरभी तिसपदसे इस संसारमें दासके समान राजाके पुत्र भ्रष्ट हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

ययातेश्चयथापुत्राविश्वामित्रसुतायथा ।
पितृसेवापरस्तिष्ठेत्कायवाङ्मानसैःसदा ४२

जैसे ययातिराजाके पुत्र और विश्वामित्र ऋषिके पुत्र पिताकी आज्ञाके अवलंघनसे नष्ट हुए तिससे पुत्र देहमनवाणीसे पिताकी आज्ञामें तत्पर रहै ॥ ४२ ॥

तत्कर्मनियतंकुर्याद्येनतुष्टोभवेत्पिता ।
तन्नकुर्याद्येनपितामनागपिविषीदति ॥४३॥

उस कार्यको नियमसे करै जिससे पिता प्रसन्न हो और उसको न करै जिससे पिता यत्किंचित्भी दुःखित हो ॥ ४३ ॥

यस्मिन्पितुर्भवेत्प्रीतिःस्वयंतस्मिन्प्रियंचरेत् ।
यस्मिन्द्वेषंपिताकुर्यात्स्वस्यापिद्वेष्यएवसः ॥

जिस पुरुषमें पिताकी प्रीति हो उसमें अपनी भी प्रीति करै और जिससे पिताका द्वेष हो उसे अपनाभी द्वेष्य ही जाने ॥ ४४ ॥

असंमतंविरुद्धंवापितुर्नैवसमाचरेत् ।
चारसूचकदोषेणयदिस्यादन्यथापिता ४५

पिताके असंमत और विरुद्धका आचरण न करै यदि दूत और सूचक ( चुगल ) के दोषसे पिताकी विपरीत बुद्धि होजाय ॥ ४५ ॥

प्रकृत्यनुमतंकृत्वातमेकांतेप्रबोधयेत् ।
अन्यथासूचकान्नित्यंमहद्दंडेनदंडयेत् ४६॥

तौ प्रजाके अनमतकरिके उसे एकान्तमें बोधित करै ( समझावे ) यदि पिता न मानै तौ सूचककी सहायता लेकर महादंडसे शिक्षित करै ॥ ४६ ॥

प्रकृतीनांचकपटैःस्वांतंविद्यात्सदैवहि ।
प्रातर्नत्वाप्रतिदिनंपितरंमातरंगुरुम् ॥४७॥

कपट कर प्रकृतियोंके स्वभावको सदा जानै और पिता, माता, गुरु इनको प्रतिदिन प्रातःकाल नमस्कार करके ॥ ४७ ॥

राजानंस्वकृतंयद्यन्निवेद्यानुदिनंततः ।
एवंगृहाविरोधेनराजपुत्रोवसेद्गृहे ॥४८॥

तिसके अनंतर राजाको अपना कृत्य प्रतिदिन निवेदन करके इस प्रकार अपने घरके अविरोधसे राजाका पुत्र घरमें बसै ॥ ४८ ॥

विद्ययाकर्मणाशीलैःप्रजाःसंरंजयन्मुदा ।
त्यागीचसत्त्वसंपन्नःसर्वान्कुर्याद्वशेस्वके ४९

विद्या, कर्म, शीलसे आनन्द होकर प्रजाको प्रसन्न रखता हुआ त्यागी और सत्त्वगुणी होकर सबको अपने वशमें करै ॥ ४९ ॥

शनैःशनैःप्रवर्धेतशुक्लपक्षमृगांकवत् ।
एवंवृत्तोराजपुत्रोराज्यंप्राप्याप्यकंटकम् ॥

शनैः २ शुक्लपक्षके चन्द्रमा समान वृद्धिको प्राप्त हो इस प्रकार आचरणशील राजपुत्र निष्कंटक राज्यको प्राप्त होकरभी ॥ ५० ॥

सहायवान्सहामात्यश्चिरंभुंक्तेवसुंधराम् ।
समासतःकार्यमुक्तंयुवराजस्ययद्धितम् ५१॥

सहाय और मंत्रियों सहित युवराज चिरकालतक पृथ्वीको भोगता है यह संक्षेपसेयुवराजका हितकारी कार्य वर्णन किया ॥ ५१ ॥

समासादुच्यतेकृत्यममात्यादेश्चलक्षणम् ।
मृदुगुरुप्रमाणत्ववर्णशब्दादिभिः समम् ५२

मन्त्री आदिकोंके कार्य और लक्षण संक्षेपसे वर्णन करते हैं कोमलता, गुरुता, प्रमाणवर्ण, शब्दादिकों सहित ॥ ५२ ॥

परीक्षकैर्द्रावयित्वायथास्वर्णंपरीक्ष्यते ।
कर्मणासहवासेनगुणैःशीलकुलादिभिः ५३

जैसे परीक्षकोंसे तपायकर सुवर्णकी परीक्षा कीजाती है तिसी प्रकार कर्मसे, सहवा

सखे, गुण, शील और कुलादिकसे भृत्यकीभी परीक्षा करै ॥ ५३ ॥

भृत्यंपरीक्षयेन्नित्यंविश्वास्यंविश्वसेत्तदा ।
नैवजातिर्नचकुलंकेवलंलक्षयेदपि ॥५४॥

भृत्यकी नित्य परीक्षा करै और तभी विश्वासके योग्यका विश्वास करै और केवल जाति और कुलहीको न देखै ॥ ५४ ॥

कर्मशीलगुणाःपूज्यास्तथाजातिकुलेनहि ।
नजात्यानकुलेनैवश्रेष्ठत्वंप्रतिपद्यते ॥५५॥

जैसे कर्म, शील, गुण पूज्य हैं तिस प्रकार जाति, कुल, पूज्य नहीं, केवल जाति और कुलसे श्रेष्ठताको प्राप्त नहीं होता ॥ ५५ ॥

विवाहेभोजनेनित्यंकुलजातिविवेचनम् ।
सत्यवान्गुणसंपन्नस्तथाभिजनवान्धनी ५६

विवाह और भोजनमे नित्य कुल और जातिका विवेक करै। सत्यवान, गुणी और कुटुम्बी और धनी ॥ ५६ ॥

सुकुलश्चसुशीलश्चसुकर्माचनिरालसः ।
यथाकरोत्यात्मकार्यंस्वामिकार्यंततोधिकम् ।

श्रेष्ठकुलसे उत्पन्न सुशील उत्तम कर्मका कर्त्ता और निरालस होकर जैसा अपना कार्य करै तिससे अधिक स्वामीका करै ॥५७॥

चतुर्गुणेनयत्नेनकायवाङ्मानसेनच ।
भृत्याचतुष्टेमृदुवाक्कार्यदक्षःशुचिर्दृढः ५८

अपने कार्यकी अपेक्षा चतुर्गुण यत्न और देह वाणी मनसे स्वामीके कार्यको करै भृति (नौकरी) से संतुष्ट रहै कोमलवाणी और कार्यमें चतुर और शुद्ध और दृढ रहै ॥५८॥

परोपकरणेदक्षोह्यपकारपराङ्मुखः ।
स्वाम्यागस्कारिणंपुत्रंपितरंचापिदर्शकः ॥

परके कार्यमें चतुर और परके अपकारसे निवृत्त रहै और अपने स्वामीके अपराधी पुत्र और पिताआदिका द्रष्टा अर्थात्‌देखतारहै ॥५९

अन्यायगामिनिपतौह्यतद्रूपःसुबोधकः ।
नाक्षेप्तातद्गिरंकांचित्तन्न्यूनस्याप्रकाशकः ॥

अन्याय करते स्वामीको बोधन करै (समझावै) और अन्यायमे स्वयं प्रवृत्त न हो और स्वामीकी वाणीमें शङ्का न करै और स्वामीकी न्यूनताभी प्रकाशित न करै ॥ ६० ॥

अदीर्घसूत्रःसत्कार्येह्यसत्कार्येचिरक्रियः ।
नतद्भार्यापुत्रमित्रच्छिद्रदर्शीकदाचन ६१॥

उत्तम कार्यको शीघ्र करै और असत् (बुरे) कार्यको विलंबसे करै और स्वामीकी स्त्री, पुत्र मित्र इनके छिद्रको कभी न देखै ॥ ६१ ॥

तद्वद्बुद्धिस्तदीयेषुभार्यापुत्रादिबंधुषु ।
नश्लाघतेस्पर्धतेननाभ्यसूयतिनिंदति॥६२॥

स्वामीके सम्बधी स्त्री, पुत्र, बन्धु आदिकोंमे स्वामीके समान बुद्धि रक्खे श्लाघा (बडाई) न करै और न स्पर्धा (तिरस्कार) की इच्छा करै और उनकी बडाई देखकर दुःखित न होय और न निन्दा करै॥ ६२ ॥

नेच्छत्यन्याधिकारांहिनिःस्पृहोमोदतेसदा ।
तद्दत्तवस्त्रभूषादिधारकस्तत्पुरोनिशम् ६३॥

अन्यके अधिकारकी इच्छा न करै निःस्पृह (इच्छारहित) हुआ सदा प्रसन्न रहै और स्वामीके दिये हुए वस्त्र, भूषण, आदिको स्वामीके आगे रात्रिदिन धारण करै ॥ ६३ ॥

भृतितुल्यव्ययीदांतोदयालुःशूरएवहि ।
तदकार्यस्यरहसिसूचकोभृतकोवरः ॥६४॥

अपनी भृति (नौकरी) के समान व्यय (खर्च) करै और दांत (चतुर) दयालु और शूरवीर और स्वामीके अन्यथा कार्यको एकांतमें जो सूचक करै वह भृत्य श्रेष्ठ होताहै॥६४॥

विपरीतगुणैरेभिर्भृतकोनिंद्यउच्यते ।
येभृत्याहीनभृतिकायेदंडेनप्रकर्षिताः ६५॥

जो पूर्वोक्त इन गुणोंसे हीन हो वह भृत्य निन्दायोग्य कहाता है। जो भृत्य हीनभृतिक (नौकरी रहित) है और दंडसे दुःखित है ॥ ६५ ॥

शठाश्चकातरालुब्धाःसमक्षप्रियवादिनः ।
मत्ताव्यसनिनश्चार्ताउत्कोचेष्टाश्चदेविनः ६६

और जो शठ और भीरु लोभी और प्रत्यक्षमें प्रियवादी है व्यसनी ( मदिरापान आदिमें प्रवृत्त ) और दुःखी है उत्कोच ( घूस ) लेनेमें इष्ट है और देवी द्यूतमें आसक्त है ।६६।

नास्तिकादांभिकाश्चैवसत्यवाचोभ्यसूयकाः।
येचापमानितायेऽसद्वाक्यैर्मर्मणिभेदिताः ॥

जो भृत्य नास्तिक दंभी और सत्य बोलनेमें निंदा प्रगट करते हैं और जो अपमानको प्राप्त हुए हैं, और जो कुवाक्योंसे मर्ममें विंधे हैं ॥ ६७ ॥

चंडाःसाहसिकाधर्महीनानैतेसुसेवकाः ।
संक्षेपतस्तुकथितंसदसद्भृत्यलक्षणम् ६८॥

चंड ( अतिक्रोधी ) साहसिक ( अविचारसे कार्यकारी ) धर्महीन ऐसे भृत्य अच्छे नहीं होते, संक्षेपसे उत्तम और अधम भृत्यों के लक्षण वर्णन किये ॥ ६८ ॥

समासतःपुरोधादिलक्षणंयत्तदुच्यते ।
पुरोधाचप्रतिनिधिःप्रधानसचिवस्तथा ६९
मंत्रीचप्राड्विवाकश्चपंडितश्चसुमंत्रकः ।
अमात्योदूतइत्येताराज्ञःप्रकृतयोदश ॥७०॥

संक्षेपसे पुरोहित आदिकोंके जो लक्षण होते हैं सो कहते हैं–पुरोहित प्रतिनिधि ( कायममुकाम ), प्रधानमंत्री, मंत्री, प्राड्विवाक ( वकील ), पंडित, श्रेष्ठमंत्री, अमात्य, दूत, ये दश राजाकी प्रकृति होती हैं॥६९-७०

दशमांशाधिकाःपूर्वदूतांताःक्रमशःस्मृताः ।
अष्टप्रकृतिभिर्युक्तोनृपःकैश्चित्स्मृतःसदा ७१

पूर्वोक्त पुरोहित आदि और दूततक दशांश अधिक मासिक आदिके भागी क्रमशः होने कहे हैं और कोई ऋषि आठ प्रकृतियोंसे युक्त राजाको वर्णन करते हैं ॥ ७१ ॥

सुमंत्रःपंडितोमंत्रीप्रधानःसचिवस्तथा ।
अमात्यःप्राड्विवाकश्चतथाप्रतिनिधिःस्मृतः।

सुमंत्र, पंडित, मंत्री, प्रधान, सचिव, अमात्य, प्राड्विवाक, प्रतिनिधि ये प्रकृति हैं ॥ ७२ ॥

एताभृतिसमास्त्वष्टौराज्ञःप्रकृतयःसदा ।
इंगिताकारतत्त्वज्ञोदूतस्तदनुगःस्मृतः॥७३॥

समान है मासिक जिनका ऐसे पूर्वोक्त सुमंत्र आदि प्रकृति कहे हैं जो चेष्टा और आकृतिके तत्त्वको जाने वह राजाका अनुयायी दूत होता है ॥ ७३ ॥

पुरोधाःप्रथमंश्रेष्ठःसर्वेभ्योराजराष्ट्रभृत ।
तदनुस्यात्प्रतिनिधिःप्रधानस्तदनंतरम् ७४

सबसे श्रेष्ठ और प्रथम और संपूर्ण देशका पालनकर्त्ता पुरोहित होता है और पुरोहितका अनुयायी प्रतिनिधि और प्रतिनिधिके अनंतर प्रधान होता है ॥ ७४ ॥

सचिवस्तुततःप्रोक्तोमंत्रीतदनुचोच्यते ।
प्राड्विवाकस्ततःप्रोक्तःपंडितस्तदनंतरम् ७५

तिसके अनंतर सचिव और तिसके अनंतर मंत्री और तिसके अनंतर प्राड्विवाक और तिसके अनंतर पंडित होता है ॥ ७५ ॥

सुमंत्रस्तुततःख्यातोह्यमात्यस्तुततःपरम् ।
दूतस्ततःक्रमादेतेपूर्वश्रेष्ठायथागुणाः ॥७६॥

तिसके अनंतर सुमंत्र और तिसके अनंतर अमात्य और तिसके अनंतर दूत ये पूर्वोक्त क्रमसे गुणोंके अनुसार श्रेष्ठ होते हैं ॥ ७६ ॥

मंत्रानुष्ठानसंपन्नस्त्रैविद्यःकर्मतत्परः ।
जितेंद्रियोजितक्रोधोलोभमोहविवर्जितः ७७

मन्त्र और अनुष्ठानमें सम्पन्न (कुशल), वेदत्रयीके ज्ञाता, कर्ममें तत्पर, जितेंद्रिय, जितक्रोध, लोभ और मोह रहित ॥ ७७ ॥

षडंगवित्सांगधनुर्वेदविच्चार्थधर्मवित् ।
यत्कोपभीत्याराजापिधर्मनीतिरतोभवेत् ७८

वेदके व्याकरण आदि छः अङ्गोंका ज्ञाता और धनुर्विद्याका और धर्मका ज्ञाता हो

जिसके क्रोधके भयसे राजा भी धर्म और नीतितत्पर हो जाय ॥ ७८ ॥

नीतिशास्त्रास्त्रव्यूहादिकुशलस्तुपुरोहितः ।
सैवाचार्यःपुरोधायःशापानुग्रहयोःक्षमः ७९

नीति शास्त्र और अस्त्रके समूहमे कुशलहो वही पुरोहित होता है वही आचार्य होता है और वह पुरोहित ऐसा होना चाहिये जो शाप और अनुग्रह ( दयाभाव ) में समर्थ हो ॥७९॥

विनाप्रकृतिसन्मंत्राद्राज्यनाशोभवेन्मम ।
विरोधनंभवेदेवंराज्ञस्तेस्युः सुमंत्रिणः॥८०॥

प्रजाकी संमतिके विना राज्यका नाश होता है और मेरा विरोध होता है इस प्रकार के अवसर पर संमतिके जो दाता हैं वे राजा के सुमन्त्री होते हैं ॥८०॥

नबिभेतिनृपोयेभ्यस्तैःकिंस्याद्राज्यवर्धनम्।
यथालंकारवस्त्राद्यैःस्त्रियोभूष्यास्तथाहिते ॥

जिन मन्त्रियोंसे राजा भय नहीं करता उनसे राज्यकी क्या वृद्धि होती है इससे जिस प्रकार स्त्रियोंको वस्त्र, भूषण आदि भूषित करते हैं इसी प्रकार मंत्रियोंकोभी राजा भूषित करै ॥८१॥

राज्यंप्रजाबलंकोशःसुनृपत्वंनवर्धितम् ।
यन्मंत्रतोरिनाशस्तैर्मंत्रिभिःकिंप्रयोजनम् ॥

राज्य, प्रजा, सेना, कोश, (खजाना)राजाके उत्तमता, शत्रुनाश जिन मंत्रियोंकी सम्मतिसे पूर्वोक्त राज्य आदि वृद्धिको प्राप्त नहीं हुए ऐसे मंत्रियोंसे क्या प्रयोजन है अर्थात् कुछ भी नहीं ॥८२॥

कार्याकार्यप्रविज्ञातास्मृतःप्रतिनिधिस्तुसः ।
सर्वदर्शीप्रधानस्तुसेनावित्सचिवस्तथा ८३

कार्य और अकार्यका प्रतिज्ञाता जो हो उसे प्रतिनिधि कहते हैं राजाके सम्पूर्ण कार्योंका जो द्रष्टा उसे प्रधान कहते हैं और सेनाका जो ज्ञाता उसे सचिव कहते हैं ॥८३॥

मंत्रीतुनीतिकुशलःपंडितोधर्मतत्त्ववित् ।
लोकशास्त्रनयज्ञस्तुप्राड्विवाकःस्मृतःसदा ॥

नीतिमे जो कुशल उसे मंत्रि और धर्मतत्त्व का जो ज्ञाता उसे पंडित और लोक और शास्त्रकी नीतिका जो ज्ञाता उसे प्राड्विवाक कहते हैं ॥ ८४ ॥

देशकालप्रविज्ञाताह्यमात्यइतिकथ्यते ।
आयव्ययप्रविज्ञातासुमंत्रःसचकीर्तितः ८५

देशकालके ज्ञाताको अमात्य कहते हैं, आय ( आदमनी ) व्यय (खर्च) का जो ज्ञाता उसे सुमन्त्र कहते हैं ॥८५॥

इंगिताकारचेष्टज्ञःस्मृतिमान्देशकालवित् ।
षाड्गुण्यमंत्रविद्वाग्मीवीतभीर्दूतइष्यते ॥

इंगित नेत्रसे इच्छाका प्रकाश आकार और चेष्टाका ज्ञाता और स्मृतिमान् ( धारणाका ( अधिकारी ) और देशकालका ज्ञाता छः है गुण जिसमे ऐसे मत्रका वेत्ता वाग्मी यथार्थ धीरतासे वक्ता और भयरहित इस प्रकारके लक्षण जिसमें हों उसे दूत कहते है ॥८६॥

अहितंचाप्रियत्कार्यंसद्यःकर्तुंयदौचितम् ।
अकर्तुंयद्धितमपिराज्ञःप्रतिनिधिःसदा ८७

राजाके अहितकार्य और तत्काल कर्तव्य कार्य और अकर्तव्य कार्य और हितकारी कार्यको प्रतिनिधि सर्वकालमे जाने ॥८७॥

बोधयेत्कारयेत्कुर्यान्नकुर्यान्नप्रबोधयेत् ।
सत्यंवायदिवासत्यंकार्यजातंचयत्किल ८८

और जो सत्य कार्यका समूह है उसे बोधन करै अथवा किसीसे करवा दे और जो असत्य कार्योंका समूह है उसे न तो आप करै और न किसीको विदित करै ॥८८॥

सर्वेषांराजकृत्येषुप्रधानस्तद्विचिंतयेत् ।
गजानांचतथाश्वानांरथानांपदगामिनाम् ॥

सम्पूर्ण राजकार्योंमें सत्य और असत्यका प्रधान चिन्तन करै और हस्ति, अश्व, रथ,

और पदाति इनकी भी परिक्षा प्रधान ही करे॥ ८९॥

सद्ढानांतथोष्ट्राणांवृषाणांसद्यएवहि।
वाद्यभाषासुसंकेतव्यूहाभ्यसनशालिनाम्॥

और दृढ उष्ट्र (ऊंट) और वृष (बैल) वाद्य (बाजे) के संकेत और व्यूह कसरतके (अभ्यासियोंके आचरणोंको देखै॥ ९०॥

प्राक्प्रत्यग्गामिनांराज्यचिह्नशस्त्रास्त्रधारिणाम्। परिचारगणानांहिमध्यमोत्तमकर्मणाम्॥ ९१॥

पूर्व और पश्चिमके गमनकर्त्ता और मध्यम उत्तम है कर्म जिनका ऐसे जो राज्यके चिह्न शस्त्र अस्त्रके धारी परिचारक (सेवक) उनके आचरणको भी देखै॥ ९१॥

अस्त्राणामस्त्रगतीनांसद्यस्त्वंतुरगीगणः।
कार्यक्षमश्चप्राचीनःसाद्यस्कःकतिविद्यते॥

अस्त्र और शस्त्रधारी इनकी नवीनता और सवारोंका समूह कितना कार्यकारी है और कितना प्राचीन है और कितना नवीन है इसकी चिन्ता भी प्रधान ही रक्खै॥ ९२॥

कार्यासमर्थःकत्यस्तिशस्त्रगोलाग्निचूर्णयुक्।
सांग्रामिकश्चकत्यस्तिसंभारस्तान्विचिंत्यच

और कितना कार्यकारी नहीं है और दारू और गोलेके संयुक्त शस्त्र कितने हैं और सग्रामके योग्य सम्भार कितना है इसको चिन्तन करके॥ ९३॥

सचिवश्चापितत्कार्यंराज्ञेसम्यग्निवेदयेत्।
सामदानश्चभेदश्चदंडःकेषुकदाकथम्॥ ९४॥

और सचिव भी पूर्वोक्त कार्यको राजाके प्रति भलीप्रकार निवेदन करै और साम दान भेद दंड किनको उचित है और किस कालमें देना होगा यह भी मन्त्री राजाको निवेदन करै॥ ९४॥

कर्तव्यःकिंफलंतेभ्योबहुमध्यंतथाल्पकम्।
एतत्संचिंत्यनिश्चित्यमंत्रीसर्वंनिवेदयेत्॥ ९५॥

और पूर्वोक्त दंडोंसे क्या उत्तम मध्यम अल्प फल होगा यह सम्पूर्ण निश्चय और चिंतन करके मन्त्री निवेदन करै॥ ९५॥

साक्षिभिर्लिखितैर्भोगैश्छलभूतैश्चमानुषान्।
स्वानुत्पादितसंप्राप्तव्यवहारान्विचिंत्यच॥

साक्षियोंने लिखे जो भोग उनसे और छलके बलसे किये भोगोंसे अपने मनुष्योंको ऐसे देखै कि आप उत्पन्न करके ये व्यवहारी हैं अर्थात् अनर्थसे नहीं॥ ९६॥

दिव्यसंसाधनान्वापिकेषुकिंसाधनंपरम्।
युक्तिप्रत्यक्षानुमानोपमानैर्लोकशास्त्रतः॥

दिव्य साधनके योग्यको और किसमें कौन साधन है इनको प्रत्यक्ष अनुमान उपमान लोक और शास्त्रसे मन्त्री जाने॥ ९७॥

बहुसम्मतसंसिद्धान्विनिश्चित्यसभास्थितः।
ससभ्यःप्राड्विवाकस्तुनृपंसंबोधयेत्सदा॥

अनेक सम्मतियोंसे सिद्ध कार्योंको सभासदोंके सहित प्राड्विवाक (वकील) सभामें स्थित होकर-राजाको निवेदन करै॥ ९८॥

वर्तमानाश्चप्राचीनाधर्माःकेलोकसंश्रिताः।
शास्त्रेषुकेसमुद्दिष्टाविरुध्यंतेचकेधुना॥ ९९॥
लोकशास्त्रविरुद्धाःकेपंडितस्तान्विचिंत्यच।
नृपंसंबोधयेत्तैश्चपरत्रेहसुखप्रदैः॥ १००॥

वर्तमान और प्राचीन धर्म लोकमें कौनसे हैं और शास्त्रमें कौनसे कहे हैं और अब कौनसे धर्म शास्त्रके विरुद्ध हैं और लोक और शास्त्र दोनोंसे कौनसे धर्म विरुद्ध हैं पण्डित विचारकर इस लोक और परलोकमें सुखदायक उन धर्मोंको राजाके प्रति बोधित करै (बतावै)॥ ९९॥ १००॥

इयच्चसंचितंद्रव्यंवत्सरेस्मिंस्तृणादिकम्।
व्ययीभूतमियच्चैवशेषंस्थावरजंगमम्॥ १॥
इयदस्तीतिवैराज्ञेसुमंत्रोविनिवेदयेत्।
पुराणिचकतिग्रामाअरण्यानिचसंतिहि॥ २॥

इस वर्षमें इतना तृण आदि द्रव्य सञ्चय हुआ है और इतना व्यय ( खर्च ) हुआ है और इतना शेष ( बाकी ) है और इतना स्थावर ( वृक्षादि ) और इतना जंगम ( पशुआदि ) है यह सम्पूर्ण सुमन्त्र राजाके प्रति निवेदन करै और कितने पुर हैं और कितने ग्राम हैं और कितने अरण्य ( वन ) हैं यह अमात्य राजाके प्रति निवेदन करै ॥ १ ॥ २ ॥

कर्षिताकतिभूःकेनप्राप्तोभागस्ततःकति ।
भागशेषंस्थितंतस्मिन्कत्यकृष्टाचभूमिका॥

किसने कितनी भूमि जोती है और कितना भाग उससे मिला और कितना शेष रहा और बिना जोती भूमि कितनी है यह भी अमात्य ही राजाको निवेदन करै ॥ ३ ॥

भागद्रव्यंवत्सरेस्मिञ्छुल्कंदंडादिजंकति ।
अकृष्टपच्यंकतिचकतिचारण्यसंभवम्॥४॥

इस वर्ष कितना द्रव्य भागका हुआ और कितना शुल्क ( महसूल ) और कितना द्रव्य दंडका हुआ और बिना जोते कितना अन्न हुआ और कितना अन्न वनमे उत्पन्न हुआ यह भी अमात्य निवेदन करै ॥ ४ ॥

कतिचाकरसंजातंनिधिप्राप्तंकतीतिच ।
अस्वामिकंकतिप्राप्तंनाष्टिकंतस्कराहृतम् ५॥

आकर ( खान ) से कितना द्रव्य उत्पन्न हुआ और निधि खजानेमे कितना है और अस्वामिक ( लावारसी ) कितना मिला और चोरीसे कितना नष्ट हुआ यह भी अमात्य ही निवेदन करै ॥ ५ ॥

संचितंतुविनिश्चित्यामात्योराज्ञेनिवेदयेत् ।
समासाल्लक्षणंकृत्यंप्रधानदशकस्यच ॥६॥

और संचित द्रव्यका निश्चय करिके अमात्य राजाके प्रति निवेदन करै और पूर्वोक्त दश प्रधानोंका लक्षण और कृत्य संक्षेपसे कहा ॥ ६ ॥

उक्तंतल्लिखितैःसर्वैर्विद्यात्तदनुदर्शिभिः ।
परिवर्त्यनृपोह्येतान्युंज्यादन्योन्यकर्मणि॥७॥

प्रधान आदिके लेखसे उनके लेखको अनुदर्शियों ( देखनेवालों ) से जाने और राजा पूर्वोक्त प्रधान आदिकोको बदलता हुआ परस्परके कर्ममें नियुक्त करै अर्थात् मंत्रियोंके स्थानपर अमात्य और अमात्यकी पदवीपर मंत्री इत्यादि ॥ ७ ॥

नकुर्यात्स्वाधिकबलान्कदापिह्यधिकारिणः।
परस्परंसमबलाःकार्याःप्रकृतयोदश ॥ ८ ॥

अपनेसे प्रबल अधिकारियोंको कदाचित् न करे पूर्वोक्त दश प्रकृति समबल ( एकसे ) करने ॥ ८ ॥

एकस्मिन्नधिकारेतुपुरुषाणांत्रयंसदा ।
नयुंजीतप्राज्ञतमंमुख्यमेकंतुतेषुवै ॥ ९ ॥

एक एक अधिकारके तीन २ साक्षियोंके निमित्त पुरुष नियुक्त करै और उनमें एक अत्यन्त बुद्धिमानको नियुक्त करै ॥ ९ ॥

द्वौदर्शकौतुतत्कार्येहायनैस्तन्निवर्तनम् ।
त्रिभिर्वापंचभिर्वापिसप्तभिर्दशभिश्चवा॥१०॥

और उसके कार्यके दो द्रष्टा हों और तीन, पांच, सात अथवा दश वर्षमे उनकी निवृत्ति करै ॥१०॥

दृष्ट्वातत्कार्यकौशल्यंतथातंपरिवर्तयेत् ।
नाधिकारंचिरंदद्याद्यस्मैकस्मैसदानृपः ।११

तिनको कार्य और कुशलता जैसी देखै तैसे ही पदवीपर बदले और जिस किसीको चिरकालतक राजा अधिकार न दे ॥ ११ ॥

अधिकारेक्षमंदृष्ट्वाह्यधिकारेनियोजयेत् ।
अधिकारमदंपीत्वाकोनमुह्यात्पुनश्चिरम् ॥

अधिकारके योग्य देखकर अधिकारमें नियुक्त करै क्योंकि अधिकाररूपी मदको चिरकालतक पीकर कौन मोहको प्राप्त नहीं होता ॥ १२ ॥

अतःकार्यक्षमंदृष्ट्वाकार्येऽन्येतंनियोजयेत् ।
तत्कार्येकुशलंचान्यंतत्पदानुगतंखलु ।१३॥

इससे कार्यके योग्य देखकर अन्यकार्यमे तिसे नियुक्त करे और तिसके कार्यपर उसके अनुयायी अन्यको नियुक्त करै ॥१३॥

नियोजयेद्वर्तनेतुतदभावेतथापरम् ।
तद्गुणोयदितत्पुत्रस्तत्कार्येतंनियोजयेत् ॥

उसके अभावमें वर्त्तन (लौटने) मे अन्यको नियुक्त करे, यदि उन गुणोंसे युक्त उसका पुत्र होय तो उसके कार्यमे उसे नियुक्त करै ॥ १४ ॥

यथायथाश्रेष्ठपदेह्यधिकारीयदाभवेत् ।
अनुक्रमेणसंयोज्येह्यंतेतंप्रकृतिंनयेत्॥१५॥

जैसा २ अधिकारी हो तैसे २ श्रेष्ठ पदपर नियुक्त करे इस प्रकार दश प्रकृतियोको पदवी पर अन्तसमय नियुक्त करै ॥ १५ ॥

अधिकारबलंदृष्ट्वायोजयेद्दर्शकान्बहून् ।
अधिकारिणमेकंवायोजयेद्दर्शकंविना॥१६॥

अधिकारके बलको देखकर बहुत द्रष्टाओंको नियुक्त करै अथवा द्रष्टाके विना एक अधिकारीको नियुक्त करै ॥ १६ ॥

येचान्येकर्मसचिवास्तान्सर्वान्विनियोजयेत्।
गजाश्वरथपादातपशूष्ट्रमृगपक्षिणाम् १७॥

जो इतर कर्मोके सचिव है उन संपूर्णोको नियुक्त करै और हस्ती, अश्व, रथ, पदाति, पशु, ऊंट, मृग, पक्षियोंके पृथक् २ अधिपति नियुक्त करै ॥ १७ ॥

सुवर्णरत्नरजतवस्त्राणामधिपान्पृथक् ।
वितानाद्यधिपंधान्याधिपंपाकाधिपंतथा ॥

सुवर्ण, रत्न, चांदी, वस्तु, इनके अधिपति वितान (तंबू) आदिकोके अधिपति अन्न और पाक (रसोई) के अधिपति पृथक् २ नियुक्त करै ॥ १८ ॥

आरामाधिपतिंचैवसौधरोहाधिपंपृथक् ।
संभारपंदेवतुष्टिपतिंदानपतिंसदा ॥ १९ ॥

आराम (बगीचे) का अधिपति मंदिरोंका अधिपति संभारोंका अधिपति देवताओंके स्थानोंका अधिपति और दानाध्यक्ष इनको पृथक् २ नियुक्त करै ॥ १९ ॥

साहसाधिपतिंचैवग्रामनेतारमेवच ।
भागहारंतृतीयंतुलेखकंचचतुर्थकम् ॥२०॥

साहस (दंड) का अधिपति ग्रामका नेता (चौधरी) तीसरा भागको लेनेवाला और चौथा लेखक इनको भी नियत करै ॥२०॥

शुल्कग्राहंपंचमंचप्रतिहारंतथैवच ।
षट्कमेतन्नियोक्तव्यंग्रामेग्रामेपुरेपुरे ॥२१॥

पांचवां शुल्क (मोल) का ग्राहक और छठा प्रतीहार इन पूर्वोक्त छःओंको ग्राम२ पुर २ मे नियुक्त करै ॥ २१ ॥

तपस्विनोदानशीलाःश्रुतिस्मृतिविशारदाः।
पौराणिकाःशास्त्रविदोदैवज्ञामांत्रिकाश्चये ॥

तपस्वी, दाता, श्रुति (वेद) स्मृतिमें चतुर पुराणोंके ज्ञाता शास्त्रोंके ज्ञाता ज्योतिषी मंत्रोंके जो ज्ञाता हैं ॥ २२ ॥

आयुर्वेदविदःकर्मकांडज्ञास्तांत्रिकाश्चये ।
येचान्येगुणिनःश्रेष्ठाबुद्धिमंतोजितेंद्रियाः ॥

वैद्य, कर्मकांडके ज्ञाता तन्त्रके ज्ञाता और गुणवान् हैं श्रेष्ठ हैं और बुद्धिमान् जितेंद्रिय है ॥ २३ ॥

तान्सर्वान्पोषयेद्भृत्यान्दानमानैःसुपूजितान्
हीयतेचान्यथाराजाह्यकीर्तिंचापिविंदति॥

तिन तपस्वी आदिकोंको (नौकरी) से दान सत्कारसे पूजित करके पोषण करै यदि पोषण न करै तो राजहानिको और कुकीर्तिको प्राप्त हो ॥ २४ ॥

बहुमाध्यानिकार्याणितेषामप्यधिपांस्तथा ।
तत्तत्कार्येषुकुशलाञ्ज्ञात्वातांस्तुनियोजयेत्।

जो कार्य बहुतसे मनुष्योंसे हों उनके भी अधिपति नरकार्योंमे कुशल जानकर नियुक्त करै ॥ २५ ॥

अमंत्रमक्षरंनास्तिनास्तिमूलमनौषधम् ।
अयोग्यःपुरुषोनास्तियोजकस्तत्रदुर्लभः॥

मन्त्रके विना अक्षर नहीं और औषधिके विना मूल नहीं और अयोग्य पुरुष नहीं परन्तु योजन करनेहारा वहां दुर्लभ है ॥२६॥

प्रभद्रादिजातिभेदंगजानांचचिकित्सितम् ।
शिक्षांव्याधिंपोषणंचतालुजिह्वानखैर्गुणान्॥

प्रभद्र आदि हाथियोंकी जातियोंके भेद और हाथियोंके चिकित्सक, शिक्षा, रोग, पोषण, तालु, जिह्वा, नख, इनके गुण तिनका जो ज्ञाता ॥ २७ ॥

आरोहणंगतिंवेत्तिसयोज्योगजरक्षणे ।
तथाविधाधोरणस्तुहस्तीहृदयहारकः २८॥

चढना, गमन, जो जाने उस मनुष्यको गजोंकी रक्षामे नियुक्त करै और वैसेही आधोरण ( पीलवान् ) को नियुक्त करै जो हाथीके हृदयको वश करले ॥२८॥

अश्वानांहृदयंवेत्तिजातिवर्णभ्रमैर्गुणान् ।
गतिंशिक्षांचिकित्सांचसत्त्वंसाररुजंतथा ॥

जो अश्वोंके हृदयको और जाति वर्ण गमनसे गुणोंको और गति, शिक्षा, चिकित्सा, बल, दृढता और रोग इनको जाने ॥२९॥

हिताहितंपोषणंचमानंयानंदतोवयः ।
शूरश्चव्यूहवित्प्राज्ञःकार्योश्वाधिपतिश्चसः ॥

हित और अहित, पोषण, मान. ( प्रमाण ) यान, ( गति ) दन्त, अवस्था इनको जो जाने ऐसा शूरवीर व्यूहका ज्ञाता विद्वान् अश्वोका अधिपति नियुक्त करना ॥ ३० ॥

एभिर्गुणैश्चसंयुक्तोधुर्यान्युग्यांश्चवेत्तियः।
रथस्यसारंगमनंभ्रमणंपरिवर्तनम् ॥ ३१ ॥

इन पूर्वोक्तगुणोंसे संयुक्त धुर्य अर्थात् धुरके योग्य, युग्य अर्थात् यानके वहनेको समर्थ, अश्वोंका ज्ञाता और रथकी सारता और गमन और भ्रमण और परिवर्त्तन ( लौटाना ) इनको जो यथार्थ जाने ऐसा सारथी नियुक्त करै ॥ ३१ ॥

समापतत्सुशस्त्रास्त्रलक्ष्यसंधाननाशकः ।
रथगत्यारथहयहयसंयोगगुप्तिवित् ॥३२॥

योद्धाओंके सम्मुख शस्त्र और अस्त्रोंके लक्ष्यके सन्धानको जो नाश करै और रथकी गति और रथ, अश्व और अश्वोंका मेल और रक्षा इनको जानै ॥३२॥

सादिनश्चतथाकार्याःशूराव्यूहविशारदाः ।
वाजिगतिविदःप्राज्ञाःशस्त्रास्त्रैर्युद्धकोविदाः॥

और सादि ( असवार भी ) ऐसे करने जो शूर. व्यूह ( कवायद ) में चतुर, घोडोंकी गतिका वेत्ता, विद्वान, शस्त्र और अस्त्रोंसे युद्धमें कुशल हों ॥ ३३ ॥

चक्रितंरेचितंवल्गितंकंधौरितमाप्लुतम् ।
तुरंमंदंचकुटिलंसर्पणंपरिवर्तनम् ॥ ३४ ॥
एकादशास्कंदितंचगतीरश्वस्यवेत्तियः ।
यथाबलयथर्तुचशिक्षयेत्सचशिक्षकः ॥३५॥

चक्रके समान गति, रेचित गति, मधुरगति, धौरितगति, आप्लुतगति, तुर ( शीघ्रगति ), मन्दगति, कुटिलगति, सर्पणगति, परिवर्त्तन गति, आस्कंदितगति, इन पूर्वोक्त एकादश गतियोंको जो जाने और अश्वके बल और ऋतुके अनुसार अश्वको शिक्षा दे ऐसे मनुष्यको शिक्षक नियुक्त करै ॥३४॥३५॥

वाजिसेवासुकुशलःपल्याणादिनियोगवित्।
दृढांगश्चतथाशूरःसकार्योवाजिसेवकः ॥

घोडोंकी सेवामे कुशल, पल्याण ( चारजामा वगैरह ) की स्थितिका ज्ञाता दृढांग और शूर वीर ऐसा जो हो वह घोडोंका सेवक करना ॥ ३६ ॥

नीतिशस्त्रास्त्रव्यूहादिनतिविद्याविशारदाः।
अबालामध्यवयसःशूरादांतादृढांगकाः ३७

जो नीतिशास्त्र, अस्त्रसमूह, नम्रताओंसे चतुर हो, बालक न हो, यौवनको भोक्ता शूरवीर दांत दृढांग हो ॥३७॥

स्वधर्मनिरतानित्यंस्वामिभक्तारिपुद्विषः ।
शूद्रावाक्षत्रियावैश्याम्लेच्छाःसंकरसम्भवाः।
सेनाधिपाःसैनिकाश्चकार्याराज्ञाजयार्थिना ।

अपने अपने धर्ममें नित्य स्थित और स्वामीके भक्त, शत्रुओंके द्वेषी, शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य, म्लेच्छ, वर्णसङ्कर इन जातियोंके हों ३८ ऐसे सेनाधिप और सैनिक (सेनाके योद्धा) जयकी इच्छा करनेवाले राजाको करने चाहिये ॥ ३९ ॥

पंचानामथवाषण्णामधिपः पदगामिनाम्। योज्यःसपत्तिपालःस्यात्त्रिंशतांगौल्मिकः स्मृतः। शतानांतुशतानीकस्तथानुशति-कोवरः ॥ ४० ॥

पांच अथवा छैः सिपाहियोंका अधिप जो हो ॥ ३९ ॥ उसे पत्तिपाल कहते हैं तीस सिपाहियोंके अधिपतिको गौल्मिक कहते हैं शतके अधिपको शतानीक और अनुशतिक उससे उत्तमको कहते हैं ॥ ४० ॥

सेनानीर्लेखकश्चैतेशतंप्रत्यधिपाइमे। साहस्रिकस्तुसंयोज्यस्तथाचायुतिकोमहान्

सनानी और लेखक ये सब शतके अधिपति होते हैं और सहस्रका अधिपति और दश सहस्रका अधिपति नियुक्त करना ॥ ४१ ॥

व्यूहाभ्यासंशिक्षयेद्यःसायंप्रातस्तुसैनिकान् जानातिसशतानीकःसुयोद्धुंयुद्धभूमिकाम् ॥

व्यूह (कवायद) के अभ्यासकी जो सायंकाल और प्रातःकाल सैनिकोंको शिक्षा दे और युद्धभूमिमे युद्ध करनेको जो जाने उसे शतानीक कहते है ॥ ४२ ॥

तथाविधोनुशतिकः शतानीकस्यसाधकः। जानातियुद्धसम्भारंकार्ययोग्यंचसैनिकम् ॥

तैसाही शतानीकका शिक्षक अनुशतिक होता है, जो युद्धके सम्भारों और कार्यमें कुशल सेनाके सिपाहियोंको जाने ॥ ४३ ॥

निदेशयतिकार्याणिसेनानीर्यामिकांश्चसः। परिवृत्तिंयामिकानांकरोतिसचपत्तिपः ॥

सिपाहियोंको जो कार्य बतावे उसे सेनानी कहते हैं और जो सिपाहियोंकी परिवृत्ति (बदली) करे उसे पत्तिप कहते हैं ॥ ४४ ॥

सावधानंयामिकानांविजानीयाच्चगुल्मपः।

जो सिपाहियोंकी सावधानीको जानें उसे गुल्मप कहते हैं ॥

सैनिकाःकतिसंत्येतैःकतिप्राप्तंतुवेतनम् ४५ प्राचीनाःकेकुत्रगताश्चैतान्वेत्तिसलेखकः। गजाश्वानांविंशतेश्चाधिपोनायकसंज्ञकः ॥

ये सैनिक कितने हैं और कितना वेतन (नौकरी) मिली ॥ ४५ ॥ प्राचीन सैनिक कितने हैं और वे कहां गये इसको जो जाने उसे लेखक कहते हैं। बीस हाथी और बीस अश्वोंका जो अधिपति उसे नायक कहते हैं ॥ ४६ ॥

उक्तसंज्ञान्स्वस्वचिह्नैर्लाञ्छितांश्चनियोजयेत्।

उक्त संज्ञावालोंको अपने अपने चिह्नोंसे चिह्नित करके नियुक्त करे ॥

अजाविगोमहिष्येणमृगाणामधिपाश्चये ॥

बकरी, भेड, गौ, भैंस, मृग इनके अधिपोंको भी इसी प्रकार चिह्नित करके नियुक्त करे ॥ ४७ ॥

तद्वृद्धिपुष्टिकुशलास्तद्वात्सल्यानिपीडिताः तथाविधागजोष्ट्रादेर्योज्यास्तत्सेवकाअपि॥

तिनकी वृद्धि और पुष्टिमे जो कुशल और तिनपर दयालु और पीडा रहित हों और तैसे ही गज ऊंट आदिके भी सेवक नियुक्त करने ॥ ४८ ॥

युद्धप्रवृत्तिकुशलास्तित्तिरादेश्चपोषकाः। शुकादेःपाठकाः सम्यक्छ्येनादेःपातबो-धकाः ॥ ४९ ॥

तत्तद्धृदयविज्ञानकुशलाश्चसदाहिते।

युद्धकी प्रवृत्तिमे कुशल और तित्तिर आदिके पोषक (पालक) और तोतोंके उत्तम पा-

ठक और शिखरेके पात ( गिरने ) के बोधक नियुक्त करमे ॥ ४९ ॥ तिस २ के हृदयके जाननेमें सदा कुशल वे हों ॥

मानाकृतिप्रभावर्णजातिसाम्याच्चमौल्यवित् ।
रत्नानांस्वर्णरजतमुद्राणामधिपश्चसः ।

मान, आकार, प्रभा, वर्ण और जाति इनकी साम्यतासे मूल्यका वेत्ता हो ॥५०॥ वह रत्न, स्वर्ण, चांदी मुद्रा इनका अधिप हो ॥

दांतस्तुसधनोयस्तुव्यवहारविशारदः ।
धनप्राणोतिकृपणःकोशाध्यक्षःसएवहि ॥

जितेन्द्रिय, धनी, व्यवहारमें चतुर, धनमें जिसके प्राण हों, अत्यन्त कृपण ऐसा कोशाध्यक्ष होता है ॥

देशभेदैर्जातिभेदैःस्थूलसूक्ष्मबलाबलैः ।
कौशेयादेर्मानमूल्यवेत्ताशास्त्रस्यवस्त्रपः ॥

देश और जातिके भेद स्थूल सूक्ष्म बल और निबलतासे ॥ ५२ ॥ रेशमके मान और मूल्यका ज्ञाता और शास्त्रका वेत्ता वस्त्रोंका अधिप होता है ॥

कीटकंचुकनेपथ्यमंडपादेःपरिक्रियाम् ॥
प्रमाणतःसौचिकेनरंजनानिचवेत्तियः ।
तथाशय्यादिसंधानंवितानादेर्नियोजनम् ॥

वस्त्र और वेप और मण्डपकी क्रियाको जो जानै ॥ ५३ ॥ सूचीके प्रमाणसे रंगोंको जो जानै और शय्यादिक सन्धान वितान ( चन्दोआ ) का नियोग जो जाने ॥ ५४ ॥

वस्त्रादीशंचसप्रोक्तोवितानाद्यधिपःखलु ।

वस्त्रका ज्ञाता ऐसा पुरुष वितान छवानेका अधिप हो ॥

जातितुलांचमौल्यंचसारंभोगंपरिग्रहम् ।
संमार्जनंचधान्यानांविजानातिसधान्यपः ॥

जाति, तोल, मौल्य, सार, भोग, परिग्रह ॥ ५५ ॥ अन्नकी शुद्धि ( छडन ) जो जाने उसे धान्यपति करना ॥

धौताधौतविपाकज्ञोरससंयोगभेदवित् ।
क्रियासुकुशलोद्रव्यगुणवित्पाकनायकः ॥

मलीन शुद्ध पाकका ज्ञाता रसके संयोग भेदका ज्ञाता ॥ ५६ ॥ क्रियामें कुशल द्रव्यके गुणका वेत्ता जो हो उसे पाकनायक करना ॥

फलपुष्पवृद्धिहेतुंरोपणंशोधनंतथा ॥५७॥
पादपानांयथाकालंकर्तुंभूमिजलादिना ।
तद्भेषजंचसंवेत्तिह्यारामाधिपतिश्चसः ॥५८॥

फल फूलकी वृद्धिका कारण रोपण (लगाना) और शोधन ॥ ५७ ॥ वृक्षोंका ( रोपण ) भूमि जलादिकसे कालके अनुसार जो जाने और उनका भेपज ( इलाज ) जो जाने वह आरामका अधिप होता है ॥ ५८ ॥

प्रासादंपरिखांदुर्गंप्राकारंप्रतिमांतथा ।
यन्त्राणिसेतुबंधंचवापीकूपंतडागकम् ५९॥

ऐसे पुरुषको गृह बनानेका अधिप करै प्रासाद ( मकान ) खाई किला प्राकार परकोटा की प्रतिमा ( प्रमाण ) यन्त्र पुल बांधना वापी ( बावडी ) कूप तडाग इनका ज्ञाता हो ॥

तथापुष्करिणीकुंडंजलादूर्ध्वगतिक्रियाम् ।
सुशिल्पशास्त्रतःसम्यक्सुरम्यंतुयथाभवेत् ॥
कर्तुंजानातियःसैवगृहाद्यधिपतिःस्मृतः ।

तिसी प्रकार पुष्करिणी छोटा क्रीडाका तालाब कुण्ड जलसे ऊपर आनेकी क्रिया ऐसा जानता हो जिस प्रकार शिल्पविद्यासे भली प्रकार रमणीय हो उसको ॥ ६० ॥ करने को जो जाने वही गृहोंका अधिपति होता है ॥

राजकार्योपयोग्यान्हिपदार्थान्वेत्तितत्त्वतः ।
संचिनोतियथाकालेसंभाराधिपउच्यते ॥

जो राजाके कार्योपयोगी पदार्थोंको जानै ॥ ६१ ॥ समयके अनुसार सञ्चय करै वह सम्भारका अधिपति होता है ॥

स्वधर्माचरणेदक्षोदेवताराधनेरतः ॥ ६२ ॥
निःस्पृहःसचकर्तव्योदेवतुष्टिपतिः सदा ।

वह पुरुष देवताओंका सन्तोषकारी होता है जो अपने धर्माचरणमें चतुर और देवताके आराधनमें तत्पर हो ॥६२॥ लोभी न हो वह देवपुष्टिका पति (पुजारी) करना ॥

याचकंविमुखंनैवकरोतिनचसंग्रहम् ॥६३॥
दानशीलश्चनिर्लोभोगुणज्ञश्चनिरालसः ॥
दयालुर्मृदुवाग्दानपात्रविन्नतितत्परः ॥६४॥
नित्यमेभिर्गुणैर्युक्तोदानाध्यक्षःप्रकीर्तितः ।

वह दानाध्यक्ष करना जो याचकको विमुख न करै और संग्रह न करै ॥६३॥ दानशील हो लोभी न हो गुणी हो आलसी न हो दयालु हो कोमलवचन कहता हो पात्रका ज्ञाता हो नमस्कारमे तत्पर हो ॥६४॥ प्रतिदिन जो इन गुणोंसे युक्त हो वह दानाध्यक्ष कहा है ॥

व्यवहारविदःप्राज्ञावृत्तशीलगुणान्विताः ।
रिपौमित्रेसमायेचधर्मज्ञाःसत्यवादिनः ॥
निरालसाजितक्रोधकामलोभाःप्रियंवदाः ।
सभ्याःसभासदःकार्यावृद्धाःसर्वासुजातिषु ॥

ऐसे सभासद हो जो व्यवहारके ज्ञाता सदाचारशील गुणोंसे सयुक्त हों ॥६५॥ शत्रु और मित्रमे जो सम हो,धर्मज्ञ और सत्यवादी हों आलसी न हों क्रोध काम लोभ ये जिन्होंने जीत लिये हो और प्रियवक्ता हों ॥ ६६ ॥ ऐसे सम्पूर्ण जातियोंमें वृद्ध और सभामें साधु सभासद करने ॥

सर्वभूतात्मतुल्योयोनिस्पृहोऽतिथिपूजकः ।
दानशीलश्चयोनित्यंसवैसत्राधिपःस्मृतः ॥

यज्ञका अधिपति ऐसा हो जो सबको अपने आत्माके समान जाने और निर्लोभी और अभ्यागतोंका पूजक हो ॥६७॥ और प्रतिदिन दानशील हो ॥

परोपकारनिरतःपरमर्माप्रकाशकः ॥ ६८ ॥
निर्मत्सरोगुणग्राहीसद्विद्यःस्यात्परीक्षकः ॥

जो परोपकारमें तत्पर हो परमर्म (छिद्र) प्रकाश न करै ॥ ६८ ॥ किसीकी उन्नतिपर द्वेषी न हो गुणको ग्राहक हो अच्छी विद्याका ज्ञाता हो वह परीक्षक हो ॥

प्रजानष्टानहिभवेत्तथादंडविधायकः ॥ ६९॥
नातिक्रूरोनातिमृदुःसाहसाधिपतिश्चसः ।

(साह) फौजदारीका अधिपति हो इस प्रकार दंड दे जिस प्रकार प्रजा नष्ट न होय ॥ ६९ ॥ और अतिकठोर और अतिकोमल जो न हो ॥

आधर्षकेभ्यश्चोरेभ्योह्यधिकारिगणात्तथा ।
प्रजासंरक्षणेदक्षोग्रामपोमातृपितृवत् ॥

जो ठग और चोर अधिकारियोंके समूहसे प्रजाकी रक्षामे चतुर हो ॥ ७० ॥ और जो माता पिताके समान प्रजाकी रक्षामे चतुर हो ऐसा पुरुष ग्रामका अधिपति हो ॥

वृक्षान्संपुष्ययत्नेनफलंपुष्पंविचिन्वति ।
मालाकारइवात्यंतंभागहारस्तथाविधः ॥

ऐसा पुरुष भाग (कर) का ग्राहक हो जो मालीके समान वृक्षोंको यत्नसे पुष्ट करके फल फूलोंको बीने अर्थात् प्रजाकी अत्यंत रक्षापूर्वक कर ले ॥ ७१ ॥

गणनाकुशलोयस्तुदेशभाषाप्रभेदवित् ।
असंदिग्धमगूढार्थंविलिखेत्सचलेखकः ॥

ऐसा पुरुष लेखक हो जो गणनामें कुशल हो देशभाषाके भेदका ज्ञाता हो ॥ ७२ ॥ और संदेहरहित स्पष्ट जो लिखै ॥

शस्त्रास्त्रकुशलोयस्तुदृढांगश्चनिरालसः ।
यथायोग्यंसमाहूयात्प्रनम्रःप्रतिहारकः ॥

ऐसापुरुष प्रतिहार (दूत) हो जो शस्त्र अस्त्र मे कुशल हो और दृढांग और आलसी न हो ॥ ७३ ॥ तथा नम्र होकर यथोचित आह्वान करै (बुलावैं)

यथाविक्रयिणांमूलधननाशोभवेन्नहि ।
तथाशुल्कंतुहरतिशौल्किकःसउदाहृतः ७४

ऐसा पुरुष शौल्किक (महसूलका अधिप) हो जो जैसे लेन देनहारोंके मूलधनका नाश

न हो इस प्रकार शुल्क ( महसूल ) को ले वह शौल्किक कहाता है ॥

जपोपवासनियमकर्मध्यानरतस्सदा ।
दांतःक्षमीनिःस्पृहश्चतपोनिष्ठःसउच्यते॥७५

उसे तपोनिष्ठ कहते हैं जो जप उपवास नियम कर्म और ध्यानमें सदा रत हो दांत हो क्षमावान् सहनशील हो ॥ ७५ ॥

याचकेभ्योददात्यर्थभार्यापुत्रादिकंत्वपि ॥
नसंगृह्णातियत्किंचिद्दानशीलःसउच्यते ॥

जो याचकों को भार्या पुत्र आदिको भी अति उदार होकर दे दे और अपना कुछ भी ग्रहण न करे वह दानशील कहाता है ॥ ७६ ॥

पठनंपाठनंकर्तुंक्षमास्त्वभ्यासशालिनाम् ।
श्रुतिस्मृतिपुराणानांश्रुतज्ञास्तेप्रकीर्तिताः ।

वे श्रुति ( वेदके ) ज्ञाता होते हैं जो किया है अभ्यास जिनका ऐसे श्रुति स्मृति पुराणोंके पठनपाठन करनेमें समर्थ हों ॥ ७७ ॥

साहित्यशास्त्रनिपुणःसंगीतज्ञश्चसुस्वरः ।
सर्गादिपंचकज्ञातासवैपौराणिकःस्मृतः ॥

और वह पुराणोंका ज्ञाता होता है। जो साहित्यशास्त्रमें निपुण हो संगीतका ज्ञाता और उत्तम स्वर जिसका हो ॥ सर्ग आदि पांचका जो ज्ञाता हो ॥ ७८ ॥

मीमांसातर्कवेदांतशब्दशासनतत्परः
ऊहवान्बोधितुंशक्तस्तत्त्वतःशास्त्रविच्चसः ॥

मीमांसा, न्याय, वेदांत, व्याकरणमें तत्पर तर्कका ज्ञाता, बोधन करनेमें समर्थ और तत्वका ज्ञाता शास्त्रीवत् होता है ॥ ७९ ॥

संहितांचतथाहोरांगणितंवेत्तितत्त्वतः ॥८०॥
ज्योतिर्विच्चसविज्ञेयोत्रिकालज्ञश्चयोभवत् ॥

वह ज्योतिषी होता है जो संहिता होरा और गणित इनको तत्त्वसे जाने और भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों कालोंका ज्ञाता हो ॥ ८० ॥

बीजानुपूर्व्यामंत्राणांगुणान्दोषांश्चवेत्तियः ।
मंत्रानुष्ठानसंपन्नोमांत्रिकःसिद्धदेवतः ॥८१॥

और ऐसा पुरुष मंत्रशास्त्रका ज्ञाता हो जो मंत्रोंके बीजोंके अनुसार गुण और दोषोंको जाने, मंत्रोंके अनुष्ठानमें युक्त हो और देवता जिसे सिद्ध हो ॥ ८१ ॥

हेतुलिंगौषधीभिर्योव्याधीनांतत्त्वनिश्चयम् ।
साध्यासाध्यविदित्वोपक्रमतेसभिषक्स्मृतः ।

जो कारण चिह्न और औषधियोंसे व्याधियोंके तत्त्व निश्चय साध्य और असाध्यको जानकर चिकित्साका प्रारंभ करै वह भिषक् कहा है ॥ ८२ ॥

श्रुतिस्मृतीतरन्मंत्रानुष्ठानैर्देवतार्चनम् ।
कर्तुंहिततमंमत्वायततेसचतांत्रिकः ॥ ८३ ॥

श्रुतिस्मृतिमन्त्रोंके अनुष्ठानसे देवताओंका पूजन करनेको जो हिततम मान कर यत्न करै वह तांत्रिक होता है ॥ ८३ ॥

नपुंसकाःसत्यवाचोसुभूषाश्चप्रियंवदाः ।
सुकुलाश्चसुरूपाश्चयोज्यास्त्वंतःपुरेसदा ८४

ऐसे पुरुष रनवासमें युक्त करने जो नपुंसक सत्यवादी सुवेष और प्रियवादी हों उत्तम कुलीन और सुरूप हों ॥ ८४ ॥

अनन्याःस्वामिभक्ताश्चधर्मनिष्ठादृढांगकाः ।
अबालामध्यवयसःसेवासुकुशलाःसदा ॥

और ऐसे दूत युक्त करने जो अनन्य होकर स्वामीके भक्त हों और धर्मशील हों और दृढ जिनके अंग हों बालक न हों, युवा हों और सेवामें यथार्थ कुशल हों ॥ ८५ ॥

सर्वंयद्यत्कार्यजातंनीचंवाकर्तुमुद्यताः ।
निदेशकारिणोराज्ञाकर्तव्याःपरिचारकाः८६

संपूर्ण कार्योंका समूह चाहै नीच भी हो उसे करनेको उद्युक्त ( तैयार ) हों और आज्ञा पालनेमें तत्पर हों ॥ ८६ ॥

राज्ञःसमीपप्राप्तानांनतिस्थानविबोधकाः ।
दंडधारावेत्रधाराःकर्तव्यास्तेसुशिक्षकाः८७

राजाके समीप जो आवै उनको नमस्कार और स्थानके बतानेहारे राजाको परिचारक

सेवक नियुक्त करने और वे सेवक दंड और वेतको धारण करैं और उत्तम शिक्षावान् हों ॥ ८७ ॥

तंत्रीकंठोत्थितान्सप्तस्वरान्स्थानविभागतः।
उत्पादयंति संवेत्ति ससंयोगविभागतः।
अनुरागंसुस्वरंचसतालंचप्रगायति ॥८९॥

ऐसा गानेवालोंका अधिपति हो जो तन्त्रीके कंठसे उत्पन्न सात स्वरोंके स्थानोंको विभाग (भेद) से जाने ॥ ८८ ॥ स्वरोंको उत्पन्न करै और जाने और संयोग और विभागसे प्रसन्नता और उत्तमस्वर और ताल और नृत्यसे जो गावे ॥ ८९ ॥

सनृत्यंवागायकानामधिपःसचकीर्तितः।
तथाविधाचपण्यस्त्रीनिर्लज्जाभावसंयुता ॥

ऐसा पुरुष गायकोंका अधिप कहा है और इसी प्रकारकी गणिका (वेश्या) हो जो निर्लज्ज हो और भाव (प्रीति) युक्त हो ॥ ९० ॥

शृंगाररसतंत्रज्ञासुंदरांगीमनोरमा।
नवीनोत्तुंगकठिनकुचासुस्मितदर्शिनी ॥९१

शृङ्गार रसके तन्त्रकी जानकार सुन्दर अंगवाली मनोरमा (मनके हरनेवाली) नवयौवना ऊंचे है कठोर स्तन जिसके और हँसमुखी हो ॥ ९१ ॥

येचान्येसाधकास्तेचतथाचित्तविरंजकाः।
सुभृत्यास्तेपिसंधार्यानृपेणात्महितायच ॥

जो वेश्याके इतर साधक हैं वे भी तिसीप्रकार चित्तके रंजक हों और उन साधकोंके भृत्य (नौकर) भी श्रेष्ठ हों ऐसे साधक अपने हितके अर्थ राजाको रखने ॥ ९२ ॥

वैतालिकाःसुकवयोवेत्रदंडधराश्चये।
शिल्पज्ञाश्चकलावंतोयेसदाप्युपकारकाः ॥

भांड ऐसे हों जो सुन्दर कवि हों वेत और दंडके धारण करने हारे हों कारीगर (कलाधारी) हों और जो सदा उपकारी हों ॥९३॥

दुर्गुणान्सूचकाभाणानर्तकाबहुरूपिणः।
आराममकृत्रिमवनकारिणोदुर्गकारिणः ॥

इतरके दुर्गुणोंको जो सूचित करैं वे भांड कहाते हैं और जो अनेक रूपोंको धारे वे नर्त्तक होते हैं, आराम और कृत्रिम वन- (बाग) के बनानेहारे और किलेके बनानेहारे ॥ ९४ ॥

महानालिकयंत्रस्थगोलैर्लक्ष्यविभेदिनः।
लघुयंत्राग्नेयचूर्णबाणगोलासिकारिणः ॥

तोपके गोलोंसे लक्ष्य (निसाने) के भेदन करनेहारे बंदूक, आग्नेय चूर्ण (बारूद) बाण गोले और असि (तलवार) इनके करनेहारे ॥ ९५ ॥

अनेकयंत्रशस्त्रास्त्रधनुस्तूणादिकारकाः।
स्वर्णरत्नाद्यलंकारघटकारथकारिणः ॥९६॥

अनेक प्रकारके यंत्र शस्त्र, अस्त्र, धनुष, तरकस इनके करनेहारे और स्वर्ण रत्न आदि अलंकारोंको गढनेहारे और रथके करनेहारे ॥ ९६ ॥

पाषाणघटकालोहकाराधातुविलेपकाः।
कुंभकाराःशौल्बिकाश्चतक्षिणोमार्गकारकाः

पत्थरके और लोहेके बनानेहारे और धातुके लेपक (मुलंमा करनेहारे) कुम्हार शुल्बके बनानेहारे और बढ़ई और सडकके बनानेहारे ॥ ९७ ॥

नापितारजकाश्चैववांशिकामलहारकाः।
वार्ताहराःसौचिकाश्चराजचिह्नाग्रधारिणः ॥

नाई, धोबी, वंशोंके लानेहारे मलके शोधक डांकवाले, दरजी ये संपूर्ण पूर्वोक्त राजचिह्नाग्रके धारण करनेहारे हों ॥ ९८ ॥

भेरीपटहगोपुच्छशंखवेण्वादिनिःस्वनैः।
येव्यूहरचकायानापयानादिकबोधकाः ९९

नगारे, ढोल, रणसींगे, शंख, वंशी इनके शब्दोंसे जो व्यूहकी रचनामें तत्पर हैं और जो यान, और अपयान (कवायद) के शिक्षक हैं ॥ ९९ ॥

नाविकाःखनकाव्याधाःकिराताभारिकाअपि
शस्त्रसंमार्जनकराजलधान्यप्रवाहकाः २००

मल्लाह, खनक ( खोदनेवाले) शास्त्रके व्याध भील, भारके लेजानेवाले शस्त्रके मार्जन करनेहारे और जो जलमे अन्नके पहुँचा-नेहारे ॥ २०० ॥

आपणिकाश्चगणिकानाद्यजायाप्रजीविनः ।
तंतुवायाःशाकुनिकाश्चित्रकाराश्चचर्मकाः ॥
बाजारवाले, वेश्या, नट, कुली, शकुनके ज्ञाता, चित्रकारी और चमार ॥ १ ॥

गृहसंमार्जकाःपात्रधान्यवस्त्रप्रमार्जकाः ।
शय्यावितानास्तरणकारकाःशासका अपि॥
घरके झारनेहारे और पात्र, अन्न, वस्त्र, इनके मार्जन करनेहारे शय्या पर विछौना करनेहारे और शिक्षा देनेहारे ॥ २ ॥

आमोदाःस्वेदसद्धूपकारास्तांबूलिकास्तथा
हीनाल्पकर्मिणश्चैतेयोज्याःकार्यानुरूपतः ॥
सुगन्ध द्रव्य, धूपकर्त्ता, तंबोली, नीचकर्मके कर्त्ता इन पूर्वोक्तोंको कार्यके अनुसार नियुक्त करै ॥ ३ ॥

प्रोक्तंपुण्यतमंसत्यंपरोपकरणंतथा ।
आज्ञायुक्तांश्चभृतकान्सततंधारयेन्नृपः ॥४॥
सत्य और परोपकार अत्यंत श्रेष्ठ कहा है और राजा अपनी आज्ञासे युक्त सेवकोंको निरन्तर रक्खै ॥ ४ ॥

हिंसागरीयसीसर्वपापेभ्योनृतभाषणम् ।
गरीयस्तरमेताभ्यांयुक्तान्भृत्यान्नधारयेत् ॥
संपूर्ण पापोंसे हिंसा प्रबल है और झूंठ उससे भी अधिक प्रबल है इससे हिंसक और झूंठे भृत्योंको धारण न करै ॥ ५ ॥

यदायदुचितंकर्तुंवक्तुंवाततप्रबोधयन् ।
तद्वाक्ति कुरुतेद्राक्तुससद्भृत्यःसुपूज्यते ॥
जिस समय जो करनेको उचित है उसको अथवा कहने को उचित है उसको बोधित ( जताया ) हुआ जो शीघ्रकार्य को करता है वही उत्तम भृत्य है और उसे ही राजा युक्त करै ॥ ६ ॥

उत्थायपश्चिमेयामेगृहकृत्यंविचिंत्यच ।
कृत्वोत्सर्गंतुदेवांहिस्मृत्वास्नायादनंतरम् ७॥
रात्रिके पिछले पहरमे उठकर और गृहके कार्यकी चिंता करके और शौचको करके इष्ट देवके स्मर्णानंतर स्नान करै ॥ ७ ॥

प्रातःकृत्यंतुनिर्वर्त्ययावत्सार्धमुहूर्तकम् ।
गत्वास्वकीयशालांवाकार्याकार्यंविचिंतयेत्॥
तीन घडी दिन चढे पर्यंत अपने प्रातःकालके कृत्यको करके अपनी कार्यशाला (कचहरी ) मे जाकर और कार्य और अकार्यको चिंता करके ॥ ८ ॥

विनाज्ञयाविशंतंतुद्वास्थः सम्यङ्निरोधयेत् ।
निर्देशकार्यंविज्ञाप्यतेनाज्ञप्तंःप्रमोचयेत् ॥९॥
राजाकीआज्ञाके बिना जो कार्यशालामे प्रवेश करे उस राजाका द्वारपाल रोके तदनन्तर उसके निवेश कार्य (प्रार्थना) को राजाको जताकर और राजाकी आज्ञासे उसे छोड़ दे ॥ ९ ॥

दृष्टागतान्सभामध्येराज्ञेदंडधरःक्रमात् ।
निवेद्यतन्नतीःपश्चात्तेषांस्थानानिसूचयेत् ॥
सभाके मध्यमे आये मनुष्योंको दण्डधर ( चौकीदार ) क्रमसे निवेदन करे और नम्र होकर पश्चात् उनके स्थानोको सूचित करे ॥ १० ॥

ततोराजगृहंगत्वाज्ञप्तोगच्छेच्चसन्निधिम् ।
नत्वानृपंयथान्यायंविष्णुरूपमिवापरम् ॥
तिसके अनन्तर राजाके स्थानमें जाकर राजाकी आज्ञासे समीप जावै और नीतिके अनुसार राजाको नमस्कार इस प्रकार करके कि मानों दूसरे विष्णु ही है ॥ ११ ॥

प्रविश्यसानुरागस्यचित्तज्ञस्यसमंततः ।
भर्तुरर्धासनेदृष्टिंकृत्वानान्यत्रनिक्षिपेत् ॥
सभामें प्रविष्ट होकर प्रीतिमान् और चित्तके ज्ञाता राजाके सिंहासनमें ही सारेसे रोककर

दृष्टिको करके किसी इतर मनुष्यकी ओर न देखे ॥ १२ ॥

अग्निंदीप्तमिवासीदेद्राजानमुपशिक्षितः।
आशीविषमिवक्रुद्धंप्रभुंप्राणधनेश्वरम् ॥१३॥

तदनन्तर शिक्षाको प्राप्त होकर अपने प्राण और धनके ईश्वर प्रभू ( राजा ) के समीप इस प्रकार कि मानो प्रज्वल अग्निरूप है और क्रोधी सर्पके समान है ॥ १३ ॥

यत्नेनोपचरेन्नित्यंनाहमस्मीतिचिन्तयेत्।
समर्थयंश्चतत्पक्षंसाधुभाषेतभाषितम् ॥ १४॥

सेवक बडे यत्नसे स्वामीकी सेवा करे जानो मैं हूँ नहीं और स्वामीके पक्षकी पुष्टि करता हुआ कोमल वाणीसे भाषण करै ॥ १४ ॥

तन्नियोगेनवाब्रूयादर्थंसपरिनिश्चितम्।
सुखप्रबंधगोष्ठीषुविवादेवादिनांमतम् ॥१५॥

अच्छा है प्रबन्ध जिनमें ऐसी सभाओंमें विवादियोंके मतको और राजाकी आज्ञासे अच्छी तरह युक्तिसे बोलै ॥ १५ ॥

विजानन्नपिनोब्रूयाद्भर्तुःक्षिप्रोत्तरंवचः।
सदानुद्धतवेषःस्यान्नृपाहूतस्तुप्रांजलिः॥१६॥

स्वामीके प्रश्नका उत्तर जानता हुआ भी शीघ्र न दे और सेवक उद्दण्ड वेषको कदाचित् भी धारण न करै और राजा जब बुलावे तब हाथ जोड़कर खडा रहे ॥ १६ ॥

तद्वांकृतनतिःश्रुत्वावस्त्रांतरितसंमुखः।
तदाज्ञांधारयित्वादौस्वकर्माणिनिवेदयेत् ॥

राजाकी वाणीको प्रणाम करके सुनकर और वस्त्रकी ओटमें राजाके सन्मुख होकर और प्रथम राजाकी आज्ञाको लेकर अपने कार्योंको निवेदन करै ॥१७ ॥

नत्वासीतासनेप्रह्वस्तत्पार्श्वेसंमुखोऽज्ञया।
उच्चैः प्रहसनंकासष्ठीवनंकुत्सनंतथा ॥१८॥

राजाके समीप आसनपर उद्धत होकर न बैठे और सन्मुख आज्ञासे बैठे ऊँचे स्वरसे हँसी, थूँकना और किसीकी निन्दा न करै ॥ १८ ॥

जृंभणंगात्रभंगंचपर्वास्फोटंचवर्जयेत्।
राज्ञादिष्टंतुयत्स्थानंतत्रतिष्ठेन्मुदान्वितः १९॥

जम्भाईं अंगका भंग ( आलस्यसे जोडीका चटकाना ) ( मटकाना ) राजाने जो स्थान बता दिया है वहाही आनन्दसे बैठा रहे॥१९॥

प्रवीणोचितमेधावीवर्जयेदभिमानताम्।
आपद्युन्मार्गगमनेकार्यकालात्ययेषुच २०

प्रवीण ( कुशल ) उत्तम बुद्धिमान् पुरुष अभिमानको त्याग दे आपत्ति और कुमार्गकी प्राप्ति ( हलन ) और कार्यके नाशमे भी राजा का हित चाहै ॥ २० ॥

अपृष्टोपिहितान्वेषीब्रूयात्कल्याणभाषितम्।
प्रियंतथ्यंचपथ्यंचवदेद्धर्मार्थकंवचः ॥२१॥

राजाके कल्याणकी इच्छा करनेहारा सेवक विना पूछे भी कल्याणरूपी हो वचन कहे और वह वचन भी प्रिय सत्य हितकारी और धम और अर्थके अनुकूल हो ॥ २१ ॥

समानवार्तयाचापितद्धितंबोधयेत्सदा।
कीर्तिमन्यनृपाणांवावदेन्नीतिफलंतथा २२॥

अपने सहयोगियोंके संग वार्तासे राजाके हितको ही बोधन करै और इतर राजाओंकी कीर्ति और न्यायके फलको भी बोधन करै॥२२

दातात्वंधार्मिकः शूरोनीतिमानसिभूपते।
अनीतिस्तेतुमनसिवर्ततेनकदाचन ॥२३॥

हे राजन् तुम दाता और धर्मके कर्त्ता और न्यायके ज्ञाता हो और कदाचित् भी तुम्हारे मनमे अन्याय नहीं वर्तता है ॥ २३ ॥

येयेभ्रष्टाअनीत्यातांस्तदग्रेकीर्तयेत्सदा।
नृपेभ्योह्यधिकोसीतिमर्वेभ्योनविशेषयेत् ॥

अन्यायसे जो जो राजा नष्ट हो गये हैं उनको राजाके आगे सदा कीर्तन करै और राजास एसे न कहै कि तुम सम्पूर्ण राजाओंसे अधिक हो ॥ २४ ॥

परार्थंदेशकालज्ञोदेशेकालेचसाधयेत्।
परार्थनाशनंनस्यात्तथाब्रूयात्सदैवहि ॥२५॥

देश और कालका ज्ञाता सेवक इतरके प्रयोजनको सम्पूर्ण देश और कालमें सिद्ध करै और परके प्रयोजनका नाश जैसे न हो इसी प्रकार सदा राजासे कहै ॥ २५ ॥

नकर्षयेत्प्रजांकार्यमिषतश्चनृपः सदा ।
अपिस्थाणुवदासीतशुष्यन्परिगतः क्षुधा ॥

राजा किसी कार्यके मिषसे प्रजाको दुःखित न करै चाहे क्षुधासे पीडित सूखते हुए वृक्षके समान भी स्थित रहै ॥ २६ ॥

नत्वेवानर्थसम्पन्नांवृत्तिमीहेतपंडितः ।
यत्कार्येयोनियुक्तःस्याद्भूयात्तत्कार्यतत्परः

अनर्थसे युक्त आजीविकाकी पंडित चेष्टा कभी न करै और जिस कार्यमे जो नियुक्त हो उसी कार्यमे तत्पर रहै ॥ २७ ॥

नान्याधिकारमन्विच्छेन्नाभ्यसूयाच्चकेनचित्
नन्यूनंलक्षयेत्कस्यपूरयीतस्वशक्तितः॥२८॥

अनर्थके कार्यकी इच्छा और निन्दा न करे और जो किसीकी न्यूनता अपनेको प्रतीत हो जाय तौ अपनी शक्तिके अनुसार सम्पूर्ण करदे ॥ २८ ॥

परोपकरणादन्यन्नस्यान्मित्रकरंसदा ।
करिष्यामीतितेकार्यनकुर्यात्कार्यलम्बनम्॥

परके उपकारसे इतर मित्रका और कोई कर्त्तव्य नहींहैऔर मे तेरा कार्य सदा करूंगा ऐसा कहकर कार्यके करनेमे बिलम्ब न करै ॥२९॥

द्राक्कुर्यात्तुसमर्थश्चेत्साशंदीर्घनरक्षयेत् ।
गुह्यंकर्मचमंत्रंचनभर्तुःसंप्रकाशयेत्॥३०॥

जो समर्थ हो तौ कार्यको शीघ्र करै और बहुत दिनका विश्वास न दे और अपने स्वामीके गुप्त कार्य और मन्त्रका प्रकाश न करै ॥३०

विद्वेषंचविनाशंचमनसापिनचिंतयेत् ।
राजापरममित्रोऽस्तिनकामंविचरेदिति॥३१

मनमेभी किसीके द्वेष और नाशकी चिंता न करै और मेरा राजा परम मित्रहै इस विश्वाससे यथेच्छ न विचरै ॥ ३१॥

स्त्रीभिस्तदर्थिभिः पापैर्वैरिभूतैर्निराकृतैः ।
एकार्थचर्यांसाहित्यंसंसर्गंचविवर्जयेत् ॥

स्त्री स्त्रियोंके रसिक पापी राजाने जिनको निकास दिया हो इनके संग वास और संबंध को त्याग दे ॥ ३२ ॥

वेषभाषानुकरणंनकुर्यात्पृथिवीपतेः ।
संपन्नोऽपिचमेधावीनस्पर्धेतचतद्गुणैः ॥३३॥

विद्वान् मनुष्य संपन्नहो करभी राजाके वेष और भाषाका अनुकरण न करै राजाके गुणों की ईर्ष्याभी न करै ॥ ३३ ॥

रागापरागौजानीयाद्भर्तुः कुशलकर्मवित् ।
इंगिताकारचेष्टाभ्यस्तदभिप्रायतातथा ॥

कुशल कर्मका ज्ञाता मनुष्य इंगित आकार और चेष्टासे राजाकी प्रीति क्रोध और अभिप्रायको जानै ॥ ३४ ॥

तद्दत्तवस्त्रभूषादिचिह्नंसंधारयेत्सदा ।
न्यूनाधिक्यंस्वाधिकारकार्येनित्यंनिवेदयेत्॥

राजाके दियेहुए वस्त्र आभूषण आदि चिह्नको सदा धारणकरै और अपनी पदवीके न्यूनऔर अधिक कार्यको प्रतिदिन निवेदन करै ॥३५॥

तदर्थांतत्कृतावार्तांश्रृणुयाद्वापिकीर्तयेत् ।
चारसूचकदोषेणत्वन्यथायद्वदेन्नृपः ॥३६॥

राजाके प्रजाजनकी और आज्ञाकी की हुई वार्त्ता को सुने दूत और सूचकके दोषसे जो कुछ राजा अन्यथा कहै ॥ ३६ ॥

श्रृणुयान्मौनमाश्रित्यतथ्यवन्नानुमोदयेत् ।
आपद्गतंसुभर्तारंकदापिनपरित्यजेत् ॥३७॥

तौ उसे मौन होकर सुने और सत्यके समान उसमे संमति न दे और आपत्तिके समय श्रेष्ठ स्वामीको कदापि न त्यागै ॥३७॥

एकवारमप्याशितंयस्यान्नंह्यादरेणच ।
तदिष्टंचिंतयेन्नित्यंपालकस्यांजसानकिम् ॥

एकबारभी जिसके अन्नका आदरसे भक्षण किया हो उस पालकके इष्टकी चिन्ता सुख क्यों न करै अर्थात अवश्य करै ॥ ३८ ॥

अप्रधानःप्रधानःस्यात्कालेचात्यंतसेवनात्।
प्रधानोप्यप्रधानःस्यात्सेवालस्यादिनायतः॥
क्योंकि समयपर अत्यंत सेवा करनेसे अप्राधानभी मनुष्य प्रधान हो जाता है और सेवा करनेमे आलस्यसे प्रधानभी अप्रधान होजाता है ॥ ३९ ॥

नित्यंसंसेवनरतोभृत्योराज्ञः प्रियोभवेत्।
स्वस्वाधिकारकार्यंयद्द्राक्कुर्यात्सुमनायतः॥
नित्यसेवामें जो तत्पर होता है वह भृत्य राजाका प्रिय होता है क्योंकि अपने २ अधिकारके कामको प्रसन्नमन होकर शीघ्र करै ॥ ४० ॥

नकुर्यात्सहसाकार्यंनीचंराजापिनोदिशेत्।
तत्कार्यकारकाभावेराज्ञाकार्यंसदैवहि॥४१॥
और कार्यको शीघ्र न करै और राजाभी नीच मनुष्यको कार्य करनेको न कहै यदि उस कार्यका करनवाला न होय तो राजा स्वयं उस कामको करै ॥ ४१ ॥

कालेयदुचितंकुर्यान्नीचमप्युत्तमोर्हति।
यस्मिन्प्रीतोभवेद्राजातदनिष्टंनचिंतयेत्॥४२
और किसी समय पर उत्तम पुरुषभी नीच कर्म करनको योग्य होता है और जिस मनुष्यपर राजाकी प्रसन्नता है उसके अनिष्टकी चिंता न करै ॥ ४२ ॥

नदर्शयेत्स्वाधिकारगौरवंतुकदाचन।
परस्परंनाभ्यसूयुर्नभेदंप्राप्नुयुःकद॥ ४३ ॥
अपने अधिकारके गौरव ( बडाई ) को कदाचित् भी न दिखावे और राजाके वे पुरुष परस्पर निन्दा और भेदको न करैं॥ ४३ ॥

राज्ञाचाधिकृताःसंतःस्वस्वाधिकारगुप्तये।
अधिकारिगणोराजासद्वृत्तौयत्रतिष्ठतः॥
जो अपने २ अधिकारकी रक्षाके लिये राजाने नियत किये हों, अधिकारियोंका समूह और राजा ये दोनों जहां सदाचारमे तत्पर रहते हैं ॥ ४४ ॥

उभौतत्रस्थिरालक्ष्मीर्विपुलासंमुखीभवेत्।
अन्याधिकारवृत्तंतुनब्रूयाच्छ्रुतमप्युत॥४५॥
वहां लक्ष्मी स्थिर और बहुत और सन्मुख होती है और अन्यके अधिकारके वृत्तांतको सुनकर भी न कहै ॥ ४५ ॥

राजानशृणुयादन्यमुखतस्तुकदाचन।
नबोधयंतिचहितमहितंचाधिकारिणः॥
और राजाभी अन्यके मुखसे अन्यका वृत्तांत न सुने और अधिकारी हित और अहितका बोधन न करैं ॥ ४६ ॥

प्रच्छन्नवैरिणस्तेतुदास्यरूपमुपाश्रिताः।
हिताहितंनशृणोतिराजामंत्रिमुखाच्चयः॥
वे दासरूपको प्राप्त हुए गुप्तवैरी है और जो राजा मन्त्रियोंके मुखसे हित और अहितको न सुनै ॥ ४७ ॥

सदस्यूराजरूपेणप्रजानांधनहारकः।
सुपुष्टव्यवहारायेराजपुत्रैश्चमंत्रिणः॥ ४८ ॥
वह राजा राजाका रूप धारे प्रजाके धनका हरनेहारा चोर है और जो मन्त्री राजाके पुत्रोंके संग प्रबल व्यवहार करते हैं वही मत्री है ॥ ४८ ॥

विरुध्यंतिचतैःसाकंतेतुप्रच्छन्नतस्कराः।
बालाअपिराजपुत्रानावमान्यास्तुमंत्रिभिः॥
और जो मंत्री राजपुत्रोंके संग विरोध करते हैं वे गुप्त तस्कर है और बालकभी राजपुत्रोंका अपमान न करना ॥ ४९ ॥

सदासुबहुवचनैःसंबोध्यास्तेप्रयत्नतः।
असदाचरितंतेषांकचिद्राज्ञेनदर्शयेत् ॥५०॥
और राजाके पुत्रोंको सदा भली प्रकार बहुवचनके ( य । भो राजकुमाराः ) संबोधन करै और उनके दुराचार राजाको न दिखावै ॥ ५० ॥

स्त्रीपुत्रमोहोबद्धवांसनयोर्निदानश्रेयसे।
राज्ञोवरप्रतरंकार्यंप्राणसंशयितंचयत् ॥५१॥

स्त्री और पुत्रका मोह बलवान् है इससे उनकी निंदा कल्याणकारिणी नहीं है राजा का अत्यंत आवश्यक कार्य करै और जहा प्राणोंका संशय हो ॥ ५१ ॥

आज्ञापयाग्रतश्चाहंकरिष्येतत्तुनिश्चितम् ।
इतिविज्ञाप्यद्राक्कर्तुंप्रयतेतस्वशक्तितः॥५२॥

मैं आपके आगे स्थित हूँ आज्ञा दीजिये और सब कार्यको निश्चयसे करूंगा ऐसे राजाकी आज्ञासे और अपनी शक्तिके अनुसार शीघ्र करनेमे यत्न करै ॥ ५२ ॥

प्राणानपिचसंदद्यान्महत्कार्येनृपायच ।
भृत्यःकुटुंबपुष्ट्यर्थेनान्यथातुकदाचन॥५३

बडे कार्यमे राजा और अपने कुटुम्बके निमित्त भृत्य अपने प्राणोंकोभी दग्ध करदे और इतरके निमित्त दग्ध न करै ॥ ५३ ॥

भृत्याधनहराःसर्वेयुक्त्याप्राणहरोनृपः ।
युद्धादौसुमहत्कार्येभृत्यप्राणान्हरेन्नृपः ॥

वेतन ( नौकरी ) से धनके हरनेहारे सब भृत्य है और युक्तिसे प्राणोंको हरनेहारा राजा है क्योकि युद्ध आदि बडे कार्योंमे राजा भृत्योंके प्राण हरता है ॥ ५४ ॥

नान्यथाभृतिरूपेणभृत्योराजधनंहरेत् ।
अन्यथाहरतस्तौतुभवतश्चस्वनाशकौ॥५५॥

भृत्य अपने वेतनसे राजाके धनको हरै अन्यथा हरते हुए राजा और भृत्य अपनेही नाशकर्त्ता होते हैं ॥ ५५ ॥

राजानुयुवराजस्तुमान्योमात्यादिकैःसदा ॥
तन्न्यूनामात्यनवकंतन्न्यूनाधिकृतोगणः ॥

राजाके अनुसार युवराजको भी मन्त्री सदा मानै और युवराजसे न्यून नौ मन्त्री और मन्त्रियोंसे न्यून नीचेके अधिकारी गणहैं॥५६॥

मंत्रितुल्यश्चायुतिकोन्यूनःसाहस्रिकोमतः ।
नक्रीडयेद्राजसमंक्रीडितेतंविशेषयेत् ॥५७॥

दश सहस्रका अधिपति मन्त्रीके तुल्य है और उससे न्यून सहस्रका अधिपति माना है और राजाके संग क्रीडा न करै, करै भी तौ राजाको अधिक मानै ॥ ५७ ॥

नावमान्याराजपत्नीकन्याद्यपिचमंत्रिभिः ।
राजसंबंधिनःपूज्याःसुहृदश्चयथार्हतः॥५८॥

राजाकी पत्नी और कन्या आदिका मंत्री आदि अपमान न करै, राजाके संबधी और मित्र इनका यथायोग्य पूजन करना चाहिये५८

नृपाहूतस्तुरंगच्छेत्त्यक्त्वाकार्यशतंमहत् ।
मित्रायापिनवक्तव्यंराजकार्यंसुमंत्रितम् ॥

राजाके बुलानेपर अपने बडे सैकडों कार्य को त्याग कर शीघ्र जाय, भलीप्रकार मन्त्रित ( निश्चित ) राजाका कार्य मित्रकोभी न बतावै ॥ ५९ ॥

भृतिंविनाराजद्रव्यमदत्तंनाभिलाषयेत् ।
राजाज्ञयाविनानेच्छेत्कार्यमाध्यस्थिकीभृतिम्

अपनी भृति ( मासिक ) के बिना राजाके द्रव्यकी विना दिये इच्छा न करै और राजाकी आज्ञाके विना मध्यस्थ अधिक भृतिकीभी इच्छा न करै ॥ ६० ॥

ननिहन्याद्द्रव्यलोभात्सत्कार्यंयस्यकस्यचित्
स्वस्त्रीपुत्रधनप्राणैःकालेसंरक्षयेन्नृपम् ६१॥

और जिस किसीके कार्यको द्रव्यके लोभसे नष्ट न करै और अपनी स्त्री पुत्र धन प्राणोंसे समयपर राजाकी रक्षा करै ॥ ६१ ॥

उत्कोचंनैवगृह्णीयान्नान्यथाबोधयेन्नृपम् ।
अन्यथादंडकंभूपंनित्यंप्रबलदंडकम् ॥६२॥

और उत्कोच ( रिसवत ) को ग्रहण न करै और समय पर राजाको बोध करादे कि अन्यथा दंड और प्रबल दण्ड देनेवाले राजाको ॥ ६२ ॥

निगृह्यबोधयेत्सम्यगेकांतेराज्यगुप्तये ।
हितंराज्ञश्चाहितंयल्लोकानांतत्रकारयेत् ६३॥

बलात्कारसे एकांतमे राज्यकी रक्षाके लिये भलीप्रकार बोधित करै ( समझावे ) और उस समय वह काम करावे जिसमे राजाका हित हो और लोकोंका अहित हो ॥ ६३ ॥

नवीनकरशुल्कादेर्लोकउद्विजतेततः।
गुणनीतिबलद्वेषीकुलभूतोप्यधार्मिकः॥६४

नवीन कर (दंड) और शुल्क (महसूल) से लोक दुःखित होते हैं और कुलीनभी राजा जो गुणनीति सेनाका द्वेष करता है वह अधार्मिक है॥ ६४॥

नृपोयदिभवेत्तंतुत्यजेद्राष्ट्रविनाशकम्।
तत्पदेतस्यकुलजंगुणयुक्तंपुरोहितः॥६५॥

जो राजाही अपने राज्यको नष्ट करता होय तौ पुरोहित उसके स्थानमें गुणयुक्त उसके कुलसे उत्पन्नको॥ ६५॥

प्रकृत्यनुमतिंकृत्वास्थापयेद्राज्यगुप्तये।
सास्त्रोदूरंनृपात्तिष्ठेदस्त्रपाताद्बहिःसदा॥६६॥

प्रकृतियोंकी संमतिसे राज्यकी रक्षाके निमित्त स्थापन करै, अस्त्रधारी मनुष्य राजाके दूर अस्त्रके पातके भयसे बाहर सदैव टिके॥ ६६॥

सशस्त्रोदशहस्तंतुयथादिष्टंनृपप्रियाः।
पंचहस्तंवसेयुर्वैमंत्रिणोलेखकाः सदा॥६७॥

शस्त्र सहित जो राजके प्यारे हैं वे राजाकी आज्ञाके अनुसार दशहाथ और मन्त्री व लेखक पांच हाथके अन्तरसे रहैं॥ ६७॥

सेनपैस्तुविनानैवसशस्त्रास्त्रोविशेत्सभाम्।
पुरोहितःश्रेष्ठतरःश्रेष्ठःसेनापतिः स्मृतः॥६८॥

शस्त्र और अस्त्र सहित कोई भी मनुष्य सेनापतियोंके विना सभामें न जावे, पुरोहित सर्वोत्तम है और सेनापति उत्तम कहा है॥ ६८॥

समःसुहृत्संबंधीस्युत्तमामंत्रिणःस्मृताः।
अधिकारिगणोमध्योऽधमौदर्शकलेखकौ॥

मित्र और सम्बन्धी सम हैं नउत्तमनमध्यम और मन्त्री उत्तम कहे हैं अधिकारियोंका समूह मध्यम है और देखनेहारे और लिखारी अधम है॥ ६९॥

ज्ञेयाधमतमोभृत्यःपरिचारगणःसदा।
परिचारगणान्न्यूनोविज्ञेयोनीचसाधकः ७०

दास और टहलवे अत्यन्त अधम हैं और नीच कार्यके कर्त्ता इनसे भी अधम जानने योग्य हैं॥ ७०॥

पुरोगमनमुत्थानंस्वासनेसन्निवेशनम्।
कुशलप्रश्नंक्रमात्सुस्मितदर्शनम्॥

सन्मुख गमन अभ्युत्थान अपने आसनपर बैठाना कुशल पूंछना हँसकर देखना इन्हें क्रमसे॥ ७१॥

राजापुरोहितादीनांत्वन्येषांस्नेहदर्शनम्।
अधिकारिगणादीनांसभास्थश्चनिरालसः॥

राजा पुरोहितादिकोंसे करै और इतर जनोंको प्रीतिसे देखै और सभामें स्थित पुरुष आलस्यको छोडकर अधिपति आदिकोंसे इसी प्रकार आचरण करे॥ ७२॥

विद्यावत्सुशरच्चंद्रोनिदाघार्कोद्विषत्सुच।
प्रजासुचवसंतार्कइव स्यात्त्रिविधोनृपः ७३॥

विद्यावानोंमें शरदऋतुके चन्द्रमाके समान शत्रुओंमें ग्रीष्मऋतुके सूर्यके समान प्रजाओंमें वसन्त ऋतुके सूर्यके समान तीन प्रकारसे राजा रहै॥७३॥

यदिब्राह्मणभिन्नेषुमृदुत्वंधारयेन्नृपः।
परिभवंतितंनीचायथाहस्तिपकागजम्॥७४

जो राजा ब्राह्मणसे इतर जातियोंमें कोमल रहै तौ नीच उसे इस प्रकार तिरस्कृत करते है जैसे पीलवान् हाथीको॥ ७४॥

भृत्याद्यैर्यत्रकर्तव्याःपरिहासाश्चक्रीडनम्।
अपमानास्पदंतेतुराज्ञोनित्यंभयावहम् ७५॥

भृत्यादिके संग हंसी और कीर्त्तन न करे और तिरस्कारवालेके संग हँसी और कीर्तन तौ भयके दाता हैं॥ ७५॥

पृथक्पृथक्ख्यापयंतिस्वार्थसिद्ध्यैनृपायते।
स्वकार्येगुणवक्तृत्वात्सर्वेस्वार्थपरायतः ७६॥

अपने २ प्रयोजनकी सिद्धिके निमित्त वे अपमानी पुरुष पृथक् २ विख्यात करते हैं और वे अपने कार्यके गुणके वक्ता हैं इससे स्वार्थमें तत्पर हैं॥ ७६॥

विकल्पंतेवमन्यंतेलंघयंतिचतद्वचः ।
राजभोज्यानिभुंजंतिनतिष्ठंतिस्वकेपदे ७७॥

और अपमान (तिरस्कार) के भेदसे अर्थात् अनेक प्रकारसे वे तिरस्कार करते हैं और राजाके वचनका अवलंघन करते है और राजाके भोग्य पदार्थोंको भोगते हैं और अपनी पदवी पर नहीं टिकते ॥ ७७ ॥

विस्रंसयंतितन्मंत्रंविवृण्वंतिचदुष्कृतम् ।
भवंतिनृपवेषाह्विंचयंतिनृपंसदा ॥७८॥

राजाके मंत्रका भेद करते हैं और राजा के निन्दित कर्मका प्रकाश करते हैं और राजाके समान वेषको धारते हैं और सदा राजाको ठगते हैं ॥ ७८ ॥

तत्स्त्रियंसज्जयंतिस्मराज्ञिक्रुद्धेहसंतिच ।
व्याहरंतिचनिर्लज्जोहलयंतिनृपंक्षणात् ७९॥

राजाकी स्त्रीके संग व्यभिचार करते हैं, राजाके क्रोध हुए पर हँसते हैं, निर्लज्ज होकर बोलते हैं और क्षणभरमें राजाको ठगलेते हैं ॥ ७९ ॥

आज्ञामुल्लंघयंतिस्मनभयंयांत्यकर्मणि ।
एतेदोषाःपरीहासक्षमाक्रीडोद्भवानृपे ।८०॥

राजाकी आज्ञा अवलंघन करते है और बुराकर्म कियेपर भय नहीं मानते ये दोष राजामें मंत्रियोंके संग क्षमा और क्रीडासे उत्पन्न होते हैं ॥ ८० ॥

नकार्यंभृतकःकुर्यान्नृपलेखाद्विनाक्वचित् ।
नाज्ञापयेल्लेखनेनविनाल्पंवामहन्नृपः ॥८१॥

राजाके लेखविना कदाचित् भी भृत्य कार्य न करैं और राजा भी लेखविना अल्प अथवा अधिककी आज्ञा न दे ॥ ८१ ॥

भ्रांतेःपुरुषधर्मत्वाल्लेख्यंनिर्णायकंपरम् ।
अलेख्यमाज्ञापयतिह्यलेख्यंयत्करोतियः ॥

भ्रम पुरुषका धर्म है इससे लेखही परम निर्णय कर्त्ता है जो विना लिखे राजा कार्यकी आज्ञा दे और विनालिखे जो करे ॥ ८२ ॥

राजकृत्यमुभौचोरौतौभृत्यनृपतीसदा ।
नृपसंचिह्नितंलेख्यंनृपस्तन्ननृपोनृपः ॥८३॥

वे दोनों भृत्य और राजा सदा चोर हैं राजाकी मुद्रासे चिह्नित, जो लेख वही राजा है और राजा राजा नहीं है ॥ ८३ ॥

समुद्रंलिखितंराज्ञोलेख्यंतच्चोत्तमोत्तमम् ।
उत्तमंराजलिखितंमध्यंमंत्र्यादिभिःकृतम्॥

मुद्रा ( मोहर ) सहित जो राजाका लेख है वह उत्तमसेभी उत्तम है और जो मन्त्री आदिकोंका लेख है वह मध्यम है ॥ ८४ ॥

पौरलेख्यंकनिष्ठंस्यात्सर्वसंसाधनक्षमम् ।
यस्मिन्यस्मिन्हिकृत्येतुराज्ञायोधिकृतोनरः।

पुरवासियोंका लेख अधम है जो संपूर्ण साधनोंसे योग्य हो जिस २ कार्यमें राजा ने जिस २ को अधिकार देरक्खा है वह मनुष्य ॥ ८५ ॥

सामात्ययुवराजाद्यैर्यथानुक्रामतश्चसः ।
दैनिकंमासिकंवृत्तंवार्षिकंबहुवार्षिकम् ८६

मंत्री और युवराज सहित यथा क्रमसे दिन २ का दैनिक और महीनेका मासिक और वर्षोंका वार्षिक और बहुत वर्षोंका बहुवार्षिक ॥ ८६ ॥

तत्कार्यजातलेख्यंतुराज्ञेसम्यङ्निवेदयेत् ।
राजाद्यंकितलेख्यस्यधारयेत्स्मृतिपत्रकम् ॥

और मासिक आदिकोंके लेखको अच्छी-तरह निवेदन करै और राजाके मुद्रासहित लेखके स्मृतिपत्र ( रसीद ) को भी धारण करै ॥ ८७ ॥

कालेतीतेविस्मृतिर्वाभ्रांतिः संजायतेनृणाम्।
अनुभूतस्यस्मृत्यर्थंलिखितंनिर्मितंपुरा ८८॥

बहुत कालके बीते पीछे मनुष्योंको भूल अथवा भ्रम हो जाता है इससे अनुभूत ( जाने हुए ) की स्मृतिके वास्ते पूर्व ( प्रथम ) रुखको रचा है ॥ ८८ ॥

यत्नाच्चब्रह्मणावाचांवर्णस्वरविचिह्नितम् ।
वृत्तलेख्यंतथाचायव्ययलेख्यमितिद्विधा ॥

ब्रह्माने यत्नसे वाणी बर्ण स्वरसे युक्त लेखको और वृत्तांतकी आयव्यय ( लेन-देन ) के भेदसे दो प्रकारका लेख रक्खा है ॥ ८९ ॥

व्यवहारक्रियाभेदादुभयंबहुतांगतम् ।
यथोपन्यस्तसाध्यार्थसंयुक्तंसोत्तरक्रियम् ॥

व्यवहारके कार्योंके भेदसे वह दोनों प्रकार का लेख बहुत हो जाता है और आज्ञाके अनुकूल कर्त्तव्य अर्थसे युक्त और उत्तर क्रिया ( आगे करना ) के सहित ॥ ९० ॥

सावधारणकंचैवजयपत्रकमुच्यते ।
सामंतेष्वथभृत्येषुराष्ट्रपालादिकेषुयत् ।९१

जिससे निश्चय जीनको माने उसे जयपत्र कहते हैं और जिससे सामंत ( पासकेराजा ) भृत्य, राष्ट्रपाल (जमींदार) आदिकोंमें आज्ञा दी जाय ॥ ९१ ॥

कार्यमादिश्यतेयेनतदाज्ञापत्रमुच्यते ।
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यमन्येष्वभ्यर्चितेषुच ॥

पूर्वोक्त सामंत आदिकोंको जिससे कार्यकी आज्ञा दी जाय उसे आज्ञापत्र कहते हैं ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य और इतर पूजितोंको ॥ ९२ ॥

कार्यंनिवेद्यतेयेनपत्रंप्रज्ञापनंहितत् ॥
सर्वेशृणुतकर्तव्यमाज्ञयाममनिश्चितम् ॥९३

जिससे कार्यका निवेदन कियाजाय उसे प्रज्ञापन पत्र कहते हैं सम्पूर्ण मेरी आज्ञासे निश्चित कर्तव्यको सुनो ॥ ९३ ॥

स्वहस्तकालसंपन्नंशासनंपत्रमेवतत् ।
देशादिकंयस्यराजालिखितेनप्रयच्छति ९४।

अपने हस्त और कालसे संयुक्त वह शिक्षा-पत्र कहाता है और राजा अपने लेखसे देश आदि जिसको देता है ॥ ९४ ॥

सेवाशौर्यादिभिस्तुष्टःप्रसादलिखितंहितत् ।
भोगपत्रंतुकरदीकृतंचोपायनीकृतम् ॥९५॥

सवा अथवा शूरवीरतासे प्रसन्न होकर जो राजा देता है वह तोष्पत्र कहाता है कर और भेटका पत्र भोगपत्र कहाता है ॥ ९५ ॥

पुरुषावधिकंतत्तुकलावधिकमेववा ।
विभक्तायेचभ्रात्राद्याःस्वरुच्यातुपरस्परम् ॥

और वह पत्र पुरुषकी अवधि पर्यंत अथवा कालकी अवधि पर्यन्त होता है और जो अपनी अपनी रुचिसे विभक्त ( जुदेहुए ) भ्राता आदि ॥ ९६ ॥

विभागपत्रंकुर्वीतभागलेख्यंतदुच्यते ।
गृहभूम्यादिकंदत्त्वापत्रंकुर्यात्प्रकाशकम् ॥

विभागके पत्रको करे उसे भागलेख्य कहते हैं घर और भूमि आदिको देकर प्रकाशक अर्थ पत्रको करे ॥ ९७ ॥

अनाच्छेद्यमनाहार्यंदानलेख्यंतदुच्यते ।
गृहक्षेत्रादिकंक्रीत्वातुल्यमूल्यप्रमाणयुक् ॥

और वह पत्र अनाच्छेद्य ( मजबूत ) हो और हरनेके अयोग्य हो उसे दान लेख्य कहते है घर और क्षेत्र आदिका क्रयण ( खरीद ) कर तुल्यमूल्य और प्रमाणसे युक्त ॥ ९८ ॥

पत्रंकारयतेयत्तक्रयलेख्यंतदुच्यते ।
जंगमस्थावरंबद्धंकृत्वालेख्यंकरोतियत् ॥

जो पत्र कराया जाता है उसे क्रयण लेख्य कहते है जंगम और स्थावरका बद्ध करके जो संख्या की जाती है ॥ ९९ ॥

ग्रामोदेशश्चयत्कुर्यात्सत्यलेखपरस्परम् ।
राजाविरोधिधर्मार्थंसंवित्पत्रंतदुच्यते ॥

ग्राम अथवा देश जो परस्पर लेख करते हैं राजाके अविरोधसे और धर्मके अर्थ जो किया जाता है उसे संवित्पत्र कहते हैं ॥ ३०० ॥

वृद्ध्याधनंगृहीत्वातुकृतंवाकारितंचयत् ।
ससाक्षिमच्चतत्प्रोक्तमृणलेख्यंमनीषिभिः ॥

व्याजपर धनको लेकर क्रिया और कराया साक्षिक सहित जो लेख उसको बुद्धिमानोंने ऋणलेख्य कहा है ॥ १ ॥

अभिशापेसमुत्तीर्णेप्रायश्चित्तेकृतेबुधैः।
दत्तंलेख्यंसाक्षिमद्यच्छुद्धिपत्रंतदुच्यते ॥२॥

लोकके अतिवादकी निवृत्ति हुए पीछे और प्रायश्चित्तके अनन्तर पंडितोंने दिये साक्षियुक्त लेखको शुद्धिपत्र कहते हैं ॥ २ ॥

मेलयित्वास्वधनांशान्व्यवहारायसाधकाः।
कुर्वंतिलेखपत्रंयत्तच्चसामायिकंस्मृतम् ॥३॥

अपने अपने धनके भागको मिला कर किसी व्यवहारकी सिद्धिके अर्थ जो लेख पत्र करते हैं उसे सामायिक पत्र कहते हैं ॥ ३ ॥

सभ्याधिकारिप्रकृतिसभासद्भिर्नयः कृतः।
तत्पत्रंवाद्यमान्यंचज्ञेयंसंमतिपत्रकम् ॥४॥

सभासदोंने जो सभ्य अधिकार और प्रजाओंका न्याय किया है तिसका जो जानने लिये पत्र उसे संमतिपत्र कहते हैं ॥ ४ ॥

स्वकीयवृत्तज्ञानार्थेलिख्यतेयत्परस्परम्।
श्रीमंगलपदाद्यंवासपूर्वोत्तरपक्षकम् ॥ ५ ॥

अपने वृन्तातके ज्ञानके अर्थ श्री अथवा मांगलिकपद जिसके आदिमें हों, परस्पर लिखाजाय, जिसमें पूर्व और उत्तर दोनों पक्ष हों ॥ ५ ॥

असंदिग्धमगूढार्थंस्पष्टाक्षरपदंसदा।
अन्यव्यावर्तकस्वात्मपरपित्रादिनामयुक् ॥

और जिसमें संदेह न हो और जिसके पद, अक्षर, अर्थ ये स्पष्ट हों और जिसमें अन्यकी व्यावृत्तिके अर्थ अपने पिता आदिका नाम हो ॥ ६ ॥

एकद्विबहुवचनैर्यथार्हस्तुतिसंयुतम्।
समामासतदर्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितम् ॥

एकवचन, द्विवचन और बहुवचनोंसे यथोचित स्मृतिके संयुक्त और वर्ष, मास, पक्ष, दिन, नाम, जाति आदिसे निश्चित हो ॥ ७ ॥

कार्यबोधिसुसंबंधनत्याशीर्वादपूर्वकम्।
स्वाम्यसेवकसेव्यार्थंक्षेमपत्रंतुतत्स्मृतम् ॥८॥

जो पत्र कार्यका बोधक हो और जिसका सम्बन्ध भली प्रकार मिलता हो नमस्कार और आशीर्वाद जिसमें हो स्वामी सेवक सेवने योग्य जिससे प्रतीत हो उसको क्षेमपत्र कहते हैं ॥ ८ ॥

एभिरेवगुणैर्युक्तंस्वाधर्षकविबोधकम्।
भाषापत्रंतुतज्ज्ञेयमथवावेदनार्थकम् ॥ ९ ॥

इनहीं गुणोंसे युक्त और अपने दुःखका बोधक अथवा बतानेका जो पत्र उसे भाषापत्र कहते हैं ॥ ९ ॥

प्रदर्शितंवृत्तलेख्यंसमासाल्लक्षणान्वितम्।
समासात्कथ्यतेचान्यच्छेषायव्ययबोधकम् ॥

दिखाया जो वृत्तान्त लेख्य और संक्षेपसे जिसमे लक्षण हो और संक्षेपसे ही जिसमें शेष आमदनी व्यय ( खर्चहो ) ॥ १० ॥

व्याप्यव्यापकभेदैश्चमूल्यमानादिभिःपृथक्।
विशिष्टसंज्ञितैस्तद्वियथार्थैर्बहुभेदयुक् ॥११॥

न्यून और अधिक भेदों तथा तोल और प्रमाण आदिसे विशिष्ट ( उत्तम ) हो और यथार्थ अनेक प्रकारके भेदसे जो युक्त हो ॥ ११ ॥

वत्सरेवत्सरेवापिमासिमासिदिनेदिने।
हिरण्यपशुधान्यादिस्वाधीनंचायसंज्ञकम् ॥

वर्ष २ मे और मास २ में और दिन २ मे होगा पशु अन्न आदिको अपने आधीन रक्खै और आमदनीको भी अपनेही आधीन रखै ॥ १२ ॥

पराधीनंकृतंयत्तुव्ययसंज्ञंधनंचतत्।
साधकश्चैवप्राचीनआयःसंचितसंज्ञकः ॥

पराधीन किया जो धन सो खर्चही है वर्तमान और प्राचीन जो आय ( आमदनी ) उसे संचित कहते हैं ॥ १३ ॥

व्ययोद्विधाचोपभुक्तस्तथाविनिमयात्मकः।
निश्चितान्यस्वामिकश्चानिश्चितस्वामिक-स्तथा ॥ १४ ॥

व्यय दो प्रकारका है एक तो भुक्त दूसरा देना, और तीन प्रकारका संचित है एक जिनके स्वामीका निश्चय हो दूसरा जिसको स्वामीका निश्चय न हो ॥ १४ ॥

**स्वस्वत्वनिश्चितंचेतित्रिविधंसंचितंमतम् ।**
**निश्चितान्यस्वामिकंयद्धनंतुत्रिविधंहितत् ॥**

और तीसरा जो अपने स्वत्वसे निश्चित हो और निश्चितहै अन्यस्वामी जिसका ऐसा धन तीनप्रकारका है ॥ १५ ॥

**औपनिध्यंयाचितकमौत्तमर्णिकमेवच ।**
**विस्रंभान्निहितंसद्भिर्यदौपनिधिकंहितत् ॥**

१ औपनिध्य, २ याचितक, ३ औत्तमर्णिक जो विश्वाससे सत्पुरुषोंने अपने यहा रखदिया हो उसे औपनिधिक कहते हैं ॥ १६ ॥

**अवृद्धिकंगृहीतान्यालंकारादिचयाचितम ।**
**सवृद्धिकंगृहीतंयदृणंतच्चौत्तमर्णिकम्॥१७॥**

बिना सूदके लिया जो अलकारादि उसे याचित कहते हं और सूदपर लिया जो ऋण उसे औत्तमर्णिक कहते हैं ॥ १७ ॥

**निध्यादिकंचमार्गादौप्राप्तमज्ञातस्वामिकम्।**
**साहजिकंचाधिकंचाद्विधास्वस्वत्वनिश्चितम्।**

जो निधि आदि मार्गमें मिलै और स्वामीका निश्चय न हो स्वभावसे प्राप्त और वृद्धि ( व्याज ) इन दो प्रकारका अपना धन होता है ॥ १८ ॥

**उत्पद्यतेयोनियतोदिनेमासिचवत्सरे ।**
**आयःसाहजिकःसैवदायाद्यश्चस्ववृत्तितः१९**

जो नियमसे दिन मास और वर्षमे उत्पन्न हो वह धनका आय (आमदनी) साहजिक है और यह धन अपनी वृत्तिसे उत्पन्न होनेसे भाईका भाग होता है ॥ १९ ॥

**दायःपरिग्रहोयत्तुप्रकृष्टंतत्स्वभावजम् ।**
**मौल्याधिक्यंकुसीदंचगृहीतंयाजनादिभिः॥**

जो भाग परिग्रहसे मिलै और उत्तम भी हो उसे स्वभावज कहते हैं और मोलमे अधिक मिलै (नफा) कृषिसे और यज्ञ करानेसे मिले ॥ २० ॥

**पारितोष्यंभृतिप्राप्तंविजितार्द्यंधनंचयत् ।**
**स्वस्वत्वाधिकसंज्ञंतदन्यत्साहजिकंस्मृतम् ॥**

जो पारितोषिक, वेतन और जिससे मिले वह धन अपने धनसे अधिक कहाता है उससे इतर धनको साहजिक कहते है ॥ २१ ॥

**पूर्ववत्सरशेषंचवर्तमानाब्दसंभवम् ।**
**स्वाधीनंसंचितंद्वेधाधनंसर्वप्रकीर्तितम्॥२२॥**

पूर्व वर्षका शेष और वर्त्तमान वर्षका जो द्रव्य वह अपने २ अधीनका सम्पूर्ण धन दो प्रकारका सचित कहा है ॥ २२ ॥

**द्वैधाधिकंसाहजिकंपार्थिवेतरभेदतः ।**
**भूमिभागसमुद्भूतआयःपार्थिवउच्यते॥२३॥**

दो प्रकारका अधिक मासिक है पार्थिव और इतर भेदसे जो पृथ्वीके भागसे राजाको मिलै उस आयको पार्थिव कहते हैं ॥ २३ ॥

**सदैवकृत्रिमजलैर्देशग्रामपुरैःपृथक् ।**
**बहुमध्याल्पफलतोभिद्यतेभुविभागतः२४॥**

मेघ और कूप आदिक जलसे देश ग्राम और पुरोंसे तथा बहुत मध्यम अल्प भागके भेदसे वह धन अनेक प्रकारका होता है ॥ २४ ॥

**शुल्कदंडाकरकरभाटकोपायनादिभिः ।**
**इतरःकीर्तितस्तज्ज्ञैरायोलेखविशारदैः॥२५॥**

शुल्क ( महसूल ) दण्ड आकर ( खान ) उपायन ( भेट ) आदिसे मिला जो आय उसे लेखके कुशल मनुष्य इतर कहते हैं ॥ २५ ॥

**यन्निमित्तोभवेदायोव्ययस्तन्नामपूर्वकः ।**
**व्ययश्चैवंसमुद्दिष्टोव्याप्यव्यापकसंयुतः २६**

जिस निमित्तसे आवै उसी नामसे खर्च करै और व्यय भी व्याप्य व्यापकभेदसे दोप्रकारका होता है अर्थात् अल्प और अधिक ॥ २६ ॥

**पुनरावर्तकःस्वत्वनिवर्तकइतिद्विधा ।**
**व्ययोयन्निध्युपनिधिकृतोविनिमयैर्भृतः२७॥**

व्यय इसप्रकार दो भेदका है (१) पुनरावर्तक ( फिर आजावे ) (२) जिसमें अपना स्वत्व न रहै और निधि उपनिधि विनिमय भेदसे तीन प्रकारका है ॥ २७ ॥

सुकुसीदाकुसीदाधमर्णिकश्चावृतःस्मृतः।
निधिर्भूमौविनिहितोन्यस्मिन्नुपनिधिःस्थितः

व्याजके निमित्त दिया अथवा विना व्याजसे दिया जो ऋण उसे आयन ( फिरआने वाला ) कहते हैं पृथ्वीमे रक्खे हुएको निधि और इतर मनुष्यके पास रक्खेको उपनिधि कहते हैं ॥ २८ ॥

दत्तमूल्यादिसंप्राप्तःसर्वोविनिमयीकृतः।
वृद्धयावृद्धयाचयोदत्तोसर्वस्यादाधमर्णिकः।

दिये हुए मोलसे जो मिले उसे विनिमय कहते हैं और व्याज अथवा बिन व्याज जो दिया जाय उसे आधमर्णिक कहते हैं ॥ २९ ॥

सवृद्धिकमृणंदत्तमकुसीदंतुयाचितम्।
स्वत्वंनिवर्तकोद्वेधात्वैहिकःपारलौकिकः ३०

व्याजके निमित्त दिया अथवा उधारा जो दिया दो प्रकारका अधमर्णिक होता है और खर्चके दो भेद है एक वह जो इस लोकके लिये हो दूसरा वह परलोकके लिये हो ॥ ३० ॥

प्रतिदानंपारितोष्यंवेतनंभोग्यमैहिकः।
चतुर्विधस्तथापारलौकिकोनन्तभेदभाक् ३१

बदलेमें देना, पारितोषिक, वेतन, भोग्य- इस प्रकार ४ भेद ऐहिकके हैं और पारलौकिकके अनन्त भेद हैं ॥ ३१ ॥

शेषसंयोजयेन्नित्यंपुनरावर्तकोव्ययः।
मूल्यत्वेनचयद्दत्तंप्रतिदानंस्मृतंहितत् ॥ ३२ ॥

और शेषमे जो रुपया व्यय प्रतिदिन होताहै उसे पुनरावर्त्तक कहते है और जो माल लेकर दिया हो उसे प्रतिपादन कहते है ॥ ३२ ॥

सेवाशौर्यादिसंतुष्टैर्दत्तंतत्पारितोषिकम्।
भृतिरूपेणसंदत्तंवेतनंतत्प्रकीर्तितम् ॥ ३३ ॥

सेवा शूरवीरता आदिसे प्रसन्न होकर जो दिया उसे पारितोषिक कहते है और जो भृति रूपसे दिया हो उसे वेतन कहते हैं ॥ ३३ ॥

धान्यंवस्त्रगृहारामगोगजादिरथार्थकम्।
विद्याराज्याद्यर्जनार्थंधनाप्त्यर्थंतथैवच ३४ ॥

जो धन, अन्न, वस्त्र, घर, बाग, हाथी, रथ इनके निमित्त खर्च हो और विद्या राज्य और धनकी प्राप्तिके लिये जो खर्च हो ॥ ३४ ॥

व्ययीकृतंरक्षणार्थमुपभोग्यंतदुच्यते।
सुवर्णरत्नरजतनिष्कशालास्तथैवच ॥ ३५ ॥

रक्षा करनेमें जो खर्च हो उसे उपभोग कहते हैं सोना, रत्न, चांदी और मणियोंकी शाला इन्हें पृथक् २ बनावे ॥ ३५ ॥

रथाश्वगोगजोष्ट्राजाविनशालाःपृथक्पृथक्।
वाद्यशस्त्रास्त्रवस्त्राणांधान्यसंभारयोस्तथा ॥

रथ, अश्व, गाय, हाथी, ऊंट, बकरी, भेड इनकी शाला पृथक् २ और बाजे शस्त्र अस्त्र और अन्नकी और सम्भारकी शाला पृथक् २ बनावे ॥ ३६ ॥

मन्त्रीशिल्पनाट्यवैद्यमृगाणांपाकपक्षिणाम्।
शालाभोग्येनिविष्टास्तुतद्व्ययोभोग्यउच्यते॥

मन्त्री शिल्प नाट्य वैद्य मृग और पाकके योग्य पक्षी इनकी शालाओंके भोगमे जो नियुक्त है उनके निमित्त जो व्यय ( खर्च ) हो उसे भोग्य कहते हैं ॥ ३७ ॥

जपहोमार्चनैर्दानैश्चतुर्धापारलौकिकः।
पुनर्यातोनिवृत्तश्चविशेषायव्ययौचतौ ३८॥

जप होम पूजन दानके भेदसे चार प्रकारका व्यय परलोकका होता है जो फिर आजाय और फिर न आवे वे दोनों आय और व्यय विशेषसे होते हैं ॥ ३८ ॥

आवर्तकोनिवर्तीचव्ययायौतुपृथग्द्विधा।
आवर्तकविहीनौतुव्ययायौलेखकोलिखेत् ॥

आनेवाला और न आनेवाला इन भेदसे व्यय और आय पृथक् २ दो प्रकारके हैं और जो फिर न लौटे ऐसे आय और व्ययको लिखनेवाला लिखे ॥ ३९ ॥

क्रयाधमर्णघटनान्यस्थलाप्तेनिवर्तकः।
द्रव्यंलिखित्वादद्याच्चगृहीत्वाविलिखे-
त्स्वयम् ॥

लेन देन कर्ज जो औरको दिया जाय वह निवर्तक ( फिर न आनेवाला ) होता है द्रव्यको प्रथम लिखकर दे और प्रथम ग्रहण करके पीछे लिखै ॥ ४० ॥

हीयतेवर्धतेनैवमायव्ययविलेखकः।
हेतुप्रमाणसंबंधकार्यांगव्याप्यव्यापकैः ॥

न घटै और न बढै ऐसा जमाखर्च लिखै और उसके कारण प्रमाण संबंध कार्यके अंग भी न्यून अधिकभावसे लिखे ॥ ४१ ॥

आयाश्चबहुधाभिन्नाव्ययाःशेषंपृथक्पृथक्।
मानेनसंख्ययाचैवोन्मानेनपरिमाणकैः ॥

आय ( आमदनी ) और व्यय ( खर्च ) वे दोनों अनेक प्रकारके होते हैं मान, संख्या उन्मान और परिमाणके भेदोंसे ॥ ४२ ॥

क्वचित्संख्याक्वचिन्मानमुन्मानपरिमाणकम्।
समाहारःक्वचिच्चेष्टोव्यवहारायतद्विदाम् ४३

कहीं संख्या और कहीं मान और कही उन्मान और कहीं परिमाण और कहीं चारों व्यवहारके ज्ञाताओंके व्यवहारके लिख इष्ट होते हैं ॥ ४३ ॥

अंगुलाद्यंस्मृतंमानमुन्मानंचतुलास्मृता।
परिमाणपात्रमानंसंख्यैकद्व्यादिसंज्ञिका ४४

अगुलीसे जो मापा जाय उसे मान कहते है बांटोंसे जो तोला जाय उसे उन्मान कहते है किसी पात्रसे जो मापाजाय उसे परिमाण कहते हैं और एक दो तीन आदि संख्या होती है ॥ ४४ ॥

यत्रयादृग्व्यवहारस्तत्रतादृक्प्रकल्पयेत्।
रजतस्वर्णताम्रादिव्यवहारार्थमुद्रितम् ४५

जहां जैसा व्यवहार हो वहाँ वैसाही नियत करै, चांदी, सोना ताबा, इनको व्यवहार के अर्थ मुद्रित करै ॥ ४५ ॥

व्यवहार्यंवराटाद्यंरत्नांतंद्रव्यमीरितम्।
सपशुधान्यवस्त्रादितृणांतंधनसंज्ञकम् ॥४६॥

कौडीसे लेकर रत्न पर्यन्तको द्रव्य कहते हैं पशु, अन्न, वस्त्र, तृण, आदिको धन कहते है ॥ ४६ ॥

व्यवहारेचाधिकृतंस्वर्णाद्यमूल्यतामियात्।
कारणादिसमायोगात्पदार्थस्तुभवेद्भुवि४७

व्यवहारके लिये माना हुआ सोना आदि मोल हो जाता है और कारणके बलसे वही सोना आदि पदार्थ हो जाता है ( जैसे भूषण ) ॥ ४७ ॥

येनव्ययेनसंसिद्धस्तद्व्ययस्तस्यमूल्यकम्।
सुलभासुलभत्वाच्चागुणत्वगुणसंश्रयैः ४८॥

जितने व्ययसे मिले उतना व्यय उसका मूल्य होता है और सुलभ और कठिन और भले और बुरे भेदोंसे ॥ ४८ ॥

यथाकामात्पदार्थानामनर्घमधिकंभवेत्।
नहीनंमणिधातूनां क्वचिन्मूल्यंप्रकल्पयेत् ॥

अपनी कामनाके अनुसार पदार्थोंका मोल हीन वा अधिक होजाता है और मणिधातु इन का मूल्य कभीभी न्यून न करै ॥ ४९ ॥

मूल्यहानिस्तुचैतेषांराजदौष्ट्येनजायते।
दीर्घेचतुर्भागभूतपत्रेतिर्यग्गतावलिः ॥५०॥

इनके मूल्यकी न्यूनता राजाकी दुष्टतासे होती है बडे और चारभागके पत्रमे तिरछी आवली ( पंक्ति ) हो एसा पत्र हो ॥ ५० ॥

त्र्यंशगाभ्यंतरगताचार्धगापादगापिवा।
कार्याव्यापकव्याप्यानांलेखनेपदसंज्ञिका ॥

तीन भागमें भीतरकी अथवा आधे भागमें अथबा चौथाई भागमे श्रेणी हो ऐसे पत्रको छोटे और बडेके लिखनेके निमित्त बतावै ॥ ५१ ॥

श्रेष्ठाभ्यंतरगातासुवामतस्त्र्यंशगाप्यनु।
दक्षत्र्यंशगताचानुह्यर्धगापादगाततः ५२॥

उनमें भीतरकी श्रेष्ठ है । उसमे बांई ओर की तीनभागकी और दाहिनी ओरकीभी तीन भागकी और फिर चौथाई भागकी ये सब क्रमसे हो ॥ ५२ ॥

स्वाभ्यंतरेस्वभेदाःस्युःसदृशाःसदृशेपदे ।
स्वारंभपूर्तिसदृशेपदगेस्तःसदैवहि ॥५३॥

अपने भीतरमें और अपने सदृश भेद अपने २ और ये भेद अपनी समाप्तिके सदृश हों और प्रत्येक भागमें वे सदा रहैं ॥ ५३ ॥

राजास्वलेख्यचिह्नंतुयथाभिलषितंतथा ।
लेखानुरूपंकुर्याद्धिदृष्टालेख्यंविचार्य च५४

राजा अपनी इच्छाके अनुसार अपने लेखका चिह्न ऐसा करै जो लेखके अनुकूल हो और लेखको देखले और विचारले ॥ ५४ ॥

मंत्रीचप्राड्विवाकश्चपंडितोदूतसंज्ञकः ।
स्वाविरुद्धंलेख्यमिदंलिखेयुः प्रथमंत्विमे ॥

मंत्री, वकील, पंडित, दूत ये सब पहले इस लेखको इस प्रकारसे लिखे जिस प्रकार अपनी पदवीका विरोधी न हो ॥ ५५ ॥

अमात्यःसाधुलिखितमस्त्येतत्प्राग्लिखेदयम्
सम्यग्विचारितमितिसुमंत्रोविलिखेत्ततः ५६

यह पहले भली प्रकार लिखा है ऐसा अमात्यलिखै और यह भली प्रकार बिचारा है ऐसे तिसके अनंतर सुमंत्र लिखै ॥ ५६ ॥

सत्यंयथार्थमितिचप्रधानश्चलिखेत्स्वयम् ।
अंगीकर्तुंयोग्यमितिततःप्रतिनिधिर्लिखेत् ॥

यह पत्र सत्य और यथार्थ है यह प्रधान स्वयं लिखै और तिसके अनंतर यह पत्र स्वीकार करनेके योग्य है यह प्रतिनिधि लिखै ॥ ५७ ॥

अंगीकर्तव्यमितिचयुवराजोलिखेत्स्वयम् ।
लेख्यंस्वाभिमतंचैतद्विलिखेच्चपुरोहितः५८॥

स्वीकार करो यह स्वय युवराज लिखे और यह लेख हमे संमत है यह पुरोहितलिखै॥५८॥

स्वस्वमुद्राचिह्नितंचलेख्यांतेकुर्युरेवहि ।
अंगीकृतमितिलिखेन्मुद्रयेच्चततोनृपः ५९॥

अपनी मोहरसे चिह्नित संपूर्ण लेखको कर और तिसके अनंतर राजाभी अंगीकार किया यह लिखै और अपनी मोहरसे मुद्रित करै ॥ ५९ ॥

कार्यांतरस्याकुलत्वात्सम्यग्द्रष्टुंनशक्यते ।
युवराजादिभिर्लेख्यंतदानेनचदर्शितम् ६०

जो राजा अन्यकार्योंकी व्याकुलतासे न देखसकै तिस समयमे राजाके दिखाये पत्रको युवराज आदि लिखै ॥ ६० ॥

समुद्रंविलिखेयुर्वैसर्वेमंत्रिगणास्ततः ।
राजादृष्टमितिलिखेद्द्राक्सम्यग्दर्शनाक्षमः ॥

तिसके अनंतर सब मंत्रियोंके समूह अपनी २ मोहरसे चिह्नित करके लिखैं यदि राजा भली प्रकार देखनेमे असमर्थ हो देख लिया ऐसे लिखैं ॥ ६१ ॥

आयमादौलिखेत्सम्यग्व्ययंपश्चाद्यथागतम् ।
वामेचायंव्ययंदक्षेपत्रभागेचलेखयेत् ॥६२॥

प्रथम आमदनीको लिखै पश्चात् खर्चको, पत्रके वामभागमे आमदनीको लिखे और दक्षिण भागमें खर्चको ॥ ६२ ॥

यत्राभौव्यापकव्याप्यौवामोर्ध्वभागगौक्रमात्
आधाराधेयरूपौवाकालार्थौगणितंहितत् ॥

जिसमे अधिक और न्यून क्रमसे वाम और दक्षिण भागमे हों अथवा आधार और आधेय रूप हों वह कालके निमित्त गणित है ॥ ६३ ॥

अधोधश्चक्रमात्तत्रव्यापकंवामतोलिखेत् ।
व्याप्यानांमूल्यमानादितत्पंक्त्यांविनिवेशयेत्

नीचे २ क्रमसे पत्रमें व्यापकको वाम भागमें लिखै और व्याप्यों का मोल और प्रमाण आदि भी उसी पंक्तिमे लिखै ॥ ६४ ॥

ऊर्ध्वगानांतुगणितमधःपंक्त्यांप्रजायते ।
यत्राभौव्यापकव्याप्यौव्यापकत्वेनसंस्थितौ

ऊपर लिखे हुओंकी गिनती नीचेकी व्यक्तिमें होती है जहा दोनों व्यापक और व्याप्य व्यापकके समानही प्रतीत हों ॥ ६५ ॥

व्यापकंबहुवृत्तित्वंव्याप्यस्यान्न्यूनवृत्तिकम्
व्याप्याश्चावयवाःप्रोक्ताव्यापकोऽवयवीस्मृतः

अधिक जगह जो वर्त्तै उसे व्यापक और अल्पजगह जो वर्त्त उसे व्याप्य कहते हैं

और अवयवोंको व्याप्य और अवयवीको व्यापक कहते हैं ॥ ६६ ॥

सजातीनांचलिखनंकुर्याच्चसमुदायतः ।
यथाप्राप्तंतुलिखनमाद्यंनसमुदायतः ॥६७॥

सजातीय पदार्थोंको समुदाय रूपसे लिखै और समुदायमें प्रथम उसे न लिखे जो प्रथम आया हो ॥ ६७ ॥

व्यापकश्चपदार्थावायत्रसंतिस्थलानिहि ।
व्याप्यमायंव्ययंतत्रकुर्यात्कालेनसर्वदा॥६८॥

व्यापक अथवा पदार्थ जहां स्थल हो वहां आय और व्यय जो है उसे समयके अनुसार व्याप्यसे करै ॥ ६८ ॥

स्थानटिप्पणिकाचैषाततोन्यत्संघटिप्पणम्।
विशिष्टसंज्ञितंतत्रव्यापकंलेख्यभाषितम् ॥

यह स्थानकी टिप्पण (पत्र) है और इससे इतर संघटिप्पण होती है और वहां विशिष्ट-नामका व्यापक भाषा (अर्जी) लेख होता है ॥ ६९ ॥

आयाःकतिव्ययाःकस्य शेषंद्रव्यस्यचास्तिवै
विशिष्टसंज्ञकैरेषां विज्ञानंप्रजायते ॥७०॥

कितना आय (आमदनी) और कितना व्यय (खर्च) है और किस आयका कितना शेष (बाकी) है इनका पृथक् २ नामोंसे ज्ञान होता है ॥ ७० ॥

आदौलेख्यंयथाप्राप्तंपश्चात्तद्गणितंलिखेत्।
यथाद्रव्यंचस्थानंचाधिकसंज्ञंचटिप्पणे ॥

प्रथम जैसे आया हो वैसे लिखै और पीछे उसकी संख्या लिखैं जैसा द्रव्य हो और जैसा स्थान हो और जैसी अधिक संज्ञा हो वह सब टिप्पण (वही) मे लिखै ॥ ७१ ॥

शेषायव्ययविज्ञानंक्रमाल्लेख्यैःप्रजायते ।
स्थलायव्ययविज्ञानंव्यापकस्थलतोभवेत् ॥

शेष आय व्ययका ज्ञान क्रमसे लेखोंसे होता है स्थान आय व्ययका ज्ञान बडे स्थानसे अर्थात् इस जिलेके इस गांवसे इतना रुपया आया है ॥ ७२ ॥

पदार्थस्यस्थलानिस्युःपदार्थाश्चस्थलस्यतु।
व्याप्यास्तिथ्यादयश्चापियथेष्टालेखनेनृणाम्
निश्चितान्यस्वामिकाद्याआयायेइतरांतगाः।
विशिष्टसंज्ञिकायेचपुनरावर्तकादयः ॥७४॥

पदार्थके स्थान होते है और स्थानके पदार्थ होते हैं और अपनी इच्छाके अनुसार व्याप्य (मासके अंग) तिथि आदिभी मनुष्योंको लिखनी निश्चित है अन्यस्वामी जिस का ऐसे जो इतरोंके आय और पृथक् २ है संज्ञा जिनकी ऐसे जो पुनरावर्त्तक (फिर लौटने वाले) आदि ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

व्ययाश्चपरलोकांताअंतिमव्यापकाश्चते ।
इच्छयाताडितंकृत्वादौप्रमाणफलंततः ॥
प्रमाणभक्तंतल्लब्धंभवेदिच्छाफलंनृणाम् ।
समाततोलेख्यमुक्तंसर्वेषांस्मृतिसाधनम् ॥

परलोक पर्यंत जो व्यय है वे सब अंतिम व्यापक कहाते हैं अपनी इच्छासे प्रथम इने गिने और फिर प्रमाणका फल लिखै ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

गुंजामाषस्तथाकर्षःपदार्थःप्रस्थएवहि ।
यथोत्तरादशगुणापंचप्रस्थस्यचाढकाः ७७

गुंजा, मासा, कर्ष, पदार्थ, प्रस्थ, ये क्रमसे दश २ गुणे अधिक होते है और एक प्रस्थके पांच आढक होते हैं ॥ ७७ ॥

ततश्चाष्टाढकःप्रोक्तोह्यर्मणस्तेतुविंशतिः ।
खारिकास्माद्भिद्यतेतद्देशेदेशेप्रमाणकम् ॥

और आठ आढकका एक अर्मण कहा है और बीस आढककी एक खारी होती है और देशके भेदसे प्रमाणका भेद होता है ॥ ७८ ॥

पंचांगुलावटंपात्रंचतुरंगुलविस्तृतम् ।
प्रस्थपादंतुतज्ज्ञेयंपरिमाणेसदाबुधैः ७९॥

पांच अंगुल गहरा और चार अंगुल चौडा जो पात्र होता है उसे परिमाणके विषे विद्वान् सदा प्रस्थपाद जाने ॥ ७९ ॥

ऊर्ध्वांकश्चयथासंज्ञस्तदधस्थाश्चवामगाः ।
क्रमात्स्वदशगुणिताःपरार्धाताःप्रकीर्तिताः

ऊपरके अंककी जो संख्या हो और उसके नीचेके जो दश गुणे हैं वे परार्द्ध पर्यंत कहे हैं ॥ ८० ॥

नकर्तुंशक्यतेसंख्यासंज्ञाकालस्यदुर्गमात् ।
ब्रह्मणोद्विपरार्धंतुआयुरुक्तंमनीषिभिः ८१।

दुर्गम होनेसे कालकी, संख्याकी संज्ञा नहीं करसकते और मनीषियों (विद्वानों) ने ब्रह्माकी द्विपरार्द्ध आयु कही है ॥ ८१ ॥

एकादशशतंचैवसहस्रंचायुतंक्रमात् ।
नियुतंप्रयुतंकोटिरर्बुदंचाब्जखर्वकौ ८२॥

एक, दश, सौ हजार, दश हजार, लक्ष दश लक्ष, किरोड, अर्ब, अब्ज, खर्व, ये क्रमसे संख्या जाननी ॥ ८२ ॥

निखर्वपद्मशंखाब्धिमध्यमांतपरार्धकाः ।
कालमानंत्रिधाज्ञेयंचांद्रंसौरंचसावनम् ८३।

निखर्व, पद्म, शंख, अब्धि, मध्य, अंत, परार्द्ध भी संख्या जाननी और कालका मान तीन प्रकारका होता है । सूर्यकी संक्राति चंद्रमाका उदय और सावनसे ॥ ८३ ॥

भृतिदानेसदासौरंचांद्रंकौसीदवृद्धिषु ।
कल्पयेत्सावनंनित्यंदिनभृत्येवधौसदा ८४।

भृति (नौकरी) के देनेमे सूर्यकी संक्रांतिसे और खेती और व्याजमें चंद्रोदयसे और भृति (मजूरी) और अवधिमे अमावससे मास लेना ॥ ८४ ॥

कार्यमानाकालमानाकार्यकालमितिस्त्रिधा ।
भृतिरुक्तातुतद्विज्ञैः सादेयाभाषितायथा ॥

कार्य और कालके मानसे और कार्यके कालसे भृति (नौकरी) भृतिके ज्ञाताओंने कही है और वह भृति जैसे कही हो वैसेही देनी ॥ ८५ ॥

अयंभारस्त्वयातत्रस्थाप्यस्त्वेतावतींभृतिम् ।
दास्यामिकार्यमानासाकीर्तितातद्विदेशकैः ।

वह बोझ तेरेको वहां पहुँचा देना होगा और इतनी भृति दूँगा इस भृतिको भृतिके उपदेश करने वाले कार्यमाना कहते हैं ॥ ८६ ॥

वत्सरेवत्सरेवापिमासिमासिदिनेदिने ।
एतावतींभृतिंतेहंदास्यामीतिचकालिका ॥

वर्ष २ म अथवा महीने २ मे इतनी भृति तुझे दूँगा इस भृतिको कालिका कहते हैं ॥ ८७ ॥

एतावताकार्यमिदंकालेनापित्वयाकृतम् ।
भृतिमेतावतींदास्येकार्यकालमिताचसा ॥

इतने कालमे इतना काम तुझे करना और इतनी भृति दूँगा इस भृतिको कालमिता कहते हैं ॥ ८८ ॥

नकुर्याद्भृतिलोपंतुतथाभृतिविलम्बनम् ।
अवश्यपोष्यभरणाभृतिर्मध्याप्रकीर्तिता ॥

भृतिका लोप (अभाव) और देनेमें विलम्ब न करै जिस भृतिसे भरण पोषण हो उस भृतिको मध्यमा कहते है ॥ ८९ ॥

परिपोष्याभृतिःश्रेष्ठासमान्नाच्छादनार्थिका।
भवेदेकस्यभरणंययासाहीनसंज्ञिका ९०॥

अन्न, वस्त्र, आदिसे जिस भृतिसे सबका पोषण हो वह भृति श्रेष्ठ होती है और जिससे एककाही पोषण हो उसे हीनभृति कहते हैं ॥ ९० ॥

यथायथातुगुणवान्भृतकस्तद्भृतिस्तथा ।
संयोज्यातुप्रयत्नेननृपेणात्महितायवै॥९१॥

जेसे २ गुणवाला भृत्य हो वैसीही उसकी भृति राजा अपने हितके अर्थ प्रयत्नसे नियत करै ॥ ९१ ॥

अवश्यपोष्यवर्गस्यभरणंभृतकाद्भवेत् ।
तथाभृतिस्तुसंयोज्यातद्योग्याभृतकायवै ॥

भृत्यके पोषण करने योग्यका पालन जिसप्रकारहोसके वैसाही योग्य भृति (नौकरी) भृत्यके अर्थ संयुक्त करै ॥ ९२ ॥

येभृत्याहीनभृतिकाः शत्रवस्तेस्वयंकृताः ।
परस्यसाधकास्तेतुछिद्रकोशप्रजाहराः ॥

जिन भृत्योंकी भृति न्यून है वे अपनेही बनाये शत्रु हैं और वे दूसरेके साधक हैं और छिद्र कोश तथा प्रजाके हरनेवाले होते हैं ॥ ९३ ॥

अन्नाच्छादनमात्राहिभृतिःशूद्रादिषुस्मृता ।
तत्पापभाग्यन्यथास्यात्पोषकोमांसभोजिषु ।

शूद्र आदिकोंको ऐसी भृति दे जिससे भोजन वस्त्रका निर्वाह चले क्योंकि जो मांसके भक्षकोंको अधिक भरण पोषण करता है वह उनके हिंसा आदिक पापका भागी होता है ॥ ९४ ॥

यद्ब्राह्मणेनापहृतंधनंतत्परलोकदम् ।
शूद्रायदत्तमपियन्नरकायैवकेवलम् ॥ ९५ ॥

जो ब्राह्मणने धन हर भी लिया है वह परलोकका देनेवाला है और जो धन शूद्रको अपने हाथसे भी दिया हो वह केवल नरकका ही देनेवाला होता है ॥ ९५ ॥

मंदोमध्यस्तथाशीघ्रस्त्रिविधोभृत्यउच्यते ।
समामध्याचश्रेष्ठाचभृतिस्तेषांक्रमात्स्मृता ॥

मन्द, मध्यम, शीघ्र तीन प्रकारका भृत्य होता है और उनकी भृति भी सम मध्यम श्रेष्ठ भेदसे तीन प्रकारकी होती है ॥ ९६ ॥

भृत्यानांगृहकृत्यार्थंदिवायामंसमुत्सृजेत् ।
निशियामत्रयंनित्यंदिनभृत्येऽर्धयामकम् ॥

अपने घरके कार्य करनेके अर्थ एक प्रहरकी छुट्टी भृत्योंको दिनमें और तीन प्रहरकी रात्रि में और जो दिनकाही भृत्य हो उसे आधे प्रहरकी छुट्टी दे ॥ ९७ ॥

तेभ्यः कार्यंकारयीतह्युत्सवाहैर्विनानृपः ।
अत्यावश्यंतूत्सवेपिहित्वाश्राद्धदिनंसदा ॥

राजा भृत्योंसे काम करावे परन्तु जो दिन उत्सव ( दिवाली आदि ) के हों उनके विना यदि कार्य आवश्यक होय तो उत्सवमें भी काम करावे परन्तु श्राद्धके दिनोंको सदा त्याग दे अर्थात् काम न ले ॥ ९८ ॥

पादहीनांभृतिंत्वार्तेदद्यात्त्रैमासिकंततः ।
पंचवत्सरभृत्येतुन्यूनाधिक्यंयथातथा॥९९॥

रोगके समय तीन महीनेकी भृति एक वर्षके रोगीको दे एक चौथाईकम भृति भृत्यको दे और पांच वर्षके भृत्यकी तो रोगकी अवस्थामें जैसे तैसे न्यून और अधिक भृति दे ॥ ९९ ॥

षाण्मासिकींतुदीर्घार्तेतदूर्ध्वंनचकल्पयेत् ।
नैवपक्षार्धमार्तस्यहातव्याल्पापिवैभृतिः ॥

और बहुत दिनके अधिक रोगीको वर्षमें छः महीनेकी भृतिदे और इससे आगे न्यूनभृतिकी कल्पना न करै और ८ आठ दिनके रोगीकी कुछ भी भृति न काटै ॥ ४०० ॥

शश्वत्सदोषितस्यापिग्राह्यः प्रतिनिधिस्ततः।
सुमहद्गुणिनंत्वार्तेभृत्यर्धंकल्पयेत्सदा ॥

जो भृत्य बार २ रोगमे ग्रस्त रहै उसको जगह प्रतिनिधि रखले और जो भृत्य अत्यन्त गुणी हो उसको रोगकी अवस्थामे भी सदा आधी भृति दे ॥ १ ॥

सेवांविनानृपः पक्षंदद्याद्भृत्यायवत्सरे ।
चत्वारिंशत्समानीताः सेवयायेनवैनृपः ॥२॥

भृत्यको एक वर्षमें १५ दिनकी भृति सेवाके विना भी राजा दे और जिसने सेवा करते २ चालीस वर्ष बिताये हों उस भृत्यको राजा ॥ २ ॥

ततःसेवांविनातस्मैभृत्यर्धंकल्पयेत्सदा ।
यावज्जीवंतुतत्पुत्रेऽक्षमेबालेतदर्धकम् ॥३॥

तिसके अनन्तर सेवाके बिनाही तिसके लिये आधी वृत्ति नियत जीनेतक करदे और उसके बालकके लिये आधीमे आधी भृति नियत करैं ॥ ३ ॥

भार्यायांवासुशीलायांकन्यायांवास्वश्रेयसे ।
अष्टमांशंपारितोष्यंदद्याद्भृत्यायवत्सरे ॥४॥

सुशील स्त्री और कन्याको अपने कल्याणके अर्थ भृतिका आठवां भाग दे और भृतिका आठवां भाग पारितोषिक भृत्यको दे ॥ ४ ॥

कार्याष्टमांशंवादद्यात्कार्यंद्रागधिकंकृतम् ।
स्वामिकार्येविनष्टायस्तत्पुत्रेतद्भृतिंवहेत् ॥

अथवा कामका आठवां भाग दे और जो काम शीघ्र और मर्यादासे अधिक किया हो और जो भृत्य स्वामीके कार्यमे नष्ट हो गया हो तो उसकी भृति उसके पुत्रको दे ॥ ५ ॥

यावद्बालोन्यथापुत्रगुणान्दृष्ट्वाभृतिंवहेत् ।
षष्ठांशंवाचतुर्थांशंभृतेर्भृत्यस्यपालयेत् ॥६॥

इतने भृत्यका पुत्र बालक हो तिसके अनंतर पुत्रके गुणोंको देखकर भृति से छठा भाग अथवा चौथा भाग भृत्यको भृति-को पालता रहै अर्थात् उसके भागको देता रहे ॥ ६ ॥

दद्यात्तदर्धंभृत्यायद्वित्रिवर्षेखिलंतुवा ।
वाक्पारुष्यान्न्यूनभृत्यास्वामीप्रबलदंडतः॥

दो तीन वर्षमे मासिकका आधा उस भृत्यको सेवाके विना दे जो भृत्य कटु वचनी हो अथवा सेवाको जिसने यथार्थ न किया हो ॥ ७ ॥

भृत्यंप्रशिक्षयेन्नित्यंशत्रुत्वंत्वपमानतः ।
भृतिदानेनसंपुष्टामानेनपरिवर्धिताः ॥ ८ ॥

अपमानसे भृत्य शत्रु होजाता है इससे भृत्यको नित्य शिक्षा देता रहै मासिकके देनेसे भृत्य पुष्ट होवे है और मानसे बढते है ॥ ८ ॥

सांत्वितामृदुवाचायेनत्यजंत्यधिपंहिते ।
यथागुणान्स्वभृत्यांश्चप्रजाःसंरंजयेन्नृपः ॥

जिन भृत्योंको कोमल वचनों से शांत रक्खा है वे अपने स्वामी को नहीं त्यागते हैं, गुणोंके अनुसार अपने भृत्य और प्रजाकी भली प्रकार रक्षा करा करै ॥ ९ ॥

शाखाप्रदानतः कांश्चिदपरान्फलदानतः ।
अन्यान्सुचक्षुषाहास्यैस्तथाकोमलयागिरा॥

किसी भृत्यको शाखा ( मासिकसे अधिक ) देनेसे और किसीको फल ( द्रव्यआदि ) देनेसे और किसीको हँसीसे और किसीको कोमल वाणीसे राजा प्रसन्न रक्खै ॥ १० ॥

सुभोजनैःसुवसनैस्तांबूलैश्चधनैरपि ।
कांश्चित्सुकुशलप्रश्नैरधिकारप्रदानतः ॥११

किसी एक भृत्योंको सुन्दर वस्त्रोंसे और किसी एकोंको पानोंसे और किसी एकोंको कुशल पूछनेस और किसी एकोंको अधिकारके देनेसे राजा प्रसन्न रक्खैं ॥ ११ ॥

वाहनानांप्रदानेनयोग्याभरणदानतः ।
छत्रातपत्रचमरदीपिकानांप्रदानतः ॥ १२ ॥

किनी एक भृत्योंको बाहनके देनेसे और योग्य भूषणोंके देनेसे और छत्री छतर चवर और मसालके देनेसे राजा प्रसन्न रक्ख ॥ १२ ॥

क्षमयाप्रणिपातेनमानेनाभिगमेनच ।
सत्कारेणचज्ञानेनह्यादरेणशमेनच ॥ १३ ॥

किनी एक भृत्योंको क्षमासे और नमस्कारसे और सत्कारसे और ज्ञानसे और आदरसे और किनीएक भृत्योंको शांतिसे राजा प्रसन्न रक्ख ॥१३॥

प्रेम्णासमीपवासेनस्वार्धासनप्रदानतः ।
संपूर्णासनदानेनस्तुत्योपकारकीर्तनात्॥१४

और किनी एक भृत्योंको प्रेमसे और अपने समीप वासके देनेसे और अपने आधे आसन-पर बैठानेसे और सम्पूर्ण जुदा आसन देनेसे और किनी एकोंको किये हुए उपकारकी प्रशंसासे प्रसन्न रक्खै ॥ १४ ॥

यत्कार्येविनियुक्तायेकार्यांकैरंकयेत्तान् ।
लोहजैस्ताम्रजैरीतिभवैरजतसंभवैः ॥ १५ ॥

जिस कार्यमें जो भृत्य नियुक्त है उसीका-र्यकी मुद्रासे उन्हें अंकित करें और वे मुद्रा लोहेकी हों अथवा तांबेकी अथवा पीतलकी अथवा चांदीकी हों ॥ १५ ॥

सौवर्णरत्नजैर्वापियथायोग्यैःस्वलांछनैः ।
प्रविज्ञानायदूरात्तुवस्त्रैश्चमुकुटैरपि ॥ १६ ॥

सोनेकी हों अथवा रत्नोंकी हों और दूरसे ज्ञानके अर्थ वस्त्र मुकुट आदि अपने २ यथा योग्य चिह्नोंसे अंकित करैं ॥ १६ ॥

वाद्यवाहनभेदैश्चभृत्यान्कुर्यात्पृथक्पृथक् ।
स्वविशिष्टंचयच्चिह्नंनदद्यात्कस्यचिन्नृपः ॥

वाद्य ( बाजे ) और वाहनके भेदसे भृत्योंको पृथक् २ करै और अपना जो विशिष्ट चिह्न है उसे राजा किसीको भी न दे ॥ १७ ॥

दशप्रोक्ताःपुरोधाद्याब्राह्मणाःसर्वएवते।
अभावेक्षत्रियायोज्यास्तदभावेतथोरुजाः ॥

जो दश पुरोहित आदि कहेहैं वे सब ब्राह्मण ही होने चाहियें जो ब्राह्मण न मिलै तौ क्षत्रिय क्षत्रिय न मिलै तौ वैश्य होने चाहिये ॥१८॥

नवशूद्रास्तुसंयोज्यागुणवंतोपिपार्थिवैः।
भागग्राहीक्षत्रियस्तुसाहसाधिपतिश्चसः १९

औरगुणवाले भी शूद्रोंको पुरोहित आदि पदवियोंपर कदाचित् नियुक्त न करै भाग करके ग्रहण करनेको और साहस ( फौजदारी) की पदवीपर क्षत्रियको नियुक्त करै॥१९

ग्रामपाब्राह्मणोयोज्यःकायस्थोलेखकस्तथ
शुल्कग्राहीतुवैश्योहिप्रतिहारश्चपादजः २०

ग्रामका अधिपति ब्राह्मण और लेखक कायस्थ नियुक्त करना, शुल्क ( महसूल ) का अधिपति वैश्य और प्रतिहार ( दूत ) शूद्र नियुक्त करना ॥ २० ॥

सेनाधिपःक्षत्रियस्तुब्राह्मणस्तदभावतः।
नवैश्योनैवशूद्रःकातरश्चकदाचन ॥ २१ ॥

सेनाका अधिपति क्षत्रिय और उसके अभावमें ब्राह्मण और वैश्य और शूद्र और कातर (कायर) इनको कभी भी नियुक्त न करैं॥२१॥

सेनापतिःशूरएवयोज्यःसर्वासुजातिषु।
ससंकरश्चतुर्वर्णधर्मोऽयंनैवयावनः ॥२२॥

संपूर्ण जातियोंमें सेनापति शूर ही नियुक्त करना यह धर्म संकरसहित चारों वर्णोंका है और यवनोंका नहीं है ॥ २२ ॥

यस्यवर्णस्ययोराजासवर्णःसुखमेधते।
नोपकृतंमन्यतेस्मनतुष्यतिसुसेवनैः ॥२३॥

जिस वर्णका जो राजा होताहै वह वर्ण सुख पाता है न उपकारको मानता है और न सेवा करनेसे प्रसन्न होता है ॥ २३ ॥

कथांतरेनस्मरतिशंकतेप्रलपत्यपि।
क्षुब्धस्तनोतिमर्माणितंनृपंभृतकस्त्यजेत् ॥

कथन समयपर स्मरण न करै और कहते भी शंका रक्खे क्षोभके समय मर्मको बींधे ऐसे राजाको भृत्य त्याग दे ॥ २४ ॥

लक्षणंयुवराजादेःकृत्यमुक्तंसमासतः ॥२५॥

युवराज आदिकोंका लक्षण और कार्य संक्षेपसे कहा ॥ २५ ॥

इति शुक्रनीतौयुवराजकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

यह शुक्रनीतिमें युवराज है नाम जिसका ऐसा दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥

# अध्याय ३.

अथसाधारणंनीतिशास्त्रंसर्वेषुचोच्यते।
सुखार्थाःसर्वभूतानांमताःसर्वाःप्रवृत्तयः॥१॥

इसके अनंतर संपूर्णोंका साधारण नीतिशास्त्र कहते हैं, संपूर्ण भूतोंकी सब प्रवृत्ति सुखके निमित्त होनेवाली मानी है ॥ १ ॥

सुखंचनविनाधर्मात्तस्माद्धर्मपरोभवेत्।
त्रिवर्गशून्यंनारंभंभजेत्तंचाविरोधयन् ॥२॥

धर्मके विना सुख नहीं होता इससे मनुष्य धर्ममें तत्पर रहै इससे जिसमें धर्म अर्थ काम न हों ऐसे कार्यका आरंभ न करै और इनके अनुरोधसे ही आरंभ करै ॥ २ ॥

अनुयायात्प्रतिपदंसर्वधर्मेषुमध्यमः।
नीचरोमनखश्मश्रुर्निर्मलांघ्रिमलायनः ॥

सदा संपूर्ण धर्मोंके अनुकूल आचरण करे और रोम, नख श्मश्रु इनको न रक्खे चरणोंको निर्मल रक्खे मलसे दूर रहै ॥ ३ ॥

स्नानशीलःसुसुरभिःसुवेषोनुल्वणोज्ज्वलः
धारयेत्सततंरत्नसिद्धमंत्रमहौषधीः ॥४॥

स्नानमे तत्पर रहै सुन्दर सुगंधिको धारण करै वेषको धारै और उज्ज्वल रहै और निरंतर रत्न सिद्धमंत्र और उत्तम औषधियोंको धारण करै ॥ ४ ॥

सातपत्रपदत्राणोविचरेद्युगमात्रदृक् ।
निशिचात्ययिकेकार्येदंडीमौलीसहायवान

छत्र और उपानह सहित विचरै और अपने आगे चार हाथ भूमिपर दृष्टि रक्खै और आवश्यक कार्यके निमित्त रात्रिमें दंड और मुकुटको धारण करके भृत्यसहित विचरै ॥५॥

नवेगितोन्यकार्यीस्यान्नवेगात्तीरयेद्बलात् ।
भक्त्याकल्याणमित्राणिसेवेतेतरदूरगः॥६॥

वेगसे अन्यके कार्यको न करै और वेगसे जलमें न पैरै और कल्याण और मित्रोंको भक्तिसे सेवै और इतरों ( शत्रुओं ) से दूर रहै ॥ ६ ॥

हिंसास्तेयान्यथाकामंपैशुन्यपरुषानृतम् ।
संभिन्नालापव्यापादमभिख्यादृग्विपर्ययम् ॥

हिंसा· चोरी, दुष्टकर्म, चुगली, कठोरता, झूंठ, भेद, वृथावचन द्रोहचिंता, दृष्टिकी विषमता इनको त्याग दे ॥ ७ ॥

पापकर्मेतिदशधाकायवाङ्मानसैस्त्यजेत् ।
अवृत्तिव्याधिशोकार्तानुवर्तेतशक्तितः ८॥

देह वाणी मनसे यह दश प्रकारका पाप होताहै इसको त्याग दे, और दरिद्री और रोग और शोकसे जो दुःखी हैं उनकी अपनी शक्तिके अनुसार पालना करै ॥ ८ ॥

आत्मवत्सततंपश्येदपिकीटपिपीलिकम् ।
उपकारप्रधानःस्यादपकारपरेप्यरौ ॥ ९ ॥

कीडे, चींटी इनको सदा अपने ही समान देखे और अपकारक योग्य शत्रुके विषयमें भी उपकार ही मुख्य समझै ॥ ९ ॥

संपद्विपत्स्वेकमनाहेतावीर्षेत्फलेन तु ।
कालेहितंमितंब्रूयादविसंवादिपेशलम् ॥१०॥

संपदा और विपत्तिमें एकरस मन रक्खै कार्यके कारणमें ईर्षा करै और कार्यमें न करे और समयपर हित और प्रमित यथार्थ सुन्दर बचन कहै ॥ १० ॥

पूर्वाभिभाषीसुमुखःसुशीलःकरुणामृदुः ।
नैकःसुखीनसर्वत्रविस्रब्धोनचशंकितः ११॥

सुन्दर मुखसे प्रथम बोले सुशील दयावान् और कोमल रहै सदा एकसुखी और विश्वासी शंकावाला नहीं होता ॥ ११ ॥

नंकचिदात्मनःशत्रुंनात्मानंकस्यचिद्रिपुम् ।
प्रकाशयेन्नापमानंनचनिःस्नेहतांप्रभोः १२॥

दूसरेको अपना शत्रु और अपनेको दूसरेका शत्रु प्रकाश न करै और प्रभुका अपमान और प्रीतिक अभावको भी प्रकाश न करै ॥ १२ ॥

जनस्याशयमालक्ष्ययोयथापरितुष्यति ।
तंतथैवानुवर्तेतपराराधनपंडितः ॥ १३ ॥

पराई आराधना ( सेवा ) करनेमे चतुर मनुष्य इतर मनुष्यके अभिप्रायको देखकर जो जिसप्रकार प्रसन्न हो उसी प्रकार उसके संग वर्ताव करै ॥ १३ ॥

नपीडयेदिंद्रियाणिनचैतान्यतिलालयेत् ।
इंद्रियाणिप्रमाथीनिहरंतिप्रसभंमनः॥१४॥

मनुष्य न तौ इंद्रियोंको पीडा दे और न अधिक इनके संग प्रीति करै क्योंकि मतवाली इंद्रियां बलात्कारसे मनको हर लती हैं ॥१४॥

एणोगजःपतंगश्चभृंगोमीनस्तुपंचमः ।
शब्दस्पर्शरूपरसगंधैरेतेहताःखलु ॥१५॥

मृग हडोके शब्दसे, हाथी हथिनीके स्पर्शसे, पतंग दीपकके रूपसे, भ्रमर फूलके रससे, मीन अन्नकी गंधिसे ये पांचों एक एक इंद्रियके विषयसे मारे जाते हैं ॥ १५ ॥

एपुस्पर्शोवरस्त्रीणांस्वांतहारीमुनेरपि ।
अतोऽप्रमत्तःसेवेतविषयांस्तुयथोचितान् ॥

इन इद्रियोंके निमित्त उत्तम स्त्रियोंका स्पर्श मुनिके भी मनको हरता ( वश करता ) है इससे अप्रमत्त होकर विषयोंको यथोचित सेवै ॥ १६ ॥

मात्रास्वस्रादुहित्राथानातयंतैकांतिकंवसेत् ।
यथासंबंधमाहूयाद्भाष्याश्चास्यवैस्त्रियम् ॥

माता, भगिनी लडकी इनके संग बहुत

एकांतमें न बैठे नातेके अनुसार सम्बोधन करके स्त्रियोंको बुलावै ॥ १७ ॥

**स्वीयांतुपरकीयांवासुभगेभगिनीतिच ।**
**सहवासोन्यपुरुषैःप्रकाशमपिभाषणम् १८**

अपनी और पराईको सुभगे भगिनी इस प्रकारसे बोलै, दूसरे पुरुषोंके संग बात और सम्भाषण न करने दे ॥ १८ ॥

**स्वातंत्र्यंनक्षणमपिह्यवासोन्यगृहेतथा ।**
**भर्त्रापित्राथवाराज्ञापुत्रश्वशुरबांधवैः ॥१९॥**

एक क्षण भी स्त्रियोंको स्वतन्त्रता न दे और दूसरेके घरमें भर्त्ता पिता राजा पुत्र श्वशुर भाई बन्धु ये सब स्त्रीको न बसने द ॥ १९ ॥

**स्त्रीणांनैवतुदेयःस्याद्गृहकृत्यैर्विनाक्षणः ।**
**चंडंषंढंदंडशीलमकामंसुप्रवासिनम् ॥२०॥**

घरके कार्यके विना स्त्रियोंको एक क्षण भी न रहने दे और जो पुरुष अत्यन्त क्रोधी, नपुंसक, दण्डकारक, कामरहित, परदेशवासी ॥ २० ॥

**सुदरिद्रंरोगिणंचह्यन्यस्त्रीनिरतंसदा ।**
**पतिंदृष्ट्वाविरक्तास्यान्नारीवान्यंसमाश्रयेत् ॥**

अत्यन्त दरिद्री, रोगी, सदा अन्य स्त्रीमें रत हो उस पतिको देखकर स्त्री विरक्त हो जाय अथवा दूसरे पुरुषके आश्रय हो जाय ॥ २१ ॥

**त्यक्त्वैतान्दुर्गुणान्यत्नात्ततोरक्ष्याः स्त्रियोनरैः**
**वस्त्रान्नभूषणप्रेममृदुवाग्भिश्चशक्तितः २२॥**

वस्त्र, अन्न, भूषण, प्रीति और कोमलवाणीसे शक्तिके अनुसार यत्नसे इन दुर्गुणोंको त्यागकर मनुष्य स्त्रियोंकी रक्षा करै ॥ २२ ॥

**स्वात्यंतसंनिकर्षेणस्त्रियंपुत्रंचरक्षयेत् ।**
**चैत्यपूज्यध्वजाशस्तच्छायाभस्मतुषाशुचीन् ॥ २३ ॥**

अपनी अत्यन्त समीपतासे स्त्री और पुत्रकी रक्षा करे और चबूतरा, पूज्य, ध्वजा उत्तमोंकी छाया, भस्म, जो अमंगल है इनका अवलंघन न करै ॥ २३ ॥

**नाक्रामेच्छर्करालोष्टबलिस्नानभुवोपिच ।**
**नदींतरेन्नबाहुभ्यांनाग्निंस्कन्नमभिव्रजेत् २४**

कंकर, ढेला, भेट, स्नानकी भूमि इनको भी अवलंघन न करै और भुजाओंसे नदीको न तैरे और विस्तारको प्राप्त हुई अग्निके सन्मुख न जाय ॥ २४ ॥

**संदिग्धनावंवृक्षंचनारोहेद्दुष्टयानवत् ।**
**नासिकांनविकुष्णीयान्नाकस्माद्विलिखेद्भुवम् ॥ २५ ॥**

टूटी नाव और वृक्षपर न चढे जैसे दुष्ट सवारीमें, अपनी नाकको न खुजावै और विना प्रयोजन पृथिवीको न खोदे ॥ २५ ॥

**नसंहताभ्यांपाणिभ्यांकंडूयेदात्मनःशिरः ।**
**नांगैश्चेष्टेतविगुणंनाश्नीयात्कटुकंचिरम् २६**

मिले हुए हाथोंसे अपने शिरको न खुजावै और अपने अंगकी निरर्थक चेष्टा न करै और बहुत दिनतक खट्टे पदार्थको न खाय ॥ २६ ॥

**देहवाक्चेतसांचेष्टाःप्राक्छ्रमाद्विनिवर्तयेत् ।**
**नोर्ध्वजानुश्चिरंतिष्ठेन्नक्तंसेवेतनद्रुमम् २७**

श्रम करके अपने देह, वाणी, मन इनकी चेष्टाओंको त्यागदे और बहुत देरतक ऊपरको पैर करके न बैठे और रात्रिके समय वृक्षपर न रहे ॥ २७ ॥

**तथाचत्वरचैत्यांतचतुष्पथसुरालयान् ।**
**शून्याटवीशून्यगृहश्मशानानिदिवापिन ॥**

चैत्य (चबूतरा) शून्य आगन चौराहा, व मद्यगृह, शून्यवन, शून्यगृह और श्मशान, इनको दिनमें भी न सेवै अर्थात् इनमें न बसै ॥ २८ ॥

**सर्वथेक्षेतनादित्यंनभारंशिरसावहेत् ।**
**नेक्षेतप्रततंसूक्ष्मंदीप्तामेध्याप्रियाणिच २९**

सूर्यको निरतर न देखै शिरपर बोझ लेकर न चले और सूक्ष्म पदार्थको भी निरतर न देखे प्रकाशमान अपवित्र और अप्रिय इनको भी निरतर न देखे ॥ २९ ॥

संध्यास्वभ्यवहारस्त्रीस्वप्नाध्ययनचिंतनम्।
मद्यविक्रयसंधानदानादानानिनाचरेत् ३०

संध्याके समय भोजन, स्त्री, शयन, पढना, इतनेकी चिंता न करै और मदिराका बेचना मिकासना पीना और पिलाना इनको न करै ॥ ३० ॥

आचार्यःसर्वचेष्टासुलोकएवहिधीमतः।
अनुकुर्यात्तमेवातोलौकिकार्थेपरीक्षकः ३१

बुद्धिमान् मनुष्यको जगत्के लोक ही संपूर्ण कार्यांमे आचार्य है इससे परीक्षा करनेवाला मनुष्य आचार्यका ही अनुयायी रहे ॥ ३१ ॥

राजदेशकुलज्ञातिसद्धर्मान्नैवदूषयेत्।
शक्तोपिलौकिकचारंमनसापिनलंघयेत् ३२

राजा, देश, कुल, जाति, इनके उत्तम धर्ममें दूषण न लगावै और समर्थ होकर भी लौकिक आचरणका अवलंघन न करै ॥ ३२ ॥

अयुक्तंयत्कृतंचोक्तंनबलाद्धेतुनोद्धरेत्।
दुर्गुणस्यचवक्तारःप्रत्यक्षंविरलाजनाः ३३

जो अयोग्य कर्मको किसीने किया हो अथवा कहा हो उसका बलसे समाधान न करै कि प्रत्यक्ष दुर्गुणके कहनेवाले मनुष्य विरले होते हैं ॥ ३३ ॥

लोकतःशास्त्रतोज्ञात्वाह्यतस्त्याज्यांस्त्यजेत्सुधीः। अनयंनयसंकाशंमनसापिनचिंतयेत् ॥ ३४ ॥

लोक और शास्त्रसे त्यागने योग्य कर्मोंको जानकर बुद्धिमान् मनुष्य त्याग दे और न्यायके समान प्रतीति होते अन्यायकी मनसे भी चिन्ता न करै ॥ ३४ ॥

अहंसहस्रापराधीकिमेकेनभवेन्मम।
मत्वानाघंस्मरेदीषद्बिंदुनापूर्यते घटः ३५॥

मैं हजारों अपराधोंका करनेवाला हूँ इस एक पाप करके मेरा क्या बुरा होगा यह मानकर किंचित् भी पापका स्मरण न करै क्योंकि बूँद बूँदस ही घडा भरता है ॥ ३५ ॥

नक्तंदिनानिमेयांतिकथंभूतस्यसंप्रति।
दुःखभाङ्नभवत्येवंनित्यंसन्निहितस्मृतिः ॥

अब मेरे रात दिन कैसे बीतते हैं इससे दुःखी न हो और नित्य स्मरण रक्खै ॥ ३६ ॥

समासव्यूहहेत्वादिकृतेच्छार्थंविहायच।
स्तुत्यर्थवादान्संत्यज्यसारंसंगृह्यायत्नतः ॥

संक्षेप और विस्तारके कारणके लिये अपनी इच्छाको त्याग दे और बडाईक वृथा वचनोंको भी त्यागकर सारको यत्नसे ग्रहण करके॥३७॥

धर्मतत्त्वंहिगहनमतःसत्सेवितंनरः।
श्रुतिस्मृतिपुराणानांकर्मकुर्याद्विचक्षणः ॥

सत्पुरुषोंने सेवन किया जो गहन (गम्भीर) धर्मका तत्व उसको विचारै और श्रुति स्मृतिमें कहे कर्मको ज्ञानवान् करै ॥ ३८ ॥

नगोपयेद्राजाचौरंराजामित्रंसुतंगुरुम्।
अधर्मनिरतंस्तेनमाततायिनमप्युत ॥३९॥

राजा अधर्म करते हुए, चोर, आततायी-मित्र, पुत्र और गुरुको भी न छिपावे किंतु राज्यसे निकास दे ॥ ३९ ॥

अग्निदोगरदश्चैवशस्त्रोन्मत्तोधनापहः।
क्षेत्रदारहरश्चैतान्षड्विद्यादाततायिनः ॥४०॥

अग्नि लगानेवाला, विष देनेवाला, शस्त्रसे उन्मत्त, धन चुरानेवाला, खेत हरनेवाला और स्त्री हरनेवाला ये छः आततायी होते हैं ॥४०॥

नोपेक्षेतस्त्रियंबालंरोगंदासंपशुंधनम्।
विद्याभ्यासंक्षणमपिसत्सेवांबुद्धिमान्नरः ४१

बुद्धिवाला मनुष्य इनको एक क्षण भी न छोडे, स्त्री, बालक, रोग, दास, पशु, धन और विद्याका अभ्यास, सज्जनसेवा ॥ ४१ ॥

विरुद्धोयत्रनृपतिर्धनिकःश्रोत्रियोभिषक्।
आचारश्चतथादेशोनतत्रादिवसंवसेत् ॥४२॥

जिस देशमे राजा विरुद्ध हो वेदपाठी धनी हो वैद्य आचारवान् हो उस देशमें एक दिन भी न बसे ॥ ४२ ॥

नपुंसकश्चस्त्रीबालश्चंडोमूर्खश्चसाहसी।
यत्राधिकारिणश्चैतेनतत्रदिवसंवसेत् ॥४३॥

जिस राजाके राज्यमें नपुंसक, स्त्री, बालक, अत्यन्त क्रोधी, मूर्ख, साहसी अधिकारी हों वहां एक दिन भी न वसे ॥ ४३ ॥

**अविवेकीयत्रराजासभ्यायत्रतुपाक्षिकाः ।**
**सन्मार्गोज्झितविद्वांसःसाक्षिणोनृतवादिनः**

जहां राजा अविवेकी हो सभासद पक्षपात करैं पंडितजन सन्मार्गी न हों साक्षी (गवाह) झूंठ बोले वहां भी न वसै ॥ ४४ ॥

**दुरात्मनांचप्राबल्यंस्त्रीणांनीचजनस्यच ।**
**यत्रनेच्छेद्धनंमानंवसतिंतत्रजीवितम् ॥४५॥**

जहां दुष्ट स्त्री नीच इनकी प्रबलता हो वहां धन मान वास जीवन इनकी इच्छा न करे ॥ ४५ ॥

**मातानपालयेद्बाल्येपितासाधुनाशिक्षयेत् ।**
**राजायदिहरेद्वित्तंकातत्रपरिदेवना ॥४६॥**

जो बालक अवस्थामें माता पालन न करे और पिता भलीप्रकार शिक्षा न दे और राजा अपने धनको हर ले तो शोककी इसमें क्या बात है ॥ ४६ ॥

**सुसेविताश्चकुप्यंतिमित्रस्वजनपार्थिवाः ।**
**गृहमग्न्यशनिहतंकातत्रपरिदेवना ॥४७॥**

यदि भलीप्रकार सेवा करनेसे भी मित्र वा अपने भाई बन्धु और राजा क्रोध करैं और अपना घर अग्नि वा बिजलीसे नष्ट हो जाय तो वहां शोककी क्या बात है ॥ ४७ ॥

**आप्तवाक्यमनादृत्यदर्पेणाचरितंयदि ।**
**फलितंविपरीतंतत्कातत्रपरिदेवना ॥४८॥**

यदि किसी सज्जनके वचनको न मानकर अभिमानसे कोई काम किया होय और उसका फल विपरीत हो जाय तो वहां क्या शोककी बात है ॥ ४८ ॥

**सावधानमनानित्यंराजानंदेवतांगुरुम् ।**
**अग्नितपस्विनंधर्मज्ञानवृद्धंसुसेवयेत् ॥४९॥**

राजा, देवता, गुरु, अग्नि, तपस्वी धर्ममें और विद्याज्ञानमें जो बडे हों इनकी सदैव सावधान होकर भली प्रकार सेवा करै ॥४९॥

**मातृपितृगुरुस्वामिभ्रातृपुत्रसखिष्वपि ।**
**नविरुध्येन्नापकुर्यान्मनसापिक्षणंक्वचित् ॥**

माता, पिता, गुरु, स्वामी, भाई, पुत्र, और मित्र इनके संग एक क्षण मात्र भी मनसे कभी विरोध और इनका तिरस्कार न करै ॥ ५० ॥

**स्वजनैर्नविरुद्ध्येतनस्पर्धेतबलीयसा ।**
**नकुर्यात्स्त्रीबालवृद्धमूर्खेषुचविवादनम् ५१**

स्वजनों (कुटुम्बके मनुष्यों) के साथ बलसे विरोध न करै और स्त्री, बालक, वृद्ध, मूर्ख इनके साथ विवाद न करै ॥ ५१ ॥

**एकःस्वादुनभुंजीतएकोऽर्थान्नविचिन्तयेत् ।**
**एकोनगच्छेदध्वानंनैकःसुप्तेषुजागृयात् ॥**

अकेला स्वादु भोजन न करै और अकेला अर्थकी चिन्ता न करैं अकेला मार्गमें न चले और सोतेमें अकेला न जागै ॥ ५२ ॥

**नान्यधर्मंहिसेवेतनद्रुह्याद्धैकदाचन ।**
**हीनकर्मगुणैःस्त्रीभिर्नासीतैकासनेक्वचित् ॥**

अन्यके धर्मको न करै और किसीके संग द्रोह न करै और नीच है कर्म और गुण जिसके उनके संग और स्त्रियोंके संग एक आसन पर कभी न बैठे ॥ ५३ ॥

**षड्दोषापुरुषेणेहहातव्याभूतिमिच्छता ।**
**निद्रातंद्राभयंक्रोधआलस्यंदीर्घसूत्रता ॥**

बढाई चाहनेवाला पुरुष इन छः दोषोंको त्याग दे कि निद्रा, तन्द्रा, (उदासीनता) भय, क्रोध, आलस्य, दीर्घसूत्रता ॥ ५४ ॥

**प्रभवंतिविघातायकार्यस्यैतेनसंशयः ।**
**उपायज्ञश्चयोगज्ञस्तत्त्वज्ञःप्रतिभानवान् ॥**

क्योंकि ये छहों कार्यके नाश करनेमें समर्थ हैं इसमें संशय नहीं है और उपाय युक्ति और तत्त्वको मनुष्य जाने और सदैव पैनी बुद्धि वाला रहे ॥ ५५ ॥

**स्वधर्मनिरतोनित्यंपरस्त्रीपुपराङ्मुखः ।**
**वक्तोहवांश्चित्रकथःस्यादकुंठितवाक्सदा ॥**

सदैव अपने धर्ममें तत्पर रहै परस्त्रियोंसे

त्याग करे और बोलनेमें तत्पर रहै विचित्र कथा कहै और वाणी कुण्ठी कभी न कहै॥५६

चिरंसंशृणुयान्नित्यंजानीयात्क्षिप्रमेवच।
विज्ञायप्रभजेदर्थान्नकामंप्रभजेत्क्वचित् ५७।

चिरकालतक नित्य सुने और शीघ्र जाना करै जानकर द्रव्यका विभाग और क्वचित् इच्छा न होय तौ विभाग न करै॥ ५७॥

क्रयविक्रयस्यातिलिप्सांस्वदैन्यंदर्शयेन्नहि।
कार्यंविनान्यगेहेननाशातः प्रविशेदपि ५८॥

लेन देनकी अधिक इच्छाके लिये अपनी दीनता न दिखावे और कार्यके विना और आशासे दूसरेके घरमे प्रवेश न करै॥ ५८॥

अपृष्टोनैवकथयेद्गृहकृत्यंतुकंप्रति।
बह्वर्थाल्पाक्षरंकुर्यात्सँल्लापंकार्यसाधकम्॥

घरका कार्य विना पूंछे किसीसे न कहे और दूसरेके संग ऐसी बात चीत करे जिसे अर्थ बहुत और अक्षर थोडे हों और जिसमे कार्यकी सिद्धि हो॥ ५९॥

नदर्शयेत्स्वाभिमतमनुभूताद्विनासदा।
ज्ञात्वापरमतंसम्यक्तेनाज्ञातोत्तरंवदेत् ६०॥

अनुभूतके विना (अजानेको) अपने अभिप्रायको न दिखावे (न बतावै) और दूसरेके मत (अभिप्राय) को भलीप्रकार जानकर उत्तर दे॥ ६०॥

दंपत्योः कलहेसाक्ष्यंनकुर्यात्पितृपुत्रयोः।
सुगुप्तः कृत्यमंत्रः स्यान्नत्यजेच्छरणागतम्॥

स्त्री, पुरुष तथा पिता पुत्रकी साक्षी न दे और संमति (सलाह) को छिपाकर करै और शरण आये हुएका परित्याग न करै॥ ६१॥

यथाशक्तिचिकीर्षेत्तुकुर्यान्मुह्येच्चनापदि।
कस्यचिन्नस्पृशेन्मर्ममिथ्यावादंनकस्यचित्

करनेको अभीष्ट कार्यको यथाशक्ति करे आपत्तिकालमे मोहको प्राप्त न हो, किसीके मर्मका स्पर्श न करे और किसीके मिथ्या अपवादको न करै॥ ६२॥

नाश्लीलंकीर्तयेत्कंचित्प्रलापनंचकारयेत्।
अस्वर्ग्यंस्याद्धर्म्यमपिलोकाविद्धेषितंतुयत्॥

अयोग्य और अनर्थक वचन किसीके प्रति न कहै क्योंकि सब जगत्का जिसमें वैर हो वह धर्मका काम भी स्वर्ग देनेवाला नहीं होता॥ ६३॥

स्वहेतुभिर्नहन्येतकस्यवाक्यंकदाचन।
प्रविचार्योत्तरंदेयंसहसानवदेत्क्वचित् ६४॥

अपने बनाये कारणोंसे किसीके वचनोंको नष्ट न करै, विचार कर उत्तर दे और शीघ्र उत्तर न दे॥ ६४॥

शत्रोरपिगुणाग्राह्यागुरोस्त्याज्यास्तुदुर्गुणाः
उत्कर्षोनैवनित्यः स्यान्नापकर्षस्तथैवच॥

शत्रुके भी गुण ग्रहण करने और गुरुके भी अवगुण त्यागने योग्य हैं क्योंकि बडाई और छोटापन सदा नहीं रहते॥ ६५॥

प्राक्कर्मवशतोनित्यंसधनोनिर्धनोभवेत्।
तस्मात्सर्वेषुलोकेषुमैत्रींनैवचहापयेत्६६॥

पूर्वजन्मके कर्मोसे धनवान् वा निर्धन होता है इससे संपूर्ण लोकोंके संग मित्रताको न त्यागै॥ ६६॥

दीर्घदर्शीसदाचस्यात्प्रत्युत्पन्नमतिःक्वचित्
साहसीआलसीचैवचिरकारीभवेन्नहि ६७॥

सदा दीर्घदर्शी (होनहारको जो पहिचाने) रहै और कभी २ तत्काल बुद्धि भी रहै और शीघ्र करनेवाला और आलसी और विलंबमें कार्य करनेवाला न रहै॥ ६७॥

यःसुदुर्निष्फलंकर्मज्ञात्वाकर्तुंव्यवस्यति।
द्रागादौदीर्घदर्शीस्यात्सचिरंसुखमश्नुते॥

वृथा कर्मोंकोभी जानकर जो किया चाहता है और पहिले ही जो शीघ्र दीर्घ-दर्शी होता है वह चिरकालतक सुख भोगता है॥ ६८॥

प्रत्युत्पन्नमतिः प्राप्तांक्रियांकर्तुंव्यवस्यति।
सिद्धिःसांशयिकीतत्रचापल्यात्कार्यगौरवात्

बुद्धिको प्राप्त होकर कार्यके समयमें ही जो कार्य किया चाहता है उस कार्यकी सिद्धिमे मनुष्यकी चपलता और कार्यकी गौरवतासे संशय होता है॥ ६९॥

यततेनैवकालेपिक्रियांकर्तुंचसालसः।
नसिद्धिस्तस्यकुत्रापिसनश्यतिचसान्वयः॥

आलसी मनुष्य कार्यके समयमें भी कार्य करनेमें यत्न नहीं करता उस मनुष्यकी कहीं भी सिद्धि नहीं होती और वह वंश सहित नष्ट होजाता है ॥ ७० ॥

क्रियाफलमविज्ञाययतेतसाहसीचसः।
दुःखभागीभवत्येवक्रियायांतत्फलेनवा॥

जो मनुष्य कार्यके फलको विना जानकर यत्न करता है वह साहसी शीघ्रकारी है और कार्य और कार्यके फलमें वह मनुष्य दुःखका ही भागी होता है ॥ ७१ ॥

महत्कालेनाल्पकर्मचिरकारीकरोतिच।
सशोचत्यल्पफलतोदीर्घदर्शीभवेदतः॥७२॥

जो अल्पकार्यको बडे कालमें करे उसे चिरकाली कहते हैं और वह अल्प फलकी प्राप्तिसे पीछे शोच करता है इससे मनुष्यको दीर्घदर्शी होना चाहिये ॥ ७२ ॥

सुफलंतुभवेत्कर्मकदाचित्सहसाकृतम्।
निष्फलंवापिप्रभवेत्कदाचित्सुविचारितम्॥

कभी शीघ्र किया हुआ भी कर्म अधिक फलदायी हो जाता है और भली प्रकारसे भी किया हुआ कर्म कदाचित् निष्फल हो जाता है ॥ ७३ ॥

तथापिनैवकुर्वीतसहसानर्थकारितत्।
कदाचिदपिसंजातमकार्यादिष्टसाधनम्॥

तौ भी सहसा ( शीघ्र ) कर्मको न करे क्योंकि वह अनर्थकारी होता है और कदाचित् कुकर्मसे भी इष्टकी सिद्धि हो जाती है ॥७४॥

यदनिष्टंतुकत्कार्यान्नाकार्यप्रेरकं हितत्।
भृत्योभ्रातापिवापुत्रः पत्नीकुर्यान्नचैवयत्॥

और जिस सत्कर्मसे जो अनिष्ट हो जाय वह सत्कर्म उस अनिष्टका प्रेरक नहीं होता जिस कार्यको भृत्य भाई स्त्री न कर सकैं ॥७५॥

विधास्यंतिचमित्राणितत्कार्यमविशंकितम्।
अतोयतेतततप्राप्त्यैमित्रलब्धिर्वरानृणाम्॥

उसकार्यको निःसन्देह मित्र कर सकेंगे इससे मित्रकी प्राप्तिके लिये यत्न करै क्योंकि मनुष्योंको मित्रकी प्राप्ति बडी श्रेष्ठ है ॥ ७६ ॥

नात्यंतंविश्वसेत्कंचिद्विश्वस्तमपिसर्वदा।
पुत्रंवाभ्रातरंभार्याममात्यमधिकारिणम्॥

सदा विश्वासवालेका अत्यन्त विश्वास न करे, पुत्र भाई स्त्री मन्त्री और अधिकारी इनका भी विश्वास न करै ॥ ७७ ॥

धनस्त्रीराज्यलोभोहिसर्वेभ्योप्यधिकोयतः।
प्रामाणिकंचानुभूतमाप्तंसर्वत्रविश्वसेत्॥

क्योंकि धन स्त्री राज्य इनका लोभ सबसे अधिक है जो प्रामाणिक है जिसको बताय रक्खा हो और जो यथार्थवादी हो उसका विश्वास सदैव करै ॥ ७८ ॥

विश्वसित्वात्मवद्गूढस्तत्कार्यंविमृशेत्स्वयम्।
तद्वाक्यंतर्कतोनर्थंविपरीतंनाचिंतयेत्॥

जो विश्वाससे समान हो गया हो उसके कार्यको स्वयं विचारे उसके वाक्यको तर्कनासे विपरीत न जाने ॥ ७९ ॥

चतुःषष्टितमांशंतन्नाशितंशमयेदथ।
स्वधर्मनीतिबलवांस्तेनमैत्रींप्रधारयेत्॥

चौसठवा भाग जो सेवक नष्ट कर दे उसपर क्षमा करे और अपना नीति धर्म बल इन वाला जो पुरुष उसके संग मित्रता करे॥ ८० ॥

दानैर्मानैश्चसत्कारैःसुपूज्यान्पूजयेत्सदा।
कदापिनोग्रदंडःस्यात्कटुभाषणतत्परः॥

दान मान और सत्कारोंसे पूजने योग्योंका सदैव पूजन करै और राजा उग्र दण्डका दाता और कटुवचनका वक्ता कभी न हो ॥ ८१

भार्यापुत्रोप्युद्विजतेकटुवाक्यात्प्रदंडतः।
पशवोपिवशंयांतिदानैश्चमृदुभाषणैः॥८२॥

कटुवचन और उग्र दण्डसे स्त्री और पुत्र भी उदासीन होते हैं दान देना और कोमल वचनसे पशु भी वशमें हो जाते हैं ॥ ८२ ॥

नविद्ययानशौर्येणधनेनाभिजनेनच।
नबलेनप्रमत्तःस्यान्नातिमानीकदाचन॥८३॥

विद्या, शूरवीरता, धन, कुल, बल इनसे कभी प्रमत्त न हो और न अत्यंत मान करे ॥ ८३ ॥

नाप्तोपदेशंसंवेत्तिविद्यामत्तःस्वहेतुभिः।
अनर्थमप्यभिप्रेतंमन्यतेपरमार्थवत् ॥ ८४ ॥

विद्यासे उन्मत्त पुरुष अपने हेतुओंसे आप्तोंके ,उपदेशको नहीं जानता और अपने वांछित अनर्थकोभी परमाथके समान मानता है ॥ ८४ ॥

शौर्यमत्तस्तुसहसायुद्धंकृत्वाजहात्यसून्।
व्यूहादियुद्धकौशल्यंतिरस्कृत्यचशात्रवान्।

शूरवीरतासे उन्मत्त पुरुष शीघ्र ही युद्ध करके और राजाओंके व्यूह (समूह) की कुशलतासे शत्रुओंका तिरस्कार करके अपने प्राणोंको त्याग देता है ॥ ८५ ॥

श्रीमत्तःपुरुषोवेत्तिनदुष्कीर्तिमजोयथा।
स्वमूत्रगंधंमूत्रेणमुखमासिंचतिस्वकम् ॥

लक्ष्मीसे उन्मत्त पुरुष अपनी कुकीर्तिको नहीं जानता और वह पुरुष अपने मूत्रकी दुर्गंधिवाले मुखको अपने मूत्रसे ही बकरेके समान सींचता है ॥ ८६ ॥

तथाभिजनमत्तस्तुसर्वानेवावमन्यते।
श्रेष्ठानपीतरान्सम्यगकार्यंकुरुतेमतिम् ॥

तिसी प्रकार अपने कुलसे उन्मत्त संपूर्ण इन श्रेष्ठोंका ही तिरस्कार करता है और निंदित कामोंमें मतिको करता है ॥ ८७ ॥

बलमत्तस्तुसहसायुद्धेविदधतेमनः।
बलेनबाधतेसर्वानश्वादीनप्यन्यथा ॥८८॥

बलसे उन्मत्त पुरुष शीघ्रही युद्धमें मन लगाता है यह पुरुष बलसे सबको पीडा देता है और अश्व आदिभी वृथा हैं ॥ ८८ ॥

मानमत्तोमन्यतेसमतृणवच्चाखिलंजगत्।
अनर्होपिचसर्वेभ्यस्त्वत्युच्चासनमिच्छति ॥

मानसे उन्मत्त पुरुष संपूर्ण जगत्‌को तृणके समान मानता है और सबसे अयोग्य होनेपर भी ऊंचे आसनकी इच्छा करता है ॥ ८९ ॥

मदाएतेवलिप्तानांसतामेतेदमाःस्मृताः।
विद्यायाश्चफलंज्ञानंविनयश्चफलंश्रियः ॥

अभिमानियोंके ये मद होते हैं और सत्पुरुषोंके येही दम कहे हैं विद्याका फल ज्ञान और विनय है लक्ष्मीका फल ॥ ९० ॥

यज्ञदानेबलफलंसद्रक्षणमुदाहृतम्।
नामिताःशत्रवःशौर्यफलंच करदीकृताः ॥

यज्ञ और दान, बलका फल सज्जनोंकी रक्षा कहा है और शूरवीरताका फल यह है कि शत्रुओंको नवाना और उनसे कर लेना ॥९१॥

शमोदमश्चार्जवंचाभिजनस्यफलंत्विदम्।
मानस्यतुफलंचैतत्सर्वेस्वसदृशाइति ॥९२॥

और उत्तम कुलका यह फल है कि शांति इन्द्रियोंका दमन और नम्रता करना और मान बडाईका फल यह है सबको अपने समान समझना ॥ ९२ ॥

सुविद्यामंत्रभैषज्यस्त्रीरत्नंदुष्कुलादपि।
गृह्णीयात्सुप्रयत्नेनमानमुत्सृज्यसाधकः ॥

उत्तम विद्या, मंत्र, वैद्य विद्या, उत्तम स्त्री इनको नीच कुलसे भी साधक ( कार्य करनेवाला ) मनको त्यागकर ग्रहण करे ॥ ९३ ॥

उपेक्षेतप्रनष्टंयत्प्राप्तंयत्तदुपाहरेत्।
नबालंनस्त्रियंचातिलालयेत्ताडयेन्नच ॥

नष्टवस्तुकी उपेक्षा करै और प्राप्त वस्तुको ग्रहण करै, बालक, स्त्री इनका न अत्यंत लाड करै और न अत्यंत ताडनादे ॥ ९४ ॥

विद्याभ्यासेगृहकृत्येतावुभौयोजयेत्क्रमात्।
परद्रव्यंक्षुद्रमपिनादत्तंसंहरेदणु ॥ ९५ ॥

विद्याके अभ्यास और गृहकृत्यमें इन दोनोंको क्रमसे नियुक्त करे। क्षुद्र और अल्प भी परद्रव्यका विनादिये ग्रहण न करे ॥ ९५ ॥

नोच्चारयेदघंकस्यस्त्रियंनैवचदूषयेत्।
नब्रूयादनृतंसाक्ष्यंकूटसाक्ष्यंनलोपयेत् ॥

किसीके पापका उच्चारण न करै स्त्रीको दोष न लगावै और झूंठी साक्ष्य ( गवाही ) न दे और साक्ष्यका लोप न करे ॥ ९६ ॥

प्राणात्ययेऽनृतंब्रूयात्सुमहत्कार्यसाधने ।
कन्यादात्रेतुह्यधनंदस्यवेसधनंनरम् ९७॥

प्राणके नाशमें, बडे कार्यके साधनमें, झूठ बोले और कन्याके देनेवालेको निर्धन और चौरको धनवाला ॥ ९७ ॥

गुप्तंजिघांसवेनैवविज्ञातमपिदर्शयेत् ।
जायापत्याश्चोपत्रीश्चभ्रात्रोश्चस्वामिभृत्ययोः ॥९८॥

हिंसा करनेवालेको रक्षित जाने हुएको भी न बतावै जायापति (स्त्री पुरुष) माता पिता दो भाई स्वामी भृत्य ( नौकर ) ॥ ९८ ॥

भगिन्योर्मित्रयोर्भेदंनकुर्याद्गुरुशिष्ययोः ।
नमध्याद्गमनंभाषाशालिनोः स्थितयोरपि ॥

दो बहन और दो मित्र, गुरु, शिष्य (चेला) इनमें भेद न करै वार्ता करते हुए दो पुरुषोंके और बैठे हुए दो पुरुषोंके बीचमें होकर न जाय ॥ ९९ ॥

सुहृदंभ्रातरंबंधुमुपचर्यात्सदात्मवत् ।
गृहागतंक्षुद्रमपियथार्हंपूजयेत्सदा १००॥

मित्र, भाई, बंधु, इनकी सदैव अपने समान सेवा करै और घरआये क्षुद्रकी भी यथायोग्य सदैव पूजा करै ॥ १०० ॥

तदीयकुशलप्रश्नःशक्त्यादानैर्जलादिभिः
सपुत्रस्तुगृहेकन्यांसपुत्रांवासयेन्नहि १ ॥

अपनी शक्तिके अनुसार जलआदि दोनोंसे कुशलप्रश्न पूंछे और पुत्र सहित ( सपुत्र ) पुत्र सहित कन्याको न बसावै ॥ १ ॥

सभर्तृकांचभगिनीमनाथेतेतुपालयेत् ।
सर्पोग्निर्दुर्जनोराजाजामाताभगिनीसुतः ॥

भर्तार सहित भगिनीको घर न बसावै और अनाथ ( असमर्थ ) हो तौ पालन करै । सर्प, अग्नि, दुर्जन, राजा, जामाता, भानजा ॥ २ ॥

रोगःशत्रुर्नावमान्योप्यल्पइत्युपचारतः ॥
क्रौर्यात्तैक्ष्ण्याद्दुःस्वभावात्स्वामितात्पुत्रिकाभयात् ॥ ३ ॥

रोग, शत्रु इनको अल्प समझ कर उपचार ( इलाज ) से अपमान न करै किंतु क्रुरताके भयसे सपका, तेजके भयसे अग्निका दुःस्वभावके भयसे दुर्जनका, स्वामीके भयसे राजाका, पुत्रिका ( कन्या ) के दुःखके भयसे जामातका ॥ ३ ॥

स्वपूर्वजपिंडदत्वाद्वृद्धिभीत्याउपाचरेत् ।
ऋणशेषंरोगशेषंशत्रुशेषंनरक्षयेत् ॥ ४ ॥

अपने पुरुषोंका पिण्डका दाता होनेसे भानजेका और बढनेके भयसे रोगका, और भीतिसे शत्रुका सदैव उपचार ( सेवा ) करै और ऋण, रोग, शत्रु इनके शेषकी रक्षा न करै अर्थात् इनको निर्मूल कर दे ॥ ४ ॥

याचकाद्यैःप्रार्थितःसन्नतीक्ष्णंचोत्तरंवदेत् ।
तत्कार्यंतुसमर्थश्चेत्कुर्याद्वाकारयतिच ५ ॥

और याचक आदि प्रार्थना करै तो उनको तीखा उत्तर न दे और समर्थ हो तो इनके कार्यको करै अथवा करा दे ॥ ५ ॥

दातॄणांधार्मिकाणांचशूराणांकीर्तनंसदा ।
शृणुयात्तुप्रयत्नेनतच्छिद्रंनैवलक्षयेत् ६॥

दाता, धार्मिक,शूरवीर, इनकी कीर्तिको बडे यत्नसे सुन और छिद्रको न देखै ॥ ६ ॥

कालेहितमिताहारविहारीविघसाशनः ।
अदीनात्माचसुस्वप्नःशुचिःस्यात्सर्वदानरः॥

समयपर हितकारी प्रमित भोजन और विहार करे, यज्ञके शेषको भक्षण करे, दीनता न करे सुखसे सोवै और सर्वदा पवित्र रहै ॥ ७ ॥

कुर्याद्विहारमाहारंनिर्हारंविजनेसदा ।
व्यवसायीसदाचस्यात्सुखंव्यायाममभ्यसेत्॥

बिहार ( क्रीडा ) भोजन मल मूत्रत्याग इनको सदैव एकान्तमें करै, नित्य उद्यमी हो और सुखसे व्यायाम ( कसरत ) का अभ्यास करै ॥ ८ ॥

अन्नंनर्निंद्यात्सुखच्छःस्वीकुर्यात्प्रीतिभोजनम्
आहारंप्रवरंविद्यात्षड्रसंमधुरोत्तरम् ॥ ९ ।

अच्छा मनुष्य अन्नकी निंदा न करे प्रीति से भोजनको ग्रहण करे और छः रसवाले उस आहारको उत्तम समझे जिसमें मधुर अधिक हो ॥ ९ ॥

विहारंचैवस्वस्त्रीभिर्वेश्याभिर्नकदाचन ।
नियुद्धंकुशलैः सार्धंव्यायामंनतिभिःस्मृ ॥

विवाहित स्त्रियोंके साथ विहार करे वेश्याओंके साथ कभी न करे, युद्धमें कुशलोंके साथ युद्ध और नति ( नमस्कार ) करने वालोंके साथ व्यायाम श्रेष्ठ होता है ॥ १० ॥

हित्वाप्राक्पश्चिमौयामौनिशिस्वापोवरोमतः ॥
दीनांधपंगुबधिरानोपहास्याः कदाचन ११।

पहिले और पिछले प्रहरको छोडकर रात्रिमें सोना श्रेष्ठ होता है और दीन, अंधे,पंगु, बहिरे इनका हास्य कभी न करे ॥ ११ ॥

नाकार्येतुमतिंकुर्याद्द्राक्स्वकार्यंप्रसाधयेत्।
उद्योगेनबलेनैवबुद्ध्याधैर्येणसाहसात् ॥

अकार्यमें मति न करे अपने कार्यको शीघ्र सिद्ध करे, उद्योग, बल, बुद्धि, धीरज, साहस इनसे ॥ १२ ॥

पराक्रमेणार्जवेनमानमुत्सृज्यसाधकः ।
नानिष्टंप्रवदेत्कस्मिन्नच्छिद्रंकस्यलक्षयेत्॥

कार्यसाधक मनको त्याग कर पराक्रम और नम्रतासे वर्ते, किसीको अनिष्ट न कहे और किसीके छिद्रको न देखे ॥ १३ ॥

आज्ञाभंगस्तुमहतांराज्ञःकार्योनवैक्वचित् ।
असत्कार्यनियोक्तारंगुरुंवापिप्रबोधयेत् ॥

बडोंकी और राजाकी आज्ञाका भंग कभी न करे असत्यकार्यके नियुक्त करनेवाले गुरुको भी बोधन करावे ॥ १४ ॥

नातिक्रामेदपिलघुंक्वचित्सत्कार्यबोधकम् ।
कृत्वास्वतंत्रांतरुणींस्त्रियंगच्छेन्नवैक्वचित् ॥

कार्यके बोधक लघु ( छोटे ) का भी अवलंघन न करे जवान स्त्रीको स्वतंत्र छोड़कर कहीं न जाय ॥ १५ ॥

स्त्रियोमूलमनर्थस्यतरुण्यःकिंपरैः सह ।
नप्रमाद्येन्मदद्रव्यैर्नविमुह्येत्कुसंततौ ॥ १६॥

जवान स्त्री अनर्थकी मूल होती हैं तो औरोंके साथ क्या है, मदकी द्रव्यसे प्रमादको और खोटी संतानसे मोहको प्राप्त न हो ॥ १६ ॥

साध्वीभार्यापितृपत्नीमाताबालःपितास्नुषा
अभर्तृकानपत्यायासाध्वीकन्यास्वसापिच

साधुस्त्री, पिताकी स्त्री, माता, बालक, पिता और जो अनपत्य और भर्ता रहित कन्या, स्नुषा ( पुत्रकी बहू ) स्वसा ( बहन ) ॥ १७ ॥

मातुलानीभ्रातृभार्यापितृमातृस्वसातथा ।
मातामहोनपत्यश्चगुरुश्वशुरमातुलाः १८ ॥

भाइ, भावज, माता और पिताकी बहन ये नाना, संतानरहित गुरु, श्वशुर, मामा ॥ १८ ॥

बालाःपिताचदौहित्रोभ्राताचभगिनीसुतः।
एतेवश्यंपालनीयाःप्रयत्नेनस्वशक्तितः ॥

बालक, रक्षक, धेवता, भ्राता, भानजा ये अपनी शक्तिके अनुसार यत्नसे पालने ॥१९॥

अविभवेपिविभवेपितृमातृकुलंसुहृत् ।
पत्न्याःकुलंदासदासीभृत्यवर्गंश्चपोषयेत् ॥

धन न होते और होते भी पिता माताका कुल, मित्र स्त्रीका कुल, दास दासी भृत्यवर्ग इनकी पालना करे ॥ २० ॥

विकलांगान्प्रव्रजितान्दीनानाथांश्चपालयेत्
कुटुंबभरणार्थेयोयत्नवान्नभवेन्नरः ॥२१॥

विकलांग (एक अंग रहित), संन्यासी दीन, अनाथ, इनकी पालना करे और कुटुम्बके पोषण करनेमें जो मनुष्य यत्नवाला नहीं होता उसके ॥ २१ ॥

तस्यसर्वगुणैःकिंतुजीवन्नेवमृतश्चसः
नकुटुंबंभृतंयेननामिताःशत्रवोपिन ॥२२॥

सम्पूर्ण गुणोंका क्या फल है वह मनुष्य जीता ही हुआ मरा है जिसने कुटुम्बको पाला नहीं और शत्रुओंको नवाया नहीं ॥ २२ ॥

प्राप्तंसंरक्षितंनैवतस्यकिंजीवितेनवै ।
स्त्रीभिर्जितोऋणीनित्यंसुदरिद्रीचयाचकः॥
गुणहीनायेधनैःसन्मृताएतेसजीवकाः ।

मिले हुए पदार्थकी जिसने रक्षा नहीं की उसके जीनेसे क्या है स्त्रियोंके वशीभूत और सदैव ऋणी महान् दरिद्री और याचक ॥ २३ ॥ गुणहीन, शत्रुके आधीन ये सब मनुष्य जीतही मृतकके समान हैं ॥ २३ ॥

**आयुर्वित्तंगृहच्छिद्रंमंत्रमैथुनभेषजम् ।**
**दानमानापमानंचनवैतानिसुगोपयेत् २४॥**

अवस्था, धन, घरका छिद्र, मंत्र ( सलाह ) मैथुन, औषध, दान, मान, अपमान इन नौवस्तुओंको भली प्रकार गुप्त करै ॥ २४ ॥

**देशाटनंराजसभाप्रवेशनंशास्त्रचिंतनम् ॥२५॥**
**वेश्यानिदर्शनंविद्वन्मैत्रींकुर्यादतंद्रितः ।**
**अनेकाश्चतथाधर्माःपदार्थाःपशवोनराः२६॥**

देशोंमें विचरना राजसभामें जाना शास्त्रका चिन्तन ॥ २५ ॥ वेश्याओंका परिचय विद्वानोंकी मित्रता इनको निरालस्य होकर करै और अनेक धर्म, पदार्थ, पशु, नर ॥ २६ ॥

**देशाटनात्स्वानुभूताः पर्वतादेशरीतयः ।**
**कीदृशाराजपुरुषान्याय्यान्याय्यंचकीदृशम्**

पर्वत देशोंकी रीति ये सब देशाटनसे जाने जाते हैं. राजाके पुरुष कैसे हैं, न्याय और अन्याय कैसा है ॥ २७ ॥

**मिथ्याविवादिनः केचकेवैसत्यविवादिनः ।**
**कीदृशोव्यवहारस्यप्रवृत्तिःशास्त्रलोकतः २८**

कौन मिथ्यावादी हैं कौन सत्यवादी हैं शास्त्र और लोककी रीतिसे व्यवहारकी प्रवृत्ति कैसी है ॥ २८ ॥

**सभागमनशीलस्यतद्विज्ञानंप्रजायते ।**
**नाहंकारीचधर्मांधःशास्त्राणांतत्त्वचिंतनैः२९**

राजसभामें जानेवाले मनुष्यको इन वस्तुओंका ज्ञान होता है, शास्त्रके तत्त्वोंकी चिंतासे मनुष्य अहंकारी और धर्ममें अंधा नहीं होता ॥ २९ ॥

**एकंशास्त्रमधीयानोनविंद्यात्कार्यनिर्णयम् ।**
**स्याद्बह्वागमसंदर्शीव्यवहारोमहानतः॥३०॥**

एक शास्त्रके पढ़नेवाला मनुष्य कार्यके निर्णयको नहीं जान सकता इससे मनुष्य अनेक शास्त्रको देखनेवाला हो इसीसे महान् व्यवहार होता है ॥ ३० ॥

**बुद्धिमानभ्यसेन्नित्यंबहुशास्त्राण्यतंद्रितः ।**
**तदर्थंतुगृहीत्वापितदधीनोनजायते ॥३१॥**

बुद्धिमान् आलस्य छोडकर प्रतिदिवस शास्त्रोंका अभ्यास करै और शास्त्रके अर्थको जानकर भी उसके आधीन मनुष्य नहीं होता ॥ ३१ ॥

**वेश्यायथाविधावापिवशीकर्तुंनरंक्षमा ।**
**नेयात्कस्यवंशतद्वत्स्वाधीनंकारयेज्जगत् ३२**

वेश्या जिसप्रकारके मनुष्यको वश करनेको समर्थ होती है इससे आप किसीके वशमें न हो और जगत्को अपने वशमें करै ॥३२॥

**श्रुतिस्मृतिपुराणानामार्थविज्ञानमेवच ।**
**सहवासात्पंडितानांबुद्धिःपंडाप्रजायते ३३**

श्रुति, स्मृति, पुराण, इनके अर्थका ज्ञान और पंडा बुद्धि पंडितोंके संग वाससे होती है ॥ ३३ ॥

**देवपित्रतिथिभ्योन्नमदत्त्वानाश्नियात्क्वचित् ।**
**आत्मार्थंयः पचेन्मोहान्नरकार्थंसजीवति ३४**

देवता, पितर, अतिथि इनको विना अन्न दिये भोजन न करै जो अज्ञानसे अपने लिये पकाता है वह नरकके लिये जीवता है ॥३४॥

**मार्गंगुरुभ्योबलिनेव्याधितायशवायच ।**
**राज्ञेश्रेष्ठायव्रतिनेयानगायसमुत्सृजेत् ३५॥**

इतने पुरुषोंको मार्ग छोड दे अर्थात् संमुख आते देखकर हट जाय कि गुरु, बलवान्, रोगी, शव, राजा श्रेष्ठ व्रतवाला और जो यानमें चढा हो ॥ ३५ ॥

**शकटात्पंचहस्तंतुदशहस्तंतुवाजिनः ।**
**दूरतःशतहस्तंचतिष्ठेन्नागाद्वृषाद्दश ३६॥**

गाडीसे पांच हाथ, घोडेसे दश हाथ, हाथीसे सौ हाथ और बैलसे दश हाथ दूर पर टिके ॥ ३६ ॥

शृंगिणांनखिनांचैवदंष्ट्रिणांदुर्जनस्यच।
नदीनांचमतौस्त्रीणांविश्वासंनैवकारयेत् ३७

सींग, नख, डाढवाले जीवोंका, दुर्जन, नदीके समीपका वास और स्त्री इनका कदाचित् भी विश्वास न करै ॥ ३७ ॥

खादन्नगच्छेदध्वानंनचहास्येनभाषणम्।
शोकंनकुर्यान्नष्टस्यस्वकृतेरपिजल्पनम् ३८

भोजन करता हुआ मार्गमे न चले, हँसी से भाषण न करे, नष्ट हुई वस्तुका शोक न करे, अपने कृत्यका कथन ( प्रशंसा ) न करै ॥ ३८ ॥

सशंकितानांसामीप्यंत्यजेद्वैनीचसेवनम्।
सल्लॉपंनैवशृणुयाद्गुप्तःकस्यापिसर्वदा ३९॥

जिसकी तरफसे कुछ शका हो उसके समीप न रहै, नीचकी सेवाको त्याग दे और किसीके सम्भाषणको कदाचित् भी छुपकर न सुनै ॥ ३९ ॥

उत्तमैरननुज्ञातंकार्यंनेच्छेच्चतैः सह।
देवैःसाकंसुधापानाद्राहोश्छिन्नंशिरोयतः॥

बडोंकी आज्ञाके विना और उनके साथकी इच्छा न करै क्योंकि देवताओंके संग अमृतपान करनसे राहुका शिर छेदन हो गया था ॥ ४० ॥

महतोसत्कृतमपिभवेत्तद्भूषणायवै।
विषपानंशिवस्यैवत्वन्येषांमृत्युकारकम्॥

निंदित भी कर्म बडोंके लिये भूषण होता है और अन्य पुरुषोंको मृत्युका दाता होता है ॥ ४१ ॥

तेजस्वीक्षमतेसर्वंभोक्तुंवह्निरिवानघः।
नसांमुख्येगुरोःस्थैर्यंराज्ञःश्रेष्ठस्यकस्यचित्

तेजवाला मनुष्य सम्पूर्ण भक्षण करनेको इस प्रकार समर्थ होता है जैसे पवित्र अग्नि और गुरु राजा अथवा अन्य किसी श्रेष्ठ पुरुष क समुख न टिके ॥ ४२ ॥

राजामित्रमितिज्ञात्वानकार्यंमानसाप्सतम्।
नेच्छेन्मूर्खस्यस्वामित्वंदास्यमिच्छेन्महात्मनाम् ॥ ४३ ॥

राजाको मित्र जानकर मन माने कार्य न करे और मूर्खको स्वामी बनानेकी इच्छा न करे तथा महात्माओंके दास बननेकी इच्छा करे ॥ ४३ ॥

विरोधनंज्ञानलवदुर्विदग्धस्यचरंजनम्।

ज्ञानके लेशसे जो दुर्विदग्ध है उसके संग विरोध और प्रीति न करै ॥

अत्यावश्यमनावश्यंक्रमात्कार्यंसमाचरेत्।
प्राक्पश्चाद्द्राग्विलंबेनप्राप्तंकार्यंतुबुद्धिमान्॥

आवश्यक और अनावश्यकको क्रमसे करे अर्थात् आवश्यककार्यको करके अनावश्यकको करै प्रथम पीछे शीघ्र और विलम्बसे प्राप्त हुए कार्यको मनुष्य करै अर्थात् जो जिस समय करनेके योग्य हो उसको उसी समय करै ॥ ४४ ॥

पित्राज्ञातेनवैमातृवधरूपेसुपूजिता ॥४५॥
धृतागौतमपुत्रेणह्यकार्येचिरकारिता।
प्रेम्णासमीपवासेनस्तुत्यानत्याचसेवया ४६

पिताकी आज्ञासे माताके मारने रूप कार्यमें भली प्रकार पूजा ॥ ४५ ॥ गौतमपुत्रको कुकर्ममेंभी चिरकालमें करनेसे मिली और प्रेम समीप वास, स्तुति नमस्कार सेवासे ॥ ४६ ॥

कौशल्येनकलाभिश्चकथाभिर्ज्ञानतोपिवा।
आदरेणार्जवेनैवशौर्याद्दानेनविद्यया॥४७॥

कुशलता कला कथाज्ञान आदर नम्रता शूरता दान और विद्यासे ॥ ४७ ॥

प्रत्युत्थानाभिगमनैरानंदस्मितभाषणैः।
उपकारैःस्वाशयेनवशीकुर्याज्जगत्सदा॥

प्रत्युत्थान ( देखकर उठना ) सन्मुखगमन आनंद हँसकर भाषण उपकार और अपने अन्तःकरणसे सदैव जगत्‌को वशमे करै ॥ ४८ ॥

एतेवश्यकरोपायादुर्जनेनिष्फलाःस्मृताः।
तत्सान्निध्यंत्यजेत्प्राज्ञःशक्तस्तंदंडतोजयेत्॥

परन्तु ये सब वश करनेके उपाय दुर्जनके विषय निष्फल कहे ह इससे बुद्धिमान् मनुष्य दुर्जनके समीपको त्यागदे समर्थ होय तो उसको दंडसे जीते ॥ ४९ ॥

छलभूतैस्तुतद्रूपैरुपायैरेभिरेववा।
श्रुतिस्मृतिपुराणानामभ्यासः सर्वदाहितः।

छलरूप जीतनेके उपायोंसे अथवा इनही जीते श्रुति स्मृति पुराण इनका अभ्यास सदैव हितकारी होता है ॥ ५० ॥

सांगानांसोपवेदानांसकलानांनरस्यहि।
मृगयाक्षाःस्त्रियःपानंव्यसनानिनृणांसदा॥

अंग और उपवेदों सहित संपूर्ण वेदोंका अभ्यास मनुष्यको हित है और मृगया द्यूत स्त्री मदिराका पान ये मनुष्योंके सदैव व्यसन कहे हैं ॥ ५१ ॥

चत्वार्येतानिसंत्यज्ययुक्त्यासंयोजयेत्कचित्
कूटेनव्यवहारंतुवृत्तिलोपंनकस्यचित्॥५२॥

इन चारोंको त्याग दे परन्तु युक्तिसे कचित् २ इनका योग करै (वर्तै) किसीके झूठसे व्यवहार और किसीकी जीविकाका लोप ॥ ५२ ॥

नकुर्याच्चिंतयेत्कस्यमनसाप्यहितंकचित्।
तत्कार्यंतुसुखंयस्माद्भवेत्त्रैकालिकंदृढम्॥

न करै और मनसे भी किसीके अहितकी चिंता न करै और वही काम करै जिससे तीनों कालमें दृढ सुख मिले ॥ ५३ ॥

मृतेस्वर्गेजीवतिचविद्यात्कीर्तिंदृढांशुभाम्।
जागर्तिचसचिंतोयःआधिव्याधिसुपीडितः॥

मरे पीछे, और जीवते समयमें दृढ तथा उत्तम कीर्तिको पहिचाने जो मनुष्य चिंता सहित है वा आधिव्याधिसे सुपीडित है वह जागता है अर्थात् उसको निद्रा नहीं आती ॥ ५४ ॥

जारश्चोरोबलिद्विष्टोविषयीधनलोलुपः।
कुसहायीकुनृपतिर्भिन्नामात्यस्सुहृत्प्रजः॥

जार चोर बलवान्‌का वैरी विषयी धनका लोभी जिसका सहायक बुरा हो वा जो राजा बुरा हो जिसके मंत्री भिन्न हों वा जिसकी प्रजा भिन्न हो अर्थात् मित्रतासे उनसे कर न लेता हो ॥ ५५ ॥

कुर्याद्यथासमीक्ष्यैतत्सुखंस्वप्याच्चिरंनरः।
राज्ञोनानुकृतिंकुर्यान्नचश्रेष्ठस्यकस्यचित्॥

इससे इन सब कामोंको यथार्थ देख कर करै और मनुष्य चिरकालतक आनंदसे शयन करै और राजाका अथवा किसी श्रेष्ठ मनुष्यका अनुकरण न करै ॥ ५६ ॥

नैकोगच्छेद्व्यालव्याघ्रचोरेषुचप्रबाधितुम्।
जिघांसंतंजिघांसीयाद्गुरुमप्याततायिनम्॥

सर्प सिंह चौर इनकी हिंसाके लिये अकेला न जाय और मारते हुए आततायी गुरुकीभी हिंसा करै ॥ ५७ ॥

कलहेनसहायःस्यात्संरक्षेद्बहुनायकम्।
गुरूणांपुरतोराज्ञोनचासीतमहासने॥ ५८ ॥

लडाईमे सहायता न करै और उसकी रक्षा करै जिसके समीप बहुत सेना हो। गुरु और राजा इनके आगे उच्च आसन पर न बैठे ॥ ५८ ॥

प्रौढपादोनतत्कार्यंहेतुभिर्विकृतिंनयेत्।
यत्कर्तव्यंनजानातिकृतंजानातिचेतरः॥५९॥

और ऊंचे पैर करके भी न बैठे और न उनके कार्यको न बिगाडे जो मनुष्य करने योग्य कार्यको न जाने उसको इतर मनुष्य कैसे जान सकतेहैं ॥ ५९ ॥

नैववक्तिचकर्तव्यंकृतंयश्चोत्तमोनरः।
नप्रियाकथितंसम्यङ्मनुतेनुभवंविना॥६०॥

जो मनुष्य अपने करने योग्य वा किये कार्यको नहीं कहता वह आदमी उत्तम होता है अथवा जो स्त्रीके कथनको विना देखे सत्य नहीं मानता वह भी उत्तम है ॥ ६० ॥

अपराधंमातृस्नुषाभ्रातृपत्नीसपत्निजम्।
षोडशाब्दात्परंपुत्रंद्वादशाब्दात्परंस्त्रियम्॥

अथवा जो माता पुत्रवधू भ्राताकी स्त्री सपत्नी इनके अपराधको न माने वह उत्तम है सोलहवर्षसे ऊपर पुत्रकी और बारह वर्षसे ऊपर स्त्रीकी ॥ ६१ ॥

नताडयेद्दुष्टवाक्यैःपीडयेन्नस्नुषादिकम्।
पुत्राधिकाश्चदौहित्राभागिनेयाश्चभ्रातरः॥

ताडना न करै और पुत्रवधू आदिकोंको दुष्टवचनोंसे दुःख न दे और दौहित्र भानजे भाई ये सब पुत्रसे अधिक होते हैं ॥ ६२ ॥

कन्याधिकाःपालनीयाभ्रातृभार्यास्नुषास्वसा।
आगमार्थहियततेरक्षणार्थंहिसर्वदा ॥ ६३॥

और भ्राताकी स्त्री पुत्रवधू भगिनी इनकी कन्यासे भी अधिक पालना करै, मेल और रक्षाके लिये सदैव यत्न करै ॥ ६३ ॥

कुटुंबपोषणेस्वामीतदन्येतस्कराइव ।
अनृतंसाहसंमौर्ख्यंकामाधिक्यंस्त्रियांयतः ॥

स्वामी वही है जो कुटुम्बका पोषण करै उससे अन्य चोरोंके समान होते हैं, जिससे स्त्रियोंको झूठ साहस मूर्खता कामदेवकी अधिकता होती है ॥ ६४ ॥

कामाद्विनैकशयनेनैवसुप्यात्स्त्रियासह ।
दृष्टाधनंकुलंशीलंरूपंविद्यांबलंवयः ॥६५॥

इससे स्त्रीके संग एकशय्या पर कभी न सोवे और धन, कुल, शील, रूप, विद्या, बल, अवस्था, इनको देखकर ॥ ६५ ॥

कन्यांदद्यादुत्तमंचेन्मैत्रींकुर्याद्यथात्मनः ।
भार्यार्थिनंवयोविद्यारूपिणंनिर्धनंत्वपि ६६

कन्याको दे और अपनेसे उत्तम होय तो उसके संग मित्रता करै और वर चाहे निर्धन हो परन्तु विद्या और रूपवान् हो ॥ ६६ ॥

नकेवलेनरूपेणवयसानधनेनच ।
आदौकुलंपरीक्षततोविद्यांततोवयः ॥६७॥

केवल रूप अवस्था धनसे वरको न देखे किन्तु प्रथम कुलकी परीक्षा करै फिर विद्याकी फिर अवस्थाकी ॥ ६७ ॥

शीलंधनवयोरूपंदेशंपश्चाद्विवाहयेत ।
कन्यावरयतेरूपंमाताविर्त्तपिताश्रुतम् ६८ ॥

फिर शील धन अवस्था रूप इनकी परीक्षा करकै विवाह करदे, कन्या रूपको माता धनको पिता विद्याको चाहते हैं ॥ ॥ ६८ ॥

बांधवाः कुलमिच्छंतिमिष्टान्नमितरेजनाः ।
भार्यार्थीवरयेत्कन्यामसमानर्षिगोत्रजाम् ॥

बांधव कुलकी और इतर बराती मिष्टान्नकी इच्छा करते हैं, भार्याका अभिलाषी मनुष्य ऐसी कन्याको विवाहै जो अपने प्रवर व गोत्रकी न हो ॥ ६९ ॥

भ्रातृमतींसुकुलांचयोनिदोषविवर्जिताम् ।
क्षणशःकणशश्चैवविद्यामर्थंचसाधयेत् ७०

जिसके भ्राता हों अच्छे कुलकी हो और योनिका दोष जिसमें न हो ऐसी कन्याको विवाहै क्षण २ में विद्या और अल्प २ भी धनका संचय करै ॥ ७० ॥

नत्याज्यौतुक्षणकणौनित्यंविद्याधनार्थिना ।
सुभार्यापुत्रमित्रार्थंहितंनित्यंधनार्जनम् ७१

विद्या और धनके अभिलाषीको क्षण और कण ( अल्पता ) नहीं त्यागने, श्रेष्ठस्त्री और पुत्रके लिये नित्य धनका संचय करना अच्छा है ॥ ७१ ॥

दानार्थंचाविनाह्येतैः किंधनैश्चजनैश्चकिम् ।
भाविसंरक्षणक्षमंधनंयत्नेनरक्षयेत् ॥७२॥

और दानके लियेभी, इनके विना धन और जनोंसे क्या है भविष्यकालमें जो रक्षाके योग्य हो उस धनकी यत्नसे रक्षा करै ॥ ७२ ॥

जीवामिशतवर्षंतुनंदामिचधनेनवै ।
इतिबुद्ध्यासंचिनुयाद्धनंविद्यादिकंसदा ७३

मैं सौ वर्षतक जीऊंगा और धनसे आनंद भोगोंगा इस बुद्धिसे धन और विद्या आदिका सदैव संचय करै ॥ ७३ ॥

पंचविंशत्यब्दपूर्वंतदर्धंवातदर्धकम् ।
विद्याधनंश्रेष्ठतरंतन्मूलीमतरद्धनम् ॥ ७४ ॥

पचीस वर्षतक अथवा साढे बारह वर्षतक अथवा सवा छः वर्षतक बुद्धिके अनुसार विद्या धन श्रेष्ठतर होताहै और सब धनोंका यही मूल कारण है ॥ ७४ ॥

दानेनवर्धतेनित्यंनभारायननीयते ।
अस्तियावत्तुसधनस्तावत्सैवस्तुमेव्यते ७५

विद्याधन दानसे नित्य बढ़ता है विद्याका भार नहीं होता और न कोई लेजा सकता और धनी मनुष्य जबतक धनवान् रहता है तबतक सब सेवा करते हैं ॥ ७५ ॥

निर्धनस्त्यज्यतेभार्यापुत्राद्यैः सगुणोप्यतः ।
संसृतौव्यवहारायसारभूतंधनंस्मृतम् ॥७६॥

गुणवान्भी निर्धनको स्त्री पुत्र आदि त्याग देते हैं परन्तु संसारके व्यवहारोंके लिये धनही सार कहा है ॥ ७६ ॥

अतोयतेततत्प्राप्त्यैनरः सूपायसाहसैः ।
सुविद्ययासुसेवाभिःशौर्येणकृषिभिस्तथा ॥

इससे मनुष्य उत्तम उपाय वा साहससे भी धनकी प्राप्तिके लिये यत्न करे उत्तम विद्या उत्तम सेवा, शूरवीरता और खेतीसे ॥ ७७ ॥

कौशीदवृद्ध्यापण्येनकलाभिश्चप्रतिग्रहैः ।
ययाकयाचापिवृत्त्याधनवान्स्यात्तथाचरेत्॥

सूदकी वृद्धि, व्यवहार, कला, प्रतिग्रह वा जिस तिस वृत्तिसे ऐसा आचरण करे जिससे धनवान् हो ॥ ७८ ॥

तिष्ठंतिसधनद्वारेगुणिनः किंकराइव ।
दोषाअपिगुणायंतेदोषायंतेगुणाअपि ७९॥
धनवतोनिर्धनस्यनिंद्यतेनिर्धनोखिलैः ।
यथानजानंतिधनंसंचितंकातिकुत्रवै ॥८०॥

धनवान् मनुष्यके द्वारपर गुणवान् मनुष्य किंकरके समान टिकते हैं और धनवान मनुष्यके दोष भी गुण, और निर्धनके गुणभी दोष हो जाते हैं और निर्धन मनुष्यकी सब निंदा करते हैं और जैसे संचित धनको कितना है और कहां है ये न जानें ॥ ७९ ॥ ८० ॥

आत्मास्त्रीपुत्रमित्राणिसलेखंधारयेत्तथा ॥
नैवास्तिलिखितादन्यत्स्मारकंव्यवहारिणाम् ८१ ॥

आत्मा, स्त्री, पुत्र, मित्र, इन सबको लिख कर धनको रक्खे अर्थात् जिस लेखमें इनको धन प्राप्त होसके क्योंकि लिखे विना अन्य व्यवहारियोंको जतानेवाला कोई नहीं है ॥ ८१ ॥

नलेखेनविनाकुर्याद्व्यवहारंसदाबुधः ।
निर्लोभेधनिकेराज्ञिविश्वस्तेक्षमिणांवरे ॥
सुसंचितंधनंधार्यंगृहीतंलिखितंतुवा ।
मैत्र्यर्थेयाचितंदद्यादकुसीदंधनंसदा ॥८३॥

बुद्धिमान् मनुष्य लिखे विना कोई काम न करे और निर्लोभी धनवान्, राजा, विश्वासके योग्य, क्षमाशील, इनके समीप अपने संचित धनको रक्खे चाहै वह धन गृहीत वा लिखा हो और मित्रताके लिये विना व्याजभी धनको सदैव दे ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

तस्मिन्स्थितंचेन्नबहुहानिकृच्चतथाविधम् ।
दृष्ट्वाधमर्णवृद्ध्यादिव्यवहारक्षमंसदा ८४॥

मित्रके पास स्थित हुआ भी लिखित धन अत्यन्त हानि करनेवाला नहीं होता और व्याजपर भी व्यवहारके योग्य सदैव देखकर ॥ ८४ ॥

ससंबंधंसप्रतिभुबंधनंदद्याच्चसाक्षिमत् ।
गृहीतलिखितंयोग्यमानंप्रत्यागमेसुखम्८५

अवधी, प्रतिभू ( जामिन ) और साक्षी इनको लिखकर धनको दे क्योंकि ग्रहण करनेके समय लिखाहुआ जो प्रमाण है सो लौटानेके समय सुखदाई होता है ॥ ८५ ॥

नदद्याद्वृद्धिलोभेननष्टंमूलधनंभवेत् ।
आहारेव्यवहारेचत्यक्तलज्जःसुखीभवेत् ॥

ऐसी जगह व्याजके लोभसे धनको न दे जहां मूलधन भी नष्ट हो जाय क्योंकि आहार और व्यवहारमें जो लज्जाको त्यागता है वही सुखी होता है ॥ ८६ ॥

धनंमैत्रीकरंदानेचादानेशत्रुकारकम् ।
कृत्वास्वांततथौदार्यंकार्पण्यंबाहिरेवच ८७

देनेके समय धन मित्रको और लौटानेके समय शत्रुताको करता है और अपने चित्तमें उदारताको और बाहिर कृपणताको करके ॥ ८७ ॥

उचितंतुव्ययंकालेनरःकुर्यान्नचान्यथा ।
सुभार्यापुत्रमित्राणिशक्त्यासंरक्षयेद्धनैः ८८

मनुष्य समयपर उचित व्ययको करै अन्यथा न करै और शक्तिके अनुसार श्रेष्ठ स्त्री, पुत्र, मित्र इनकी धनसे रक्षा करै ॥ ८८ ॥

नात्मापुनरतोत्मानंसर्वैःसर्वेपुनर्भवेत ।
पश्यतिस्मसजीवश्चेन्नरोभद्रशतानिच ८९

अपना आत्मा फिर नहीं होता और अन्य सब फिर हो सकते हैं इससे आत्माकी सबसे रक्षा करै क्योंकि यदि मनुष्य जीवेगा तो सैकडों आनन्दोंको देखेगा ॥ ८९ ॥

सदारप्रौढपुत्रान्द्राक्श्रेयोर्थीविभजेत्पिता ।
सदारभ्रातरःप्रौढाविभजेयुःपरस्परम् ९०॥

अपने कल्याणका अभिलाषी पिता स्त्री और व्यवहार करनेके योग्य पुत्रोंके धनका विभाग शीघ्र करदे अथवा उक्त स्त्री युक्त पुत्र परस्पर धनका विभाग कर लें ॥ ९० ॥

एकोदराअपिप्रायोविनाशायान्यथाखलु ।
नैकत्रसंवसेच्चापिस्त्रीद्वयंमनुजस्यतु ॥९१॥

क्योंकि विभागके न करनेसे प्रायः सहोदर भाई भी नष्ट हो जाते हैं और मनुष्यकी दो स्त्री एक जगह नहीं वस सकतीं ॥ ९१ ॥

कथंवसेत्तद्बहुत्वंपशूनांतुनरद्वयम् ।
विभजेयुर्नतत्पुत्रायद्धनंवृद्धिकारणम् ९२॥

पशुके समान दो मनुष्य अथवा बहुत स्त्री एक जगह किस प्रकार वस सकते हैं और जिस धनका व्याज आता हो उस धनका विभाग पुत्र न करै ॥ ९२ ॥

अधमर्णस्थितंचापियद्देयंचौत्तमर्णिकम् ॥
यस्येच्छेदुत्तमांमैत्रींकुर्यान्नार्थाभिलाषकम्॥

जो धन व्याजपर हो अथवा जो ऋण देना हो उसको भी न बाँटे और जिसके संग उत्तम मित्रताकी इच्छा करे उससे धन लेनेकी इच्छा न करै ॥ ९३ ॥

परोक्षेतद्गृहश्वारंतत्स्त्रीसंभाषणंतथा ।
तन्न्यूनदर्शनंनैवतत्प्रतीपविवादनम् ॥९४॥

परोक्षमे उसक रनवासमे जाना तथा उसकी स्त्रीको बोलना उसकी न्यूनताको दिखना उसको प्रतिकूल विवाद इनको न करै ॥९४॥

असाहाय्यंचतत्कार्येह्यनिष्टोपेक्षणंनच ।
सकुसीदमकुसीदंधनंयच्चोत्तमर्णिकम् ९५

उसके कार्य्यमें सहायताका त्याग उसके अनिष्टकी उपेक्षा भी न करै और उत्तमर्णका जो धन व्याजपर हो वा विना व्याजपर हो उसको ॥ ९५ ॥

दद्याद्गृहीतमिवनोचोभयोःक्लेशकृद्यथा ।
नासाक्षिमच्चलिखितमृणपत्रस्यपृष्ठतः ९६॥

जिस प्रकार ग्रहण किया हो उसी प्रकार उस रीतिसे दे जिससे दोनोंको क्लेश न हो और विना साक्षी और ऋणपत्र ( रुक्का ) पीठ पर बिना लिखे धनको न दे ॥ ९६ ॥

आत्मपितृमातृगुणैःप्रख्यातश्चोत्तमोत्तमः
गुणैरात्मभवैःख्यातःपैतृकैर्मातृकैःपृथक् ॥

अपने वा पिता माताके गुणोंसे जिसकी कीर्तिमे है वह नर उत्तमसे भी उत्तम है और जो अपने वा पिताके वा माताके पृथक् २ गुणोंसे विख्यात है वह ॥ ९७ ॥

उत्तमोमध्यमोनीचोधमोमातृगुणैर्नरः ।
कन्यास्त्रीभगिनीभाग्योनरःसोप्यधमाधमः

क्रमसे उत्तम मध्यम नीच होता है और माताके गुणोंसे जो प्रसिद्ध हो वह अधम और कन्या, स्त्री भगिनी इनके भाग्यसे जो जीव वह अधमसे भी अधम होता है ॥ ९८ ॥

भूत्वामहाधनःसम्यक्पोष्यवर्गंतुपोषयेत् ।
अदत्त्वायत्किंचिदपिननयेद्दिवसंबुधः ९९

महाधनी होकर पालन करनेयोग्य पुत्र आदिकोंकी भली प्रकार पालना करे और दानके विना एक दिनभी व्यतीत न करै॥९९॥

स्थितोमृत्युमुखेचाहंक्षणमायुर्ममास्तिन ।
इतिमत्वादानधर्मौयथेष्टौतुसमाचरेत् २००

यह मानकर यथेष्ट दान और धर्म करै कि मैं मृत्युके मुखमें बैठा हूँ और मेरी अवस्था एक क्षणकी है ॥ २०० ॥

नतौविनामेपरत्रसहायाःसंतिचेतरे।
दानशीलाश्रयाल्लोकोवर्ततेनशठाश्रयात् १॥

और यह बुद्धि रक्खे कि दान और धर्मके विना परलोकमें मेरे कोई सहायक नहींक्योंकि जगत्का व्यवहार दानशील मनुष्यके आसरेसे चलता है शठके आसरेसे नहीं ॥ १ ॥

भवंतिमित्रादानेनद्विषंतोपिचाकिंपुनः।
देवतार्थंचयज्ञार्थंब्राह्मणार्थंगवार्थकम् ॥२॥

और तो क्या शत्रु भी देनेसे मित्र हो जातेहैं और देवता, यज्ञ, ब्राह्मण, गौ इनके लिये ॥२॥

यद्दत्तंतत्पारलोक्यंसंविद्दत्तंतदुच्यते।
बंदिमागधमल्लादिनटानर्थंचदीयते॥ ३ ॥

जो दिया हो वह परलोकमें काम आता है और उसको सविद्दत्त कहते हैं और जो बदीजन, भाट, मल्ल, नट इनके लिये दिया जाता है ॥ ३ ॥

पारितोष्यंयशोर्थंतच्छ्रियादत्तंतदुच्यते।
उपायनीकृतंयत्तुसुहृत्संबंधिबंधुषु ॥ ४ ॥

जो पारितोषिक ( इनाम ) यशके लिये होता है उसको श्रियादत्त कहते हैं और जो धनमित्र सम्बन्धी बन्धुओंको उपायन ( भेट ) किया हो ॥ ४ ॥

विवाहादिषुवाचारदत्तंह्रीदत्तमेवतत्।
राज्ञेचबलिनेदत्तंकार्यार्थेकार्यघातिने ॥ ५ ॥

अथवा विवाह आदिमें व्यवहारसे जो दिया हो उसको ह्रीदत्त कहते हैं और राजा बलवान् अथवा कार्यके नष्ट करनेवालेको जो दिया हो ॥ ५ ॥

पापभीत्याथवायच्चतत्तुभीदत्तमुच्यते।
द[illegible]न्नवद्धचर्थेनष्टंद्यूतविनाशितम् ॥६॥

अथवा पापके भयसे जो दिया हो उसको भीदत्त कहते हैं और जो धन हिंसा वृद्धिके लिये अथवा द्यूतमें विनाशित नष्ट होता है ॥ ६ ॥

चौरैर्हृतंपापदत्तंपरस्त्रीसंगमार्थकम्।
आराधयतियद्देवंतमुत्कृष्टतरंवदेत् ॥ ७ ॥

चोरोंने हरा हो अथवा परस्त्री संगमके लिये दिया हो उसको पापदत्त कहते हैं और जिस धनसे देवताकी आराधना करे उसको अत्यन्त उत्कृष्ट कहते हैं ॥ ७ ॥

तन्न्यूनतांनैवकुर्याज्जोषयेत्तस्यसेवनम्।
विनादानार्जवाभ्यांनभुव्यस्तिचवशीकरम् ॥

उसकी न्यूनता न करे किन्तु सदैव सवन करे दान और नम्रताके विना पृथ्वीपर वश करनेवाली कोई वस्तु नहीं ॥ ८ ॥

दानक्षीणोभिवर्धिष्णुःशशीवक्रोप्यतःशुभः।
विचार्यस्नेहंद्वेषंवाकुर्यात्कृत्वानचान्यथा ॥

जो मनुष्य दानसे क्षीण हो वह कभी न कभी बढने योग्य होता है जैसे वक्र भी चन्द्रमा शुभ होता है और विचार कर स्नेह वा द्वेषको करे. अन्यथा इनको न करे ॥ ९ ॥

नापकुर्यान्नोपकुर्याद्भवतोनर्थकारिणौ।
नातिक्रौर्यंनातिशाठ्यंधारयेन्नातिमार्दवम् ॥

किसीका तिरस्कार वा उपकार विना विचारे न करे क्योंकि विना विचार किये ये दोनों अनर्थकारी होते हैं, अति क्रूरता, अति शठता, अति मृदुता इनको न करे ॥ १० ॥

नातिवादंनातिकार्यासक्तिमत्याग्रहंनच।
अतिसर्वनाशहेतुह्यतोत्यंतंविवर्जयेत् ॥११॥

और तिसी प्रकार अत्यन्त वाद अत्यन्त कार्योंमे आसक्ति अत्यन्त आग्रह न करे क्योंकि सब जगह अति नाशका हेतु होता है इससे अतिको वर्ज दे ॥ ११ ॥

उद्वेजतेजनःक्रौर्यात्कार्पण्याद्दतिनिंदति।
मार्दवान्नैवगणयेदपमानोतिवादतः ॥१२॥

क्रूरतासे मनुष्य कपता है, कृपणतासे अत्यन्त निन्दाको प्राप्त होता है, मृदुको कोई गिनता नहीं, अत्यन्त वादसे अपमान होता है ॥ १२ ॥

अतिदानेनदारिद्र्यंतिरस्कारोतिलोभतः।
अत्याग्रहान्नरस्यैवमौर्ख्यंसंजायतेखलु॥१३॥

अत्यन्त दानसे दरिद्रता, अत्यन्त लोभसे

तिरस्कार और अत्यन्त आग्रहसे मनुष्यकी निश्चय मूर्खता होती है ॥ १३ ॥

अनाचाराद्धर्महानिरत्याचारस्तुमूर्खता ।
ह्यधिकोस्मीतिसर्वेभ्योह्यधिकज्ञानवानहम्॥

विना आचार किये धर्मकी हानि और अत्यन्त आचारसे मूर्खता होती है, मैं सबसे अधिक हूँ और अधिक ज्ञानवान् हूँ ॥ १४ ॥

धर्मतत्त्वमिदमितिनैवंमन्येतबुद्धिमान् ।
नेच्छेत्स्वाम्यंतुदेवेषुगोषुचब्राह्मणेषुच १५

यही धर्मका तत्व है अन्य नहीं इसको बुद्धिमान् मनुष्य कभी न माने और देवता, गौ, ब्राह्मण इनके स्वामी होनेकी इच्छा न करे ॥ १५ ॥

महानर्थकरंह्येतत्समग्रकुलनाशनम् ।
भजनंपूजनंसेवामिच्छेदेतेषुसर्वदा ॥१६॥

क्योंकि इनकी स्वामिता महान् अनर्थको और समग्र कुलको नष्ट करती है किन्तु इनके भजन, पूजन, सेवनकी सदैव इच्छा करे १६॥

नज्ञायतेब्रह्मतेजःकस्मिन्कीदृक्प्रतिष्ठितम् ।
पराधीनंनैवकुर्यात्तरुणीधनपुस्तकम् १७॥

और किस ब्राह्मणमें कैसा ब्रह्मतेज है यह प्रतीत नहीं हो सकता और तरुण स्त्री, धन पुस्तक इनको पराधीन न करे ॥ १७ ॥

कृतंचेल्लभ्यतेदैवाद्भ्रष्टंनष्टंविमर्दितम् ।
बह्वर्थंनत्यजेदल्पहेतुनाल्पंनसाधयेत् १८॥

यदि पराधीन किये हुए ये दैवसे मिल भी जायँ तो क्रमसे भ्रष्ट, नष्ट, मर्दन किये हुए मिलते हैं अल्प कारणसे बडे अर्थको न त्यागे और अल्पकी सिद्धि ॥ १८ ॥

बह्वर्थव्ययतोधीमानाभिमानेनवैक्वचित् ।
बह्वर्थव्ययभीत्यातुसत्कीर्तिंनत्यजेत्सदा१९

बहुत धनके व्ययसे न करे और बुद्धिमान् मनुष्य अभिमानसे वा अधिक खर्चके भयसे सदैव सत्कीर्तिको न त्यागे ॥ १९ ॥

भटानामसदुक्त्यातुनार्देत्कुप्यान्नतैःसह ।
लज्जतेनसुहृद्योनभिद्यतेदुर्मनाभवेत् ॥२०॥

और वीरोंके असद्वचनोंसे न डरे और न उनके सङ्ग कोप करे, जिस मित्रको लज्जा नहीं होती वह फट जाता है वा उदासीन हो जाता है ॥ २० ॥

वक्तव्यंनतथाकिंचिद्विनोदेपिचधीमता ।
आजन्मसेवितैर्दानैर्मानैश्चपरितोषितम् ॥२१

बुद्धिमान् मनुष्य विनोदमें भी तैसे वचनको न कहे जिससे दूसरा उदास हो । जिसको दान वा मानसे जन्मपर्यंत प्रसन्न रक्खा हो उसको कटु वचन न कहे ॥ २१ ॥

तीक्ष्णवाक्यान्मित्रमपितत्कालंयाति-
शत्रुताम् ।
वक्रोक्तिशल्यमुद्धर्तुंनशक्यंमानसंयतः ॥

कठोर वचनसे मित्रभी उसी समय शत्रु हो जाता है क्योंकि कठोर वचनके शल्य ( शस्त्र ) को मनसे कोई नहीं उखाड सकता ॥ २२ ॥

वहेदमित्रंस्कंधेनयावत्स्यात्स्वबलाधिकः
ज्ञात्वानष्टबलंतंतुभिद्यात्घटमिवाश्मनि ॥

शत्रु जबतक अपने बलसे अधिक हो तबतक अपने कंधेपर ले चले और जब उसका बल नष्ट हो जाय तब इस प्रकार नष्ट करे जैसे पत्थरपर पटक कर घटको ॥ २३ ॥

नभूषयत्यलंकारोनराज्यंनचपौरुषम् ।
नविद्यानधनंतादृक्याद्दृक्सौजन्यभूषणम् ॥

अलंकार, राज्य, पुरुषार्थ, विद्या इनसे मनुष्यकी वैसी शोभा नहीं होती जैसी सौजन्य ( भलाई ) रूप भूषणसे होती है ॥ २४ ॥

अश्वेजवोवृषेधैर्यंमणौकांतिःक्षमानृपे ।
हावभावौचवेश्यायांगायकेमधुरस्वरः ॥२५

अश्वका वेग, बलका धैर्य्य, मणिकी कांति, राजाकी क्षमा, वश्याके हावभाव, गानेवालेका मधुर स्वर, भूषण होते हैं ॥ २५ ॥

दातृत्वंधनिकेशौर्यंसैनिकेबहुदुग्धता ।
गोषुदमस्तपस्विषुविद्वत्सुवावदूकता ॥२६॥

धनवानका दातृत्व ( देना ), सैनिक ( सिपाही ) का शूरता, गौओंका बहुत दुग्ध

तपस्वियोंका इंद्रियोंमें दमन, विद्वानोंका वावदूकता ( सभामे बहुत बोलना ) भूषण होता है ॥ २६ ॥

सभ्येष्वपक्षपातस्तुतथासाक्षिषुसत्यवाक् ।
अनन्यभक्तिर्भृत्येषुसुहितोक्तिश्चमंत्रिषु २७

सभासदोंमे पक्षपात न करना, साक्षियोंमे सत्यवाणी, भृत्योंमे स्वामिकी अनन्य भक्ति और मंत्रियोंमें राजाके हितके वचन भूषण होते हैं ॥ २७ ॥

मौनंमूर्खेषुचस्त्रीषुपातिव्रत्यंसुभूषणम् ।
महादुर्भूषणंचैतद्विपरीतममीषुच ॥ २८ ॥

मूर्खोंमे मौन और स्त्रियोंमे पातिव्रत्य भूषण होते हैं, इन पूर्वोक्त सम्पूर्णोंमे इनके विपरीत दुष्टभूषण होते है अर्थात् शोभाको नहीं देते ॥ २८ ॥

भात्येकनायकंनित्यंनैवनिर्बहुनायकम् ।
नचाहिंस्रमुपेक्षेतशक्तोहन्याच्चतत्क्षणे २९॥

एक नायक ( स्वामी ) होय तो शोभाको प्राप्त होता है नायक न हो अथवा बहुत नायक हों तो शोभा नहीं होती और हिंसा करनेवालकी उपेक्षा न करे समर्थ होय तो उसीसमय नष्ट करदे ॥ २९ ॥

पैशुन्यंचंडताचौर्यमात्सर्यमतिलोभता ।
असत्यंकार्यघातित्वंतथालसकताप्यलम् ॥

पशुन्य ( चुगली खाना ), चडता, चोरी, मात्सर्य ( पराये गुणोंमे दोष देखना ), अति लोभ, असत्य, कार्यको नष्ट करना और अत्यन्त आलसी ये सब होना ॥ ३० ॥

गुणिनामपिदोषायगुणानाच्छाद्यजायते ।
मातुःप्रियायाःपुत्रस्यधनस्यचविनाशनम् ॥

गुणियोंके भी गुणोंको ढककर दोषके लिये होते हैं, माता, स्त्री, पुत्र और धन इनका नष्ट होना व क्रमसे ॥ ३१ ॥

बाल्येमध्येचवार्धक्येमहापापफलंक्रमात् ।
श्रीमतामनपत्यत्वमधनानांचमूर्खता ३२

बाल्य, यौवन, वृद्ध अवस्थामे महापापका फल होता है और धनवानोंको सन्तानका न होना और निर्धन होकर मूर्खता होनी ॥३२॥

स्त्रीणांषंढपतित्वंचनसौख्यायेष्टनिर्गमः ।
मूर्खःपुत्रोऽथवाकन्याचंडीभार्यादरिद्रता ३३

स्त्रियोंको नपुंसक पति इनसे सुख और इष्टकी प्राप्ति नहीं होती मूर्ख पुत्र तथा विधवा कन्या, और चंडी स्त्री, दरिद्रता ॥ ३३ ॥

नीचसेवाटनंनित्यंनैतत्षट्कंसुखायच ।
नाध्यापनेनाध्ययनेनदेवेनगुरौद्विजे ॥ ३४ ॥

नीचकी सेवा, नित्य भ्रमणा इन छःसे सुख नहीं होता, पढाने पढने, देवता, गुरु, ब्राह्मण, इनमे और ॥ ३४ ॥

नकलासुनसंगीतेसेवायांनार्जवेस्त्रियाम् ।
नशौर्येनचतपसिसाहित्येरमतेमनः ॥३५॥

कला,संगीत, सेवा, नम्रता, स्त्री, शूरता,तप, साहित्य, ( काव्योंकी रचना ) इनमें जिसका मन न रमै ॥ ३५ ॥

यस्यमुक्तःखलःकिंवानररूपपशुश्चसः ।
अन्योदयासहिष्णुश्चछिद्रदर्शीविनिंदकः३६

वह छोडा हुआ खल, नररूपधारी पशु होता है और जो अन्यके उदयको न सहे अथवा छिद्र देखे वा निन्दा करे ॥ ३६ ॥

द्रोहशीलःस्वांतमलःप्रसन्नास्यःखलःस्मृतः ।
एकस्यैवनपर्याप्तमस्तियद्ब्रह्मकोशजम् ३७
आशाबद्धस्योज्झितस्यतस्याल्पमपिपूर्तिकृत् ।
करोत्यकार्यंसाशोन्यंबोधयत्यनुमोदते ३८

वा द्रोहमे मन रक्खे जिसका अन्तःकरण मलीन हो और मुख प्रसन्न हो वह भी खल कहा है और ब्रह्मके सम्पूर्ण कोश ( जगत् ) का सम्पूर्ण धन आशावान् एक मनुष्यकी भी पूर्ति नहीं करसकता और आशाहीन मनुष्यकी अल्पधनसे भी पूर्त्ति हो जाती है और आशावान मनुष्य अकार्यको करताहै, उपदेश देता है और सम्मति देता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

भवंत्यन्योपदेशार्थेधूर्ताःसाधुसमाःसदा ।
स्वकार्यार्थंप्रकुर्वंतिह्यकार्याणांशतंतुते ३९ ॥

धूर्त मनुष्य अन्यके उपदेशार्थ सदैव साधुओंके समान होते हैं और वे अपने प्रयोजनके लिये सैकडों कुकर्म करते हैं ॥ ३९ ॥

पित्रोराज्ञांपालयतिसेवनेचनिरालसः ।
छायेववर्ततेनित्यंयततेचागमायवै ॥४०॥

जो पुत्र माता, पिताकी आज्ञा पाले और सेवामें आलस्य न करे और छायाके समाननित्य वर्ते और प्राप्तिके लिये नित्य यत्न करे॥४०

कुशलःसर्वविद्यासुसपुत्रःप्रीतिकारकः ।
दुःखदोविपरीतोयोदुर्गुणीधननाशकः ॥

सब विद्याओंमें कुशल हो वह पुत्र पिताको प्रसन्नता कारक होता है और जो पूर्वोक्तसे विपरीत, दुर्गुणी, धनका नाशक हो वह पिताको दुःखदाई होता है ॥ ४१ ॥

पत्यौनित्यंचानुरक्ताकुशलागृहकर्मणि ।
पुत्रप्रसूःसुशीलायाप्रियापत्युःसुयौवना४२

जो स्त्री पतिमें नित्य अनुरक्त, गृहके कार्य्यमें कुशल, पुत्रवती, सुशीला, श्रेष्ठ युवती हो वह स्त्री पतिको प्यारी होती है ॥ ४२ ॥

पुत्रापराधान्क्षमतेयापुत्रपरिपोषिणी ।
सामाताप्रीतिदानित्यंकुलटान्यातिदुःखदा ।

जो माता पुत्रके अपराधोंको सहकर पुत्रकी पालना करे वह माता नित्य प्रीतिको देती है और पूर्वोक्त अन्य जो व्यभिचारिणी वह दुःख देनेवाली होती है ॥ ४३ ॥

विद्यागमार्थंपुत्रस्यवृत्त्यर्थंयततेचयः ।
पुत्रंसदासाधुशास्तिप्रीतिकृत्सपितानृणी॥

जो पिता पुत्रको विद्यालाभके अथवा जीविकाके लिये यत्न करे और सदैव पुत्रको अच्छी शिक्षा दे वह पिता प्रीति करनेवाला अनृणी ( पुत्रके ऋणसे छूटा ) होता है ॥४४॥

यःसाहाय्यंसदाकुर्यात्प्रतीपन्नवदेत्क्वचित् ।
सत्यंहितंवक्तियातिदत्तेगृह्णातिमित्रताम् ॥

और जो सदैव सहाय करे, कभी प्रतिकूल न कहे और सत्य हित वचनको कहे, माने और दे वह मित्र होता है ॥ ४५ ॥

नीचस्यातिपरिचयोह्यन्यगेहेसदागतिः ।
जातौसंघेप्रातिकूल्यंमानहानिर्दरिद्रता ४६

नीचोंका अत्यन्त परिचय, अन्यके घरमें सदैव गमन और जातिके समुदायमें विरोध और मानकी हानि, दरिद्रता ॥ ४६ ॥

व्याघ्राग्निसर्पहिंस्राणांनहिसंघर्षणंहितम् ।
सेवितत्वात्तुराजानैतेमित्राःकस्यसंतिहि ४७

सिंह, अग्नि, सर्प, घातक इनका सम्बंध हितकारी नहीं होता, और सवा करनेसे राजा कभी मित्र नहीं होते ॥ ४७ ॥

दौर्मनस्यंचसुहृदांसुप्राबल्यंरिपोःसदा ।
विद्वत्स्वपिचदारिद्र्यंदारिद्र्याद्बहुपत्यता ॥

मित्रोंका दुष्ट मन होता है और शत्रुकी सदैव प्रबलता होती है, विद्वानोंमें दरिद्रता और दरिद्रतासे अधिक सन्तान होती है ॥ ४८ ॥

धनीगुणीवैद्यनृपजलहीनेसदास्थितिः ।
दुःखायकन्यकाप्येकापित्रोरपियाचनम् ॥

धनी, गुणी, वैद्य, राजा, जल इनसे रहित स्थानमें सदैव स्थिति ( वास ) और एक भी कन्या और माता पितासे भी याचना ये सब दुःखके लिये होते हैं ॥ ४९ ॥

सुरूपःसधनःस्वामीविद्वानपिबलाधिकः ।
नकामयेद्यथेष्टंयःस्त्रीणांनैवसुसौख्यकृत् ५०

जो मनुष्य श्रेष्ठ रूपवान्, धनी, विद्वान्, अधिक बलवान होकर स्त्रियोंकी यथेष्ट कामना न करै वह सुखका भोगी नहीं होता॥५०॥

योयथेष्टंकामयतेस्त्रीतस्यवशगाभवेत् ।
संधारणाल्लालनाच्चयथायातिवशंशिशुः ५१

जो स्त्रीकी यथेष्ट कामना करता है उसके वशमें स्त्री हो जाती है जैसे भली प्रकार रखने और लाडसे बालक वशमें हो जाता है ॥ ५१ ॥

कार्यंतत्साधकादींश्चतद्व्ययंसुविनिर्गमः ।
विचिंत्यकुरुतेज्ञानीनान्यथाल्पंक्वचित्,

जिसके व्ययको भलीप्रकार जाने उस कामको साधक आदिके द्वारा करै और ज्ञानी मनुष्य विचार कर कामको करता है और अन्यथा लघु कार्यको कभी नहीं करता ॥५२॥

नचव्यायाधिकंकार्यंकर्तुमीहेतपंडितः।
लाभाधिक्यंयत्क्रियतेचेषद्व्यवसायिभिः॥

पंडित मनुष्य अधिक व्ययवाला काम न करै और व्यवसायी (उद्योगी) मनुष्य थोडे भी उस कामको करते हैं जिसमे अधिक लाभ हो॥ ५३॥

मूल्यंमानंचपण्यानांयाथात्म्यान्मृग्यते सदा।
तपःस्त्रीकृषिसेवासोपभोग्येनापिभक्षणे॥५४॥

और पण्य (बेचने योग्य) वस्तुओंके मोल और मानको सदैव ढूँढे, तप और स्त्री भोगने के लिये और कृषिकी सेवा भक्षणके लिये होती है॥ ५४॥

हितःप्रतिनिधिर्नित्यंकार्येन्येतंनियोजयेत्।
निर्जनत्वंमधुरभुक्जारश्चोरःसदेच्छति॥५५॥

प्रतिनिधि सदैव हित होता है उसको अन्य काममे नियुक्त करै, मधुरका भोगी जार चोर य सदैव निर्जन देशको चाहते हैं॥ ५५॥

साहाय्यंतुबलिद्विष्टोवेश्याधनिकमित्रताम्।
कुनृपश्चछलंनित्यंस्वामिद्रव्यंकुसेवकः ५६॥

बलवान्का वरी सहायता और वेश्या धनवानकी मित्रता और खोटा राजा नित्य छल और खोटा सेवक स्वामीके द्रव्यकी सदैव इच्छा करते हैं॥ ५६॥

तत्त्वंतुज्ञानवान्दंभतपोग्निंदेवजीवकः।
योग्येकांतंचकुलटाजारंवैद्यंचव्याधितः ५७॥

ज्ञानी मनुष्य तत्त्वकी, दंभ तपकी, देवजीवक अग्निकी, योगी एकान्तकी, व्यभिचारिणी जारकी, रोगी वैद्यकी और॥ ५७॥

धृतपण्योमहर्घत्वंदानशीलंतुयाचकः।
रक्षितारंमृगयतेभीतश्छिद्रंतुदुर्जनः॥ ५८॥

जिसके माल पडा हो वह महगेकी, याचक दानीकी, भयभीत रक्षा करनेवालकी, दुर्जन छिद्रकी इच्छा करता है॥ ५८॥

चंडायतेविवदतेस्वपित्यश्नातिमादकम्।
करोतिनिष्फलंकर्ममूर्खोवास्वेष्टनाशनम्॥

मूर्ख मनुष्य प्रचण्ड हो जाय विवाद करे, सोवै, मादक वस्तु भक्षण करे वा निष्फल कर्म करे अथवा अपने इष्टका अनिष्ट करे॥ ५९॥

तमोगुणाधिकंक्षात्रंब्राह्मंसत्त्वगुणाधिकम्।
अन्यद्रजोधिकंतेजस्तेषुसत्त्वाधिकंवरम्॥

क्षत्रियम तमोगुण, ब्राह्मणमे सत्त्व गुण, इनसे अन्योंमे रजोगुण अधिक होता है, इन तीनोंमे जिसमे सत्त्वगुण अधिक हो वह श्रेष्ठ है॥ ६०॥

सर्वाधिकोब्राह्मणस्तुजायतेहिस्वकर्मणा।
तत्तेजसोनुतेजांसिसंतिचक्षात्रियादिषु॥६१॥

ब्राह्मण अपने कर्ममें सबसे अधिक होता है और क्षत्रिय आदिकोंमे उसके तेजसे न्यून तेज होता है॥ ६१॥

स्वधर्मस्थंब्राह्मणंहिदृष्ट्वाबिभ्यतिचेतरः।
क्षत्रियादिर्नान्यथास्वधर्मेचातः समाचरेत्॥

अपने धर्ममें टिके हुए ब्राह्मणको देखकर क्षत्रिय आदि डरते हैं अन्यथा नहीं, इससे ब्राह्मण अपने धर्मका आचरण करे॥ ६२॥

नस्यात्स्वधर्महानिस्तुययावृत्त्याचसावरा।
सदेशः प्रवरोयत्रकुटुंबभरणंभवेत्॥६३॥

वही जीविका श्रेष्ठ होती है जिसमे अपने धर्मकी हानि न हो, वही देश उत्तम होता है जिसमे कुटुम्बका पालन होय॥ ६३॥

कृषिस्तुचोत्तमावृत्तिः यासरिन्मातृकामता।
मध्यमावैश्यवृत्तिश्चशूद्रवृत्तिस्तुचाधमा॥

जो नदीके तीरपर की जाय वह खेती उत्तम वृत्ति होती है और वैश्यकी वृत्ति मध्यम और शूद्रवृत्ति अधम होती है॥ ६४॥

याच्ञाधमतरावृत्तिर्ह्युत्तमासातपस्विषु।
कचित्सेवोत्तमावृत्तिर्धर्मशीलनृपस्यच ६५॥

याचनाकी वृत्ति अति अधम होती है परन्तु तपस्वियोंमें वह याचना उत्तम वृत्ति

होती है, और कहीं २ धर्मशील राजाकी सेवाभी उत्तम होती है ॥ ६५ ॥

अध्वर्य्यवादिकंकर्मकृत्वायागृह्यतेभृतिः।
सार्किंमहाधनायैववाणिज्यमलमेवाकिम् ६६

अध्वर्यु आदिके कर्मको करिके जो वेतन ग्रहण किया जाता है क्या उससे बडा धन होता है और क्या वाणिज्यसे ( लेन देन ) से महाधन होता है अर्थात् नहीं होता ॥ ६६ ॥

राजसेवांविनाद्रव्यंविपुलंनैवजायते।
राजसेवातिगहनाबुद्धिमद्भिर्विना न सा६७॥

राजसेवाके विना विपुल धन नहीं होता और राजसेवा अत्यन्त कठिन होती है बुद्धिमान् मनुष्योंके बिना ॥६७॥

कर्तुंशक्याचेतरेणह्यसिधारेवसर्वदा।
व्यालग्राहीयथाव्यालंमंत्रीमंत्रबलान्नृपम्॥

राजसेवाको कोई नहीं कर सकता क्योंकि राजसेवा सदैव खड्गधाराके समान होती है, सर्पका पकडनेवाला जैसे सर्पको इसीप्रकार मंत्री मन्त्रक बलसे राजाको ॥ ६८ ॥

करोत्यधीनंतुनृपेभयंबुद्धिमतांमहत्।
ब्राह्मतेजोबुद्धिमत्सुक्षात्रंराज्ञिप्रतिष्ठितम् ६९

अधीन कर लेता है और बुद्धिमान् मनुष्योंको राजाका बडा भय होता है, बुद्धिमानोंमें ब्रह्मतेज और राजाओंमें क्षत्रियोंका तेज रहता है ॥ ६९ ॥

आरादेवसदाचास्तितिष्ठन्दूरेपिबुद्धिमान्।
बुद्धिपाशैर्बंधयित्वासंताडयतिकर्षति ॥७०॥

दूर टिकाभी बुद्धिमान् मनुष्य सदैव समीप रहता है बुद्धिकी फांसोंमें बांधकर ताडता है और खींचता है ॥ ७० ॥

समीपस्थोपिदूरेस्तिह्यप्रत्यक्षसहायवान्।
नानुवाकहताबुद्धिर्व्यवहारक्षमाभवेत् ॥७१॥

जिसको सहायताका प्रत्यक्ष ( ज्ञान ) न होय वह समीपमें टिका भी दूर होता है और शास्त्रके ज्ञानसे हीन बुद्धि व्यवहारके योग्य नहीं होती ॥ ७१ ॥

अनुवाकहतायातुनसासर्वत्रगामिनी।
आदौवरंनिर्धनत्वंधनिकत्वमनंतरम् ॥७२॥

जो बुद्धि शास्त्रके ज्ञानसे हीन है वह सब जगह नहीं पहुँचती पहिले निर्धन होना और पीछेसे धनवान होना अच्छा होता है ॥७२॥

तथादौपादगमनंयानगत्वमनंतरम्।
सुखायकल्पतेनित्यंदुःखायविपरीतकम्॥

तिसी प्रकार पहिले पैरों चलना और पीछेसे यान ( सवारी ) मे चलना सदैव सुखदायी होता है और इससे विपरीत दुःखदायी होता है ॥ ७३ ॥

वरंहित्वानपत्यत्वंमृतापत्यत्वतः सदा।
दुष्टयानात्पादगमोह्यौदासीन्यंविरोधतः ७४

सन्तानके मरनेसे सन्तानका न होना और दुष्टयानसे पैरों चलना और विरोध करनेसे उदासीन रहना सदैव अच्छा होता है ॥७४॥

वरंदेशाच्छादनतश्चर्मणापादगूहनम्।
ज्ञानलवदौर्विदग्ध्यादज्ञता तु वरामता ७५॥

और देशके आच्छादनसे चर्म्मसे पैरोंका ढकना ( जूता पहरना ) अच्छा होता है और ज्ञानके लेशसे दुर्विदग्ध ( अल्पज्ञता ) से मूर्खता अच्छी कही है ॥ ७५ ॥

परगृहनिवासाद्धचरण्येनिवसनंवरम्।
प्रदुष्टभार्यागार्हस्थ्याद्भैक्ष्यंवामरणंवरम् ७६

अन्यके घरमे निवाससे वनमे रहना और दुष्टभार्यावाले गृहस्थसे भिक्षा वा मरण श्रेष्ठ होता है ॥ ७६ ॥

श्वमैथुनमणंगर्भाधानंस्वामित्वमेवच।
खलसख्यमपथ्यंतुप्राक्सुखंदुःखनिर्गमम्॥

श्वा ( कुत्ता ) का मैथुन, ऋण, गर्भाधान, स्वामी होना, खलकी मित्रता, अपथ्य इनमें पहिले सुख और पीछे निकासनेके समयमें दुःख होता है ॥ ७७ ॥

कुमंत्रिभिर्नृपोरोगीकुवैद्यैःकुनृपैःप्रजा।
कुसंतत्याकुलंचात्माकुबुद्ध्याहीयतेऽनिशम्

कु.त्रियोंसे राजा कुवैद्योंसे रोगी कुत्सित राजाओंसेप्रजा खोटी सन्तानसे कुल कुबुद्धिसे आत्मा सदैव नष्ट होते हैं ॥ ७८ ॥

**हस्त्यश्ववृषबालस्त्रीशुकानांशिक्षकोयथा ।**
**तथाभवंतितेनित्यंसंसर्गगुणधारकाः ७९ ॥**

हाथी, अश्व, बल, बालक, स्त्री, शुक, तोता इनकी शिक्षा देनेवाले जैसे हों वैसेही गुण हाथी आदिकोंमे संसर्गसे हो जाते हैं ॥ ७९ ॥

**स्याज्जयोवसरोक्त्यासद्वसनैःसुप्रसिद्धता ।**
**सभायांविद्ययामानस्त्रितयंत्वधिकारतः॥८०**

समयके अनुसार बचनसे जय, अच्छे वस्त्रोंसे प्रसिद्धि, विद्यासे सभामें मान (बडाई) होती है और ये तीनों अधिकार मिलनेसे होते हैं ॥ ८० ॥

**सुभार्यासुष्ठुचापत्यंसुविद्यासुधनंसुहृत् ।**
**सुदासदास्यौसद्देहःसद्देश्मसुनृपःसदा ८१॥**

श्रेष्ठ भार्या, अच्छी सन्तान, उत्तम विद्या, उत्तम धन,उत्तम मित्र,उत्तम दास और दासी श्रेष्ठ देह श्रेष्ठ घर और उत्तम राजा ये सदैव ८१

**गृहिणांहिसुखायालंदशैतानिनचान्यथा ।**
**वृद्धाःसुशीलाविश्वस्ताःसदाचाराःस्त्रियो-नराः ॥ ८२ ॥**

ये दस गृहस्थियोंके पूर्ण सुखके होते हैं और अन्यथा नहीं। वृद्ध सुशील विश्वासक योग्य सदाचारमें तत्पर स्त्री वा मनुष्य ॥ ८२ ॥

**क्लीबावांतःपुरेयोज्यानयुवामित्रमप्युत ।**
**कालंनियम्यकार्याणिह्याचरेन्नान्यथाक्वचित्**

वा नपुंसक इनको रणवासमे नियत करे और युवा चाहे मित्रभी हो तथापि नियुक्त न् करे और समयक नियमसे कार्योंको कर अन्यथा कभी न करे ॥ ८३ ॥

**गवादिष्वात्मवज्ज्ञानमात्मानंचार्थधर्मयोः ।**
**नियुंजीतान्नसंसिद्धौमातरंशिक्षणेगुरुम् ८४**

जो मनुष्य आत्मज्ञानी हो उसको गौ आदिकोंकी सेवामें और आत्माको धन और धर्ममें और अन्नके पाकमें माताको और शिक्षा देनेमें गुरुको नियुक्त करे ॥ ८४ ॥

**गच्छेदनियमेनैवसदैवांतःपुरेनरः ।**
**भार्यानपत्यासद्यानंभारवाहीसुरक्षकः ८५॥**

मनुष्य अपने रनवासमें सदैव विना नियम गमन करै. और जिसके सन्तान न हो ऐसी भार्या, अच्छा यान और भारका ले जानेवाला अच्छा रक्षक ॥ ८५ ॥

**परदुःखहराविद्यासेवकश्चनिरालसः ।**
**षडेतानिसुखायालंप्रवासेतुनृणांसदा ८६॥**

परदुःख हरनेवाली विद्या और निरालसी सेवक ये छः परदेशमें मनुष्यको सदैव सुखदायी होते हैं ॥ ८६ ॥

**मार्गेनिरुध्यनस्थेयंसमर्थेनापिकर्हिचित् ।**
**सद्यानेनापिगच्छेन्नहट्टमार्गेनृपोपिच ८७ ॥**

समर्थ भी मनुष्य मार्गको रोककर कदाचित्भी खडा नहो और राजाभीहट्टमार्ग(बाजार) म अच्छे यानस गमन न करे ॥ ८७ ॥

**ससहायःसदाचस्यादध्वगोनान्यथाक्वचित् ।**
**समीपसन्मार्गजलोभयग्रामेध्वगोवसेत् ८८**

अध्वग (मार्ग चलनेवाला) सदैव सहाय को रक्खे अन्यथा कभी न रहे और ऐसे गांवमें रात्रिको वसे जिसके समीप अच्छा मार्ग और जल दोनों अच्छ हों ॥ ८८ ॥

**तथाविधेवाविरमेन्नमार्गेविपिनेपिन ।**
**अत्यटनंचानशनमतिमैथुनमेवच ॥ ८९ ॥**

और ऐसे ही ग्राममें विश्राम करे और मार्ग और वनमें विश्राम न करे, अति भ्रमण अति भोजन अति मैथुन ॥ ८९ ॥

**अत्यायासश्चसर्वेषांद्राग्जराकरणंभवेत् ।**
**सर्वविद्यास्वनभ्यासोजराकारीकलासुच ॥**

अति परिश्रम ये चारों सब मनुष्योंके शीघ्र जरा करनेवाले होते हैं और संपूर्ण विद्याओंमें वा कलाओंमें अभ्यास न करना जरा करनेवाला होता है ॥ ९० ॥

**दुर्गुणंतुगुणीकृत्यकीर्तयेत्सप्रियोभवेत् ।**
**गुणाधिक्यंकीर्तयतियःकिंस्यान्नपुनःसखा**

जो मनुष्य दुर्गुणको भी गुणरूपसे वर्णन करे वह प्यारा होता है, जो अधिक गुणों का कीर्तन करता है वह तो मित्र क्यों न होगा ॥ ९१ ॥

दुर्गुणंवक्तिसत्येनप्रियोपिसोप्रियोभवेत् ।
गुणंहिदुर्गुणीकृत्यवक्तियःस्यात्कथंप्रियः ॥

जो प्यारा होकर भी दुर्गुणोंको स्पष्टकहे वह शत्रु होता है और जो गुणकोही दुर्गुण कहकर वर्णन करै वह प्रिय कैसे हो सकता है ॥ ९२ ॥

स्तुत्यावशंयांतिदेवाह्यंजसाकिंपुनर्नराः ।
प्रत्यक्षदुर्गुणान्नैववक्तुंशक्नोतिकोप्यतः९३

स्तुति करनेसे देवता भी सुखसे वशमे हो जाते हैं नर क्यों न होंगे इससे कोई भी मनुष्य दुर्गुणोंको प्रत्यक्ष नहीं कह सकता ॥ ९३ ॥

स्वदुर्गुणान्स्वयंचातोविमृशेल्लोकशास्त्रतः ।
स्वदुर्गुणश्रवणतोयस्तुष्यतिनकुध्यति ९४॥

अपने दुगुणोंको लोक व शास्त्रसे स्वयं विचारे और अपने दुर्गुणोंके सुननेसे न प्रसन्न हो न क्रोध करे ॥ ९४ ॥

स्वोपहासंप्रविज्ञानेयततेत्यजतिश्रुते ।
स्वगुणश्रवणान्नित्यंसम।स्तिष्ठतिनाधिकः ॥

और अपने अधिक ज्ञानमे भी उपहास समझकर यत्न करे और दुर्गुणोंको सुनकर त्यागे और अपने गुणोंको सुनकर सम रहै अधिक न हो ॥ ९५ ॥

दुर्गुणानांखनिरहंगुणाधानंकथंमयि ।
मय्येवचाज्ञताप्यस्तिमन्यतेसोधिकोखिलात्

मैंदुर्गुणोंकी खानहूँ मुझमे गुण कैसेहोसकते हैं और मुझमेंही मूर्खता है इस प्रकार जो मानता है वही सबसे अधिक है ॥ ९६ ॥

ससाधुस्तस्यदेवाहिकलालेशंऽभंतिन ।
सदाल्पमप्युपकृतंमहत्साधुषुजायते ॥९७॥

वही साधु है जिसकी कलाके लेशको भी देवता प्राप्त न हों और साधुओंमे अल्प भी उपकार सदैव महान् होता है ॥ ९७ ॥

मन्यतेसर्षपादल्पंमहच्चोपकृतंखलः ॥
तथानक्रीडयेत्कैश्चित्कलहायभवेद्यथा ९८॥

बडे भी उपकारको खल मनुष्य सरसोंसे अल्प मानता है और उस प्रकारकी क्रीडा किसीके संग भी न करे जिससे कलह हो ॥ ९८ ॥

विनोदेऽपिशपेन्नैवंतेभार्याकुलटास्तिकिम् ।
अपशब्दाश्चनोवाच्यामित्रभावाच्चकेष्वपि ॥

विनोदमे भी ऐसा शाप न दे कि तेरी भार्य्या क्या व्यभिचारिणी है और मित्र भावसे किसीको अपशब्द न कहे ॥ ९९ ॥

गोप्यंनगोपयेन्मित्रेतद्गोप्यंनप्रकाशयेत ।
वैरीभूतोपिपश्चात्प्राक्कथितंवापिसर्वदा ३००

मित्रसे छिपाने योग्य वस्तुको न छिपावे और मित्रकी गोप्य वस्तुका प्रकाश न करे तथा पहिले कही हुई अयोग्य बातका बैरी होनेपर कभी भी प्रकाश न करे ॥ ३०० ॥

विज्ञातमपियद्दौष्ट्यंचदर्शयेत्तन्नकर्हिचित् ।
प्रतिकर्तुंयतेतैवगुप्तः कुर्यात्प्रतिक्रियाम् १॥

जो दुष्टता जान भी ली हो उसको कभी न दिखावे और प्रतिकार करनेका यत्न करे जिसने अपनी रक्षा की हो उसका प्रतिकार करे ॥ १ ॥

यथार्थमपिनब्रूयाद्बलवद्विपरीतकम् ।
दृष्टंत्वदृष्टवत्कुर्याच्छ्रुतमप्यश्रुतंक्वचित् ॥२॥

बलवान् मनुष्यके यथार्थ के भी विपरीत को न कहे देखेको न देखेके समान व सुनेको न सुनेके समान करे ॥ २ ॥

मूकांधोबधिरःखंजोस्वापत्कालेभवेन्नरः ।
अन्यथादुःखमाप्नोतिहीयतेव्यवहारतः ३॥

मनुष्य अपनी आपत्तिके समयमे मूक, अन्ध, बधिर, खञ्ज हो जाय अन्यथा दुःखको व्यवहारसे हानिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

वदेद्वृद्धानुकूलंयन्नबालसदृशंक्वचित् ।
परवेश्मगतस्तत्स्त्रीवीक्षणंनचकारयेत् ॥४॥

वृद्धोंके अनुकूल वचनको कहे, बालकोंके

सदृश कभी भी न कहै और पराये घरमें जाकर उसकी स्त्रीको न देखे ॥ ४ ॥

अधनादननुज्ञातान्नगृह्णीयात्तुस्वामिना ।
स्वशिशुंशिक्षयेदन्यंशिशुंनाप्यपराधिनम् ५॥

और निर्धन होकर भी स्वामीकी आज्ञाके विना कोई वस्तु ग्रहण न करे अपने बालकको शिक्षा दे और अन्यके अपराधीही बालकको न करे ॥ ५ ॥

अधर्मेनिरतोयस्तुनीतिहीनश्छलांतरः ।
संकर्षकोतिदंडीतद्ग्रामंत्यक्त्वान्यतोवसेत्॥

जो ग्राम अधर्ममें सदैव रत नीतिसे हीन मनमें छली लोभी अत्यन्त दण्डवाला हो उस ग्रामको त्यागकर अन्यत्र वस ॥ ६ ॥

यथार्थमपिविज्ञातमुभयोर्वादिनोर्मतम् ।
अनियुक्तोनवैब्रूयाद्धीनशत्रुर्भवेदतः ॥ ७ ॥

दोनों वादी प्रतिवादियोंके यथार्थ जाने हुए भी मतको राजाज्ञाके विना न कहे इससे मनुष्यका शत्रु कोई नहीं होता ॥ ७ ॥

गृहीत्वान्यविवादंतुविवदेन्नैवकेनचित् ।
मिलित्वासंघशोराजमंत्रंनैवतुतर्कयेत् ॥ ८ ॥

अन्यके विवादको ग्रहण करके किसीके संग विवाद न करे और किसी समुदायमें राजाके मंत्रकी तर्कना न करे ॥ ८ ॥

अज्ञातशास्त्रोनब्रूयाज्ज्योतिषंधर्मनिर्णयम् ।
नीतिदंडंचिकित्साचप्रायश्चित्तंक्रियाफलम्॥

विना शास्त्रके जाने ज्योतिष, धर्मनिर्णय नीति, दण्ड, चिकित्सा, प्रायश्चित, क्रियाका फल इनको न कहे ॥ ९ ॥

पारतंत्र्यात्परंदुःखंनस्वातंत्र्यात्परंसुखम् ।
अप्रवासीगृहीनित्यंस्वतंत्रः सुखमेधते १०॥

पराधीनसे परे दुःख और स्वतन्त्रतासे परे सुख नहीं होता। जो गृहस्थी अप्रवासी और स्वतन्त्र होता है वह नित्य सुख पाता है ॥१०॥

नूतनप्राक्तनानांचव्यवहारविदांधिया ।
प्रतिक्षणंचाभिनवोव्यवहारोभवेदतः ॥१२॥

नवीन और पुराने व्यवहारोंके जो जानने-वाले हैं उनको बुद्धिसे देखे क्योंकि व्यवहार क्षण २ में नवीन होता है ॥ ११ ॥

वक्तुंनशक्यतेप्रायः प्रत्यक्षादनुमानतः ।
उपमानेनतज्ज्ञानंभवेदाप्तोपदेशतः ॥ १२ ॥

व्यवहारको प्रत्यक्ष कोई कह नहीं सकता किन्तु प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान आप्तों ( बडे ) के उपदेशसे व्यवहारका ज्ञान होता है ॥१२॥

कथितंतुसमासेनसामान्यंनृपराष्ट्रयोः ।
नीतिशास्त्रंहितायालंयद्विशिष्टंनृपेस्मृतम् १३

राजा और प्रजाके हितार्थ यह सामान्य नीतिशास्त्र संक्षेपसे कहा जो राजाके लिये उत्तम कहा है ॥ १३ ॥

## तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

# अध्यायः ४.

अथमिश्रप्रकरणंप्रवक्ष्यामिसमासतः ।
लक्षणंसुहृदादीनांसमासाच्छृणुताधुना॥१॥

अब संक्षेपसे मिश्रप्रकरण कहता हूँ (प्रथम) मित्र आदिके लक्षणको संक्षेपसे सुनो ॥ १ ॥

मित्रःशत्रुश्चतुर्धास्यादुपकारापकारयोः ।
कर्ताकारयिचानुमंतायश्चसहायकः॥ २ ॥

मित्र और शत्रु उपकार तथा अपकारके करने कराने अनुमति देने सहायता करनेसे चार प्रकारके होते हैं ॥ २ ॥

यस्यसुद्रवतेचित्तंपरदुःखेनसर्वदा ।
इष्टार्थयततेन्यस्यप्रेरितः सत्करोतियः ॥३॥

पराये दुःखसे जिसका चित्त सदैव पिघले और विना प्रेरणाके अन्यके इष्टार्थ यत्न करे वा सत्कार जो करे ॥ ३ ॥

आत्मस्त्रीधनगुह्यानांशरणंसमयेसुहृत् ।
प्रोक्तोत्तमोयमन्यश्चद्वित्र्येकपदमित्रकः॥४॥

वह मित्र जीव स्त्री धन गुप्त वसु इनके लिये समयपर शरण ( रक्षक ) और उत्तम

कहा है और अन्य तो एक दो तीन पैर तक मित्र होता है ॥ ४ ॥

अनन्यस्वत्वकामत्वमेकस्मिन्विषयेद्वयोः ।
वैरिलक्षणमेतद्वान्येष्टनाशनकारिता ॥ ५ ॥

एक वस्तुके विषय दो मनुष्यकी ऐसी बुद्धि हो कि यह अन्यकी नहीं, यह वा अन्यके इष्टको नष्ट करना वैरीका लक्षण होता है ॥ ५ ॥

भ्रातृभावेपितुर्द्रव्यमखिलंममवैभवेत् ।
नस्यादेतस्यवश्येयंममैवस्यात्परस्परम् ॥६॥

भाईके विद्यमान होनेपर सम्पूर्ण पिताका द्रव्य मुझे मिले और मैं इसके वशमे न होऊं और ये मेरे वशमे रहे ऐसी परस्परमतिहो ॥६॥

भोक्ष्येखिलमहंचैतद्विनान्यस्तस्तुवैरिणौ ।
द्वेष्टिद्विष्टउभौशत्रुस्तश्चैकतरसंज्ञकौ ॥ ७ ॥

इन सबको मैं भोगूंगा और अन्य नहीं वे परस्पर वैरी होते ह जो द्वेष करे और जिसके संग वैर करे वह दोनों एकसे शत्रु होते हैं ॥७॥

शूरस्योत्थानशीलस्यबलनीतिमतः सदा ।
सर्वेमित्रागूढवैरानृपाःकालप्रतीक्षकाः ॥८॥

जो राजा सदैव शूर है, उत्थानशील ( दूसरे पर चढनेवाला ) है सेना और नीति वाला है उसके सब मित्रभी राजा गूढ (छिपे) समयके देखनेवाले वैरी होते हैं ॥ ८ ॥

भवन्तीतिकिमाश्चर्यंराज्यलुब्धानतेहिकिम् ।
नराज्ञोविद्यतेमित्रंराजामित्रंनकस्यवै ॥ ९ ॥

इसमें कुछ आश्चर्य नहीं क्या उनको राज्यका लोभ नहीं, न राजाका कोई मित्र है, न राजा किसीका मित्र है ॥ ९ ॥

प्राय कृत्रिमंमित्रंतेभवतश्चपरस्परम् ।
केचित्स्वभावतोमित्राःशत्रवःसंतिसर्वदा १०

प्रायःदोनों परस्पर कृत्रिम ( मतलबी ) मित्र परस्पर होते हैं और कोई मनुष्य स्वभावसे मित्रभी सदैव शत्र होते हैं ॥ १० ॥

मातामातृकुलंचैवपितातात्पितरौतथा ।
पितृपितृव्यात्मकन्यापत्नीतत्कुलमेवच ११

माता, माताका कुल, पिता, पिताकी माता पिता, पिताके चाचा, अपनी कन्या, पत्नी और पत्नीका कुल ॥ ११ ॥

पितृमात्रात्मभगिनीकन्यकासंततिश्चया ।
प्रजापालोगुरुश्चैवमित्राणिसहजानिहि १२॥

पिता माताकी और अपनी भगिनी कन्याकी संतान, प्रजापालक ( राजा ) गुरु ये सब सदैव स्वाभाविक मित्र होते है ॥ १२ ॥

विद्याशौर्यंचदाक्ष्यंचबलंधैर्यंचपंचमम् ।
मित्राणिसहजान्याहुर्वर्तयंतिहितैर्बुधाः १३॥

विद्या, शूरवीर, चतुराई, बल और पांचवीं धीरता ये भी स्वाभाविक मित्र कहे हैं क्योंकि बुद्धिमान् मनुष्य इनसे ही वर्त्तते हैं ॥ १३ ॥

स्वभावतोभवंत्येतेहिंस्रोदुर्वृत्तएवच ।
ऋणकारीपिताशत्रुर्मातास्त्रीव्यभिचारिणी।

हिंसक, दुराचारी ये स्वभावस शत्रु और ऋणका कर्ता पिता और व्यभिचारिणी माता और पत्नी ये सब शत्रु होते हैं ॥ १४ ॥

आत्मपितृभ्रातरश्चतत्स्त्रीपुत्राश्चशत्रवः ।
स्नुषाश्वश्रूःसपत्नीचननांदायातरस्तथा ॥

अपने और पिताके भाई, उनकी स्त्री, पुत्र पुत्रकी बधू, सास और सत्पनी, ननंद और याता ( दुरानी जिठानी ) ये सब परस्पर शत्रु होते हैं ॥ १५ ॥

मूर्खःपुत्रःकुवैद्यश्चारक्षकस्तुपिताप्रभुः ।
चंडोभवेत्प्रजाशत्रुरदाताधनिकश्चयः ॥१६॥

मूर्खपुत्र, कुवैद्य, रक्षा न करनेवाला पिता और राजा और चंड ( क्रोधी ) और धनवान होकरके अदाता, ये सब प्रजाके शत्र होते हैं ॥ १६ ॥

आसमंताच्चतुर्दिक्षुसन्निकृष्टाश्चयेनृपाः ।
तत्परास्तत्परायेन्येक्रमाद्धीनबलारयः॥१७॥

और राजाके चारों दिशाओंमें चारों तरफ जो राजा होते हैं और उनसेपरले और उनसेभी परले हीनबल शत्रु ॥ १७ ॥

शत्रूदासीनमित्राणिक्रमात्तेस्युस्तुप्राकृताः ।
अरिर्मित्रमुदासीनोनंतरस्तत्परस्परम् ॥१८॥

ये सब क्रमसे शत्रु, उदासीन मित्र प्राकृत (स्वाभाविक) होते हैं शत्र मित्र, उदासीन और उसके अनन्तर (समीपवर्ती) येभी परस्पर ॥ १८ ॥

क्रमशोवातथाज्ञेयाश्चतुर्दिक्षुतथारयः ।
स्वसमीपतराभृत्याह्यमात्याद्याश्चकीर्तिताः॥

क्रमसे चारों दिशाओंमे उसीप्रकार शत्रु जानने और अपने अत्यन्त समीपके भृत्य और मन्त्री आदि भी शत्र कहे हैं ॥ १९ ॥

बृंहयेत्कर्षयेन्मित्रंहीनाधिकबलंक्रमात् ।
भेदनीयाःपीडनीयाःकर्षणीयाश्चशत्रवः ॥

हीनबल मित्रको वढावें और अधिक बलको घटावे अर्थात् उससे कुछ सहायता ले और शत्रुओंकी सदैव भेदन पीडन कर्षण (हिंसा) करे ॥ २० ॥

विनाशनीयास्तेसर्वेसामादिभिरुपक्रमैः ।
मित्रशत्रूयथायोग्यैःकुर्यात्स्ववशवर्तिनौ ॥

साम आदि उपायोंसे उन सबका विनाश करे मित्र और शत्रुको भी यथोचित उपायोंसे अपने वशमें करे ॥ २१ ॥

उपायेनयथाव्यालोगजःसिंहोपिसाध्यते ।
भूमिष्ठाःस्वर्गमायांतिवज्रंभिदत्युपायतः ॥

जैसे उपायसे सर्प, हाथी, सिंहको भी साध लेते हैं और पृथ्वीके वसनेवाले स्वर्गमें उपायसे जाते हैं औरउपायसेही वज्रको बींधते हैं॥२२॥

सुहृत्संबंधिस्त्रीपुत्रप्रजाशत्रुषुतेपृथक् ।
सामदानभेददंडाश्चिंतनीयाःस्वयुक्तिभिः ॥

मित्र, सम्बन्धी, स्त्री, पुत्र, शत्र, इन सबमें पृथक् २ साम, दान, भेद, दण्ड, इनकी चिन्त (विचार) अपनी युक्तियोंसे करे ॥ २३ ॥

एकशीलवयोविद्याजातिव्यसनवृत्ततः ।
साहचर्यान्भवेन्मित्रमेभिर्यदितुसार्जवैः॥२४॥

एक स्वभाव, एक अवस्था, एक विद्या, एक जाति, एक व्यसन, एक जीविका, एक वास यदि ये सब नम्रता सहित हों तो इनसे मित्रता होजाती है ॥ २४ ॥

त्वत्समस्तुसखानास्तिमित्रेसाममिमंस्मृतम्।
ममसर्वंतवैवास्तिदानंमित्रेसजीवितम् ॥२५॥

मित्रके विषय साम यह कहा है कि तेरी बराबर कोई मित्र नहीं जो मेरे पास है वह सब तेरा है और दान जीवितकाभी मित्रके लिये कहा है ॥ २५ ॥

मित्रेन्यमित्रसुगुणान्कीर्तयेद्भेदनंहितत् ।
मित्रेदंडोनाकरिष्येमैत्रीमेवंविधोसिचेत् ॥

और भेदन यह होता है कि मित्रके आगे दूसरे मित्रके गुणोंका कीर्तन करना और मित्र के लिये दंड यह होता है कि यदि तू ऐसा है तो तेरे संग मित्रता न करूँगा ॥ २६ ॥

योनिसंयोजयेदिष्टमन्यानिष्टमुपेक्षते ।
उदासीनःसनकथंभवेच्छत्रुः सुसाधिकः ॥

जो मनुष्य इष्टका संयोग न करे और अन्यके अनिष्टकी उपेक्षा करे वह उदासीन भी सन्धी (मेल) करनेके समय शत्र क्यों नहीं होता ॥ २७ ॥

परस्परमनिष्टंनचिन्तनीयंत्वयामया ।
सुसहाय्यंहिकर्तव्यंशत्रौसामप्रकीर्तितम् ॥

मुझे और तुझे परस्पर अनिष्टकी चिन्ता न करनी चाहिये, किन्तु परस्पर सहायता करनी यह शत्रके लिये साम कहा है ॥ २८ ॥

करैर्वाप्रमितैर्ग्रामैर्वत्सरेप्रबलंरिपुम् ।
तोषयेत्तद्धिदानंस्याद्यथायोग्येषुशत्रुषु ॥

कर देने वा प्रमित (दो चार) ग्रामोंसे वर्षभरके लिये प्रवल शत्रुओंके प्रसन्न करदे यह यथायोग्य शत्रुओंके लिये दान होताहै॥२९

शत्रुसाधकहीनत्वकरणात्प्रबलाश्रयात् ।
तद्धीनतोजीवनाच्चशत्रुभेदनमुच्यते ॥३०॥

शत्रुको साधकसे हीन करना, प्रबलका आश्रय लेना उससे हीन होकर जीना वह शत्रुके लिये भेदन कहा है ॥ ३० ॥

दस्युभिःपीडनंशत्रोःकर्षणंधनधान्यतः ।
तच्छिद्रदर्शनादुग्रबलैर्नीत्याप्रभीषणाम् ॥

चोरोंसे शत्रुको पीडा देना और धनधान्यकी हिंसा करनी उसके छिद्रोंको देखना उग्रबल नीतिसे भय दिखाना और ॥ ३१ ॥

प्राप्तयुद्धान्निवर्तित्वैस्त्रासनं दंडउच्यते ।
क्रियाभेदादुपायाहिभिन्नंतेचयथार्हतः॥ ३२॥

प्राप्त हुए युद्धमें न हटकर त्रास देना यह शत्रुके लिये दड कहा है और क्रियाके भेदसे उपायोंकाभी यथायोग्य भेद हो जाता है॥३२॥

सर्वोपायैस्तथाकुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः ।
यथास्वाभ्यधिकानस्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥

नीतिका ज्ञाता राजा तिस प्रकार सम्पूर्ण उपायोंसे आचरण करै जैसे मित्र उदासीन-शत्रु ये तीनों अपने से अधिक न हों ॥ ३३ ॥

सामैवप्रथमंश्रेष्ठंदानंतुतदनंतरम् ।
सर्वदाभेदनंशत्रोर्दंडनंप्राणसंशये ॥ ३४ ॥

शत्रुके लिये सबसे पहले साम श्रेष्ठ है उसके पीछे दान, भेदन तो सदैव श्रेष्ठ और प्राणके सशयमें दड कहा है ॥ ३४ ॥

प्रबलेरौसामदानेसामभेदौधिकेस्मृतौ ।
भेददंडौसमेकार्यौदंडः पूज्यप्रहीनके ॥३५॥

प्रबल शत्रुके लिये साम,दान अधिकके लिये साम, भेद कहे हैं, सम शत्रुके लिये भेद दण्ड करने और हीनके लिये दड श्रेष्ठ है ॥ ३५ ॥

मित्रेचसामदानेस्तोनकदाभेददंडने ।
रिपोः प्रजानां संभेदः पीडनंस्वजयायवै ॥

मित्रके लिये साम, दान होते हैं भेद और दड कभी नहीं, शत्रु तथा प्रजाका भेद और पीडा अपनी जयके लिये होते हैं ॥ ३६ ॥

रिपुप्रपीडितानांचसाम्नादानेनसंग्रहः ।
गुणवतांचदुष्टानांहितंनिर्वासनंसदा॥ ३७ ॥

शत्रुओंने दी है पीडा जिनको ऐसे गुणवानोंका साम और दंडसे संग्रह करे और दुष्टोंका सदैव निर्वासन ( निकासना ) करे ॥ ३७ ॥

स्वप्रजानांनभेदेननैवदंडेनपालनम् ।
कुर्वीतसामदानाभ्यांसर्वदायत्नमास्थितः ॥

अपनी प्रजाओंका भेद और दंडसे पालन न करे किन्तु यत्नमें टिका हुआ राजा साम और दानसे पालन करे ॥ ३८ ॥

स्वप्रजादंडभेदैश्चभवेद्राज्यविनाशनम् ।
हीनाधिकायथानस्युःसदारक्ष्यास्तथाप्रजाः।

अपनी प्रजाके दंड और भेदसे राज्यका विनाश होता है, इससे राजा प्रजाकी इस प्रकार रक्षा करे जैसे प्रजा हीन और अधिक न हो ॥ ३९ ॥

निवृत्तिरसदाचाराद्दमनंदंडतश्चतत् ।
येनसंदम्यतेजंतुरुपायोदंडएवसः ॥ ४० ॥

असत् आचरणसे जो निवृत्ति उसको दंडसे दमन कहते हैं जिससे प्राणी दमनको प्राप्त हो वह उपाय भी दंड होता है ॥ ४० ॥

सउपायोनृपाधीनः ससर्वेषांप्रभुर्यतः ।
निर्भर्त्सनंचापमानोनाशनंबंधनंतथा ।
ताडनंद्रव्यहरणंपुरान्निर्वासनांकने ।
व्यस्तक्षौरमसद्यानमंगच्छेदोवधस्तथा ॥

वह उपाय राजाके अधीन है क्योंकि वह सबका प्रभु है निर्भर्त्सन ( झिडकना ) द्रव्यका हरना, पुरसे निकासना, अंकित करना, उलटा और कराना, असत्यान ( गधा आदि ) पर चढाना अङ्गका छेदन और वध ॥४१॥४२॥

युद्धमेतेह्युपायाःस्युर्दंडस्यैवप्रभेदकाः ।
जायंतेधर्मनिरताःप्रजादंडभयेनच ॥ ४३ ॥
करोत्याधर्षणंनैवतथाचासत्यभाषणम् ।
क्रूराश्चमार्दवंयांतिदुष्टादौष्ट्यंत्यजंतिच ॥

और युद्ध ये सब उपाय दण्डके ही भेद कहे हैं क्योंकि दण्डके भयसे प्रजा धर्ममें निरत रहती है, दंडके भयसे आधर्षण ( जबराई ) असत्य भाषण कोई नहीं करता और क्रूर कोमल हो जाते हैं और दुष्ट मनुष्य दुष्टताको त्याग देते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

पशवोपिवशंयांतिविद्रवंतिचदस्यवः ।
पिशुनामूकतांयांतिभयंयांत्याततायिनः ॥ ४५

पशुभी वशमें होते हैं, चोर भाग जाते हैं पिशुन (चुगलखोर) मूक होते हैं आततायी (हिंसक) डर जाते हैं ॥ ४५ ॥

करदाश्चभवंत्यन्येवित्रासंयांतिचापरे ।
अतोदंडधरोनित्यंस्यान्नृपोधर्मरक्षणे ॥४६॥

कोई दंडके मारे कर देने लगते हैं और कोई त्रासको प्राप्त हो जाते हैं इससे राजा सदैव धर्मरक्षाके लिये दंडधारी हो ॥ ४६ ॥

गुरोरप्यवलिप्तस्यकार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्यकार्यंभवतिशासनम्॥४७॥

जो गुरु भी अभिमानी हो कार्य, अकार्यको न जाने और कुमार्गमे चले तो राजा उसको भी शिक्षा दे ॥ ४७ ॥

राज्ञांसदंडनीत्याहिसर्वेसिध्यंत्युपक्रमाः ।
दंडएवहिधर्माणांशरणंपरमंस्मृतम् ॥ ४८ ॥

राजाकी दण्डसहित नीतिसे सब उपक्रम (आरम्भ) सिद्ध होते हैं, और दंड ही सम्पूर्ण धर्मोंका उत्तम शरण कहा है ॥ ४८ ॥

अहिंसैवासाधुहिंसापशुवच्छ्रुतिचोदनात् ।
दंड्यस्यादंडनान्नित्यमदंड्यस्य चदंडनात्४९

दुर्जनोंकी हिंसा, वेदकी आज्ञाके अनुसार पशुके समान अहिंसा होती है, दंड देने योग्यको दंड न देना, दंड देने अयोग्यको दण्ड देना ॥ ४९ ॥

अतिदंडाच्चगुणिभिस्त्यज्यतेपातकीभवेत् ।
अल्पदानान्महत्पुण्यंदंडप्रणयनात्फलम् ॥

अथवा अत्यन्त दण्ड देना इनसे गुणी लोग राजाको त्याग देते हैं और वह राजा पातकी होता है, अल्पदानसे बडा पुण्य जैसे होता है तैसे राजाको दंड देनेसे फल मिलता है ॥ ५० ॥

शास्त्रेषूक्तंमुनिवरैः प्रकृत्यर्थंभयायच ।
अश्वमेधादिभिःपुण्यंतत्किंस्यात्स्तोत्रपाठतः।

शास्त्रोंके विषय श्रेष्ठ मुनियोंने प्रवृत्ति और भयके लिये जो पुण्य अश्वमेधादि यज्ञोंका कहा है वह क्या स्तोत्रके पाठसे होता है अर्थात् नहीं होता ॥ ५१ ॥

क्षमयायत्तुपुण्यंस्यात्तत्किंदंडानिपातनात् ।
स्वप्रजादंडनाच्छ्रेयःकथंराज्ञोभविष्यति५२॥

क्षमासे जो पुण्य होता है वह क्या दण्ड देनेसे हो सकता है अपनी प्रजाके दण्डसे राजाका कल्याण कैसे होगा ॥ ५२ ॥

तद्दंडाज्जायतेकीर्तिर्धनपुण्यविनाशनम् ।
नृपस्यधर्मपूर्णत्वाद्दंडःकृतयुगेनहि ॥ ५३ ॥

प्रजाके दण्डसे कीर्ति, धन, पुण्यका नाश होता है, और राजा धर्मपूर्ण होनेसे सतयुगमें दंड नही ॥ ५३ ॥

त्रेतायुगेपूर्णदंडःपादाधर्माप्रजायतः ।
द्वापरेचार्धधर्मत्वात्त्रिपाद्दंडोविधीयते ॥५४॥

त्रेतायुगमे पूर्ण दंड इसलिये था कि प्रजामें चौथाई अधर्म रहा और द्वापरमें आधा धर्म रहनेसे त्रिपात् (३ हिस्से) दण्ड देना कहा है ॥ ५४ ॥

प्रजानिस्वाराजदौष्ट्याद्दंडार्धेतुकलौयुगे ।
युगप्रवर्तकोराजाधर्माधर्मप्रशिक्षणात्॥५५॥

राजाकी दुष्टतासे कलियुगमे प्रजा निर्धन हो जाती है इसलिये आधा दण्ड कहा है, धर्म और अधर्मकी शिक्षासे युगोंकी प्रवृत्ति राजासे होती है ॥ ५५ ॥

युगानांनप्रजानांनदोषःकिंतुनृपस्यहि ।
प्रसन्नोयेननृपतिस्तदाचरतिवैजनः ॥५६॥

न युगोंका न प्रजाओंका दोष है किन्तु राजाका दोष है क्योंकि मनुष्य वही आचरण करता है जिससे राजा प्रसन्न रहे ॥ ५६ ॥

लोभाद्भयाच्चकिंतेनशिक्षितंनाचरेत्कथम् ।
सुपुण्योयत्रनृपतिर्धर्मिष्ठास्तत्रहिप्रजाः ५७॥

जो राजासे लोभ वा भयसे शिक्षा की है उसको प्रजा कैसे न करेगी जहां राजा पुण्यवान् होता है वहां प्रजाभी धर्मिष्ठ होती है ५७

महापापीयत्रराजातत्राधर्मपरोजनः ।
नकालवर्षीपर्जन्यस्तत्रभूर्नमहाफला ॥५८॥

जहां राजा महापापी होता है वहां मनुष्य

अधर्ममें तत्पर हो जाते हैं, न समय पर मेघ वर्षता है, न भूमिमें बहुत फल होते हैं ॥५८॥

जायतेराष्ट्रह्रासश्चशत्रुवृद्धिर्धनक्षयः।
सुराप्यपिवरोराजानस्त्रैणोनातिकोपवान्॥

देशकी हानि, शत्रुकी वृद्धि, धनका नाश होता है, मदिराका पीनेवाला भी राजा अच्छा परन्तु व्यभिचारी अत्यन्त क्रोधी अच्छा नहीं ॥ ५९ ॥

लोकांश्चंडस्तापयतिस्त्रैणोवर्णान्विलुंपति।
मद्यप्येकश्चभ्रष्टःस्याद्बुद्ध्याचव्यवहारतः॥

क्रोधी राजा लोकोंको दुःख देता है, व्यभिचारी वर्णोंका नाश करता है, मदिरा पीनेवाला तो बुद्धि और व्यवहारसे आपही भ्रष्ट होता है ॥ ६० ॥

कामक्रोधौमद्यतमौसर्वमद्याधिकौयतः।
धनप्राणहरोराजाप्रजायाश्चातिलोभतः ६१॥

काम और क्रोध, ये दोनों बडेभारी मद हैं और सब मद्योंसे अधिक हैं और राजा अत्यन्त लोभसे प्रजाके धन और प्राणोंको हरता है ॥ ६१ ॥

तस्मादेतत्रयंत्यक्त्वादंडधारीभवेन्नृपः।
अंतर्मृदुर्बहिःक्रूरोभूत्वास्वांदंडयेत्प्रजाम् ६२

इससे राजा इन तीनोंको छोड़ कर दण्डधारी हो भीतर कोमल और बाहरसे क्रूर अपनी प्रजाको दण्ड दे ॥ ६२ ॥

अत्युग्रदंडकल्पःस्यात्स्वभावाहितकारिणः
राष्ट्रंकर्णेजपैर्नित्यंहन्यतेचस्वभावतः ॥६३॥

स्वभावसे जो अपने अहितकारी हैं उनको अतिउग्र दंड दे, जो स्वभावसे सूचक ( चुगल ) हैं उनसे देश नष्ट होता है ॥ ६३ ॥

अतोनृपःसूचितोपिविमृशेत्कार्यमादरात्।
आत्मनश्चप्रजायाश्चदोषदश्युत्तमोनृपः६४॥

इससे राजा सूचना करने परभी कार्य्यको आदरसे विचारे जो राजा अपना और प्रजाका दोष देखता है वह उत्तम होता है ॥ ६४ ॥

विनियच्छति चात्मानमादौभृत्यांस्ततः प्रजाः। कायिकोवाचिकोमानसिकः सांसर्गिकस्तथा ॥ ६५ ॥

राजा प्रथम अपनी आत्माका फिर भृत्यों का फिर प्रजाका नियमन करे और देहसे वाणीसे मनसे तथा संगसे ॥ ६५ ॥

चतुर्विधोऽपराधःसबुद्ध्यबुद्धिकृतोद्विधा।
पुनर्द्विधाकारितश्चतथाज्ञेयोनुमोदितः ॥६६॥

यह चार प्रकारका अपराध, १ जानकर किया और २ विना जाने किया दो प्रकारका कहा है फिर वह दो प्रकारका होता है एक कराया और दूसरा अनुमोदन किया॥६६॥

सकृदसकृदभ्यस्तःस्वभावैःसचतुर्विधः।
नेत्रवक्त्रविकाराद्यैर्भावैर्मानसिकंतथा ॥

फिर वह चार प्रकारका होता है कि एक बार किया, बारंबार किया, अभ्यास किया और स्वभावसे किया, नेत्र मुखके विकार आदि भावोंसे मानसिक अपराधको ॥ ६७ ॥

क्रिययाकायिकंवीक्ष्यवाचिकंक्रूरशब्दतः।
सांसर्गिकंसाहचर्यैर्ज्ञात्वागौरवलाघवम्६८॥

और देहके अपराधको करनेसे तथा वाणी के अपराधको कठोर शब्दसे सासर्गिक अपराधको साहचर्य्यसे देखकर लाघव और गौरवको जानकर ॥ ६८ ॥

उत्पन्नोत्पत्स्यमानानांकार्याणांदंडमावहेत्।
प्रथमंसाहसंकुर्वन्नुत्तमोदंडमर्हति ॥ ६९ ॥

पैदाहुए और पैदाहोनेवाले कार्य्योंका दण्ड दे जो उत्तम पुरुष पहिलही साहस करे वह उत्तम दण्डके योग्य होता है ॥ ६९ ॥

न्याय्यंकिमितिसंपृच्छेत्त्वैवेयमसत्कृतिम्।
उपहासंयथोक्तंचद्विगुणंत्रिगुणंततः ॥७०॥

क्या न्याय है यह पूछे और यह असत्कर्म तैंने किया है, फिर दोबार वा तीनबार यथोक्त उपहासको पूछे ॥ ७० ॥

मध्यमंसाहसंकुर्वन्नुत्तमोदंडमर्हति।
धिग्दंडंप्रथमंचाद्यसाहसंतदनंतरम् ॥ ७१ ॥

यदि उत्तम पुरुष मध्यम साहस करे तो वह दण्डके योग्य होता है उसको पहिले धिक्कारका दण्ड और पीछे साहसका दण्ड होता है ॥ ७१ ॥

**यथोक्तंतुतथासम्यग्यथावृद्धिह्यनंतरम् ।**
**उत्तमंसाहसंकुर्वन्नुत्तमोदंडमर्हति ॥७२ ॥**

प्रथम भली प्रकार यथोक्त दण्ड और पीछेसे दण्डकी वृद्धि होती है।यदिउत्तमपुरुष उत्तम साहसकरे तो वह दण्डके योग्य होता है॥७२॥

**प्रथमंसाहसंचादौमध्यमंतदनंतरम् ।**
**यथोक्तंद्विगुणंपश्चादवरोधंततःपरम् ७३ ॥**

उसको पहिले साहसका दंड फिर मध्यम साहसका फिर शास्त्रोक्तसे दूना दण्ड फिर अवरोध ( कैद ) होता है ॥ ७३ ॥

**बुद्धिपूर्वंनृघातेनविनैतदंडकल्पनम् ।**
**उत्तमत्वंमध्यमत्वंनीचत्वंचात्रकीर्त्यते ७४**

जो जानकर मनुष्यको मारे उसको बिना विचारे दण्डकी कल्पना करे, यहांपर उत्तम मध्यम नीच दण्डको कहते है ॥ ७४ ॥

**गुणेनैवतुमुख्यांहिकुलेनापिधनेनच ।**
**प्रथमंसाहसंकुर्वन्मध्यमोदंडमर्हति ॥ ७५ ॥**

गुण, कुल वा धनसे मुख्यता होती है, मध्यम पुरुष प्रथम साहसको करे तो दण्डके योग्य होता है ॥ ७५ ॥

**धिग्दंडमर्धदंडंचपूर्णदंडमनुक्रमात् ।**
**द्विगुणंत्रिगुणंपश्चात्संरोधंनीचकर्मच ॥७६॥**

उसको क्रमसे धिक्कारका दण्ड आधा दण्ड पूर्ण दण्ड दूना वा तिगुना दंड होता है और पीछेसे संरोध ( कैद ) वा नीचकर्म करनेका दंड देना ॥ ७६ ॥

**मध्यमं साहसंकुर्वन्मध्यमोदंडमर्हति ।**
**अर्धंयथोक्तंद्विगुणंत्रिगुणंबंधनंततः ॥७७॥**

मध्यम पुरुष मध्यम साहसको करे तो दंड योग्य होता है उसको आधा दण्ड वा शास्त्रोक्तसे दुगुना तिगुना दण्ड होता है, और फिर बंधन ( कैद ) ॥ ७७ ॥

**मध्यमंसाहसंकुर्वन्नधमोदंडमर्हति ।**
**पूर्वंसाहसमादौतुयथोक्तंद्विगुणंततः ॥७८॥**

नीच जो मध्यम साहस करे तो दंडके योग्य होता है उसको प्रथम साहसका दण्ड पीछे शास्त्रका दण्ड होता है ॥ ७८ ॥

**उत्तमंसाहसंकुर्वन्मध्यमोदंडमर्हति ।**
**मध्यमंसाहसंचादौयथोक्तंतदनंतरम् ॥७९॥**

यदि मध्यम पुरुष उत्तम साहस करे तो दण्डके योग्य होता है, उसको पहिले मध्यम साहसका दण्ड पीछे शास्त्रोक्त होता है ॥७९॥

**द्विगुणंत्रिगुणंपश्चाद्यावज्जीवंतुबंधनम् ।**
**प्रथमंसाहसंकुर्वन्नधमोदंडमर्हति ॥ ८० ॥**

फिर शास्त्रोक्तसे दूना वा तिगुना दण्ड फिर जन्मभर बंधन होता है, यदि अधम मनुष्य प्रथम साहस करे तो दण्डके योग्य होता है ॥ ८० ॥

**ततःसंरोधनंनित्यंमार्गसंस्करणार्थकम् ।**
**उत्तमंसाहसंकुर्वन्नधमोदंडमर्हति ॥ ८१ ॥**

फिर संरोध और नित्य मार्गका संस्कार ( सडककी सफाई ) अधम मनुष्य उत्तम साहस करे तो वह दंडके योग्य होता है ॥ ८१ ॥

**मध्यमंसाहसंचादौयथोक्तंद्विगुणंततः ।**
**यावज्जीवंबंधनंचनीचकर्मैवकेवलम् ॥८२॥**

उसको प्रथम मध्यम साहसका दंड पीछे शास्त्रोक्त और फिर शास्त्रोक्त दूना फिर जन्मभर बंधन फिर केवल नीचकर्म कराना कहा है ॥ ८२ ॥

**हरेत्पादंधनात्तस्ययःकुर्याद्धनगर्वतः ।**
**पूर्वंततोर्धमखिलंयावज्जीवंतुबंधनम् ॥८३॥**

जो मनुष्य धनके अभिमानसे पहला अपराध करे उसके चौथाई धनको राजा हर ले फिर आधे धनको फिर सब धनको हरै फिर जन्मभर बंधन करै ॥ ८३ ॥

**सहायगौरवाद्विद्यामदाच्चबलदर्पतः ।**
**पापंकरोतियस्तंतुबंधयेत्ताडयेत्सदा ॥८४॥**

जो मनुष्य किसीको सहायताके घमंडसे वा विद्या और बलके मदसे पापकरे उसका बंधनकरे वा सदैव ताडना दे ॥ ८४ ॥

भार्यापुत्रश्चभगिनीशिष्योदासःस्नुषाऽनुजः।
कृतापराधास्ताड्यास्तेतनुरज्जुसुवेणुभिः८५

भार्य्या, पुत्र, बहन, शिष्य, दास, पुत्रवधू, छोटाभाई ये अपराध करे तो छोटी रस्सी और बांससे ताडना दे ॥ ८५ ॥

पृष्ठतस्तुशरीरस्यनोत्तमांगेकथंचन।
अतोन्यथातुप्रहरेच्चोरवद्दंडमर्हति ॥ ८६ ॥

इन्हे भी देहकी पीठपर मारे उत्तम अंगमे कभी न मारे इससे अन्यथा जो प्रहार कर्त्ता है वह चौरक दण्डका भागी होता है ॥ ८६ ॥

नीचकर्मकरंकुर्याद्बंधयित्वातुपापिनम्।
मासमात्रंत्रिमासंवाषण्मासंवापिवत्सरम् ८७

पापी मनुष्यसे बांधकर एक मास तीन मास छः मास वा वर्षभर नीचकम करावे८७॥

यावज्जीवंतुवाकश्चिन्नकश्चिद्वधमर्हति।
ननिहन्याच्चभूतानित्विंतिजागर्तिवैश्रुतिः८८

अथवा जीवन पर्य्यन्त, कोई भी जीव वधके योग्य नहीं होता क्योंकि श्रुतिमे यह लिखा है कि प्राणियोंकी हत्या न करे ॥ ८८ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेनवधदंडंत्यजेन्नृपः।
अवरोधाद्बंधनेनताडनेनचकर्षयेत् ॥ ८९ ॥

तिससे सम्पूर्ण यत्नसे वधके दंडको राजा त्यागदे अवरोध, बंधन, ताडनासेही दंड दे ८९।

लोभान्नकर्षयेद्राजाधनदंडेनवैप्रजाम्।
नासहायास्तुपित्राद्यादंड्याःस्युरपराधिनः॥

राजा लोभसे धनका दण्ड देकर प्रजाको दुःखी न करे अपराध करनेवाले पिता आदि-कोंका यदि कोई सहायक न हो तो दण्ड न दे ॥ ९० ॥

क्षमाशीलस्यवैराज्ञोदंडग्रहणमीदृशम्।
नापराधंतुक्षमतेप्रचंडोधनहारकः ॥ ९१ ॥

जो राजा क्षमाशील है उसका दण्ड ऐसा ( पूर्वोक्त ) होता है और जब राजा प्रचण्ड होकर धनका हरनेवाला और अपराधकी क्षमा नहीं करता ॥ ९१ ॥

नृपोयदातदालोकःक्षुभ्यतेभिद्यतेपरैः।
अतःसुभागदंडीस्यात्क्षमावान्रंजकोनृपः९२

तब सम्पूर्ण जगत् चलायमान और दूस-रोंसे पीडित होता है इससे राजा सुभाग ( थोडा ) दंड दे और क्षमासे प्रजाको प्रसन्न रक्खे ॥ ९२ ॥

मद्यपःकितवस्तेनोजारश्चंडश्चहिंसकः।
त्यक्तवर्णाश्रमाचारोनास्तिकः शठएवच ॥

राजा इतने मनुष्योंको राज्यसे निकाल दे कि मदिरा पीनेवाला, धूर्त, चोर, जार, क्रोधी, हिंसक, वर्ण और आश्रमके आचरणका त्यागी नास्तिक और शठ ॥ ९३ ॥

मिथ्याभिशापकःकर्णेजपार्थदेवदूषकौ।
असत्यवाङ्न्यासहारस्तथावृत्तिविघातकः॥

मिथ्या दुःखदाई, सूचक, सज्जन और देवताओंके दूषक, झूठा, न्यास, ( धरोहर ) का चोर, जीविकाका नष्ट करनेवाला ॥ ९४ ॥

अन्योदयासहिष्णुश्चह्युत्कोचग्रहणेरतः।
अकार्यकर्तामंत्राणांकार्याणांभेदकस्तथा ॥

जो दूसरेके प्रतापको न सहे, उत्कोच ( रिशवत् ) का ग्रहण करनेवाला, कुकर्मकारी, मन्त्र और कार्योंका नष्ट करनेवाला ॥ ९५ ॥

अनिष्टवाक्परुषवाग्जलारामप्रबाधकः।
नक्षत्रसूचीराजद्विट्कुमंत्रीकूटकार्यवित् ॥

अनिष्ट वा कठोर वचन कहनेवाला जल और बागका हिंसक, नक्षत्रसूची, ( जो दुकान दुकानपर नक्षत्रोंको बतावे ऐसा ज्योतिषी ) राजाका बैरी, छोटा मन्त्री, कपटी ॥ ९६ ॥

कुवैद्यामंगलाशौचशीलामार्गनिरोधकः।
कुसाक्ष्युद्धतवेषश्चस्वामिद्रोहीव्ययाधिका ॥

खोटा वैद्य, अमंगली, सदा अशुद्ध, मार्गके रोकनेवाला, छोटा साक्षी, जिसका वेष उद्धत

हो, स्वामीका द्रोही और अधिक व्ययका कर्त्ता ॥ ९७ ॥

अग्निदोगरदोवेश्यासक्तः प्रबलदंडकृत्।
तथापाक्षिकसभ्यश्चबलाल्लिखितग्राहकः॥

अग्नि लगानेवाला, विष देनेवाला, वेश्यागामी, प्रबल दण्डका दाता, पक्षपाती, सभासद, बलसे लिखाई लनवाला ॥ ९८ ॥

अन्यायकारीकलहशीलोयुद्धेपराङ्मुखः।
साक्ष्यलोपीपितृमातृसतीस्त्रीमित्रद्रोहकः॥

अन्याय कर्त्ता, कलही, युद्धमे पराङ्मुख, साक्षीने जो कुछ कहा हो उसका नाश करनेवाला और पिता, माता, सती स्त्री, मित्र इनके संग द्रोहका कर्ता ॥ ९९ ॥

असूयकः शत्रुसेवीमर्मच्छेदीचवंचकः।
स्वकीयद्विड्गुप्तवृत्तिर्वृषलोग्रामकंटकः॥

पराये गुणोंमे दोषोंको ढूढनेवाला, शत्रुका सेवक, मर्मका छेदक, वंचक, अपनोंका द्वेषी, गुप्त ( छिपी ) जिसकी जीविका हो, शूद्र और ग्रामका कंटक ॥ १०० ॥

बिनाकुटुंबभरणात्तपोविद्यार्थिनं सदा।
तृणकाष्ठादिहरणेशक्तः सन्भैक्ष्यभोजकः॥

जो कुदुम्बका भरण पोषण किये विना तप करे वा विद्या सीखे और तृण और काष्ठ आदिके लानेमे समर्थ होकर जो भिक्षा मांगकर भोजन करे ॥ १ ॥

कन्यायाअपिविक्रेताकुटुंबवृत्तिहासकः।
अधर्मसूचकश्चापिराजानिष्टमुपेक्षकः॥ २ ॥

जो कन्याको बेचै, कुदुम्बकी जीविकाको कमकरे जो अधर्मकी सूचना करे और राजाके अनिष्टकी उपेक्षा करे ॥ २ ॥

कुलटापतिपुत्रौस्त्रीस्वतंत्रावृद्धनिंदिता।
गृहकृत्योज्झितानित्यंदुष्टाचारप्रियस्नुषा॥

व्यभिचारिणीका पति तथा पुत्र और स्वतन्त्र तथा वृद्धोंसे निंदित स्त्री और जो पुत्रकी वधू घरके कृत्यको न करे सदैव दुष्टाचरण करे ॥ ३ ॥

स्वभावदुष्टानेतान्हिज्ञात्वाराष्ट्राद्विवासयेत्।
द्वीपेनिवासितव्यास्तेबद्ध्वादुर्गोदरेथवा॥४॥

इन सम्पूर्ण स्वभावदुष्टोंको राजा देशसे निकाल दे या किसी द्वीपमे बांधकर किलेमें इन सबको बसादे ॥ ४ ॥

मार्गसंरक्षणेयोज्याःकदन्नन्यूनभोजनाः।
तत्तज्जात्युक्तकर्माणिकारयीतचतैर्नृपः॥

खोटा अन्न और अल्प भोजन देकर इनको मार्गकी रक्षामे नियुक्त करे और इनसे तिस २ जातिके जो कर्म है वे करावे ॥ ५ ॥

एवंविधानसाधूंश्चसंमर्गेणचदूषितान्।
दंडयित्वाचसन्मार्गेशिक्षयेत्तान्नृपःसदा॥

इस प्रकारके असाधुओं और संसर्गसे दूषितोंको दण्ड देकर राजा सन्मार्गकी शिक्षा सदैव दे ॥ ६ ॥

राज्ञोराष्ट्रस्यविकृतितथामंत्रिगणस्यच।
इच्छंतिशत्रुसंबंधाद्येतान्हन्याद्द्रुतंनृपः॥

जो मनुष्य शत्रुओंके सम्बन्धसे राजा देश और मंत्रियोंके गणोंके बिगाडनेकी इच्छा करे उनको राजा शीघ्रही नष्ट करदे ॥ ७ ॥

नेच्छेत्त्वयुगपद्ध्रासंगणदौष्ट्येगणस्यच।
एकैकंघातयेद्राजावत्सोश्नातियथास्तनम्॥

यदि किसी समुदायकी दुष्टता हो तो समुदायकी एकवार हानिको न चाहे किन्तु एक २ का नाश इस प्रकार करे जैसे वत्स एक २ स्तनको पीता है ॥ ८ ॥

अधर्मशीलोनृपतिर्यदातंभीषयेज्जनः।
धर्मशीलातिबलवद्रिपोराश्रयतःसदा॥

जब राजा अधर्मशील हो तब प्रजा उसको धर्मशील अत्यन्त बलवान् शत्रुके आश्रयसे सदैव भय दे ॥ ९ ॥

यावत्तुधर्मशीलःस्यात्सनृपस्तावदेवहि।
अन्यथानश्यतेलोकोद्राङ्नृपोपिविनश्यति॥

जितने कालतक राजा धर्मशील रहता है उतनेही कालतक वह राजा होता है और

अन्यथा जगत् और राजा दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥

**मातरंपितरंभार्यांयःसंत्यज्यविवर्तते ।**
**निगडैर्बंधयित्वातंयोजयेन्मार्गसंसृतौ ॥**

माता, पिता, भार्य्या, इनको जो त्यागकर वर्ते उसको बेडियोंसे बांधकर संसारके मार्ग में लावे ॥ ११ ॥

**तद्भृत्यर्धंतुसंदद्यात्तेभ्योराजाप्रयत्नतः ।**
**विद्यात्पणसहस्रंतुदंडउत्तमसाहसः॥ १२ ॥**

और उसको आधी भृति उन माता आदियोंसे राजा प्रयत्नसे दिलावे, एक सहस्रपण दण्ड उत्तम साहस होता है ॥ १२ ॥

**दशमाषमितंताम्रंतत्पणोराजमुद्रितम् ।**
**वराटिसार्धशतकंमूल्यंकार्षापणश्चसः ॥१३॥**

दश मासे तांबा जो राजमुद्रासे अंकित हो उसे पण कहते हैं और १५० वराटि (कौडी) योंका जो मोल हो उसे कार्षापण कहते हैं ॥ १३ ॥

**तदर्धश्चतदर्धश्चमध्यमःप्रथमःक्रमात् ।**
**प्रथमेसाहसेदंडःप्रथमश्चक्रमात्परौ॥ १४ ॥**

पूर्वोक्तसे आधेको मध्यम और उससे आधेको प्रथम साहस कहते हैं पहले साहस में प्रथम फिर क्रमसे मध्य और उत्तम दंड होते हैं ॥ १४ ॥

**मध्यमेमध्यमोधार्यश्चोत्तमेतूत्तमोनृपैः ॥**
**सोपायाःकथितामिश्रेमित्रोदासीनशत्रवः ॥**

और राजा मध्यम साहसमें मध्यम और उत्तम साहसमें उत्तम दंड दे इस मिश्रप्रकरणमें मित्र उदासीन शत्रु और उनके उपाय कहे हैं ॥ १५ ॥

**अथकोशप्रकरणंब्रुवेमिश्रेद्वितियिकम् ।**
**एकार्थसमुदायोयःसकोशःस्यात्पृथक्पृथक्।**

अब मिश्र प्रकरणमें दूसरा कोशका प्रकरण कहते हैं, जो एक प्रकारके धनका समुदाय हो उसे पृथक् २ कोश (खजाना) कहते हैं ॥ १६ ॥

**येनकेनप्रकारेणधनंसंचिनुयान्नृपः ।**
**तेनसंरक्षयेद्राष्ट्रंबलंयज्ञादिकाःक्रियाः ॥**

राजा जिस किसी प्रकारसे धनका संचय करे उस धनसे देश सेनाकी रक्षा और यज्ञ आदि कर्म करे ॥ १७ ॥

**बलप्रजारक्षणार्थंयज्ञार्थंकोशसंग्रहः ।**
**परत्रेहचसुखदोनृपस्यान्यश्चदुःखदः ॥१८॥**

सेना प्रजाकी रक्षा और यज्ञ इनके लिये कोशका संग्रह परलोक और इस लोकमें सुखदाई होता है और अन्यकोश दुःखका दाता कहा है ॥ १८ ॥

**स्त्रीपुत्रार्थंकृतोयश्चसोपभोगायकेवलः**
**नरकायैवसज्ञेयोनपरत्रसुखप्रदः ॥ १९ ॥**

जो कोश स्त्री और पुत्रके ही लिये किया हो वह केवल उपभोगके लिये होता है और परलोकमे नरकार्थ है सुखदाई नहीं ॥ १९ ॥

**अन्यायेनार्जितोयस्मायेनतत्पापभाक्चसः ।**
**सुपात्रतोगृहीतंयद्दत्तंवावर्धतेचयत् ॥ २० ॥**

अन्यायसे जिसने कोशका सञ्चय किया वह उसके पापका भागी होता है जो धन सुपात्रसे ग्रहण किया हो अथवा दिया हो वह बढ़ता है ॥ २० ॥

**स्वागमीसद्व्ययीपात्रमपात्रंविपरीतकम् ।**
**अपात्रस्यधनंसर्वंहरेद्राजानदोषभाक् ॥२१॥**

जो मनुष्य सुमार्गसे सञ्चय और सुमार्गमें व्यय करता है वह पात्र होता है इससे विपरीत कुपात्र, कुपात्रका सम्पूर्ण धन हरनेसेराजा दोषका भागी नहीं होता ॥ २१ ॥

**अधर्मशीलनृपतेःसर्वतःसंहरेद्धनम् ।**
**छलाद्बलाद्दस्युवृत्त्यापरराष्ट्राद्धरेत्तथा ॥२२**

अधर्मशील राजाके धनको सब प्रकारसे हरले कि छल बल चोरी तथा परके देशसे हरे ॥ २२ ॥

**त्यक्त्वानीतिबलंस्वीयप्रजापीडनतोधनम् ।**
**संचितंधनतत्तस्यस्वराज्यंशत्रुसाद्भवेत् ॥**

जिस राजाने नीति और बलको त्यागकर

अपनी प्रजाकी पीडासे धनका संचय किया हो उस राजाका राज्य शत्रुओंके आधीन हो जाता है ॥ २३ ॥

दंडभूभागशुल्कानामाधिक्यात्कोशवर्धनम् ।
अनापदिनकुर्वीततीर्थदेवकरग्रहात् ॥२४॥

राजा दंड पृथ्वीका भाग शुल्क ( महसूल ) इनकी अधिकतासे आपत्कालको छोडकर खजाना न बढावे उसको तीर्थ और देवसे कर लेकर ॥ २४ ॥

यदाशत्रुविनाशार्थे बलसंरक्षणोद्यतः ।
विशिष्टदंडशुल्कादिधनंलोकात्तदाहरेत् २५

जब राजा शत्रुके विनाशार्थ सेनाकी रक्षामे उद्यत हो उस समय अधिक दण्ड और शुल्क आदि द्वारा प्रजासे धनको ग्रहण करे ॥ २५ ॥

धनिकेभ्योभृतिंदत्त्वास्वापत्तौतद्धनंहरेत् ।
राजास्वापत्समुत्तीर्णस्तत्संदद्यात्सवृद्धिकम्

अपनी आपत्तिमे राजा सूदपर धनियोंसे धनले और जब आपत्तिसे उत्तीर्ण ( रहित ) हो जाय तब सूदसहित दे ॥ २६ ॥

प्रजान्यथाहीयतेचराज्यंकोशोनृपस्तथा ।
हीनाःप्रबलदंडेनसुरथाद्यानृपायतः ॥२७॥

अन्यथा प्रजा, राज्य, कोश, राजा ये सब हीन हो जाते हैं क्योंकि प्रबल दंडसे सुरथ आदि राजा हीन हो गये है ॥ २७ ॥

दंडभूभागशुल्कैस्तुविनाकोशाद्बलस्यच ।
संरक्षणंभवेत्सम्यग्यावद्विंशतिवत्सरम् २८॥

दण्ड भूमिका कर और कोश इनके विना बलकी रक्षा जबतक बीस वर्ष तक भली प्रकार हो ॥ २८ ॥

तथाकोशस्तुसंधार्यःस्वप्रजारक्षणक्षमः ।
बलमूलोभवेत्कोशः कोशमूलंबलंस्मृतम् ॥

तिस प्रकार अपनी रक्षाके योग्य कोशकी रक्षा राजा करे क्योंकि कोशका मूल बल और बलका मूल कोश कहा है ॥ २९ ॥

बलसंरक्षणात्कोशराष्ट्रवृद्धिररिक्षयः ।
जायतेतत्रयंस्वर्गः प्रजासंरक्षणेनवै ॥ ३० ॥

बलकी रक्षासे कोश, और देशकी वृद्धि तथा शत्रुका क्षय होते हैं ये तीनों और स्वर्ग प्रजाकी रक्षासे होतेहैं ॥ ३० ॥

यज्ञार्थंद्रव्यमुत्पन्नंयज्ञः स्वर्गसुखायुषे ।
अर्थभावोबलंकोशोराष्ट्रवृद्ध्यैत्रयंत्विदम् ॥

द्रव्य यज्ञके लिये और यज्ञ स्वर्ग, सुख,अवस्थाके लिये होते हैं, शत्रुका अभाव बल कोश ये तीनों राष्ट (देश)वृद्धिके लिये होते हैं॥३१॥

तद्वृद्धिर्नीतिनैपुण्यात्क्षमाशीलनृपस्यच ।
जायतेतोयतैवयावद्बुद्धिबलोदयम् ॥३२॥

क्षमाशील राजाकी नीतिनिपुणतासे उनकी वृद्धि होती है इससे जितनी बुद्धि और बलका उदयहो तितने कोश वृद्धिका यत्न करे ॥३२॥

मालाकारस्यवृत्त्यैवस्वप्रजारक्षणेनच ।
शत्रुंहिकरदीकृत्यतद्धनैः कोशवर्धनम् ३३॥

जो राजा मालीकी वृत्ति और अपनी प्रजा की रक्षासे शत्रुओंको करदेनेवाले बनाकर शत्रुओंके धनसे कोशको बढावे ॥ ३३ ॥

करोतिसनृपः श्रेष्ठोमध्यमोवैश्यवृत्तितः ।
अधमःसेवयादंडतीर्थदेवकरग्रहैः ॥३४॥

वह राजा उत्तम होता है, जो वैश्यवृत्ति करे वह मध्यम और सेवा करे वा दंड तीर्थ तथा देवतासे कर ले वह अधम होता है ॥ ३४ ॥

प्रजाहीनधनारक्ष्याभृत्यामध्यधनाः सदा ।
यथाधिकृत्प्रतिभुवोधिकद्रव्यास्तथोत्तमाः ॥

जो प्रजा धनहीन और भृत्य मध्यमधन हों उनकी सदैव रक्षा करे और साक्षी जितने अधिक धनी हों उतनेही उत्तम होते हैं ॥३५॥

धनिकाश्चोत्तमधनानहीनानाधिकानृपैः ।
द्वादशाब्दप्रपूरंयद्धनंतन्नीचसंज्ञकम् ॥३६॥

जो धनी उत्तम धनवाले हों और न हीन हों न अधिक हों उसको राजा रक्खे, जिसे धनसे १२ वर्ष तक निर्वाह होसके वह धन नीच होता है ॥ ३६ ॥

पर्याप्तंषोडशाब्दानांमध्यमंतद्धनंस्मृतम् ।
त्रिंशदब्दप्रपूरंयत्कुटुंबस्योत्तमंधनम् ३७॥

और जिससे १६ वर्षतक कुटुम्बकी पालना हो वह धन मध्यम कहा है और जिससे ३० वर्षतक पालनाहो वह उत्तम धन होताहै॥३७॥

क्रमादर्धरक्षयेद्वास्वापत्तौनृपएपुवै ।
मूलैर्व्यवहरन्त्यर्धैर्नवृद्ध्यावाणिजः क्वचित्॥

राजा अपने आपत्तिके लिये इन धनिक आदिकोंमें क्रमसे आधे धनकी रक्षा करे जो व्यापारी आधेमूल धनसे ( जमामे ) सूदके लिये व्यापार करताहै वह कभी व्यापारी नहीं होता ॥ ३८ ॥

विक्रीणंतिमहार्घेतुहीनार्घेसंचयंतिहि ।
व्यवहारेधृतंवैश्यैस्तद्धनेनविनासदा॥३९॥

जो द्रव्य व्यवहारमें लग रहा है उसके विना सदैव महगेमें बेचते है और मन्देमे लेते है ॥ ३९ ॥

अन्यथास्वप्रजातापोनृपंदहतिसान्वयम् ।
धान्यानांसंग्रहःकार्योवत्सरत्रयपूर्तिदः ४०॥

अन्यथा प्रजाका सन्ताप वंश सहित राजा को नष्ट करता है और इतने अन्नका सग्रह करे जिससे ३ वर्ष पूरा पड जाय ॥ ४० ॥

तत्तत्कालेस्वराष्ट्रार्थंनृपेणात्महितायच ।
चिरस्थायीसमृद्धानामधिकोवापिचेष्यते ॥

तिस २ समयमे अपने देश और अपने लिये अन्नसंग्रह रक्खे और जो समृद्ध हैं उनको चिरकालतक रहने योग्य अथवा अधिक अन्नभी अच्छा है ॥ ४१ ॥

सुपुष्टंकांतिमज्जातिश्रेष्ठंशुष्कंनवीनकम् ।
ससुगंधवर्णरसंधान्यंसंवीक्ष्यरक्षयेत् ४२॥

जो वस्तु पुष्ट वा कान्तिवालीहै वह सूखी और नवीन अच्छी होती है और जो सुगंध वर्ण रसवाली हैं उनकी देख २ कर रक्षा करे ॥ ४२ ॥

सुसमृद्धंचिरस्थायीमहार्घमपिनान्यथा ।
विषवह्निहिमव्याप्तंकीटजुष्टंनधारयेत् ॥४३॥
निःसारतांनहिप्राप्तंव्ययेतावन्नियोजयेत् ।
व्ययीभूतंतुयद्द्रव्यंतत्तुल्यंतुनवीनकम् ४४

जो वस्तु अधिक हो और चिरकालतक रहसके वह महंगीभी अच्छी अन्यथा नहीं और जो वस्तु विष, अग्नि, शीत, जीव इनकी मारी हो उसे न रक्खे ॥ ४३ ॥ और जिस वस्तुका सार बनरहा हो उसेही खर्चमें लावे और जितनी खर्च हो चुकी हो उसके तुल्य नवीन ॥ ४४ ॥

गृह्णीयात्सुप्रयत्नेनवत्सरेवत्सरेनृपः ।
औषधीनांचधातूनांतृणकाष्ठादिकस्यच ॥

वर्ष २ में बडे यत्नसे ग्रहण करता है और औषधी तृणकाष्ठादिकाभी संचय रक्खे ॥४५॥

यन्त्रशस्त्रास्त्राग्निचूर्णभाण्डादेर्वाससांतथा ।
यद्यच्चसाधकंद्रव्यंयद्यत्कार्येभवेत्सदा ४६॥

जो शस्त्र, अस्त्र, अग्नि, चूर्ण ( दारू ) भाण्ड, वस्त्र, इनका भी सचय रक्खे और कार्योंमें जो जो द्रव्य साधक हो सदैव ॥ ४६ ॥

संग्रहस्तस्यतस्यापिकर्तव्यः कार्यसिद्धिदः
संरक्षयेत्प्रयत्नेनसंगृहीतंधनादिकम् ॥४७॥

उस २की कार्य सिद्धिके लिये संग्रह करना और संग्रह किये हुए धन आदिकी प्रयत्नसे रक्षा करे ॥ ४७ ॥

अर्जनेतुमहद्दुःखंरक्षणेतच्चतुर्गुणम् ।
क्षणंचोपेक्षितंयत्तद्विनाशंद्राक्समाप्नुयात् ॥

धनके संचयमे महादुःख और उसकी रक्षामे उससे चौगुना दुःख होता है यदि क्षणमात्र भी धनरक्षाकी उपेक्षा की जाय तो शीघ्रही नष्ट होजाता है ॥ ४८ ॥

अर्जकस्यैवयद्दुःखंस्याद्यथार्जितनाशने ।
स्त्रीपुत्राणामपितथानान्येषांतुकथंभवेत् ॥

संचय करनेवाले मनुष्यको संचित धनके नाशमे जो दुःख होता है वह दुःख स्त्री, पुत्र और अन्योंको कैसे हो सकता है ॥ ४९ ॥

स्वकार्येशिथिलोयःस्यात्किमन्येनभवंतिहि।
जागरूकःस्वकार्येयस्तत्सहायाश्चतत्समाः॥

जो मनुष्य अपने कार्यमें शिथिल होता

है तो अन्य क्यों न होंगे और जो अपने काम में जागता है उसके सहायकभी जागते हैं॥५०

योजानात्यर्जितुंसम्यगर्जितंनहिरक्षितुम् ।
नातःपरतरोमूर्खोवृथातस्यार्जनाश्रमः ॥५१॥

जो मनुष्य सञ्चय करना जानता है और सञ्चयकी रक्षा भलीप्रकार नहीं करसकता उससे परेकोई मूर्ख नहीं उसका सञ्चय करना वृथा है ॥ ५१ ॥

एकस्मिन्नधिकारेतुयोद्वावधिकारोतिसः ।
मूर्खोजीवद्विभार्यश्चह्यतिविस्रंभवांस्तथा॥५२

जो मनुष्य एक काममें दोनोंको अधिकार देता है जिसके पहलीक जीवते दूसरी स्त्री हो और जिसको अत्यन्त विश्वास हो उसस परे कोई मूर्ख नहीं ॥ ५२ ॥

महाधनाशोरसतःस्त्रीभिर्निर्जितएवहि ।
तथायः साक्षितांपृच्छेच्चौरजाराततायिषु ॥

जो मनुष्य महालोभी हो और जिसको हाव भावसे स्त्रियोंने जीत लिया हो और जो मनुष्य चोर, जार, आततायी, (हिंसक) इनको साक्षी पूछे वह भी मूर्ख है ॥ ५३ ॥

संरक्षयेत्कृपणवत्कालेदद्याद्विरक्तवत् ।
वस्तुयाथात्म्यविज्ञानेस्वयमेवयतेतसदा॥५४

कृपणके समान धनकी रक्षा करे और समयपर बिरक्तके समान दे और वस्तुके यथार्थ जाननेके लिये सदैव स्वय यत्न करे ॥ ५४ ॥

परीक्षकैः स्वयंराजारत्नादीन्वीक्ष्यरक्षयेत् ।
वज्रंमुक्ताप्रवालंचगोमेदश्चेंद्रनीलकः॥५५॥

और राजा परीक्षकों (जौहरी) से और स्वयं परीक्षा करके रत्न आदिकी रक्षा करे कि वज्र, मोती, मूंगा, गोमेद इन्द्रनील ॥

वैदूर्यः पुष्करागश्चपाचिर्माणिक्यमेवच ।
महारत्नानिचैतानिनवप्रोक्तानिसूरिभिः ॥

वैदूर्य्य, पुखराज, पाची, माणिक्य सूरियोंने ये नौ ९ महारत्न कहे हैं ॥ ५६ ॥

रवेःप्रियंरक्तवर्णमाणिक्यंत्विंद्रगोपरुक् ।
रक्तपीतसितश्यामच्छविर्मुक्ताप्रियाविधोः॥

लाल वर्णका इन्द्रगोपके समान जिसकी कान्ति हो ऐसा माणिक्य सूर्यको प्याराहै लाल पीला, सपेद, श्याम कान्तिवाला मोती चन्द्रमाको प्रिय है ॥ ५७ ॥

सपीतरक्तरुग्भौमप्रियंविद्रुममुत्तमम् ।
मयूरचासपत्राभापाचिर्बुधहिताहरित् ॥५८

पीलापन लिये लाल मूगा मंगलको प्रिय है मोर वा चासके पंखोंके समान वर्ण पाची बुधको हित होती है ॥ ५८ ॥

स्वर्णच्छविःपुष्करागःपीतवर्णोगुरुप्रियः ।
अत्यंतविशदंरुज्रंतारकाभंकवेःप्रियम् ॥५९

स्वर्णकी जिसमें झलक हो ऐसा पीला पुखराज गुरुको प्यारा है और तारोंके समान जिसकी कांतिहो ऐसा वज्र शुक्रको प्रियहै ५९॥

हितः शनेरिन्द्रनीलोह्यसितोघनमेघरुक् ।
गोमेदःप्रियकृद्राहोरीषत्पीतारुणप्रभः॥६०॥

सजल मेघके समान जिसकी कांति हो ऐसा कृष्ण इन्द्रनील शनैश्चरको प्रिय है, किञ्चित पीला लाल कांतिवाला गोमेद राहु को प्रिय है ॥ ६० ॥

ओत्वक्षभाश्चलत्तंतुवैदूर्यंकेतुप्रीतिकृत् ।
रत्नश्रेष्ठतरंवज्रंनीचंगोमेदविद्रुमम् ॥ ६१ ॥

बिलावके नत्रोंके समान जिसकी कांतिहो और जिसमे लकीर हों ऐसा वैडूर्य केतुको प्रिय है, रत्नोंमे वज्र श्रेष्ठतर है और गोमेद और मूंगा नीच होते हैं ॥ ६१ ॥

गारुत्मतंचमाणिक्यंमौक्तिकंश्रेष्ठमेवहि ।
इन्द्रनीलपुष्करागौवैदूर्यंमध्यमंस्मृतम् ॥६२

गारुत्मत (पाची) माणिक्य और मोती श्रेष्ठ हैं, इन्द्रनील, पुखराज, वैदूर्य य मध्यम कहाते हैं ॥ ६२ ॥

रत्नश्रेष्ठोदुर्लभश्चमहाद्युतिरहेर्मणिः ।
अजालगर्भसद्वर्णोरेखाबिंदुविवर्जितम् ॥६३।

सर्पकी मणि जो रत्नोंमें श्रेष्ठ है वह कांतिवाली दुर्लभ होती है जिसके गर्भमें जाल न हो, उत्तम वर्ण हो जिसमें रेखा और बिन्दु न हो ॥ ६३ ॥

सत्कोणंसुप्रभंरत्नंश्रेष्ठंरत्नविदोविदुः।
शर्कराभंदलाभंचचिपिटंवर्तुलंहितत् ॥६४॥

जिसमें कोण अच्छीहो और कांतिभीअच्छी हो और जो खांडकी आकृति हो वा कमल दल तुल्य हो चिकना और गोल हो ऐसे रत्नोंको रत्नके ज्ञाता श्रेष्ठ जानते हैं ॥ ६४ ॥

वर्णाःप्रभाःसितारक्तपीतकृष्णास्तुरत्नजाः।
यथावर्णंयथाछायंरत्नंयद्दोषवर्जितम् ॥ ६५॥

रत्नके रंग सफेद, रक्त, पीला, काला, होते हैं जिस रत्नकी शास्त्रोक्त कांति और वर्ण हो तथा दोषसे जो रहित हो ॥ ६५ ॥

श्रीपुष्टिकीर्तिशौर्यायुःकरमन्यदसत्स्मृतम्।
पद्मरागस्तुमाणिक्यभेदःकोकनदच्छविः ॥

वह रत्न, लक्ष्मी, पुष्टि, कीर्ति,शूरता,अवस्था इनको करता है और अन्य रत्न असत् कहा है कमलके समान जिसकी कांति हो ऐसा पद्मराज माणिक्यकाही एक भेद है ॥ ६६ ॥

नधारयेत्पुत्रकामानारीवज्रंकदाचन।
कालेनहीनंभवतिमौक्तिकंविद्रुमंधृतम् ६७॥

पुत्रकी कामना जिसे हो वह स्त्री वज्रको कभी भी धारण न करै। बहुत धारण किये मोती और मूंगा हीन हो जाते हैं ॥ ६७ ॥

गुरुत्वात्प्रभयावर्णाद्विस्तारादाश्रयादपि।
आकृत्याचाधिमूल्यंस्याद्रत्नंयद्दोषवर्जितम्।

गुरु ( भारीपन ) कांति, वर्ण, विस्तार और आश्रय आकृति, इनसे रत्नका अधिक मोल हो जाता है जो दोषोंसे वर्जित हो ॥ ६८ ॥

नायसोल्लिख्यतेरत्नंविनामौक्तिकविद्रुमात्।
पाषाणेनापिचप्रायइतिरत्नविदोविदुः॥६९

मोती और मूंगसे अन्य जितने रत्न हैं उन पर लोहे और पत्थरकी लकीर प्रायः नहीं होती यह रत्नोंके ज्ञाताओंने कहा है ॥ ६९ ॥

मूल्याधिक्यायभवतियद्रत्नंलघुविस्तृतम्।
गुर्वल्पंहीनमौल्यंस्याद्रत्नंयदिचसद्गुणम्॥

जो रत्न हलके और बडे होते हैं उनका मोल अधिक होता है और सद्गुण भी जो रत्न गुरु भारी और अल्प होता है उनका मोल कम होता है ॥ ७० ॥

शर्कराभंहीनमौल्यंचिपिटंमध्यमंस्मृतम्।
दलाभंश्रेष्ठमूल्यंस्याद्यथाकामात्तुवर्तुलम् ॥

खांडके समान जिसकी कांति हो यह कम मोलका और चिपटा मध्यम मोलका होता है कमलदलके समान जिसकी कांति हो यथोचित गोल हो वह श्रेष्ठ मोलका होता है ॥ ७१ ॥

नजरांयातिरत्नानिविद्रुमंमौक्तिकंविना।
राजादौष्ट्याच्चरत्नानांमूल्यंहीनाधिकंभवेत् ॥

विद्रुम मूंगा और मोती इनके विना सब रत्न वृद्धावस्था (हीनपबा) को प्राप्त नहीं होवे हैं और राजाके मूर्खपनासे रत्नोंका मौल्य न्यूनाधिक होता है ॥ ७२ ॥

मत्स्याहिशंखवाराहवेणुजीमूतशुक्तितः।
जायतेमौक्तिकंतेषुभूरिशुक्त्युद्भवंस्मृतम् ॥

मत्स्य, सर्प, शंख, वाराह, वांम, मेघ, शुक्ति ( सीप ) इनसे मोती पैदा होता है, परन्तु शुक्तिसे अधिक पैदा होता है ॥ ७३ ॥

कृष्णंसितंपीतरक्तंद्विचतुःसप्तकंचुकम्।
कनिष्ठंमध्यमंश्रेष्ठंक्रमाच्छुक्त्युद्भवंविदुः ॥

काला, सपेद, पीला, रक्त जिसमें दो चार सात कंचुक ( पडदे ) हों ऐसा मोती कनिष्ठ मध्यम श्रेष्ठ शुक्तिसे उत्पन्न कहा है ॥ ७४ ॥

तदेवहिभवेद्वेध्यमवेध्यानीतराणितु।
कुर्वंतिकृत्रिमंतद्वत्सिंहलद्वीपवासिनः ॥७५॥

और वह बींधने योग्य होता है इतर नहीं बींधे जाते हैं सिंहलद्वीपके वासी कृत्रिमभी मोती बनाते हैं ॥ ७५ ॥

तत्संदेहविनाशार्थंमौक्तिकंसुपरीक्षयेत्
उष्णेसलवणस्नेहेजलेनिश्युषितंहितत् ॥

उस संदेहकी निवृत्तिके लिये मोतीकी परीक्षा भली प्रकार करै उष्ण लवण वा स्नेह-संयुक्त जलमें रात्रिमें वसकर ॥ ७६ ॥

व्रीहिभिर्मर्दितेनेयाद्वैवर्ण्यंतदकृत्रिमम्।
श्रेष्ठाभंशुक्तिजंविद्यान्मध्याभंत्वितरद्विदुः ॥

जो मोती धानोंमे मलनेसे विवर्ण (मैला) न हो जाय वह अकृत्रिम (असल) होता है जो शुक्तिसे पैदा होता है उसकी कांति श्रेष्ठ और अन्यकी मध्यम कांति होती है ॥ ७१ ॥

तुलाकल्पितमूल्यंस्याद्रत्नंगोमेदकंविना ।
क्षुमाविंशतिभीरक्तीरत्नानांमौक्तिकंविना ॥

गोमेदके विना सब रत्नोंका तोलसे मोल होता है बीस अलसियोंकी रत्ती सब रत्नोंकी होती है एक मोतीके विना ॥ ७८ ॥

रक्तित्रयंतुमुक्तायाश्चतुःकृष्णकलैर्भवेत् ।
चतुर्विंशतिभिस्ताभीरत्नटंकस्तुरक्तिभिः ॥

मोतीकी तीन रत्ती चार कृष्णलोंकी होती है और २४ चोबीस रत्तियोंका एक टंक रत्नोंका होता है ॥ ७९ ॥

टंकैश्चतुर्भिस्तालःस्यात्स्वर्णविद्रुमयाःसदा ।
एकस्यैवहिवज्रस्यत्वेकरक्तिमितस्यच ८०

चार टंकोंका एक तोला सोने और मूंगेका सदैव होता है. जो वज्र एक रत्ती भरका एक हो ॥ ८० ॥

सुविस्तृतदलस्यैवमूल्यंपंचसुवर्णकम् ।
रक्तिकादलविस्ताराच्छ्रेष्ठंपंचगुणंयदि ॥८१

जिसके दलका विस्तार भी अच्छा हो उसका मोल पांच सुवर्ण होता है जो रत्तीके दलसे पांच गुना विस्तार हो ॥ ८१ ॥

यथायथाभवेन्न्यूनंहीनमौल्यंतथातथा ।
अत्राष्टरक्तिकोमाषोदशमाषैःसुवर्णकः ॥८२

जितना न्यून हो उतना २ ही कम मोल होता है और यहां ८ रत्तियोंका १ माषा और दशमाषोंका एक सुवर्ण होता है ॥ ८२ ॥

मूल्यंपंचसुवर्णानांराजताशीतिकर्षकम् ।
यथागुरुतरंवज्रंतन्मूल्यं रक्तिवर्गतः ॥८३॥

पांच सुवर्णोका मोल चांदीके अस्सी कर्षका (रुपैया) होता है जितना भारी वज्र हो उसका मोलभी रत्तियोंके समूहसे होता है ८३

तृतीयांशविहीनंतुचिपिटस्यप्रकीर्तितम् ।
अर्धंतुशर्कराभस्यचोत्तमंमूल्यमीरितम् ॥८४

चिपिटका मूल्य तेहाई कम होता है जो शर्कराकी कांतिवालेसे तोलमें आधा हो उसका मोल उत्तम कहा है ॥ ८४ ॥

रक्तिकायाश्चद्वेवज्रे तदर्धंमूल्यमर्हतः ।
तदर्धंचहवोर्हंतिमध्याहीनायथागुणैः ॥८५॥

जो दो २ वज्र एकरत्तीके हों उनका उससे आधा मोल कहा है और जो गुणोंसे जैसे मध्य वा हीन हों वे उससे भी आधे मोल योग्य होते हैं ॥ ८५ ॥

उत्तमार्धंतदर्धंवाहीरकागुणहीनतः ।
शतादूर्ध्वंरक्तिवर्गाद्ध्रसेद्विंशतिरक्तिकाः ॥

जो हीरे गुणहीन होनेसे उत्तमसे आधे वा उस आधेसे भी आधे हों उनमे सौ १०० रत्ति-योंसे ऊपर वीस २०रत्ती कम समझ ले अर्थात् २० का मोल कम करदे ॥ ८६ ॥

प्रतिशतात्तुवज्रस्यसुविस्तृतदलस्यच ।
तथैवचिपिटस्यापिविस्तृतस्यचह्रासयेत् ॥

जिसका दल विस्तार अच्छा हो वज्रके प्रति सौ और विस्तृत चिपिटक भी २० रत्ती कम करदे ॥ ८७ ॥

शर्कराभस्यपंचाशच्चत्वारिंशच्चवैकतः ।
रत्नंनधारयेत्कृष्णंरक्तबिंदुयुतंसदा॥ ८८ ॥

शर्करा (कंकर) के वज्रकी पचास वा चालीस रत्ती मोल कम करे और काले और रक्तबिंदुवाले रत्नको कभी न धारे ॥ ८८ ॥

गारुत्मकंतूत्तमंचेन्माणिक्यंमूल्यमर्हतः ।
सुवर्णरक्तिमात्रंचयथारक्तिततोगुरु॥ ८९ ॥

जो उत्तम गारुत्मत होय तो माणिक्यके मोल योग्य होता है यदि रत्तीमात्र सुवर्णसे रत्तीमात्र भारी हो ॥ ८९ ॥

रक्तिमात्रःपुष्करागोनीलःस्वर्णार्धमर्हतः ।
चलत्रिसूत्रीवैदूर्यश्चोत्तमंमूल्यमर्हति ॥९०॥

एक रत्तीका नीला पुखराजका आधासुवर्ण मोल होता है। जिस वैदूर्यमें तीन सूत्र हों वह उत्तम मोलके योग्य होता है ॥ ९० ॥

प्रवालंतोलकमितंस्वर्णार्धमूल्यमर्हति ।
अत्यल्पमूल्योगोमेदोनोन्मानंतुयतोर्हति ॥

एक तोला मूँगेका आधा सुवर्ण मोल योग्य होता है अति अल्प मोलका गोमेद उन्मान ( तोलना ) के योग्य नहीं होता ॥ ९१ ॥

संख्यातःस्वल्परत्नानांमूल्यंस्याद्धीरकाद्विना।
अत्यंतरमणीयानांदुर्लभानांचकामतः॥९२॥

छोटे रत्नोंका मोल हीरेको छोड़कर गिनतीसे होता है जो अति रमणीय वा यथार्थमें दुर्लभ हैं॥ ९२ ॥

भवेन्मूल्यंनमानेनतथातिगुणशालिनाम् ।
व्यंघ्रिश्चतुर्दशहतोवर्गोमौक्तिकरक्तिजः ॥

तैसेही अत्यन्त गुणवालोंका मोल मानसे नहीं होना और मोतियोंकी रत्तियोंके समूहको चौथाई कम करके चौदहगुना करै ॥ ९३ ॥

चतुर्विंशतिभिर्भक्तोलब्धान्मूल्यंप्रकल्पयेत् ।
उत्तमंतुसुवर्णार्धमूनमूनंयथागुणम् ॥ ९४ ॥

फिर चौबीसका भाग दे उसमें जो लब्ध हो उससे मोलकी कल्पना करै, उत्तमका मोल आधा सुवर्ण और न्यून न्यूनका गुणके अनुसार होता है ॥ ९४ ॥

मुक्तायारक्तिवर्गस्यप्रतिरक्तौकलानव ॥
कल्पयेत्पंचभागान्हित्रिंशद्भिः प्राग्भजेच्च तान् ॥ ९५ ॥

मोतियोंकी रत्तियोंके समूहमें प्रति रत्ति ९ कला समझे उनमेंसे पचभागोंमें तिसका भाग दे ॥ ९५ ॥

लब्धंकलासुसंयोज्यकलाःषोडशभिर्भजेत् ।
मूल्यंतल्लब्धतोयोज्यंमुक्तायावायथागुणम्॥

जो लब्ध हो उसे कलाओंमें मिला दे और कलाओंमें सोलहका भाग दे उससे जो लब्धहो उसीसे मोतीका मोल जाने वा गुणक अनुसार ॥ ९६ ॥

रक्तंपीतंवर्तुलंचेन्मौक्तिकंचोत्तमंसितम् ॥
अधमंचिपिटंशर्कराभमन्यत्तुमध्यमम् ॥९७

जो मोती रक्त, पीला, सफद और गोल हो वह उत्तम और जो कंकरके समान वा चिपटा हो वह अधम, अन्य मध्यम होता है ॥ ९७ ॥

रत्नेस्वाभाविकादोषाःसंतिधातुषुकृत्रिमाः ।
अतोधातून्संपरीक्ष्यतन्मूल्यंकल्पयेद्बुधः ॥

रत्नमें दोष स्वाभाविक और धातुओंमें दोष कृत्रिम होते हैं, इससे बुद्धिमान् मनुष्य धातुओंकी परीक्षा करके उनके मोलकी कल्पना करे ॥ ९८ ॥

सुवर्णरजतंताम्रंवंगंसीसंचरंगकम् ।
लोहंचधातवःसप्तह्येषामन्येतुसंकराः ॥९९॥

सुवर्ण, चांदी, ताबा, वंग, सीसा, रांग, लोहा ये सात धातु होती हैं और बाकी तो संकर ( मेलजोल ) ॥ ९९ ॥

यथापूर्वंतुश्रेष्ठंस्यात्स्वर्णंश्रेष्ठतरंमतम् ।
वंगताम्रभवंकांस्यंपित्तलंताम्ररंगजम् ॥

य पूर्व २ की श्रेष्ठ होती हैं और इनमें सोना अत्यन्त श्रेष्ठ होता है वंग और तांबेसे कांसी तांबा और रांग मिलाकर पीतल होती है ॥ २०० ॥

मानसममपिस्वर्णंतनुस्यात्पृथुलाःपरे ।
एकच्छिद्रसमाकृष्टेसमखंडेद्वयोर्यदा ॥ १ ॥

सोना, मानके, समानभी पतला हो सकता है और धातु पृथुल(मोटी)रहती है एक छिद्रमें खींचनेसे जब दोनोंके खंड समान हो जायँ ॥ १ ॥

धातोःसूत्रंमानसमंनिर्दुष्टस्यभवेत्तदा ।
यंत्रशस्त्रास्त्ररूपंयन्महामूल्यंभवेदयः ॥ २ ॥

तब निर्दुष्ट, ( शुद्ध ) धातुका सूत मानके समानहोताहै और जिस लोहेके यंत्र शस्त्र अस्त्र बने वह भी बहुत मोलका होता है ॥ २ ॥

रजतंषोडशगुणंभवेत्स्वर्णस्यमूल्यकम् ।
ताम्रंरजतमूल्यंस्यात्प्रायोशीतिगुणंतथा ॥

सोनेका मोल चांदीसे सोलह गुना होता है और चांदीसे ,अस्सी गुणा ( भाग ) तांबेका मोल होता है ॥ ३ ॥

ताम्राधिकंसार्धगुणंवंगंवंगात्तथापरे ।
रंगसीसेद्वित्रिगुणंताम्राल्लोहंतुषड्गुणम् ॥

तांबेसे डेढगुणा अधिक वंग और तैस ही वंगसे अन्य धातु होती हैं, वंग और सीसा क्रमसे दूने तिगुने और तांबेसे छःगुना लोहा होता है ॥ ४ ॥

मूल्यमेतद्विशिष्टंतुह्युक्तप्राङ्मूल्यकल्पनम् ।
सुश्रृंगवर्णासुदुघाबहुदुग्धासुवत्सका ॥ ५॥

यह विशिष्ट ( उत्तम ) मोल कहा और मोलकी कल्पना तो पहिले कह आये और जिसके अच्छे सींग, दुहनेमे सुशील, बहुत दूध दे, बछड़ा अच्छा हो ॥ ५ ॥

तरुण्यल्पावामहतीमूल्याधिक्याहिगौर्भवेत् ।
पतिवत्साप्रस्थदुग्धातन्मूल्यंराजतंपलम्॥६॥

जवान हो, चाहै वह छोटी हो चाहे बडी, पर वह गौ अधिक मोलकी होती है, जिसका दूध वत्सने पी लिया हो और प्रस्थभर दूध दे उस गौका मोल एकपल चांदी होता है ॥ ६ ॥

अजायाश्चगवार्धस्यान्मेष्यामूल्यमजार्धकम्।
दृढस्ययुद्धशीलस्यपलंमेषस्यराजतम् ॥ ७ ॥

बकरीका मोल गौसे आधा, भेडका बकरीसे आधा और जो मीढा दृढ तथा युद्धके योग्य हो उसका मोल एक पल चांदी होता है ॥ ७ ॥

दशवाष्टौपलंमूलंराजतंतूत्तमंगवाम् ।
पलंमेष्याअवेश्चापिराजतंमूल्यमुत्तमम् ॥८॥

दश वा आठ पल चांदी गायका उत्तममूल्य होता है, मषी और भेडका मोल एकपल चांदी उत्तम होता है ॥ ८ ॥

गवांसमंसार्धगुणंमहिष्यामूल्यमुत्तमम् ।
सुश्रृंगवर्णबलिनोवोढुःशीघ्रगमस्यच ॥ ९ ॥

गौओंके समान वा डेढगुना भैंसका मोल उत्तम है, जिस बैलके सींग अच्छे हों बलवान हो बोझे ले जानेमें समर्थ हो और तेज चलता हो ॥ ९ ॥

अष्टतालवृषस्यैवमूल्यंषष्टिपलंस्मृतम् ।
महिषस्योत्तमंमूल्यंसप्तचाष्टौपलानिच १०॥

आठ ताल ( बिलस्त ) ऊंचा हो ऐसे बैलका मोल ६० साठ पल चांदी है, और भैंसका उत्तम मोल, सात वा आठ पल चांदी है ॥ १० ॥

द्वित्रिचतुःसहस्रंवामूल्यंश्रेष्ठंगजाश्वयोः ।
उष्ट्रस्यमाहिषसमंमूल्यमुत्तममीरितम्॥ ११॥

हाथी और अश्वका उत्तम मोल दो तीन वा चार सहस्र पल है और ऊंटका मोल भैंसके समान उत्तम कहा है ॥ ११ ॥

योजनानांशतंगंताचैकेनाह्नाश्वउत्तमः ।
मूल्यंतस्यसुवर्णानांश्रेष्ठंपंचशतानिहि ॥१२॥

जो घोडा सौ योजन एक दिनमें चले वह उत्तम होता है उसका उत्तम मोल पांच शत ५०० सुवर्ण होता है ॥ १२ ॥

त्रिंशद्योजनगंतावैउष्ट्रःश्रेष्ठस्तुतस्यवै ।
पलानांतुशतंमूल्यंराजतंपरिकीर्तितम् ॥१३॥

तीस योजन चलनेवाला ऊंट उत्तम होता है उसका उत्तम मोल चांदीके सौ पल कहा है ॥ १३ ॥

चतुर्माषमितंस्वर्णंनिष्कइत्यभिधीयते ।
पंचरक्तिमितोमाषोगजमौल्येप्रकीर्तितः ॥

चार मासे सोनेको निष्क कहते हैं हाथीके मोलमे पांच रत्तीका मासा कहा है ॥ १४ ॥

रत्नभूतंतुतत्तत्स्याद्यद्यदप्रतिमंभुवि ।
यथादेशंयथाकालंमूल्यंसर्वस्यकल्पयेत्१५॥

जो २ वस्तु पृथ्वीपर अप्रतिम ( नायाब ) हो वह सब रत्नरूप है और देश वा समयके अनुसार सबके मोलकी कल्पना कर ले ॥१५॥

नमूल्यंगुणहीनस्यव्यवहाराक्षमस्यच ।
नीचमध्योत्तमत्वंचसर्वस्मिन्मूल्यकल्पने ॥

जो वस्तु गुणसे हीन वा व्यवहारके अयोग्य हो उसका कुछ मोल नहीं, सब जगह मूल्यकी कल्पनामें नीच मध्यम उत्तमता है १६॥

चिंतनीयंबुधैर्लोकाद्वस्तुजातस्यसर्वदा ।
विक्रेतृक्रेतृतोराजभागःशुल्कमुदाहृतम्१७॥

बुद्धिमान् मनुष्य लोकसे वस्तुओंके मूल्यकी सदैव चिंता करै बेचनेवाले और लेनेवालेसे जो राजभाग लिया जाय उसको शुल्क कहते हैं ॥ १७ ॥

शुल्कदेशाहट्टमार्गाःकरसीमाःप्रकीर्तिताः ।
वस्तुजातस्यैकवारंशुल्कंग्राह्यंप्रयत्नतः १८॥

शुल्कके देश, हट्टक मार्ग, करकी सीमा कही है और वस्तुओंका शुल्क एकबारही ग्रहण करे ॥ १८ ॥

क्वचिन्नैवासकृच्छुल्कंराष्ट्रेग्राह्यंनृपैश्छलात् ।
द्वात्रिंशांशंहरेद्राजाविक्रेतुःक्रेतुरेववा ॥१९॥

और देशमेसे बारंबार शुल्कको राजा छलसे कभी ग्रहण न करे और राजा बेचने वाले वा लेनवालेसे ३२ बत्तीसवा भाग ग्रहण करे ॥ १९ ॥

विंशांशंवाषोडशांशंशुल्कंमूलाविरोधकम् ।
नहीनसममूल्याद्धिशुल्कंविक्रेतृताहरत्२०॥

अथवा २० बीसवा १६ वां भाग लाभमें से ग्रहण करे । मूल धनका नाश न करे और मोलसे कम वा बराबर बेचनेवालेसे न ले ॥ २० ॥

लाभंदृष्ट्वाहरेच्छुल्कंक्रेतृतश्चसदानृपः ।
बहुमध्याल्पफलितांभुवंमानमितांसदा २१॥

राजा लाभको देखकर खरीदने वालेसे शुल्क ले और अधिक मध्यम अल्पफलको पृथ्वीमे प्रमाणसे सदैव ॥ २१ ॥

ज्ञात्वापूर्वंभागमिच्छुःपश्चाद्भागंविकल्पयेत् ।
हरेच्चकर्षकाद्भागंयथानष्टोभवेन्नसः ॥२२॥

पहिले जानकर भागका अभिलाषी राजा पीछेसे भागकी कल्पना करे और किसानसे ऐसा भाग ले जिससे किसान न बिगडे ॥२२॥

मालाकारइवग्राह्योभागोनांगारकारवत् ।
बहुमध्याल्पफलतस्तारतम्यंविमृश्यच २३

राजा मालीक समान भागको ले कोयले करनेवालेके समान न ले और पहिले बहुत मध्यम अल्प फलकी न्यूनाधिकताको विचारले ॥ २३ ॥

राजभागादिव्ययतोद्विगुणंलभ्यतेयतः ।
कृषिकृत्यंतुतच्छ्रेष्ठंतन्न्यूनंदुःखदंनृणाम् ॥

जिस खतीमे राजाका भाग और खर्चसे दूना लाभ हो वह श्रेष्ठ और उससे न्यून मनुष्योंको दुःखदाई होती है ॥ २४ ॥

तडागवापिकाकूपमातृकाद्देवमातृकात् ।
देशान्नदीमातृकात्तुराजानुक्रमतःसदा॥२५॥

जिन देशोंमें तलाव, बावडी, कूप, नदी बहुत हों उनमेंसे क्रमसे सदैव ॥ २५ ॥

तृतीयांशंचतुर्थांशमर्धांशंतुहरेत्फलम् ।
षष्ठांशमूषरात्तद्वत्पाषाणादिसमाकुलात् ॥

तीसरा, चौथा आधा छटा भाग राजा ग्रहण करे जो भूमि ऊपर वा पत्थरोंसे व्याकुल ( युक्त ) हो उससे छठा भाग ग्रहण करे ॥ २६ ॥

राजभागस्तुरजतशतकर्षमितोयतः ।
कर्षकाल्लभ्यतेतस्मैविंशांशंमुत्सृजेन्नृपः ॥

जिस भूमिमें १०० कर्ष चांदीके पैदा हों उसमें किसानके २० वा भाग राजा छोड दे ॥ २७ ॥

स्वर्णादथचरजतात्तृतीयांशंचताम्रतः ।
चतुर्थांशंतुषष्ठांशंलोहाद्वंगाच्चसीसकात्२८॥

सोने और चांदीस तीसरा भाग, तांबेसे चौथा लोहा वंग सीसेसे छठा भाग ग्रहण करे ॥ २८ ॥

रत्नार्धंचैवक्षारार्धंखनिजाद्व्ययशेषतः ।
लाभाधिक्यंकर्षकादेर्यथादृष्ट्वाहरेत्फलम् ॥

रत्न और खार ( लवणादि ) इनका आधा खर्चसे बचाकर ग्रहण करे और किसानके अधिक लाभको देखकर करले ॥ २९ ॥

त्रिधावापंचधाकृत्वासप्तधादशधापिवा ।
तृणकाष्ठादिहरकाद्विंशत्यंशंहरेत्फलम् ३०॥

तीन, पांच, सात वा दश-भाग करके भूमिस कर ले तृण काष्ठ आदिके बेचने वालों से बीसवां भाग कर ले ॥ ३० ॥

अजाविगोमहिष्यश्ववृद्धितोष्टांशमाहरेत् ।
महिष्यजाविगोदुग्धात्षोडशांशंहरेन्नृपः३१

बकरी, भेड, गौ, भैंस इनकी वृद्धिसे आठवां भाग ले और इनके दूधमेंसे राजा सोलहवां भाग ले ॥ ३१ ॥

कारुशिल्पिगणात्पक्षेदैनिकंकर्मकारयेत्।
तस्यवृद्ध्यैतडागंवावापिकाकृत्रिमांनदीम् ॥
कारीगर शिल्पी इनके समूहसे पक्षमे एक दिन काम कराले और ये बहुत हों तलाव बावडी, कृत्रिम नदी ( नहर ) इनको ॥ ३२ ॥

कुर्वंत्यन्यंतद्विधंवाकर्षत्यभिनवांभुवम् ।
तद्व्ययद्विगुणंयावन्नतेभ्योभागमाहरेत् ३३
बनाते हों वा अन्य ऐसाही काम करते हों अथवा नई भूमिको खोदते हों तो उनसे तबतक कर न ले जबतक उनके खर्चसे दूना लाभ हो ॥ ३३ ॥

भूविभागंभृतिशुल्कंवृद्धिमुत्कोचकंकरम् ।
सद्यएवहरेत्सर्वंनतुकालविलम्बनैः ॥३४॥
भूमिका भाग, भृतिका शुल्क, व्याज उत्कोच ( रिसवत् ) इनके करको उसी समय ले विलम्ब न करे ॥ ३४ ॥

दद्यात्प्रतिकर्षकायभागपत्रंसचिह्नितम् ।
नियम्यग्रामभूभागमेकस्माद्धनिकाद्धरेत् ॥
औ किसानको मोहर लगाकर करका पत्र ( रसीद ) दे ग्रामकी भूमिक करको नियत कर क एक धनी ( चौधरी ) से ले ॥ ३५ ॥

गृहीत्वातत्प्रतिभुवंधनंप्राक्तत्समन्तुना ।
विभागशोगृहीत्वापिमासिमासिऋतौऋतौ॥
षोडशद्वादशदशाष्टांततोवाधिकारिणः ।
स्वांशात्षष्ठांशभागेनग्रामपान्सन्नियोजयेत्॥
और उस धनीके प्रतिभू जामिन को पहिले ग्रहण करले और जिसके पास उसकी बराबर धनहो उसे प्रतिभू न करे और महीनेवा ऋतु २ मे विभागसे ग्रहण करके १६, १२. १०, ८, अधिकारीनियतकरे अपने अंशमेसे छठे भागसे ग्रामके अधिपतिको नियुक्त करे॥ ३६ ॥ ३७ ॥

गवादिदुग्धान्नफलंकुटुंबार्थाद्धरेन्नृपः ।
उपभोगेधान्यवस्त्रक्रेतृतोनाहरेत्फलम् ३८
गौ आदिका जो दूध कुटुम्बकही लायक हो उससे और जो उपभोगके लिये अन्न-वस्त्र खरीदे उससे राजा कर न ले ॥ ३८ ॥

वार्धुषिकाच्चकौसीदाद्द्वात्रिंशांशंहरेन्नृपः ।
गृहाद्याधारभूशुल्कंकृष्टभूमिरिवाहरेत् ३९॥
व्यापारी और ब्याज लेनेवालेसे ३२ वा भाग राजा ले जिस भूमिमे घर हों उसका कर ( डयूटी ) भूमिक समान ग्रहण करे ॥ ३९ ॥

तथाचापणिकेभ्यस्तुपण्यभूशुल्कमाहरेत् ।
मार्गसंस्काररक्षार्थंमार्गगेभ्योहरेत्फलम् ॥
और हाटवालोंसे हाटकी भूमिके करको ले और मार्ग चलनेवालोंस मार्ग ( सडक ) की रक्षाके लिये कर ले ॥ ४० ॥

सर्वतःफलभुग्भूत्वादासवत्स्यात्तुरक्षणे ।
इतिकोशप्रकरणंसमासात्कथितंकिल ४१
सबसे कर लेकर दासके समान रक्षा करे यह कोशका प्रकरण संक्षेपसे कहा ॥ ४१ ॥

अथमिश्रेतृतीयंतुराष्ट्रंवक्ष्येसमासतः ।
स्थावरंजंगमंवापिराष्ट्रशब्देनगीयते ४२
अब मिश्र प्रकरणमे राष्ट्र ( देश ) को संक्षेपसे कहते है, स्थावर और जंगम भेदसे दो प्रकारका कहा है ॥ ४२ ॥

यस्याधीनंभवेद्यावत्तद्राष्ट्रंतस्यवैभवेत् ।
कुबेरताशतगुणाधिकासर्वगुणात्ततः ॥४३॥
जितना देश जिसके आधीन हो वह राज्य उसीका होता है और उससे सौगुनी अधिक सब गुणवाली कुबेरता होती है ॥ ४३ ॥

ईशताचाधिकतरासानाल्पतपसःफलम् ।
सदीव्यतिपृथिव्यांतुनान्योदेवोयतःस्मृतः ॥
ईशता ( राजहोना ) उससेभी अधिक है और वह अल्प तपका फल नहीं । वह पृथ्वीमें क्रीडा करता है इससे राजासे अन्य पृथ्वीमें देवता नहीं कहा ॥ ४४ ॥

तस्याश्रितोभवेल्लोकस्तद्वदाचरतिप्रजा ।
भुंक्तेराष्ट्रफलंसम्यगतोराष्ट्रकृतंत्वघम् ४५
जगत् उसके आश्रय होता है- प्रजा उसीके समान आचरण करती है राजा, देशके फल (पुण्य) और पापको भोगता है ॥ ४५ ॥

स्वस्वधर्मपरोलोकोयस्यराष्ट्रेप्रवर्तते।
धर्मनीतिपरोराजाचिरंकीर्तिंसचाश्नुते ४६

जिसके राज्यमें प्रजा अपने २ धर्ममें तत्पर रहे धर्म और नीतिमें तत्पर राजा चिरकाल तक कीर्तिको भोगता है ॥ ४६ ॥

भूमौयावद्यस्यकीर्तिस्तावत्स्वर्गेसतिष्ठति।
अकीर्तिरेवनरकोनान्योस्तिनरकोदिवि ॥

जिसकी कीर्ति जबतक भूमिमें टिकती है तबतक वह स्वर्गमें रहता है अकीर्ति ही नरक है दूसरा नरक परलोकमें नहीं ॥ ४७ ॥

नरदेहाद्विनात्वन्योदेहोनरकएवमः।
महत्पापफलंविद्याद्राधिव्याधिस्वरूपकम् ॥

मनुष्यके देहसे जो अन्यदेह सभी नरक है क्योंकि वह आधी और व्याधीरूप महापापका फल होता है ॥ ४८ ॥

स्वयंधर्मपरोभूत्वाधर्मेसंस्थापयेत्प्रजाः।
प्रमाणभूतंधर्मिष्ठमुपसर्पंत्यतःप्रजाः ॥४९॥

स्वयं धर्ममें तत्पर होकर प्रजाको धर्ममें टिकावै प्रामाणिक और धर्मिष्ठ राजाके समीप सब प्रजा प्राप्त होती हैं ॥ ४९ ॥

देशधर्माजातिधर्माःकुलधर्माःसनातनाः।
मुनिप्रोक्ताश्चयेधर्माःप्राचीनानूतनाश्चये ५०

देशके धर्म, जातिके धर्म और सनातन कुलके धर्म जो मुनियोंने कहे हैं तथा जो प्राचीन और नवीन धर्म ह ॥ ५० ॥

तेराष्ट्रगुप्त्यैसंधार्याज्ञात्वायत्नेनसन्नृपैः।
धर्मसंस्थापनाद्राजाश्रियंकीर्तिंप्रविंदति ५१

वे जानकर यत्नसे उत्तम राजा देशरक्षाके लिये धारण करे धर्मकी स्थापनासे राजाको लक्ष्मी और कीर्ति मिलती है ॥ ५१ ॥

चतुर्धाभेदिताजातिर्ब्रह्मणाकर्मभिःपुरा।
तत्तत्सांकर्यसांकर्यात्प्रतिलोमानुलोमतः ॥

प्रथम कर्मोंसे ब्रह्माने चार प्रकार जातिका विभाग किया उनके प्रतिलोम, अनुलोम संकर और संकरोंके संकरसे ॥ ५२ ॥

जात्यानंत्यंतुसंप्राप्तंतद्वक्तुंनैवशक्यते।
मन्यंतेजातिभेदंयेमनुष्याणांतुजन्मना ५३॥

अनंत जाती होगई जिनको कह नहीं सकते जो मनुष्योंके जन्मसे जाति भेदको मानते हैं ॥ ५३ ॥

तएवहिविजानंतिपार्थक्यंनामकर्मभिः।
जरायुजांडजाःस्वेदोद्भिज्जाजातिसुसंग्रहात्॥

वही पृथक् २ नाम कर्मसे जाति भेदको जानते हैं। जरायुज, अंडज, स्वदज, उद्भिज्ज जाति संग्रहसे होती है ॥ ५४ ॥

उत्तमोनीचसंसर्गाद्भवेन्नीचस्तुजन्मना।
नीचोभवेन्नोत्तमस्तुसंसर्गाद्वापिजन्मना ५५

जो जन्मसे उत्तम है वह नीचके संसर्गसे नीच हो जाता है और जो जन्मसे नीच है वह संसर्गसे उत्तम कभी नहीं होता ॥ ५५ ॥

कर्मणोत्तमनीचत्वंकालतस्तुभवेद्गुणैः।
विद्याकलाश्रयेणैवतन्नामाजातिरुच्यते ५६

गुण और समयसे कर्मके द्वारा उत्तम नीच होता है विद्या और कलाके आश्रयसे उसी नामकी जाति कहाती है ॥ ५६ ॥

इज्याध्ययनदानानिकर्माणितुद्विजन्मनाम्।
प्रतिग्रहोध्यापनंचयाजनंब्राह्मणेधिकम् ॥

यज्ञ करना, पढ़ना, दानदेना ये द्विजातियोंके कर्म हैं और ब्राह्मणके ये तीन कर्म अधिक है प्रतिग्रह, यज्ञकराना और पढ़ाना ॥ ५७ ॥

सद्रक्षणंदुष्टनाशःस्वांशादानंतुक्षत्रिये।
कृषिगोगुप्तिवाणिज्यमधिकंतुविशांस्मृतम् ॥

सज्जनोंकी रक्षा, दुष्टोंका नाश, अपने भागका लेना ये काम क्षत्रियके और खेती गौओंकी रक्षा व्यवहार वे वैश्योंके अधिक कहे हैं ॥ ५८ ॥

दानंसेवैवशूद्रादेर्नीचकर्मप्रकीर्तितम्।
क्रियाभेदैस्तुसर्वेषांभृतिवृत्तिरनिंदिताम् ॥

शूद्र आदिका कर्म दान और सेवा ही नीच कर्म कहा है और कामके भेदसे भृति(नौकरी) सबकी ही निंदासे रहित वृत्ति है ॥५९॥

सीरभेदैःकृषिःप्रोक्तामन्वाद्यैर्ब्राह्मणादिषु।
ब्राह्मणैःषोडशगवंचतुर्गवंन्यथापरैः ॥ ६०॥

मनु आदि ऋषियोंने ब्राह्मण आदिकोंके लिय सीर ( हल ) के भेदसे खेती कही है कि ब्राह्मण एक हलपर सोलह बैल और अन्य वर्ण चार चार बैल कम बैलोंको रक्खैं ॥ ६० ॥

द्विगवंवांत्यजैःसीरंदृष्ट्वाभूमार्दवंतथा।
ब्राह्मणेनविनान्येषांभिक्षावृत्तिर्विगर्हिता॥

अन्त्यज दो बैल रक्खे अथवा जैसी भूमि कोमल हो वैसेही बैलोंकी संख्या कम रक्खे और ब्राह्मणके विना अन्य वर्णोंको भिक्षाकी वृत्ति निंदित है ॥ ६१ ॥

तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्चविधिचोदितैः।
वेदःकृत्स्नोधिगंतव्यःसरहस्योद्विजन्मना६२

तपोंके भेदोंसे, शास्त्रोक्त विविध व्रतोंसे रहस्यों सहित सम्पूर्ण वेदोंको द्विजाति पढै ॥ ६२ ॥

योधीतविद्यःसकलःससर्वेषांगुरुर्भवेत्॥
नचजात्यानधीतोयोगुरुर्भवितुमर्हति ॥६३॥

जिसने सम्पूर्ण विद्या पढी हो वह सबका गुरु होता है जो पढा हुआ न हो वह जातिसे गुरु नहीं होता ॥ ६३ ॥

विद्याह्यनंताश्चकलाःसंख्यातुंनैवशक्यते।
विद्यामुख्याश्चद्वात्रिंशच्चतुःषष्टिकलाःस्मृताः।

विद्या और कला अनन्त हैं वे गिननेको शक्य नहीं हैं और मुख्य विद्या बत्तीस ३२ हैं और चौसठ कला मुख्य हैं ॥ ६४ ॥

यद्यत्स्याद्वाचिकंसम्यक्कर्मविद्याभिसंज्ञकम्।
शक्तोमूकोपियत्कर्तुंकलासंज्ञंतुतत्स्मृतम्॥

जो जो कर्म वाणीका विषय है उसका ही नाम विद्या है और जिसको मूक ( गूंगा ) भी करसके उसको कला कहते है ॥ ६५ ॥

उक्तंसंक्षेपतोलक्ष्मविशिष्टंपृथगुच्यते।
विद्यानांचकलानांचनामानितुपृथक्पृथक्॥

संक्षेपसे यह लक्षण कहा अब पृथक् २ विशेष लक्षण कहते हैं, विद्या और कलाओंके पृथक् २ नाम भी कहते हैं ॥ ६६ ॥

ऋग्यजुःसामचाथर्ववेदाआयुर्धनुःक्रमात्।
गांधर्वश्चैवतंत्राणिउपवेदाःप्रकीर्तिताः॥६७॥

ऋक्, यजु, साम, अथर्व ये चार वेद हैं आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद और तन्त्र ये चार उपवेद कहे हैं ॥ ६७ ॥

शिक्षाव्याकरणंकल्पोनिरुक्तंज्योतिषंतथा।
छंदःषडंगानीमानिवेदानांकीर्तितानिहि॥

व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष छन्द ये छः वेदोंके अंग कहे है ॥ ६८ ॥

मीमांसातर्कसांख्यानिवेदांतोयोगएवच।
इतिहासाःपुराणानिस्मृतयोनास्तिकंमतम्॥

मीमांसा, तर्क ( न्याय ), सांख्य, वेदान्त, योग, इतिहास, पुराण, स्मृति, नास्तिकोंका मत ॥ ६९ ॥

अर्थशास्त्रंकामशास्त्रंतथाशिल्पमलंकृतिः।
काव्यानिदेशभाषावसरोक्तिर्यावनंमतम्॥

अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, शिल्पशास्त्र, अलंकार, काव्य, देशभाषा, अवसरकी उक्ति, यवनोंका मत ॥ ७० ॥

देशादिधर्माद्वात्रिंशदेताविद्याभिसंज्ञिताः।
मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामप्रोक्तमृगादिषु॥७१॥

बत्तीस देश आदिके धर्म इनका विद्या नाम है और ऋक आदिकोंमे मन्त्र और ब्राह्मणका भी वेदनाम कहा है ॥ ७१ ॥

जपहोमार्चनंयस्यदेवताप्रीतिदंभवेत्।
उच्चारान्मन्त्रसंज्ञंतद्विनियोगिचब्राह्मणम्॥

जिसके उच्चारणसे जप होम पूजन देवताको प्रसन्न करै उसको मंत्र कहते हैं औरजिसमें विनियोग हो उसे ब्राह्मण कहते हैं ॥ ७२ ॥

ऋग्रूपायत्रयेमन्त्राःपादशोर्धर्चशोपिवा।
येषांहोत्रंसऋग्भागःसमाख्यानंचयत्रवा॥

ऋग्वेदरूप जो मंत्र है चाहे वे पाद हों चाहे आधी ऋचाके हों जिनसे होताके करनेका कर्म होता है अथवा जिसमे इतिहास हों वह ऋग्वेदका भाग है ॥ ७३ ॥

प्रश्लिष्टपठितामंत्रावृत्तगीतिविवर्जिताः।
आध्वर्यवंयत्रकर्मत्रिगुणंयत्रपाठनम् ॥ ७४॥

जो मंत्र भिन्न भिन्न पढे हैं और जिनमें वृत्तान्त और गीत न हों और जिसमें अध्वर्युका कर्म्म हो और जो तिगुना पढाजाय ७४॥

मन्त्रब्राह्मणयोरेवयजुर्वेदःसउच्यते।
उद्गीथंयस्यशस्त्रादेर्यज्ञेतत्सामसंज्ञकम्॥७५॥

वह मन्त्र और ब्राह्मणरूप यजुर्वेद कहा है, जिसमे यज्ञके बीज शस्त्र आदिका ऊँचे स्वरसे गाना है उसको सामवेद कहते हैं॥७५॥

अथर्वांगिरसोनामह्युपास्योपासनात्मकः।
इतिवेदचतुष्कंतुह्युद्दिष्टंचसमासतः ॥ ७६ ॥

जिसमे उपासना (पूजा) और उपास्य (पूजाके योग्य) वर्णन हो वह अथर्व और अंगिरा है ये संक्षपसे चारों वेद कहे ॥ ७६ ॥

विंदत्यायुर्वेत्तिसम्यगाकृत्योषधिहेतुतः।
यस्मिन्ऋग्वेदोपवेदःसचायुर्वेदसंज्ञकः॥७७॥

जिसमें आकृति और हेतुसे भली प्रकार अवस्थाका ज्ञान हो वह ऋग्वेदका उपवेद आयुर्वेद कहाता है ॥ ७७ ॥

युद्धशस्त्रास्त्रकुशलोरचनाकुशलोभवेत्।
यजुर्वेदोपवेदोऽयंधनुर्वेदस्तुयेनसः ॥ ७८ ॥

जिससे युद्ध शस्त्र अस्त्र रचना आदिमें कुशल हो वह यजुर्वेदका उपवेद धनुर्वेद होता है ॥ ७८ ॥

स्वरैरुदात्तादिधर्मैस्तंत्रीकंठोत्थितैःसदा।
सतालैर्गानविज्ञानंगांधर्वोवेदएवसः॥ ७९ ॥

स्वर और उदात्त आदि स्वरोंके धर्मोंसे जो वीणा वा कण्ठसे निकलते हैं और ताल सहित हैं इनसे जिसमे गानेका ज्ञान हो वह गांधर्व वेद है ॥ ७९ ॥

विविधोपास्यमन्त्राणांप्रयोगास्तुविभेदवः।
कथिताःसोपसंहारास्तद्धर्मेनियमैश्चषट् ॥
अथर्वणांचोपवेदस्तन्त्ररूपःसएवहि ॥

जिसमे अनेक प्रकारकी पूजाके मन्त्रोंके प्रयोग और उनकी समाप्ति धर्म नियमों सहित कही हो वे ६ छः अथर्ववेदका उपवेद तन्त्र रूप है ॥ ८० ॥

स्वरतःकालतःस्थानात्प्रयत्नानुप्रदानतः।
सवनाद्यैश्चसाशिक्षावर्णानांपाठशिक्षणात् ॥

जिसमे स्वर, काल, स्थान, प्रयत्न और अनुप्रदानसे और सवन आदिसे वर्णोंके पढने की शिक्षा हो वह शिक्षा होती है ॥ ८१ ॥

प्रयोगोयत्रयज्ञानामुक्तोब्राह्मणशेषतः।
श्रौतकल्पःसविज्ञेयःस्मार्तकल्पस्तथेतरः ॥

जिस ब्राह्मणके शेषभागसे यज्ञोंका प्रयोग (विधान) हो, यह श्रौतकल्प जानना और उससे भिन्न स्मार्त कल्प होता है ॥ ८२ ॥

व्याकृतःप्रत्ययाद्यैश्चधातुसंधिसमासतः।
शब्दापशब्दाव्याकरणएकद्विबहुलिंगतः ॥

जिसमे प्रत्यक्ष आदि धातु सन्धि समाससे शब्द और अपशब्दका व्याख्यान हो और एक दो बहुत लिङ्क भेदसे शब्दोंका वर्णन हो वह व्याकरण कहा है ॥ ८३ ॥

शब्दनिर्वचनंयत्रवाक्यार्थैकार्थसंग्रहः ॥
निरुक्तंतत्समाख्यानाद्वेदांगंश्रौतसंज्ञकम् ॥

जिसमे वाक्यार्थोंसे एक अर्थका संग्रह हो वह श्रौत नामका वेदाग कहा है ॥ ८४ ॥

नक्षत्रग्रहगमनैःकालोयेनविधीयते ॥
संहिताभिश्चहोराभिर्गणितंज्योतिषंहितत्॥

जिसमे नक्षत्रों और ग्रहोंकी गतिसे समयकी विधि हो संहिता और होरासे गणित हो वह ज्योतिष होता है ॥ ८५ ॥

म्यरस्तजभ्नगैर्लांतैःपद्यान्यत्रप्रमाणतः ॥
कल्पांतेछंदःशास्त्रंतद्वेदानांपादरूपधृक् ।

और जहां मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण, नगण, गुरु और लघुके प्रमाणसे पद्य (श्लोक) हों वह कल्परूप छन्दःशास्त्र वदोंका अग है ॥ ८६ ॥

यत्राऽव्यवस्थिताचार्थकल्पनात्रिविधभेदतः ॥
मीमांसावेदवाक्यानांसैवन्यायश्चकीर्तितः ॥

जहा अर्थकी कल्पना विधिके भेदसे निश्चित हो वह मीमांसा और वेद वाक्योंका न्याय कहा है ॥ ८७ ॥

भावाभावपदार्थानांप्रत्यक्षादिप्रमाणतः॥८८
सविवेकोयत्रतर्कःकणादादिमतंचयत्।

भाव और अभावरूप पदार्थोका प्रत्यक्ष आदि प्रमाणस विवेक सहित वणन हो वह कणाद आदिका मत तर्कशास्त्र है ॥ ८८ ॥

पुरुषोऽष्टौप्रकृतयोविकाराःषोडशेतिच॥८९॥
तत्त्वादिसंख्यावैशिष्ट्यात्सांख्यमित्यभिधीयते।

जिसमें पुरुष (ईश्वर) आठ प्रकृति और सोलह विकार और तत्व आदिकोंकी संख्या युक्त होनेसे वह सांख्य कहाता है ॥ ८९ ॥

ब्रह्मैकमद्वितीयंस्यान्नानानेहास्तिकिंचन॥
मायिकंसर्वमज्ञानाद्भातिवेदांतिनांमतम्।

ब्रह्म ही एक अद्वितीय है और नाना (माया) कुछ भी नहीं है सम्पूर्ण अज्ञानसे मायारूपही भासता है यह वदांतियोंका मत है ॥ ९० ॥

चित्तवृत्तिनिरोधस्तुप्राणसंयमनादिभिः ९१
तद्योगशास्त्रंविज्ञेयंयस्मिन्ध्यानसमाधितः।

जिसमें प्राणोंके संयम आदिसे चित्तकी वृत्तिका निरोध वा ध्यान समाधिस चित्तवृत्तिका अवरोध हो वह योगशास्त्र कहाता ह ॥ ९१ ॥

प्राग्वृत्तकथनंचैकराजकृत्यमिषादितः ९२॥
यस्मिन्सइतिहासः स्यात्पुरावृत्तः सएवहि॥

राजाक कर्म आदिके मिषसे जिसमे प्राचीन वृत्तांतका कथन हो ॥ ९२ ॥ वह इतिहास और पुरा वृत्त कहा है ॥

सर्गश्चप्रतिसर्गश्चवंशोमन्वंतराणिच॥ ९३॥
वंशानुचरितंयस्मिन्पुराणतद्विकीर्तितम्।

जिसमे सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश और मन्वंतर ॥ ९३ ॥ और वंशोंके चरित्रोंका वर्णन हो पुराण कहा है ॥

वर्णादिधर्मस्मरणंयत्रवेदाविरोधकम्॥९४॥
कीर्तनंचार्थशास्त्राणांस्मृतिःसाचप्रकीर्तिता।

और जिसमे वेदके अनुकूल वर्ण आदिकोंके धर्मका स्मरण हो ॥ ९४ ॥ और अर्थशास्त्रका जिसमें कीर्तन हो वह स्मृति कही है ॥

युक्तिर्बलीयसीयत्रसर्वंस्वाभाविकंमतम्॥
कस्याऽपिनेश्वरःकर्तानवेदोनास्तिकंमतम्।

और जिसमे युक्ति बलवान् हो और अन्य सब वर्णन स्वाभाविक हो ॥ ९५ ॥ ईश्वर किसीका भी कर्त्ता नहीं और न वेद है, वह नास्तिक मत है ॥

श्रुतिस्मृत्यविरोधेनराजवृत्तंहिशासनम् ९६॥
सुयुक्त्यार्थार्जनंयत्रह्यर्थशास्त्रंतदुच्यते।

श्रुति स्मृतिके अनुकूल जिसमें राजाके वृतान्तकी शिक्षा हो ॥ ९६ ॥ और युक्तिसे धनके संचयका वर्णन हो वह अर्थशास्त्र कहाता है।

शशादिभेदतः पुंसामनुकूलादिभेदतः॥
पद्मिन्यादिप्रभेदेनस्त्रीणांस्वीयादिभेदतः ९७
तत्कामशास्त्रंसत्त्वादिलक्ष्मयत्रास्तिचोभयोः

जिसमें शश आदिके भेद और अनुकूल आदि भेदसे पुरुषोंके ॥ ९७ ॥ और पद्मिनी आदिभेद और स्वीय आदि भेदसे स्त्रियोंके लक्षण और सत्व आदि दोनोंके लक्षणोंका वर्णन हो वह कामशास्त्र कहाहै ॥ ९८ ॥

प्रासादप्रतिमारामगृहवाप्यादिसत्कृतिः।
कथितायत्रतच्छिल्पशास्त्रमुक्तंमहर्षिभिः ९९

जिसमे प्रासाद, (मंदिर) प्रतिमा, आराम, (बगीचा) घर और बावडी आदिका बनाना कहाहो वह बडे २ ऋषियोंने शिल्पशास्त्र कहा है ॥ ९९ ॥

समन्यूनाधिकत्वेनसारूप्यादिप्रभेदतः।
अन्योन्यमुणभूषादिवर्ण्यतेलंकृतिश्चसा ३००

सम, न्यून, अधिक आदिसे और सारूप्य आदिके भेदसे जहां परस्परके गुण और भूषा (शोभा) आदिका वर्णन हो वह अलंकारशास्त्र कहाता है ॥ ३०० ॥

सरसालंकृतादुष्टशब्दार्थंकाव्यमेवतत् ।
विलक्षणचमत्कारबीजंपद्यादिभेदतः ॥ १ ॥

जिसमे रसों सहित अलंकार और शब्दोंका शुद्ध अर्थ हो और पद्य (श्लोक) आदिके भेदसे विलक्षण चमत्कारका बीज हो वह काव्य कहाता है ॥ १ ॥

लोकसंकेततोर्थानांसुग्रहावाक्तुदैशिकी ।
विनाकोशिकशास्त्रीयसंकेतैः कार्यसाधिका॥

जिसमे जगत्की रीतिसे देशकी वाणीका ज्ञान भली प्रकार हो और कोश और शास्त्रके संकेतोंके विना कार्यकी सिद्धि जिससे हो ॥२॥

यथाकालोचितावाग्यावसरोक्तिश्चसास्मृता।
ईश्वरः कारणंयत्रादृश्योस्तिजगतःसदा॥३॥

समयके अनुसार जो वाणी उसे अवसरोक्ति कहते है, जिसमें जगत्का कारण ईश्वर सदैव अदृश्य माना है ॥ ३ ॥

श्रुतिस्मृतीविनाधर्माधर्मौस्तस्तच्चयावनम्।
श्रुत्यादिभिन्नधर्मोस्तियत्रतद्यावनंमतम् ४॥

श्रुति और स्मृतिके विना धर्म अधर्मका वर्णन हो वह यावन (यवनोंका शास्त्र फारसी) माना है और श्रुति आदिसे भिन्न धर्म जिसमे हो वह यवनोंका मत है ॥ ४ ॥

कल्पितश्रुतिमूलोवामूलेलोकैर्धृतःसदा ।
देशादिधर्मः सज्ञेयोदेशेदेशेकुलेकुले ॥ ५ ॥

कल्पित हो वा श्रुतिके अनुसार हो और जिसको लोकोंने मूल ( सत्य ) मान रक्खा हो यह देश आदिका धर्म कहा और देश २ और कुल २ मे ॥ ५ ॥

पृथक्पृथक्तुविद्यानांलक्षणंसंप्रकाशितम् ।
कलानांनपृथङ्नामलक्ष्मचास्तीहकेवलम् ॥

भिन्न भिन्न होता है यह विद्याओंका लक्षण प्रकाश किया, कलाओंका पृथक् २ नाम नहीं है केवल लक्षण है ॥ ६ ॥

पृथक्पृथक्क्रियाभिर्हिकलाभेदस्तुजायते ।
यांयांकलांसमाश्रित्यतन्नाम्नाजातिरुच्यते ॥

भिन्न भिन्न कर्मोंसे क्रियाका भेद होता है और जिस जिस कलाका आश्रय हो उसी २ नामसे जाति कहाती है ॥ ७ ॥

हावभावादिसंयुक्तंनर्तनंतुकलास्मृता ।
अनेकवाद्यविकृतौज्ञानंतद्वादनेकला ॥ ८ ॥

हाव भाव आदि सहित जो नृत्य उसे कला कहते है और अनेक प्रकारके बाजोंके विकारका ज्ञान हो वहां उसके बजानेमें कला होती है ॥ ८ ॥

अनेकरूपाविर्भावकृतिज्ञानंकलास्मृता ।
वस्त्रालंकारसंधानंस्त्रीपुंसोश्चकलास्मृता ॥९॥

अनेक रूपोंके आविर्भाव ( प्रकटता ) से जिसमे कार्योंका ज्ञान हो वह कला कही है स्त्री और पुरुषके वस्त्र और भूषणोंके सन्धान ( धारण ) को भी कला कहते हैं ॥ ९ ॥

शय्यास्तरणसंयोगेपुष्पादिग्रथनंकला ।
द्यूताद्यनेकक्रीडाभीरंजनंतुकलास्मृता १०॥

शय्या और बिछौनेपर पुष्प आदिके गूँथनेको कला कहते हैं और द्यूत आदि अनेक क्रीडासे जो रंजन उसे कला कहते हैं ॥ १० ॥

अनेकाशनसंधानैरतेर्ज्ञानंकलास्मृता ।
कलासप्तकमेतद्धिगांधर्वेसमुदाहृतम् ॥११॥

अनेक आसनोंसे रति ( मैथुन ) के सन्धानके ज्ञानको कला कहते हैं, ये सात कला गांधर्व वेदमें कही है ॥ ११ ॥

मकरंदासवादीनांमद्यादीनांकृतिः कला ।
शल्यमूढाहृतौज्ञानंशिराव्रणव्यधेकला ।१२॥

मकरन्द और आसव आदि मद्योंके आकारको कला कहते हैं, छिपे हुए शल्य ( घाव ) के निकालनेके ज्ञानको और नसोंके बांधनेको कला कहते हैं ॥ १२ ॥

हीनाधिरससंयोगान्नादिसंपाचनंकला ।
वृक्षादिप्रसवारोपपालनादिकृतिः कला १३॥

हीन और अधिक रसके संयोगसे अन्न आदिके पचानेको कला कहते हैं और वृक्ष आदि के कलम लगाने और पालनेको कला कहते हैं ॥ १३ ॥

पाषाणादिद्रुतिर्धातोस्तद्भस्मकरणेकला।
यावदिक्षुविकाराणांकृतिज्ञानंकलास्मृता॥
पत्थर आदि धातुओंको बनाना और उनकी भस्म करनेकी कला और सम्पूर्ण इक्षुओंके गुड आदि विकारोंको जानना कला कही है॥ १४॥

धात्वौषधीनांसंयोगक्रियाज्ञानंकलास्मृता।
धातुसांकर्यपार्थक्यकरणंतुकलास्मृता १५
धातु औषधि इनके संयोगकी क्रियाका ज्ञान कला है और मिलीहुई धातुओंका पृथक् करना कला कही है॥ १५॥

संयोगापूर्वविज्ञानंधात्वादीनांकलास्मृता।
क्षारनिष्कासनज्ञानंकलासंज्ञंतुतत्स्मृतम् १६
धातु आदिके अपूर्व संयोगके ज्ञानको कला और क्षार आदिके निकालनेके ज्ञानको कला कहते हैं॥ १६॥

कलादशकमेतद्धिह्यायुर्वेदागमेषुच।
शस्त्रसंधानविक्षेपपदादिन्यासतःकला १७॥
ये दश कला आयुर्वेदके आगमोंमें होती है, और शस्त्रको लगाना और चरण आदिके न्यास(रखनेसे) फेकनेको कला कहते है॥ १७॥

संध्याघाताकृष्टिभेदैर्मल्लयुद्धंकलास्मृता।
कलाभिर्लक्षितेदेशेयन्त्राद्यस्त्रनिपातनम् १८
सन्धि (मेल) आघात (पटकना) और आकृति (खींचने) के भेदसे मल्लयुद्धको और कलाओंसे जाने हुए देशमें अस्त्रके निपातन (गेरने) को कला कहते हैं॥ १८॥

वाद्यसंकेततोव्यूहरचनादिकलास्मृता।
गजाश्वरथगत्यादियुद्धसंयोजनंकला १९॥
बाजेके संकेतसे व्यूह (सेना) की रचना को कला कहते हैं और गज, अश्व, रथ आदिकी गतिके द्वारा युद्धके मेलको कला कहते हैं॥ १९॥

कलापञ्चकमेतद्धिधनुर्वेदागमेस्थितम्।
विविधासनमुद्राभिर्देवतातोषणंकला॥२०॥
ये पांच कला धनुर्वेदके आगम(ग्रन्थों)में स्थित हैं और अनेक प्रकारके आसन और मुद्राओंसे देवताकी प्रसन्नताको कला कहते हैं॥ २०॥

सारथ्यंचगजाश्वादेर्गतिशिक्षाकलास्मृता।
मृत्तिकाकाष्ठपाषाणधातुभांडादिसत्क्रिया॥
गज, अश्व आदिकी गति (चलने) की शिक्षा और सारथीके कामको कला कहते हैं मट्टी, काष्ठ, पत्थर, धातु इनके अच्छे २ पात्र बनानेको कला कहते है॥ २१॥

पृथक्कलाचतुष्कंतुचित्राद्यालेखनंकला।
तडागवापीप्रासादसमभूमिक्रियाकला २२
ये चार कला पृथक् है चित्र आदिके लिखनेको कला कहते हैं और तलाव बावडी प्रासाद इनकी समभूमिका जो करता उसको भी कला कहते हैं॥ २२॥

घट्याद्यनेकयंत्राणांवाद्यानांतुकृतिःकला।
हीनमध्यादिसंयोगवर्णाद्यैरञ्जनंकला २३॥
घटी आदिके अनेक यन्त्र और बाजोंके बनानेको कला कहते हैं और अल्प मध्य आदि वर्णों (रंगों) से रंगनेको कला कहते हैं॥ २३॥

जलवाय्वग्निसंयोगनिरोधैश्चक्रियाकला।
नौकारथादियानानांकृतिज्ञानंकलास्मृता॥
जल, वायु, अग्नि इनके संयोग और निरोध को कला कहते है और नाव, रथ आदि यानोंको बनानेकी रीतिको कला कहते हैं॥ २४॥

सूत्रादिरज्जुकरणंविज्ञानंतुकलास्मृता।
अनेकतंतुसंयोगैःपटबंधःकलास्मृता २५॥
सूत आदिकी रज्जु करनेका जो ज्ञान उसे भी कला कहते हैं अनेक तन्तुओंके संयोगसे जो पट (कपडा) का बुनना उसको कला कहते हैं॥ २५॥

वेधादिसदसज्ज्ञानंरत्नानांचकलास्मृता।
स्वर्णादीनांतुयाथात्म्यविज्ञानंचकलास्मृता॥
रत्नोंके बींधनेमें सत् असत्का जो ज्ञान वहभी कला और सोने आदि धातुओंके यथार्थ स्वरूपका जो विज्ञान उसको कला कहते हैं॥ २६॥

कृत्रिमस्वर्णरत्नादिक्रियाज्ञानंकलास्मृता ।
स्वर्णाद्यलंकारकृतिःकाललेपादिसत्कृतिः ॥

कृत्रिम ( नकली ) सुवर्ण रत्न आदिकी क्रियाका जो ज्ञान उसको कला और सुवर्ण आदिके भूषणोंको बनाने और लेप आदिके भली प्रकार करनेको कला कहते हैं ॥ २७ ॥

मार्दवादिक्रियाज्ञानंचर्मणांतुकलास्मृता ।
पशुचर्मांगनिर्हारक्रियाज्ञानंकलास्मृता २८

चर्म आदिकी कोमलताके ज्ञानको कला कहते हैं और पशुके चर्म और अंगके निर्हार ( स्वच्छता ) करनेके ज्ञानको कला कहते हैं ॥ २८ ॥

दुग्धदोहादिविज्ञानेघृतांतंतुकलास्मृता ।
सीवनंकंचुकादीनांविज्ञानंहिकलात्मकम् ॥

दूधके दुहने और घीके निकासने आदिके ज्ञानको कला कहते है और कंचुक आदिके सीनेका जो अच्छा ज्ञान उसको भी कला कहते है ॥ २९ ॥

बाह्वादिभिश्चतरणंकलासंज्ञंजलेस्मृतम् ।
मार्जनंगृहभांडादेर्विज्ञानंतुकलास्मृता ३०॥

जलमें भुजा आदिसे तरना उसका भी कला और घरके पात्र आदिके माजनेका जो ज्ञान उसको भी कला कहते है ॥ ३० ॥

वस्त्रसंमार्जनंचैवक्षुरकर्मकलेह्युभे ।
तिलमांसादिस्नेहानांकलानिष्कासनेकृतिः॥

वस्त्रोंका धोना और ( क्षुरकर्म केशछेदन ) ये दोनोंभी कला और तिल मांस आदिके स्नेह ( तेल ) आदिका जो ज्ञान उसको भी कला कहते हैं ॥ ३१ ॥

सीराद्याकर्षणज्ञानंवृक्षाद्यारोहणंकला ।
मनोनुकूलसेवायाःकृतिज्ञानंकलास्मृता ॥

हल चलानेका ज्ञान और वृक्षपर चढना इनको कला और स्वामीके मनके अनुकूल सेवाका जो ज्ञान उसको कला कहते हैं ॥३२॥

वेणुतृणादिपात्राणांकृतिज्ञानंकलास्मृता ।
काचपात्रादिकरणविज्ञानंतुकलास्मृता ३३

बांस और तृण आदिके पात्रोंका जो ज्ञान उसको कला और कांचके पात्र करनेको कला कहते हैं ॥ ३३ ॥

संसेचनंसंहरणंजलानांतुकलास्मृता ।
लोहाभिसारशस्त्रास्त्रकृतिज्ञानंकलास्मृता ॥

जलोंके सींचने और निकासनेके ज्ञानको कला कहते हैं, लोहा और अभिसारके शस्त्र अस्त्रके बनानेका जो ज्ञान उसको कला कहते हैं ॥ ३४ ॥

गजाश्ववृषभोष्ट्राणांपल्याणादिक्रियाकला ।
शिशोःसंरक्षणेज्ञानंधारणेक्रीडनेकले ॥३५॥

हाथी, अश्व, बैल, ऊंट इनके पल्याण आदिके करने जो ज्ञान वह कला और बालककी रक्षाके ज्ञानमे बालक धारण और क्रीडा ये दोनों कला हैं ॥ ३५ ॥

सुयुक्तताडनज्ञानमपराधिजनेकला ।
नानादेशीयवर्णानांसुसम्यग्लेखनेकला ॥

अपराधीकी ताडनाके ज्ञानको कला और नाना देशके अक्षरों को अच्छी तरह लिखनेका जो ज्ञा., उसको कला कहते हैं ॥ ३६ ॥

तांबूलरक्षादिकृतिविज्ञानंतुकलास्मृता ।
आदानमाशुकारित्वंप्रतिदानंचिरक्रियाः ॥

पानोंकी रक्षा करनेकी जो विधि उसकोभी भी कला कहते हैं, सीखना और शीघ्र करना, प्रतिदान (सिखाना) और बिलम्बसे करना ३७

कलासुद्वौगुणौज्ञेयौद्वेकलेपरिकीर्तिते ।
चतुःषष्टिकलाह्येताःसंक्षेपणनिदर्शिताः३८॥
यां यांकलांसमाश्रित्यतांतांकुर्यात्सएवहि ।

ये पूर्वोक्त जो कलाओंमें दो गुण हैं ये भी दो कला कही हैं, ये पूर्वोक्त चौसठ कला संक्षेपसे दिखाईं ॥ ३८ ॥ जो जिस २ कलाका आश्रय ले उस २ कोही वह करै ।

ब्रह्मचारीगृहस्थश्चवानप्रस्थोयतिःक्रमात् ॥
चत्वारआश्रमाश्चैतेब्राह्मणस्यसदैवहि ।
अन्येषामंत्यहीनाश्चक्षत्रविट्शूद्रकर्मणाम् ॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और यति

( संन्यासी ) क्रमसे ॥ ३९ ॥ ये चार आश्रम ब्राह्मणके सदैव कहे हैं और संन्यास को छोडकर क्षत्री वैश्य शूद्रोंके तीन आश्रम होते हैं ॥ ४० ॥

विद्यार्थेब्रह्मचारीस्यात्सर्वेषांपालनेगृही ।
वानप्रस्थःसंदमनेसंन्यासीमोक्षसाधने ४१॥

विद्याके लिये ब्रह्मचर्य और सबकी पालनाके लिये गृहस्थ और इंद्रियोंके दमन करनेके लिये वानप्रस्थ और मोक्षकी सिद्धिके लिये संन्यास आश्रम है ॥ ४१ ॥

वर्तयंत्यन्यथादंडयायावर्णाश्रमजातयः ।
जपस्तपस्तीर्थसेवाप्रव्रज्यामंत्रसाधनम् ॥४२॥

जो २ वर्ण और आश्रमकी जाति जप, तप, तीर्थसेवा, संन्यास, मंत्रकी सिद्धि अन्यथा बर्ताव करती है वे दंड देने योग्य हैं ॥ ४२ ॥

यदिराज्ञोपेक्षितानिदण्डतोशिक्षितानिच ।
कुलान्यकुलतांयांतिह्यकुलानिकुलीनताम् ॥

यदि राजा दंड और शिक्षा न दे तो कुलभी अकुल और अकुलही कुलीन होजाते हैं ॥ ४३ ॥

देवपूजांनैवकुर्यात्स्त्रीशूद्रस्तुपतिंविना ।
नविद्यतेपृथक्स्त्रीणांत्रिवर्गविधिसाधनम् ४४

देवताकी पूजा स्त्री और शूद्र अपने पतिकी आज्ञा विना न करैं। पतिसे पृथक् स्त्रियोंको धर्म अर्थ काम संबधी कोई विधि नहीं है ॥ ४४ ॥

पत्युःपूर्वंसमुत्थायदेहशुद्धिंविधायच ।
उत्थाप्यशयनीयानिकृत्वावेश्मविशोधनम् ॥

स्त्री पतिसे पहिले उठकर देहकी शुद्धि करके शय्याके वस्त्रोंको उठावे और घरको शुद्ध करै ( बुहारै ) ॥ ४५ ॥

मार्जनैर्लेपनैःप्राप्यसानलंयज्ञसाङ्गणम् ।
शोधयेद्यज्ञपात्राणिस्निग्धान्युष्णेनवारिणा ॥

मार्जन तथा लीपनेसे अग्निशाला और आंगनको शुद्ध करै और चिकने यज्ञके पात्रोंको उष्ण जलमें धोवे ॥ ४६ ॥

प्रोक्षणीयानितान्येवयथास्थानंप्रकल्पयेत् ।
शोधयित्वातुपात्राणिपूरयित्वातुधारयेत् ॥

और उनको धोकर जहां के तहाँ रख दे और पात्रोंको शुद्ध करके जल भरकर रखदे ॥ ४७ ॥

महानसस्थपात्राणिबहिःप्रक्षाल्यसर्वशः ।
मृद्भिस्तुशोधयेच्चुल्लींतत्राग्निंसेंधनंन्यसेत् ॥

महानस ( रसोई ) के सब पात्रोंको बाहर धोवे और चुल्हीको लीपकर अग्नि और इंधन उसमें रखदे ॥ ४८ ॥

स्मृत्वानियोगपात्राणिरसान्नद्रविणानिच ।
कृतपूर्वाह्णकार्येयंश्वशुरावभिवादयेत् ॥ ४९

जोडके पात्रोंका और रस अन्न द्रव्य इनका स्मरण और प्रातःकालके कामको करके सास और श्वशुरको नमस्कार करै ॥ ४९ ॥

ताभ्यांभर्त्रापितृभ्यांवाभ्रातृमातुलबांधवैः ।
वस्त्रालंकाररत्नानिप्रदत्तान्येवधारयेत् ॥५०॥

सास ससुर माता पिता भाई मातुल बांधव इन्होंने जो वस्त्र वा भूषण दिये हों उनको ही धारण करै ॥ ५० ॥

मनोवाक्कर्मभिःशुद्धापतिदेशानुवर्तिनी ।
छायेवानुगतास्वच्छासखीवहितकर्मसु ॥५१

मन वाणी कर्मसे शुद्ध और पतिकी आज्ञाकारिणी छायाके समान अनुकूल सखीके समान हित कारिणी रहै ॥ ५१ ॥

दासीवशिष्टकार्येषुभार्याभर्तुःसदाभवेत् ।
ततोऽन्नसाधनंकृत्वापतयेविनिवेद्यसा ॥५२

स्त्री इष्ट कामोंमे अपने भर्ताकी दासीके समान ही सदा रहै फिर अन्नको सिद्ध करके और पतिको निवेदन करके ॥ ५२ ॥

वैश्वदेवोद्धृतैरन्नैर्भोजनीयांश्चभोजयेत् ।
पतिंचतदनुज्ञाताशिष्टमन्नाद्यमात्मना ॥५३॥
भुक्त्वानयेदहःशेषंसदाऽऽयव्ययचिंतया ॥

वैश्वदेवसे बचे हुए अन्नोंसे कुटुंबके मनुष्योंको जिमावे, पतिको जिमाकर उसकी

आज्ञासे शेष अन्नको खा भोजन करके शेष दिनको आय और व्यय ( खर्च ) की चितामें ही बितावे ॥ ५३ ॥

पुनःसायंपुनःप्रातर्गृहशुद्धिंविधायच ।
कृतान्नसाधनासाध्वीसभृत्यंभोजयेत्पतिम् ॥

फिर सायंकाल फिर प्रातः काल घरकी शुद्धि करके और भोजन बनाकर भृत्योंसमेत पतिको जिमावे ॥ ५४ ॥

नातितृप्तास्वयंभुक्त्वागृहनीतिंविधायच ।
आस्तृत्यसाधुशयनंततःपरिचरेत्पतिम् ५५।

आप अधिक न खाकर और घरकी नीतिको करके और भली प्रकार शय्याको बिछा कर पतिकी सेवा करे ॥ ५५ ॥

सुप्तेपत्यौतदध्यास्यस्वयंतद्गतमानसा ।
अनग्नाचाप्रमत्ताचनिष्कामाविजितेंद्रिया ॥

जब पति सोजाय तब आपभी उनके समीप उनमें ही मन लगाकर सो जाय नगी न सोवे मतवाली न रहै कामदेवको त्यागै इद्रियोंको जीतै ॥ ५६ ॥

नोच्चैर्वदेन्नपरुषंनबह्वारुचिमप्रियम् ।
नकेनचिच्चविवदेदप्रलापविवादिनी ॥ ५७ ॥

पतिके संग ऊंचे स्वरसे कडवा चिल्लाकर कुप्यारा वचन न बोले किसीके संग विवाद लडाई न करै और वृथा न बके ॥ ५७ ॥

नचास्यव्ययशीलास्यान्नधर्म्मार्थविरोधिनी।
प्रमादोन्मादरोषेर्ष्यावचनान्यतिनिंद्यताम् ॥

पतिके धनमेंसे बहुत खर्च न करै और धर्मको वा धनको न बिगाडै और प्रमाद, उन्माद, रूसना, ईर्ष्या इनको न कहै निंदा न करै ॥ ५८ ॥

पैशुन्यहिंसाविषयमोहाहंकारदर्पताम् ।
नास्तिक्यसाहसस्तेयदम्भान्साध्वी विवर्जयेत् ॥ ५९ ॥

चुगली, हिंसा, मोह' अहंकार, अभिमान, नास्तिकता, साहस अविचारसे करना, चोरी दभ इन सबको साध्वी स्त्री त्याग दे ॥ ५९ ॥

एवंपरिचरन्तीसापतिंपरमदैवतम् ।
यशस्यमिहयात्येवपरत्रैषासलोकताम् ॥६०

इस प्रकार पर देवतारूप अपने पतिकी जो सेवा करती है वह इसलोकमें यश और मर कर पतिलोकमे जाती है ॥ ६० ॥

योषितोनित्यकर्मोक्तंनैमित्तिकमथोच्यते ।
रजसोदर्शनादेषासर्वमेवपरित्यजेत् ॥ ६१ ॥

यह स्त्रीका नित्य कर्म कहा ! अब नैमित्तिक कर्म कहते हैं, रजके दर्शनसे स्त्री सबको त्याग दे ॥ ६१ ॥

सर्वैरलक्षिताशीघ्रंलज्जितांतर्गृहेवसेत् ।
एकांबराकृशादीनास्नानालंकारवर्जिता ॥
स्वपेद्भूमावप्रमत्ताक्षपेदेवमहस्त्रयम् ॥ ६२ ॥

ऐसे भीतरके घरमे बैठे जहा कोई न देखे एक वस्त्र धारै स्नान तथ भूषणोंको त्याग दे भूमिमे सोवे, प्रमाद न करै ऐसे जब तीन दिन बीतजाय ॥ ६२ ॥

स्नायीतसात्रिरात्रांतेसचैलाभ्युदितेरवौ ।
विलोक्यभर्तृवदनंशुद्धाभवतिधर्मतः ॥ ६३॥

चौथे दिन सूर्योदय होने पर स्नानकरै और पतिके मुखको देखकर शुद्ध होती है ॥ ६३ ॥

कृतशौचापुनःकर्मपूर्ववच्चसमाचरेत् ।
द्विजस्त्रीणामयंधर्मःप्रायोऽन्यासामपीष्यते ॥

इसप्रकार शुद्ध होकर स्त्री पूर्ववत् कर्म आचरै यह धर्म द्विजाति स्त्रियोंका है और प्रायः अन्योंका भी है ॥ ६४ ॥

कृषिपण्यादिकृत्येषुभवेयुस्ताःप्रसाधिकाः।
संगीतैर्मधुराऽऽलापैःस्वायत्तस्तुपतिर्यथा ॥

और वे जाति खेती व्यापारके कृत्योंमें चतुर होती हैं, उत्तम गाना, मीठा वचन इनसे जिस प्रकार अपना पति अपने आधीन रहै ॥ ६५ ॥

भवेत्तथाऽऽचरेयुर्वैमायाभिःकार्यकेलिभिः।
नास्तिभर्तृसमोनाथोनास्तिभर्तृसमंसुखम् ॥

तिस प्रकार ही माया और कार्योंकी केलिसे स्त्री आचरण करै क्योंकि पतिके समान नाथ नहीं और पतिके समान सुख नहीं॥६६॥

विसृज्यधनसर्वस्वंभर्तावैशरणंस्त्रियः ॥
मितंददातिहिपितामितंभ्रातामितंसुतः॥६७॥
संपूर्ण धन और सर्वस्वको छोड़कर स्त्रीका शरण भर्ता ही है, पिता, भाई, पुत्र य सब मित (थोडासा) ही देते हैं ॥ ६७ ॥

अमितस्यप्रदातारंभर्तारंकानपूजयेत् ।
शूद्रोवर्णचतुर्थोपिवर्णत्वाद्धर्ममर्हति ॥ ६८॥
अमित (अनतुले) के देनेवाले भर्ताको कौन स्त्री नःपूजेगी चौथा वर्ण शूद्र भी वर्ण होनेसे धर्मके योग्य है ॥ ६८ ॥

वेदमंत्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना ।
पुराणाद्युक्तमंत्रैश्चनमोंतैःकर्मकेवलम् ॥६९॥
वेदके मंत्र, स्वधा, स्वाहा, वषट्कार आदिके विना केवल पुराण आदिके नमोंत मंत्रोंसेही शूद्रका कर्म होता है ॥ ६९ ॥

विप्रवद्विप्रविन्नासुक्षत्रविन्नासुक्षत्रवत् ॥
प्रजाताःकर्मकुर्युर्वैवैश्यविन्नासुवैश्यवत्७०
ब्राह्मणने विवाहीमें पैदा हुए ब्राह्मणके समान, क्षत्रियने विवाहीमें पैदा हुए क्षत्रियके समान,और वैश्यकेही विवाहीमें पैदाहुए वैश्यकेही समान कर्मोंको करें अर्थात् जिस वर्णकी स्त्री हो उस वर्णके कर्म न करें ॥ ७० ॥

वैश्यासुक्षत्रविप्राभ्यांजातःशूद्रासुशूद्रवत ।
अधमादुत्तमायांतुजातःशूद्राधमःस्मृतः ॥
क्षत्रिय और ब्राह्मणसे वैश्या वा शूद्रामें पैदा हुए माताके समान कर्मोंको करें और अधम वर्णसे उत्तमवर्णकी स्त्रीमें पैदा हुआ तो शूद्रसे भी अधम कहा है ॥ ७१ ॥

सशूद्रादनुसत्कुर्यान्नाममंत्रेणसर्वदा ।
ससंकरचतुर्वर्णाएकत्रैकत्रयावनाः ॥७२॥
वह शूद्रके अनुसारही नाममंत्रसे कर्मको सदैव करे, संकरजातियों सहित चारों वर्ण एक २ जगह यवन होते हैं ॥ ७२ ॥

वेदभिन्नप्रमाणास्तेप्रत्यगुत्तरवासिनः ।
तदाचार्यैश्चतच्छास्त्रंनिर्मितंतद्धितार्थकम् ॥
उनके मतमें वेदप्रमाण नहीं हैं वे पश्चिम और उत्तरमें वसते हैं, उनकेही आचार्योंने उनके हितके लिये उनका शास्त्र रचा है ॥७३॥

व्यवहाराययानीतिरुभयोरविवादिनी ।
कदाचिद्बीजमाहात्म्यक्षेत्रमाहात्म्यतः क्वचित् ॥ ७४ ॥
जो नीति व्यवहारके लिये विवाद वाली न हो वह नीति है कदाचित् बीजके माहात्म्यसे और कदाचित् क्षेत्र (स्त्री) के माहात्म्यसे ॥ ७४ ॥

नीचोत्तमत्वंभवतिश्रेष्ठत्वंक्षेत्रबीजतः ।
विश्वामित्रश्चवासिष्ठोमातंगोनारदादयः७५॥
नीचता और उत्तमता होती है क्षेत्र वा बीजसे श्रेष्ठता होती है जैसे विश्वामित्र वसिष्ठ मातंग और नारद आदि ॥ ७५ ॥

स्वस्वजात्युक्तधर्मोयःपूर्वैराचरितःसदा ।
तमाचरेच्चसाजातिर्दंड्यास्यादन्यथानृपैः ॥
अपनी जातिके-लिये कहा हुआ जो २ धर्म बडोंने सदासे किया हो वह जाति उसको ही करे अन्यथा करे तो राजाने दंड देने योग्य है ॥ ७६ ॥

जातिवर्णाश्रमान्सर्वान्पृथक्चिह्नैःसुलक्षयेत् ।
यंत्राणिधातुकाराणांसंरक्षेन्निशिसर्वदा ७७॥
जाति वर्ण आश्रम इन सबको पृथक् चिह्नोंसे भलीप्रकार चिह्नवाले करे और धातु बनानेवालोंके यन्त्रोंकी रात्रिमें सदैव रक्षा करे ॥ ७७ ॥

कारुशिल्पिगणान्राष्ट्रेरक्षेत्कार्यानुमानतः ।
अधिकान्कृषिकृत्सेनाभृत्यवर्गेनियोजयेत् ॥
कारीगर और शिल्पी इनके समूहकी देशमें कार्यकेअनुसारसेरक्षा करे यदि अधिक होजाय तो खेती सेवा भृत्योंमें नियुक्त करदे ॥ ७८ ॥

चौराणांपितृभूतास्तेस्वर्णकारादयस्त्वतः ।
गंजागृहंपृथग्ग्रामात्तस्मिन्रक्षेत्तुमद्यपान् ॥
क्योंकि सुनार आदि वे सब चोरोंके पितारूप होते हैं, और मदिरा बनानेके या पीनेके घरको गांवसे पृथक् करे और मदिरा पीनेवालोंको उसमें रक्षा करे ॥ ७९ ॥

नदिवामद्यपानंहिराष्ट्रेकुर्याद्धिकर्हिचित् ।
ग्रामेग्राम्यान्वनेवन्यान्वृक्षान्संरोपयेन्नृपः ॥
और अपने राज्यमे मदिराका पान दिनमें कभी न करावे और गावमें गांवके वृक्षोंकोऔर वनमें वनके वृक्षोंको राजा लगवावे ॥ ८० ॥

उत्तमान्विंशतिकरैर्मध्यमांस्तिथिहस्ततः ।
सामान्यान्दशहस्तैश्चकनिष्ठान्पंचभिःकरैः ॥
बहुत बडे उत्तम २ वृक्षोंको बीस हाथके, मध्यम वृक्षोंको पद्रह हाथके, सामान्य वृक्षोंकी दश हाथके और छोटे २ वृक्षोंको पाच हाथके अन्तर पर लगवावे ॥ ८१ ॥

अजाविगोशकृद्भिर्वाजलैर्मांसैश्चपोषयेत् ।
उदुंबराश्वत्थवटचिंचाचंदनजंभलाः ॥८२॥
और उनको बकरी भड गौके गोबरसे और जल और मांससे पुष्ट करावे गूलर, पीपल, बड़, इमली चन्दन जम्भल और ॥ २ ॥

कदंबाशोकबकुलबिल्वाम्रातकपित्थकाः ।
राजादनाम्रपुन्नागतुदकाष्ठाम्रचंपकाः॥८३॥
कदंब, अशोक, बकुल,बेल, आम्रातक, कैथ, राजादनाम्र ( मालदा आदि ) पुन्नाग, तुदकाष्ठ, आम्र चम्पा और ॥ ८३ ॥

नीपकोकाम्रसरलदाडिमाक्षोटाभिःसटाः ।
शिंशिपाशिंशुबदरानिंबजंभीरक्षीरिकाः ८४॥
नीप, कोकाम्र, सरल, अनार, अखरोट, भिस्सट, शीसम, शिंशु, बेरी, निंब, जम्भीरी, क्षीरिक और ॥ ८४ ॥

खर्जूरदेवकुरजफल्गुतापिच्छसिंभलाः ।
कुद्दालोलवलीधात्रीकुमकोमातुलुंगकः८५॥
खजूर, देवरंजक, फल्गु, तापिच्छ, (तमाल) सेंभल, कुद्दाल, लवली, आवला, कुमक, मातुलुंग ( सुपारी ) और ॥ ८५ ॥

लकुचोनारिकेलश्चरंभान्येसत्फलाद्रुमाः ।
सुपुष्पाश्चैवयेवृक्षाग्रामाभ्यर्णेनियोजयेत् ॥
बहेडा, नारियल, रंभा ( केला ) ये सब और जो अच्छे फलवाले वृक्ष हैं अथवा अच्छे पुष्पवाले वृक्ष हैं इन सबको ग्रामके समीप लगवावे ॥ ८६ ॥

येचकंटकिनोवृक्षाः खदिराद्यास्तथापरे ।
आरण्यकास्तेविज्ञेयास्तेषांतत्रनियोजनम् ॥
और जो कांटेवाले और खदिर ( खैर ) आदि अन्य जो वृक्ष हैं वे वनके समझने इससे उनको वनमे लगवावे ॥ ८७ ॥

खदिराश्मंतशाकाग्निमंथस्योनाकबब्बुलाः ।
तमालशालकुटजधवार्जुनपलाशकाः ॥८८॥
खैर, अश्मतक, शाक, अग्निमंथ (अमलतास) स्योनाक, बब्बुल, तमाल, शाला कटज, धव, अर्जुन, ढाक और ॥ ८८ ॥

सप्तपर्णशमीतूनदेवदारुविकंकताः ।
करमर्देंगुदीभूर्जविषमुष्टिकरीरकाः ॥ ८९ ॥
सप्तपर्ण, शमी, छोंकर, तून, देवदारु, विकंकत, करमर्द, इंगुदी, भोजपत्र, विषमुष्टि, तिकरीर और ॥ ८९ ॥

शल्लकीकाश्मरीपाठातिंदुकोबीजसारकः ।
हरीतकीचभल्लातःशम्याकोर्कश्चपुष्करः ९०
शल्लकी, काश्मरी, पाठा, तेंदु, विजयसार, हरडे, भिलावे, शम्याक, आक, पोहकरमूल और ॥ ९० ॥

अरिमेदश्चपीतद्रुःशाल्मलिश्चविभीतकः ।
नरवेलोमहावृक्षोऽपरेयेमधुकादयः ॥ ९१ ॥
अरिमेद, पीतवृक्ष, शाल्मली, विभीतक, नरवेल, महावृक्ष और अन्य जो मधुक ( महुआ ) आदि हैं ॥ ९१ ॥

प्रतानवन्त्यःस्तंबिन्योगुल्मिन्यश्चतथैवच ।
ग्राम्याग्रामेवनेवन्यानियोज्यास्तेप्रयत्नतः ॥
फैलनेवाली, गुच्छेवाली और गुल्मवाली जो लता हैं इन सबको गांवके योग्य गांवोंमें और वनमें लगाने योग्य वनमे प्रयत्नसे लगावे

कूपवापीपुष्करिण्यस्तडागाःसुगमास्तथा ।
कार्याः खाताद्वित्रिगुणविस्तारपदधानिकाः॥

कूप, बावडी, पुष्करिणी, तालाब इनको सुगम करे और खोदनेसे दूनी वा तिगुनी इनकी पदधानी (मण घाट आदि) बनवावे ॥ ९३ ॥

यथातथाह्यनेकाश्चराष्ट्रेम्याद्विपुलंजलम् ।
नदीनांसेतवः कार्याविबन्धाः सुमनोहराः९४

जैसे जैसे देशमे बहुत जल हो ऐसे ऐसे अनेक कूप आदि बनावे और नदियोके पुल और बांध अच्छे मनोहर करावे ॥ ९४ ॥

नौकादिजलयानानिपारगानिनदीषुच ।
यज्जातिपूज्योयोदेवस्तद्विद्यायाश्चयोगुरुः ॥

नदियोंम पार जानेके लिये नाव और जलके यान आदि करावे जिस जातिके पूजने योग्य जो देव हो और उस जातिकी विद्याका जो गुरु हो ॥ ९५ ॥

तदालयानितज्जातिगृहपंक्तिमुखेन्यसेत् ।
शृंगाटकेग्राममध्येविष्णोर्वाशंकरस्यच९६॥

उनके स्थान उसी जातिके घरोंकी पंक्तिके सन्मुख बसावे, चौराहे और गावके मध्यमें विष्णु, वा शिवका वा ॥ ९६ ॥

गणेशस्यरवेर्देव्याःप्रासादान्क्रमतोन्यसेत् ।
मेर्वादिषोडशविधलक्षणान्सुमनोहरान् ९७॥

गणेश, सूर्य, देवी इसके मन्दिर क्रमसे बनवावे मेरु आदि सोलह प्रकारके और बडे मनोहर और ॥ ९७ ॥

वर्तुलांश्चतुरस्त्रान्वायंत्राकारान्समंडपान् ।
प्राकारगोपुरगणयुतान्द्वित्रिगुणोच्छ्रितान् ।

गोल, चतुष्कोण, मण्डप सहित, यंत्रोंके आकार और परकोटा गोपुरक समूहोंसे युक्त दूने वा तिगुन ऊँचे बनवावे ॥ ९८ ॥

यथोक्तांतःसुप्रतिमाञ्जलमूलान्विचित्रितान्।
रम्यःसहस्त्रशिखरःसपादशतभूमिकः॥९९॥

जिनके भीतर शास्त्रोक्त प्रतिमा हों ऐसे विचित्र जलके मूल (बडे २ तलाव) जो रमणीक हों, सहस्र जिसके शिखर हों. सवासौ हाथ जिसकी भूमि हो ॥ ९९ ॥

सहस्त्रहस्तविस्तारोच्छ्रायैःस्यान्मेरुसंज्ञकः
ततस्ततोष्टांशहीनाअपरेमन्दरादयः ४०० ॥

सहस्र हाथका जिसका विस्तार और ऊँचाई हो उसका मेरु नाम है, उससे आठ आठ अंशसे जो कम हों वे क्रमसे मन्दर होते है ॥ ४०० ॥

मन्दरऋक्षमालीचद्युमणिश्चंद्रशेखरः ।
माल्यवान्पारियात्रोरत्नशीर्षोहिधातुमान्

मन्दर, ऋक्षमाली, द्युमणि, चन्द्रशेखर, माल्यवान्, पारियात्र, रत्नशोर्ष, धातुमान् ॥४०१॥

पद्मकोशः पुष्पहासः श्रीकरः स्वतिकाभिधः
महापद्मःपद्मकूटःषोडशोविजयाभिधः ४०२

पद्मकोश, पुष्पहास, श्रीकर, स्वस्तिक, महापद्म, पद्मकूट, विजय ये सोलह मेरु आदि लक्षण होते हैं ॥ ४०२ ॥

तन्मण्डपश्चतत्तुल्यःपादन्यूनोच्छ्रितःपुरः ।
स्वाराध्यदेवताध्यानैःप्रतिमास्तेषुयोजयेत् ॥

इनका मण्डप भी इनकेही तुल्य होता है, इनसे चौथाई कम जिसकी ऊँचाई हो वह पुर होता है, और अपनी अपनी आराधना के योग्य देवताओंके ध्यानसे इनमे प्रतिम नियत करे ॥ ३ ॥

सात्त्विकीराजसीदेवप्रतिमातामसीत्रिधा ।
विष्ण्वादीनांचयायत्रयोग्यापूज्यातुतादृशी॥

सात्विकी, राजसी, तामसी, यह तीन प्रकारकी विष्णु आदिकी प्रतिमा होती हैं जो जहां योग्य हो उसकोही वहां पूजे ॥ ४ ॥

योगमुद्रान्वितास्वस्थावराभयकरान्विता ।
देवेंद्रादिस्तनुतासात्त्विकीसाप्रकीर्तिता॥५॥

जिस प्रतिमामे योगमुद्रा हों जो स्वस्थ हो जिसके वर और अभय मुद्रायुक्त हाथ हों, जिसकी देव और इन्द्र आदि स्तुति करैं वह प्रतिमा सात्विकी कही है ॥ ५ ॥

तिष्ठंतीवाहनस्थावानानाभरणभूषिता ।
याशस्त्रास्त्राभयवरकरासाराजसीस्मृता ॥६॥

जो प्रतिमा खडी हो वा वाहनपर स्थित

हो, नाना भूषणोंसे भूषित हो और शस्त्र अस्त्र अभय वरदायक जिसके कर हों वह राजसी कही है ॥ ६ ॥

शस्त्रास्त्रैर्दैत्यहंत्रीयाउग्ररूपधरासदा ।
युद्धाभिनंदिनीसातुतामसीप्रतिमोच्यते॥७॥

जो शस्त्र अस्त्रोंसे दैत्योंको हननेवाली और सदैव उग्ररूप धारे हो और युद्ध जिसको प्रिय हो वह प्रतिमा तामसी कही है ॥ ७ ॥

संक्षेपतस्तुध्यानादिविष्णवादीनांतथोच्यते ।
प्रमाणंप्रतिमानांचतदंगानांसुविस्तरम् ॥८॥

अब संक्षेपसे विष्णु आदिकोंका यथार्थ ध्यान और प्रतिमा तथा उनके अंगोंका विस्तारसे प्रमाण वर्णन करते हैं ॥ ८ ॥

स्वस्वमुष्टेश्चतुर्थोंशोह्यंगुलंपरिकीर्तितम् ।
तदंगुलैर्द्वादशभिर्भवेत्तालस्यदीर्घता ॥ ९ ॥

अपनी मुष्टिके चौथे भागको अंगुल कहते हे और बारह अंगुलकी एक ताल दीर्घता ( बिलस्त ) होती है ॥ ९ ॥

वामनीसप्ततालास्यादष्टतालातुमानुषी ।
नवतालास्मृतादेवीराक्षसीदशतालिका १०॥

वामनी सात ताल की और मानुषी आठ तालकी, नौ तालकी देवी और दश तालकी राक्षसी प्रतिमा कही है ॥ १० ॥

सप्ततालाह्युच्चतावामूर्तीनांदेशभेदतः ।
सदैवस्त्रीसप्ततालासप्ततालश्चवामनः ॥ ११॥

अथवा देशके भेदसे मूर्तियोंकी ऊंचाई सात तालकी होती है स्त्री और वामन सदैव सात तालके होते है ॥ ११ ॥

नरोनारायणोरामोनृसिंहोदशतालकः ।
दशतालाकृतयुगेत्रेतायांनवतालिका ॥१२॥

नर, नारायण, राम, नृसिंह ये सब दश तालके होते हैं, परन्तु कृतयुगके दश तालके, त्रेतामें नौ तालके और ॥ १२ ॥

अष्टतालाद्वापरेतुसप्ततालाकलौस्मृता ।
नवतालप्रमाणेतुमुखंतालमितंस्मृतम् ॥१३॥

द्वापरमें आठ तालक कलियुगमें सात ताल के कहे हैं नौ तालकी मूर्तिके प्रमाणमें एक तालका मुख कहा है ॥ १३ ॥

चतुरंगुलंललाटंस्यादधोनासातथैवच ।
नासिकाधश्चहन्वंतंचतुरंगुलमीरितम् ॥१४॥

चार अंगुलका मस्तक और नाकका अधोभाग कहा है, नासिकासे नीचे हनु ( ठोडी ) तक चार अंगुलका कहा है ॥१४॥

चतुरंगुलाभवेद्ग्रीवातालेनहृदयंपुनः ।
नाभिस्तस्मादधःकार्यातालेनैकेनशोभिता ॥

चार अंगुलकी ग्रीवा और एक तालका हृदय कहा है, हृदयके नीचे एक तालकी शोभायमान नाभी करनी ॥ १५ ॥

नाभ्यधश्चभवेन्मेढ्रंभागेनैकेनवापुनः ।
द्वितालौह्यायतावूरूजानुनीचतुरंगुले ॥१६॥

नाभीके नीचे एक भागसे लिंग इद्रिय और दो ताल लंबे ऊरू और चार अंगुलके जानु बनवावे ॥ १६ ॥

जंघेऊरूसमेकार्येगुल्फाधश्चतुरंगुलम् ।
नवतालात्मकमिदमूर्ध्वमानंबुधैःस्मृतम् १७॥

नीचकी जंघा (पीडी) ऊरूके समान करने, गुल्फक नीचेका भाग चार अंगुलका करना, नौ ताल ऊंचीमूर्तिका प्रमाण पंडितोंने यह कहा है ॥ १७ ॥

शिखावधितुकेशांतंत्र्यंगुलंसर्वमानतः ।
दिशानयाचविभजेत्सप्ताष्टदशतालिकम् १८

केशोंसे शिखापर्यंत संपूर्ण भाग तीन अंगुलके मानसे करना, इसी रीतिसे सात आठ दश तालकी मूर्तिमें भी अंगोंके मान समझने ॥ १८ ॥

चतुस्तालात्मकौबाहूह्यंगुल्यंतावुदाहृतौ ।
स्कंधादिकूर्परांतंचविंशत्यंगुलमुत्तमम्॥१९॥

अंगुलीपर्यंत चार तालकी भुजा कही है और स्कंधसे कूपर ( ताल ) पर्यंत बीस अंगुल का प्रमाण उत्तम कहा है ॥ १९ ॥

त्रयोदशांगुलंचाधःकक्षायाःकूर्परांतकम् ।
अष्टाविंशत्यंगुलस्तुमध्यमांतःकरःस्मृतः २०

कुक्षिके नीचेसे कूर्पपर्यंत तेरह अंगुलक और मध्यमा अंगुलीके अंततक अट्ठाईस अंगुलका कर कहा है ॥ २० ॥

सप्तांगुलंकरतलंमध्यापंचांगुलामता ।
सार्धत्रयांगुलोंगुष्ठस्तर्जनीमूलपूर्वभाक् ॥

सात अगुलका हाथका तल और पांच अंगुलका मध्य कहा है, साढे तीन अंगुलका अंगूठा तर्जनीके मूलके पूर्वभागस होता है ॥ २१ ॥

पर्वद्वयात्मकान्यामांपर्वाणित्रीणित्रीणितु ।
अर्धांगुलेनांगुलेनहीनानामाचतर्जनी २२॥

अंगूठक दो पर्व होते है अन्य अंगुलियोंके तीन २ पर्व होते हैं । अनामिका और तर्जनी आधा अंगुल और अंगुल कम होती है ॥ २२ ॥

कनिष्ठिकानामिकातोंगुलोनाचप्रकीर्तिता ।
चतुर्दशांगुलौपादौह्यंगुष्ठोद्व्यंगुलोमतः ॥

कनिष्ठिका अनामिकासे एक अंगुल कम होती है चौदह अंगुलका पाद और दो अगुल का अंगूठा होता है ॥ २३ ॥

प्रदेशिनीद्व्यंगुलातुसार्धांगुलमथेतराः ।
शिरोज्झितौपाणिपादौगूढगुल्फौप्रकीर्तितौ॥

प्रदेशिनी ( अंगूठेके पासकी अंगुली ) दो अंगुलकी अन्य अगुलियां डेढ अंगुलकी होती हैं शिरके विना हाथ और पैर ऐसे अच्छे होते हैं जिनके गुल्फ छिपे है ॥२४॥

तद्विज्ञैःप्रस्तुतायेयेमूर्तेरवयवाःसदा ।
नहीनानाधिकामानात्तेतेज्ञेयाःसुशोभनाः ॥

जो २ शरीरके अवयव हैं वे २ विद्वानोंकी प्रशंसा योग्य और शोभित तभी होते हैं जब मानसे न्यून न हों न ज्यादे ॥ २५ ॥

नस्थूलानकृशावापिसर्वेसर्वमनोरमाः ।
सर्वांगैःसर्वरम्योहिकश्चिल्लक्षेप्रजायते २६॥

जो न अधिक स्थूल हो न कृश हो और सबप्रकारसे उत्तम हो ऐसा लक्षोंमें कोई ही होता है जो सबप्रकारसे सम्पूर्ण अंगोंमे रमणीक हो ॥ २६ ॥

शास्त्रमानेनयोरम्यःसरम्योनान्यएवहि ।
शास्त्रमानविहीनंयदरम्यंतद्विपश्चिताम् २७।

शास्त्रके मानसे जो रमणीक हो अर्थात जिसके अंगोंका प्रमाण शास्त्रोक्तहो वह श्रेष्ठ है अन्य नहीं जो शास्त्रोक्त मानसे हीन है वह विद्वानोंकी अपेक्षा रमणीक नहीं ॥ २७ ॥

एकेषामेवतद्रम्यंलग्नंयत्रचयस्यहृत ।
अष्टांगुलंललाटंस्यात्तावन्मात्रौभ्रुवौमतौ ॥

जिस मनुष्यमें जिसका हृदय लग्न ( आसक्त ) होजाय यह बात किसीको ही प्रतीत होती है, आठ २ अगुलका मस्तक और दोनों भ्रुकुटी होती हैं ॥ २८ ॥

अर्धांगुलाभ्रुवोर्लेखामध्येधनुरिवायता ।
नेत्रेचत्र्यंगुलायामद्व्यंगुलेविस्तृतेशुभे ॥२९॥

भ्रुकुटीकी लेखाके मध्यमें धनुष्यके समान विस्तार हो और आधा अंगुल चौडी हो और नेत्र तीन अंगुल लंबे तथा दो अंगुल चौडे शुभ होते हैं ॥ २९ ॥

तारकातत्तृतीयांशानेत्रयोःकृष्णरूपिणी ।
द्व्यंगुलंतुभ्रुवोर्मध्यंनासामूलमथांगुलम् ३०॥

नेत्रोंके तारे कृष्ण और नेत्रोंके तीसरे हिस्सके होते हैं भ्रुकुटियोंका मध्य दो अंगुल और नासिकाका मूलएक अगुलका होता है३०

नासाग्रविस्तरंतद्वद्व्यंगुलंतद्बिलद्वयम् ।
शुकमुखाकृतिर्नासासरलावाद्विधाशुभा ॥

नासिकाके अग्रभागका विस्तार और दोनों बिल दो अगुलके होते हैं तोतेके मुखके समान जिसका आकार अथवा सीधी जो हो वह दो प्रकारकी नासिका शुभ होती है ॥३१॥

निष्पावसदृशंनासापुटयुग्मंसुशोभनम् ।
कर्णौचभ्रूसमौज्ञेयौदीर्घौतुचतुरंगुलौ ३२॥

निष्पावके तुल्य जो हो ऐसे नासिकाके दोनों पुट श्रेष्ठ कहे हैं और भ्रुकुटियोंके समान और दीर्घ ( लंबे ) चार अंगुल कान उत्तम होते हैं ॥ ३२ ॥

कर्णपालीद्व्यंगुलास्यास्थूलाचाधांगुलामता
नासावंशोर्धांगुलस्तुश्लक्ष्णाग्रःकिंचिदुन्नतः

कानोंकी पाली ( पिछलीत्वचा ) दो अंगुल लंबी और आधा अंगुल मोटी कही है और नाकका वांस आधा अंगुल मोटा और आगेसे चिकना और कुछ ऊंचा हो तो अच्छा है ॥३३

ग्रीवामूलाच्चस्कंधांतमष्टांगुलमुदाहृतम् ।
बाह्वन्तरंद्वितालंस्यात्तालमात्रंस्तनातरम् ॥

ग्रीवाके मूलसे स्कंधतक जो भाग है वह आठ अंगुल होना चाहिये दोनों भुजाओंका अन्तर ( बीच ) दो ताल और स्तनोंका अन्तर एक ताल होता है ॥ ३४ ॥

षोडशांगुलमात्रंतुकर्णयोरंतरंस्मृतम् ।
कर्णहन्वग्रांतरंतुसदैवाष्टांगुलंमतम् ३५ ॥

दोनों कानोंका अन्तर सोरह अंगुलका कहा है और कान और हनु ( ठोढी ) इनका अन्तर सदैव आठ अंगुलका कहाहै ॥ ३५ ॥

नासाकर्णांतरंतद्वत्तदर्धंकर्णनेत्रयोः ।
मुखंतालीतृतीयांशमोष्ठावर्धांगुलौमतौ ॥

इसी प्रकार आठ अंगुलका अन्तर नाक और कानोंका होता है और इससे आधा अन्तर कान और नेत्रोंका होता है, तालका तीसरा भाग मुखका होता है और आधा अंगुलके ओष्ठ होते हैं ॥ ३६ ॥

द्वात्रिंशदंगुलःप्रोक्तःपरिधिर्मस्तकस्यच ।
दशांगुलाविस्तृतिस्तुद्वादशांगुलदीर्घता ॥

मस्तक (शिर) की परिधि बत्तीस अंगुलकी कही है और दश अंगुलका विस्तार और बारह अंगुलकी लम्बाई कही है ॥ ३७ ॥

ग्रीवामूलस्यपरिधिर्द्वाविंशत्यंगुलात्मकः ।
हृन्मूलेपरिधिर्ज्ञेयश्चतुःपंचाशदंगुलः ३८ ॥

ग्रीवाके मूलकी परिधि बाईस अंगुलकी कही है, हृदयके मूलकी परिधि ( फेर ) चव्वन ५४ अगुल कही है ॥ ३८ ॥

हीनांगुलचतुस्तालपरिधिर्हृदयस्यच ।
आस्तनात्पृष्ठदेशांतापृथुताद्वादशांगुला ॥

चार अगुल कम ताल परिधि हृदयकी होती है और स्तनोंसे लेकर पृष्ठ देशतक बारह अंगुलकी मोटाई होती है ॥ ३९ ॥

सार्धत्रितालपरिधिःकट्याश्चद्व्यंगुलाधिकः
चतुरंगुलउत्सेधोविस्तारःस्यात्षडंगुलः ॥

दो अंगुल ऊपर साढे तीन ताल परिधि कटि ( कमर ) की होती है और चार अंगुल ऊँचाई और छः अंगुलका विस्तार होता है॥४०

पश्चाद्भागेनितंबस्यस्त्रीणामंगुलतोधिकः ।
बाह्वग्रमूलपरिधिःषोडशाष्टादशांगुलः ४१॥

स्त्रियोंके नितम्बके पश्चात् भाग एक अंगुल अधिक होते हैं और भुजाओंके अग्र भागकी परिधि सोलह अंगुल और मूल भागकी अठारह अंगुल होती है ॥ ४१ ॥

हस्तमूलाग्रपरिधिश्चतुर्दशदशांगुलः ॥
पंचांगुलापादकरतलयोर्विस्तृतिःस्मृता ॥

हाथके मूलकी परिधि चौदह अंगुल और अग्रभागकी परिधि दश अगुल होती है और हाथ और पादोंके तलका विस्तार पांच अगुलका होता है ॥ ४२ ॥

ऊरुमूलस्यपरिधिर्द्वात्रिंशदंगुलात्मकः ।
ऊनविंशत्यंगुलःस्यादूर्वग्रपरिधिःस्मृतः ॥

ऊरु ( एन ) के मूलकी परिधि बत्तीस अगुलकी होती है और अग्रभागकी परिधि उन्नीस अंगुलकी होती है ॥ ४३ ॥

जंघामूलाग्रपरिधिःषोडशद्वादशांगुलः ।
मध्यमामूलपरिधिर्विज्ञेयश्चतुरंगुलः॥ ४४॥

जंघाके मूलकी परिधि सोलह अंगुल और अग्र भागकी परिधि बारह अंगुल कही है और मध्यमाके मूलकी परिधि चार अंगुलकी होती है ॥ ४४ ॥

तर्जन्यनामिकामूलपरिधिः सार्धत्र्यंगुलः ।
कनिष्ठिकायाःपरिधिर्मूलेत्र्यंगुलएवहि ४५ ॥

तर्जनी और अनामिकाके मूलकी परिधि साढे तीन अंगुल होती है और कनिष्ठिकाके मूलकी परिधि तीन अंगुल होती है ॥ ४५ ॥

स्वमूलपरिधेःपादहीनोग्रे परिधिःस्मृतः ।
हस्तपादांगुष्ठयोश्चचतुःपंचांगुलंक्रमात् ॥

और अपने मूलकी परिधिसे चौथाई कम

अग्र भागकी परिधि होती है हाथ और पैरके अंगूठोंकी परिधि क्रमसे चार पांच अंगुलकी होती है ॥ ४६ ॥

पादांगुलीनांपरिधिस्त्र्यंगुलःसमुदाहृतः।
मंडलंस्तनयोर्नाभेःसार्धांगुलमथांगुलम् ॥

पैरकी अंगुलियोंकी परिधि तीन अंगुल होती है, स्तनोंका मंडल डेढ अंगुल और नाभिका मंडल एक अंगुल होता है ॥ ४७ ॥

सर्वांगानांयथाशोभिपाटवंपरिकल्पयेत् ।
नोर्ध्वदृष्टिमधोदृष्टिंमीलिताक्षींप्रकल्पयेत् ॥

संपूर्ण अंगोंका पाटव ( उत्तमता ) शोभाके अनुसार बनावै, और ऊपर और नीचेको जिसकी दृष्टि हो और जिसके नेत्र मिचे हों ऐसी प्रतिमा न बनावै ॥ ४८ ॥

नोग्रदृष्टिंतुप्रतिमांप्रसन्नाक्षींविचिंतयेत् ।
प्रतिमायास्तृतीयांशमर्धांशंतत्सुपीठकम् ॥

जिसकी दृष्टि उग्र हो ऐसी भी न बनावै किन्तु जिसके नेत्र प्रसन्न हों ऐसी बनावै; प्रतिमाके प्रमाणसे साढेतीन अंश कमपीठ ( आसन ) बनावै ॥ ४९ ॥

द्विगुणंत्रिगुणंद्वारंप्रतिमायाश्चतुर्गुणम् ।
एकद्वित्रिचतुर्हस्तंपीठंदेवालयस्यच ॥५०॥

प्रतिमासे दूना व तिगुना वा चौगुना मंदिर का द्वार बनावै, एक दो तीन वा चार हाथ देवायतनका पीठ बनावै ॥ ५० ॥

पीठतस्तुसमुच्छ्रायोभित्तेर्दशकरात्मकः ।
द्वारात्तुद्विगुणोच्छ्रायःप्रासादस्योर्ध्वभूमिभाक्

पीठसे दश हाथ ऊंची भीत बनावै और द्वारसे द्विगुण ऊंचा मदिरके ऊपरका भाग बनावै ॥ ५१ ॥

शिखरंचोच्छ्रायसमंद्विगुणंत्रिगुणंतुवा ।
एकभूमिंसमारभ्यसपादशतभूमिकम् ॥

ऊंचाईके समान द्विगुना वा तिगुना शिखर बनावै और एक भूमि ( मंजिल ) से लेकर सवासौ भूमि तक ॥ ५२ ॥

प्रासादंकारयेच्छक्त्याह्यष्टास्रपद्मसन्निभम् ।
चतुर्दिक्षुमंडपंवापिचतुःशालंसमंततः ॥

शक्तिके अनुसार अष्टपद्मके समान मंदिर को बनावै और चारों दिशाओंमे मंडप और धर्मशाला बनावै ॥ ५३ ॥

सहस्रस्तंभसंयुक्तश्चोत्तमोन्यःसमोधमः ।
प्रासादेमंडपेवापिशिखरंयदिकल्प्यते ॥५४॥

जिसमे सहस्र स्तम्भ हों ऐसा मंदिर उत्तम और अन्य मध्यम और अधम होते हैं यदि प्रासादवा मंडपमेंशिखर बनाया जायतो॥५४॥

स्तम्भास्तत्रनकर्तव्याभित्तिस्तत्रसुखप्रदा ।
प्रासादमध्यविस्तारःप्रतिमायाःसमंततः ॥

वहा स्तम्भ न बनावै भीतीही वहा सुखदायक होती है और मंदिरके मध्यका विस्तार प्रतिमाके चारों तरफ ॥ ५५ ॥

षड्गुणोष्टगुणोवापिपुरतोवासुविस्तरः ।
वाहनंमूर्तिसदृशंसार्धंवाद्विगुणंस्मृतम् ॥५६॥

छहगुणा वा आठगुणा अथवा प्रतिमाके आगे विस्तारपूर्वक बनाना चाहिये और मूर्ति के तुल्य डेढ गुण वा दूना वाहन कहाहै॥५६॥

यत्रनोक्तंदेवतायारूपंतत्रचतुर्भुजम् ।
अभयंचवरंदद्याद्यत्रनोक्तंयदायुधम् ॥५७॥

जहां देवताका रूप न कहा हो वहा चतुर्भुजी रूप और जहां आयुध न कहा हो वहां अभय और वर आयुध बनावै ॥ ५७ ॥

अधःकरेतूर्ध्वकरेशंखंचक्रंतथांकुशम् ।
पाशंवाडमरुंशूलंकमलंकलशंस्रजम् ॥५८॥

हाथके नीचे और ऊपर शंख, चक्र, अंकुश, पाश, डमरू, शूल, कमल, माला ॥ ५८ ॥

लड्डुकंमातुलुंगंवावीणांमालांचपुस्तकम् ।
मुखानायत्रबाहुल्यंतत्रपङ्क्त्यानिवेशनम् ॥

लड्डू, मातुलिङ्ग, वीणा, माला और पुस्तक बनावे जहां मुख बहुत हों वहां पंक्तिसे मुख बनावे ॥ ५९ ॥

तत्पृथग्ग्रीवमुकुटंसुमुखंस्वक्षिकर्णयुक् ।
भुजानांयत्रबाहुल्यंनतत्रस्कंधभेदनम् ६०॥

उन मुखोंकी ग्रीवा और मुकुट पृथक् २ हों और जिसमें नेत्र, मुख, कान ये अच्छे हों वही अच्छा होता है और जिसकी भुजा बहुत हों वहां स्कंध भेद न करै ॥ ६० ॥

कूर्परोर्ध्वंतुसूक्ष्माणिचिपिटानिदृढानिच ।
भुजमूलानिकार्याणिपक्षमूलानिवैयथा ६१॥

कूर्पर ( केहुनी ) के ऊपर सूक्ष्म, चिकने, दृढ भुजाओंके मूल इस प्रकारके बनावे जैसे पंखोंके मूल होते हैं ॥ ६१ ॥

ब्रह्मणस्तुचतुर्दिक्षुमुखानांविनियोजनम् ।
हयग्रीवोवराहश्चनृसिंहश्चगणेश्वरः ॥६२॥

ब्रह्माके मुख चारों दिशाओंमें बनावे हयग्रीव, वराह, नृसिंह, गणेशजी ॥ ६२ ॥

मुखैर्विनानराकारान्नृसिंहश्चनखैर्विना ।
तिष्ठंतीमुपविष्टांवास्वासनेवाहनस्थिताम् ॥
प्रतिमामिष्टदेवस्यकारयेदुक्तलक्षणाम् ।
हीनश्मश्रुनिमेषांचसदाषोडशवार्षिकीम् ॥

इनका आकार मुखके विना मनुष्यके समान बनावै और नृसिंहकी मूर्ति नखोंके विना मनुष्याकारकी बनावै, सुन्दर आसन और वाहनपै बैठी अथवा खडी हुई इष्टदेवकी प्रतिमाको उक्त रीतिसे बनवावै, जिसके श्मश्रु और निमिष न हों और सदा सोलह वर्षकी प्रतीत हो ऐसी प्रतिमाको बनावै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

दिव्याभरणवस्त्राढ्यांदिव्यवर्णक्रियांसदा ।
हीनांगोनाधिकांगयश्चकर्त्तव्यादेवताःक्वचित्

जिसके भूषण, वस्त्र, वर्ण, क्रिया सदैव दिव्य हों ऐसी बनावे, अंगहीन और अधिकांगी देवप्रतिमा कदाचित् न बनावै ॥ ६५ ॥

हीनांगीस्वामिनंहंतिह्यधिकांगीचशिल्पिनम्
कृशादुर्भिक्षदानित्यंस्थूलारोगप्रदासदा ॥

अंगहीन प्रतिमा स्वामीको और अधिकांगी शिल्पी ( बनानेवाले ) को नष्ट करती है, कृश प्रतिमा दुर्भिक्षको स्थूल रोगको सदैव देती है ॥ ६६ ॥

गूढसंध्यस्थिधमनीसर्वदासौख्यवर्धिनी ।
वराभयाब्जशंखाढ्यहस्ताविष्णोश्चसात्त्विकी

जिस प्रतिमाकी संधि, अस्थि, नाडी ये छिपे हुए हों वह सर्वदा सुखकी वृद्धि करतीहै है और जिसके हाथमें वर, अभय, शंख होंऐसी विष्णुकी प्रतिमा सत्त्वगुणी होती है ॥ ६७ ॥

मृगवाद्याभयवरहस्तासोमस्यसात्त्विकी ।
वराभयाब्जलड्डूकहस्तेभास्यस्यसात्त्विकी

मृगवाद्य अभय वर जिसके हाथमें हो ऐसी शिवजीकी प्रतिमा सत्त्वगुणी होती है, और वर अभय कमल लड्डू जिसके हाथमें हो ऐसी गणेशजीकी प्रतिमा सत्त्वगुणी होती है ॥६८॥

पद्ममालाभयवरकरासत्त्वाधिकारवेः ।
वीणालुंगाभयवरकरासत्त्वगुणाश्रियाः ॥

पद्म माला अभय वर जिसके हाथमें हों ऐसी सूर्यप्रतिमा सत्त्वगुणी होती है वीणा लुंग अभय वर जिसके हाथमें हों ऐसी लक्ष्मीकी प्रतिमा सत्त्वगुणी होती है ॥ ६९ ॥

शंखचक्रगदापद्मैरायुधैरादितः पृथक् ।
षड्षड्भेदाश्चमूर्तीनांविष्ण्वादीनांभवंतिहि ॥

शंख चक्र गदा पद्म और आयुधोंसे विष्णुआदिकोंकी मूर्तियोंके पृथक् २ छः २ भेद होते हैं ॥ ७० ॥

यथोपाधिप्रभेदेनससंयोगविभागतः ।
समस्तव्यस्तवर्णादिभेदज्ञानंप्रजायते ॥७१॥

यथोचित उपाधिके भेद और संयोग विभागसे समस्त और व्यस्त वर्ण आदि भेदका ज्ञान होता है ॥ ७१ ॥

लेख्यालेप्यासैकतीचमृन्मयीपैष्टिकीतथा ।
एतासांलक्षणाभावेनकश्चिद्दोषईरितः ७२॥

लिखी, लिपी, रेतेकी और मिट्टीकी चूर्णकी प्रतिमाओंमें लक्षणोंके अभावमेंभी कोई दोष नहीं कहा है ॥ ७२ ॥

बाणलिंगेस्वयंभूतेचंद्रकांतसमुद्भवे ।
रत्नजेगंडिकोद्भूतेमानदोषोनसर्वथा ॥७३॥

स्वयमेव पैदा हुए अथवा चन्द्रकांतमणिसे पैदा हुए बाणलिंगमें रत्नसे पैदा हुए अथवा गंडकीनदीसे पैदा हुओंमें प्रमाणका दोष सर्वथा नहीं है ॥ ७३ ॥

पाषाणधातुजायांतुमानदोषान्विचिंतयेत् ।
श्वेतपीतारक्तकृष्णपाषाणैर्युगभेदतः ७४॥

पाषाण और धातुसे पैदा हुई प्रतिमाओंमें प्रमाणके दोषोंकी चिन्ता करै और युगोंके भेद-से श्वेत पीत रक्त कृष्ण पाषाणके भेदसे ॥७४॥

प्रतिमांकल्पयेच्छिल्पीयथारुच्यपरैः स्मृता
श्वेतास्मृतासात्त्विकीतुपीतारक्तातुराजसी॥

प्रतिमाकी कल्पना शिल्पी करै अन्य पाषाणोंकी यथारुचि करनी कही है श्वेत प्रतिमा सत्त्वगुणी पीत और रक्त रजोगुणी होती है ॥ ७५ ॥

तामसीकृष्णवर्णातुह्युयुक्तलक्ष्मयुतायदि ।
सौवर्णीराजतीताम्रीरैतिकीवाकृतादिषु ७६

कृष्णवर्ण प्रतिमा तमोगुणी होती है यदि उक्तलक्षणोंसे युक्त हो अथवा सतयुग आदिमें सुवर्ण चांदी तांबा पीतलकी प्रतिमा कही है ॥ ७६ ॥

शाकरीश्वेतवर्णाथाकृष्णवर्णातुवैष्णवी ।
सूर्यशक्तिगणेशानाताम्रवर्णास्मृतापिच ॥

शिवजीकी प्रतिमा श्वेतवर्ण, विष्णुकी कृष्णवर्ण और सूर्य देवी गणेश इनकी तांबेके वर्णके समान प्रतिमा कही है ॥ ७७ ॥

लोहासीसमयीवापियथोद्दिष्टास्मृताबुधैः ॥
चलार्चायांस्थिरार्चायांप्रासादाद्युक्तलक्षणम्
प्रतिमांस्थापयेन्नान्यांसर्वसौख्यविनाशिनीम्
सेव्यसेवकभावेषुप्रतिमालक्षणंस्मृतम्॥७९॥

लोहे वा सीसेकी शास्त्रोक्तरीतिसे विद्वानोंने कही है, चलकी पूजा वा स्थिरकी पूजामें प्रासाद ( मंदिर ) आदिके उक्त लक्षणवाली प्रतिमाको स्थापन करे और सब सुखोंको नष्ट करनेवाली अन्य प्रतिमाको स्थापन न करै और सेव्यसेवक भावमें भीप्रतिमाका लक्षण कहा है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

प्रतिमायाश्चयेदोषाह्यर्चकस्यतपोबलात् ।
सर्वत्रेश्वरचित्तस्यनाशंयांतिक्षणात्किल ८०

जो प्रतिमाके दोष हैं वे ईश्वरमें है चित्त जिसका ऐसे पूजा करनेवालेके तपोबलसे क्षणमात्रमें ही निश्चयसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ८० ॥

देवतायाश्चपुरतोमंडपेवाहनंन्यसेत् ।
द्विबाहुर्गरुडःप्रोक्तःसुचंचुस्त्वक्षिपक्षयुक् ॥

देवताके आगे मंडपमें वाहनोंका न्यास ( स्थापन ) करै दो भुजावाला श्रेष्ठ चंचु नेत्र पक्षवाला गरुड कहा है ॥ ८१ ॥

नराकृतिश्चंचुमुखोमुकुटीकवचांगदी ।
बद्धांजलिर्नम्रशीर्षःसेव्यपादाब्जलोचनः ॥

नरके समान आकार चंचु जिसके मुखमें हो मुकुट कवच अगद धारण किये हो हाथ जोडे हो नम्रशिर हो सेव्य ( देवता ) के चरण कमलसे जिसके नेत्र हों ऐसा गरुड आदि वाहन हो ॥ २ ॥

वाहनत्वंगतायेयेदेवतानांचपक्षिणः ।
कामरूपधरास्तेतेतथासिंहवृषादयः ॥८३॥

जो पक्षी देवताओंके वाहन हुए हैं वे सब कामरूपधारी अथवा सिंह वृष आदि ॥ ८३ ॥

स्वनामाकृतयश्चैतेकार्यादिव्याबुधैः सदा ।
सुभूषितादेवताग्रमंडपेध्यानतत्पराः ॥८४॥

अपने नामकी आकृति दिव्य ( सुन्दर ) आयुधों सहित सदैव करने और ऐसे बनाने जो भली प्रकार भूषित और देवताके आगे मंडपमें ध्यानके विषय तत्पर हों ॥ ८४ ॥

मार्जाराकृतिकःपीतःकृष्णचिह्नोबृहद्वपुः ।
असटोव्याघ्रइत्युक्तःसिंहःसूक्ष्मकटिर्महान्

बिलावके समान जिसका आकार पीला कृष्णचिह्न, बडाशरीर हो और गरदनमें बाल न हों वह व्याघ्र कहा है और कटि पतली और रूप महान् हो वह सिंह कहा है ॥ ८५ ॥

बृहद्भ्रूगंडनेत्रस्तुभालरेखोमनोहरः।
सटावान्धूसरोऽकृष्णलांछनश्चमहाबलः८६

जिसकी भृकुटी,गंडस्थल, नेत्र बडे हों मस्तक पर रेखा हो मनोहर हो, केसर युक्त हो, धूसर रंग हो और काला चिह्न न हो, महाबली हो एसा सिंह होता है ॥ ८६ ॥

भेदःसटालांछनतोनाकृत्याव्याघ्रसिंहयोः।
गजाननर्नराकारंध्वस्तकर्णपृथूदरम् ॥८७॥

सटा (केसर) चिह्नको छोड स्वरूपमें व्याघ्र सिंहका कोई भेद नहीं है, गजाननकी मूर्ति नराकारकी हो, जिसके कान ध्वस्त हों पेट बडा हो ॥ ८६ ॥

बृहत्संक्षिप्तगहनपीनस्कंधांघ्रिपाणिनम्।
बृहच्छुंडंभग्नवामरदंमिच्छितवाहनम् ॥८८॥

बडे संक्षिप्त गहन पुष्ट हैं स्कंधर, चरण, हाथ जिसके और बडी शुंड, टूटा वाम दांत और यथेच्छ हैं वाहन जिसका ऐसी ॥ ७८ ॥

ईषत्कुटिलदंडाग्रवामशुंडमदक्षिणम्।
संध्यस्थिधमनीगूढंकुर्यात्मानमितंसदा८९

कुछेक कुटिल शुंडका अग्र हो, वामभुजा पर शुंड हो दक्षिण पर नहीं और संधि अस्थि धमनी ( नाडी ) ये सब जिसकी ढकी हों ऐसी गणेशकी मूर्ति सदैव प्रमाणसे बनावे ॥ ८९ ॥

सार्धश्चतुस्तालमितःशुंडदंड समस्ततः।
दशांगुलंमस्तकंचभ्रूगंडश्चतुरंगुलः ॥९०॥

संपूर्ण शुण्डका दंड साढेचार तालका हो, दश अंगुलका मस्तक और चार अंगुलका भ्रुकुटियोंका गंडस्थल हो ॥ ९० ॥

नासोत्तरोष्ठरूपाचशेषशुंडासपुष्करा।
दशांगुलं कर्णदैर्घ्यंतष्टांगुलविस्तृतम् ॥९१॥

नासिका और ऊपरके ओष्ठ रूप जो शुंड वह पुष्कर सहित हो, कानोंकी लंबाई दश अंगुल और चौडाई आठ अंगुल हो ॥ ९१ ॥

कर्णयोरंतरेव्यासोद्व्यंगुलस्तालसंमितः।
मस्तकेऽस्यैवपरिधिर्ज्ञेयःषट्त्रिंशदंगुलः ९२

कानोंके मध्यका व्यास दो अंगुल ऊपर एक ताल होता है, और इसके मस्तककी परिधि छत्तीस अंगुल होती है ॥ ९२ ॥

नेत्रोपांतेचपरिधिःशीर्षतुल्यःसदामतः।
मध्यंगुलद्वितालःस्यान्नेत्राधःपरिधिःकरे ९३

नेत्रोंके समीपकी परिधि शिरके तुल्य कही है और हाथीके नेत्रोंके नीचेकी परिधि दो अंगुल और दो ताल होती है ॥ ९३ ॥

कराग्रेपरिधिर्ज्ञेयः पुष्करेचदशांगुलः।
त्र्यंगुलंकंठदैर्घ्यंतत्परिधिस्त्रिंशदंगुलः ९४

हाथके और पुष्करके अग्रभागकी परिधि दश अंगुल कंठकी लम्बाई तीन अंगुल और कंठकी परिधि तीस अंगुल होती है ॥ ९४ ॥

परिणाहस्तूदरेचचतुस्तालात्मकः सदा।
षडंगुलोनियोक्तव्योष्टांगुलावापिशिल्पिभिः

उदरका विस्तार सदैव चारतालका होता है परन्तु शिल्पी उसमें छः अंगुल वा आठ अंगुल और मिला दे ॥ ९५ ॥

दंतः षडंगुलोदीर्घस्तन्मूलपरिधिस्तथा।
षडंगुलश्चाधरोष्ठःपुष्करंकमलान्वितम् ९६॥

छः अंगुलका मोटा दंत होता है और उसके मूलकी परिधि भी तैसेही होती है और नीचेका ओष्ठ छः अंगुल हो और पुष्कर (शुंड) कमल सहित बनानी चाहिये ॥ ९६ ॥

ऊरुमूलस्यपरिधिःषट्त्रिंशदंगुलोमतः।
त्रयोविंशत्यंगुलःस्यादूर्वग्रपरिधिस्तथा ९७

ऊरूके मूलकी परिधि छत्तीस अंगुलकीमानी है और ऊरूके अग्रभागकी परिधि तेईस अंगुलकी होती है ॥ ९७ ॥

जंघामूलेतुपरिधिर्विंशत्यंगुलसंमितः।
परिधिर्बाहुमूलादरोधिकोद्व्यंगुलांगुलः ९८

जंघाके मूलकी परिधि बीस अंगुलकी होती है और बाहुके मूल और अग्रभागकी परिधिदो अंगुल वा क्रमसे एक अंगुल अधिक बीस अंगुल होती है ॥ ९८ ॥

कर्णनेत्रांतरंनित्यंविज्ञेयंचतुरंगुलम्।
मलमध्याग्रांतरंतुदशसप्तषडंगुलम् ॥ ९९ ॥

कान और नेत्रोंका अंतर सदैव चार अंगुलका होता है और नेत्रोंके मूल मध्य अग्रका अतर क्रमसे दश सात छः अंगुल होता है ॥ ९९ ॥

नेत्रयोःकथितंतज्ज्ञैर्गणपस्यविशेषतः।
उत्सेधःपृथुतास्त्रीणांस्तेनपंचांगुलामता ॥

तिसके ज्ञाताओंने गणेशके नेत्रोंकी ऊंचाई विशेषकर पूर्वोक्त कहीहै और स्त्रियोंकेस्तनोंकी ऊंचाई और लंबाई पांच अगुल मानीहै ५००॥

स्त्रीकट्यांपारिधिःप्रोक्तस्त्रितालोद्व्यंगुलाधिकः
स्त्रीणामवयवान्सर्वान्सप्ततालैर्विभावयेत्॥१॥

स्त्रियोंकी कमरकी परिधि दो अंगुल ऊपर तीन तालकी और स्त्रियोंके संपूर्ण अवयव सात तालके होते है ॥ १ ॥

सप्ततालादिमानेपिमुखंस्यद्द्वादशांगुलम्।
बालादीनामपिसदादीर्वतातुपृथक्पृथक् ॥२

सप्त तालके प्रमाणमे भी मुख बारह अंगुलका होता है और बाल (केश) आदिका दीर्घता भी पृथक् २ होती है ॥ २ ॥

शिशोस्तुकंधराह्रस्वापृथुशीर्षंप्रकीर्तितम्।
कंठाधोवर्धतेयावत्तावच्छीर्षंनवर्धते ॥ ३ ॥

बालककी ग्रीवा छोटी और शिर बडा होता है और कंठसे नीचे जितना बालक बढ़ता है उतना शिर नहीं बढ़ता ॥ ३ ॥

कंठाधोमुखमानेनवृत्तसार्धचतुर्गुणम्।
द्विगुणःशिश्नपर्यंतोह्यधःशेषंतुसक्थितः ॥४

कण्ठके नीचे मुखके प्रमाणसे साढे चारगुना और नीचेका शेष सक्थिसे लेकर लिंगपर्यन्त दो गुना बढता है ॥ ४ ॥

सपादद्विगुणौहस्तौद्विगुणौवामुखेनहि।
स्थौल्येतुनियमोनास्तियथाशोभंप्रकल्पयेत्।

और मुखसे सवा दो गुने वा दुगुने हाथ बढते हैं और स्थूलता (मोटाई) मे नियम नहीं उसको शोभाके अनुसार बनावे ॥ ५ ॥

नित्यंप्रवर्धतेबालःपंचाब्दात्परतोभृशम्।
स्यात्षोडशेऽब्देसर्वांगःपूर्णस्त्रीविंशतौपुमान्॥

पाच वर्षसे ऊपरकी अवस्थामे बालक अत्यन्त बढ़ता है और सोलह वर्षमे स्त्री और बीस वर्ष पुरुष सम्पूर्ण अंगोंसे पूर्ण हो जाता है ॥ ६ ॥

ततोर्हतिप्रमाणंतुसप्ततालादिकंसदा।
कश्चिद्बाल्येपिशोभाढ्यस्तारुण्येवार्धकेक्वचित्

फिर सप्तताल आदि प्रमाणके योग्य हो जाता है और बाल्य अवस्थामे और कोई यौवनमे और वृद्ध अवस्थामे शोभासे युक्त होता है ॥ ७ ॥

मुखाधस्त्र्यंगुलाग्रीवाहृदयंतुनवांगुलम्।
तथोदरंचबस्तिश्चसक्थियत्त्वष्टादशांगुलम् ॥

मुखके नीचे ग्रीवा तीन अगुल हृदय नव अगुल होता है तिसी प्रकार उदर बस्ति सक्थि अठारह अगुल होती है ॥ ८ ॥

त्र्यंगुलंतुभवेज्जानुजंघात्वष्टादशांगुला।
गुल्फाधस्त्र्यंगुलंज्ञेयंसप्ततालस्यसर्वदा ॥९॥

जानु तीन अगुल और जंघा अठारहअगुल और गुल्फके नीचेका भाग तीन अंगुलका सात तालके मनुष्यका सदैव होता है ॥ ९ ॥

वेदांगुलाभवेद्ग्रीवाहृदयंतुदशांगुलम्।
दशांगुलंचोदरंस्याद्बस्तिश्चैवदशांगुलः॥१०

और चार अगुलकी ग्रीवा दश अंगुलका हृदय उदर और बस्ति दश अंगुलकी हो१०॥

एकविंशांगुलंसक्थिजानुस्याच्चतुरंगुलम्।
एकविंशांगुलाजंघागुल्फाधश्चतुरंगुलम् ॥

इकईस अगुल सक्थि चार अंगुल जानु इकईस अगुल जघा गुल्फ (टकने) के नीचे चार अगुलका प्रमाण ॥ ११ ॥

अष्टतालप्रमाणस्यमानमुक्तमिदंसदा।
त्रयोदशांगुलंज्ञेयंमुखंचहृदयंतथा ॥ १२ ॥

आठ तालके प्रमाण मनुष्यका सदैव कहाहै मुख और हृदय तेरह अंगुलका होता है ॥१२॥

उदरंचतथाबस्तिर्दशतालेषुसर्वदा ।
गुल्फाधश्चतथाग्रीवाजानुपंचांगुलंस्मृतम् ॥

उदर और बस्ति दश अंगुलकी दश तालके मनुष्यकी होती है गुल्फके नीचेका भाग, जानु और ग्रीवा पांच अंगुलके कहे है ॥ १३ ॥

षड्विंशत्यंगुलंसक्थितथाजंघाप्रकीर्तिता ।
एकांगुलोमूर्ध्निमणिर्दशतालेप्रकल्पयेत् ॥

छव्बीस अंगुल सक्थि और दश अंगुल जंघा कही है तालके मनुष्यमे मस्तककी मणि चार अगुलकी कही है ॥ १४ ॥

पंचाशदंगुलौबाहूदशतालेस्मृतौसदा ।
द्व्यंगुलोद्व्यंगुलौचोभौततोहीनप्रमाणके ॥

दश तालके मनुष्यकी भुजा पचास अंगुलकी होती है और उससे अल्पप्रमाणके मनुष्यकी भुजा दो दो अगुल कम होती है ॥ १५ ॥

पाटवंतुयथाशोभिसर्वमानेषुकल्पयेत् ।
नवतालप्रमाणेनह्यूनाधिक्यंप्रकल्पयेत् ॥

सब प्रमाणके मनुष्योंमे शोभाके अनुसार चतुराईकी कल्पना करे और नौ तालके मनुष्यके न्यूनाधिककी कल्पना न करे ॥१६॥

दशतालेतुविज्ञेयौपादौपंचदशांगुलौ ।
एकैकांगुलहीनौस्तस्ततोन्यूनप्रमाणके ॥

दश तालके मनुष्यमें चौदह अंगुलके पैर जानने और उससे न्यून मनुष्यके प्रमाणमे एक २ अंगुल कम होते हैं ॥ १७ ॥

नपंचांगुलतोहीनानषडंगुलतोधिका ।
करस्यमध्यमाप्रोक्ताव्युरुमानेषुसद्भिदैः ॥

हाथकी मध्यमा अंगुलसे कम और छः अंगुलसे अधिक विद्वानोंने अधिकसे अधिक मानमें नहीं कही है ॥ १८ ॥

क्वचित्तुबालसदृशंसदैवतरुणंवयः ।
मूर्तीनांकल्पयेच्छिल्पीनवृद्धसदृशंक्वचित् ॥

कहीं तरुण अवस्था भी बालके सदृश होती है और शिल्पी वृद्धके सदृश मूर्तियोंकी कल्पना कभी न करे ॥ १९ ॥

एवंविधान्नृपोराष्ट्रेदेवान्संस्थापयेत्सदा ।
प्रतिसंवत्सरंतेषामुत्सवान्सम्यगाचरेत् ॥२०

राजा ऐसे देवाओंका स्थापन अपने राज्यमें सदैव करे, प्रतिवर्ष उन उनके उत्सवोंको भली प्रकार करे ॥ २० ॥

देवालयेमानहीनांमूर्तिभग्नांनधारयेत ।
प्रासादांश्चतथादेवाञ्जीर्णानुद्धृत्ययत्नतः ॥

प्रमाणसे रहित और टूटी फूटी मूर्तिको देवालयमे न रहने दे, जीर्ण मन्दिर और देवताओंका यत्नसे उद्धार करके ॥ २१ ॥

देवतातुपुरस्कृत्यनृत्यादीन्वीक्ष्यसर्वदा ।
नमत्तःस्वोपभोगार्थंविदध्याद्यत्नतोनृपः ॥

देवदर्शन और नृत्यको देखकर प्रसन्नचित्त राजा अपने उपभोगके लिये यत्न न करे॥२२॥

प्रजाभिर्विधृतायेयेह्युत्सवास्तांश्चपालयेत ।
प्रजानंदेनसंतुष्येत्तद्दुःखैर्दुःखितोभवेत् ॥

और जिन उत्सवोंको प्रजा करती हो तिनकी सदैव पालना करे, प्रजाके आनन्दसे और दुःखसे दुःखित हो ॥ २३ ॥

दुष्टनिग्रहणंकुर्याद्व्यवहारानुदर्शनैः ।
स्वाज्ञयावर्तितुंशक्त्याऽधीनाजाताचसाप्रजा ॥

और व्यवहारोंके देखनेसे दुष्टोंको दंड क्योंकि जो प्रजा अपने आधीन हो वह अपनी आज्ञामे रह सकती है ॥ २४ ॥

स्वेष्टहानिकरःशत्रुर्दुष्टःपापप्रचारवान् ।
इष्टसंपादनंन्याय्यंप्रजानांपालनंहितत ॥२५

जो अपने इष्टकी हानि करे पापाचारी हो वह शत्रु होता है इष्ट ( वांछित ) की सम्पत्ति करना उचित हो क्योंकि उसीको प्रजाका पालन कहते हैं ॥ २५ ॥

शत्रोरनिष्टकरणान्निवृत्तिःशत्रुनाशनम् ।
पापाचारनिवृत्तिर्यैर्दुष्टनिग्रहणांहितत् ॥२६॥

शत्रुको अनिष्ट न करने देनेको शत्रुनाशन कहते हैं और जिनसे पापाचरणोंकी निवृत्ति हो उसे दुष्टनिग्रहण कहते है ॥ २६ ॥

स्वप्रजाधर्मसंस्थानंसदसत्प्रविचारतः।
जायतेचार्थसंसिद्धिर्व्यवहारस्तुयेननः ॥ २७

साधु असाधुके विचारसे अपनी प्रजाको धर्ममें स्थापन करे और जिसे अर्थ सिद्ध होय उसे व्यवहार कहते है ॥ २७ ॥

धर्मशास्त्रानुसारेणक्रोधलोभविवर्जितः ।
सप्राड्विवाकःसामात्यःसब्राह्मणपुरोहितः ॥

क्रोध लोभसे रहित और प्राड्विवाक (वकील) मन्त्री ब्राह्मण पुरोहित इन करके सहित राजा धर्मशास्त्रके अनुसार ॥ २८ ॥

समाहितमतिःपश्येद्व्यवहारानतुक्रमात् ।
नैकःपश्येच्चकार्याणिवादिनोःशृणुयाद्वच ॥

सावधान मन होकर क्रमसे व्यवहारों (मुकदमे) को देखे और वादियों (मुद्दईमुद्दाले) के कार्य्योंको अकेला न देखे और उनके वचनोंको ॥ २९ ॥

रहसिचनृपःप्राज्ञःसभ्याश्चैवकदाचन ।
पक्षपाताधिरोपस्यकारणानिचपंचवै ॥३०॥

बुद्धिमान् राजा और सभासद् एकांतमें कदाचित् न सुने पक्षपात करनेके ये पांच कारण होते है कि ॥ ३० ॥

रागलोभभयद्वेषावादिनोश्चरहःश्रुतिः ।
पौरकार्याणियोराजानकरोतिसुखेस्थितः ॥

राग (प्रीति) लोभ भय वैर और एकांतमें वादी प्रतिवादीका वचन सुनना जो राजा सुखमें स्थित हुआ पुरवासियोंके कार्य्योंको नहीं करता ॥ ३१ ॥

व्यक्तंसनरकेघोरेपच्यतेनात्रसंशयः ।
यस्त्वधर्मेणकार्याणिमोहात्कुर्यान्नराधिपः ॥

यह प्रकट है इसमें संशय नहीं वह घोर नरकमें पड़ता है जो राजा विना जाने अधर्मसे कार्य्योंको करता है ॥ ३२ ॥

अचिरात्तंदुरात्मानंवशेकुर्वंतिशत्रवः ।
अरवर्ग्यालोकनाशायपरानीकभयावहाः ॥

उस दुरात्माको शत्रुजन थोडे ही कालमें वशमें कर लेते है नरकको देता जगतको नाश करनेवाला शत्रुसेनाको भय देनेवाली ॥ ३३ ॥

आयुर्बीजहरीराज्ञामस्तिवाक्येस्वयं धनिः ।
तस्माच्छास्त्रानुसारेणराजाकार्याणिसाधयेत् ।

अवस्थाके बीजको नाश करनेवाली शक्ति राजाओंके वाक्यमें स्वयं सिद्ध होती है तिससे राजा शास्त्रोंके अनुसार कार्योंको सिद्ध करे ॥ ३४ ॥

यदानकुर्यान्नृपतिःस्वयंकार्यविनिर्णयम् ।
तदातत्रनियुंजीतब्राह्मणंवेदपारगम् ॥ ३५॥

जिस समय राजा स्वयं कार्यका निर्णय न करे उस समय कार्यनिर्णयके लिये ऐसे ब्राह्मणको नियत करे जो वेदोंका पारगामी हो ॥ ३५ ॥

दांतंकुलीनंमध्यस्थमनुद्वेगकरंस्थिरम् ।
परत्रभीरुंधर्मिष्ठमुद्युक्तंक्रोधवर्जितम् ॥३६॥

और दान्त (जितेन्द्रिय) कुलीन मध्यस्थ (समबुद्धि) अनुद्वेगकारी (कोमलवचन) स्थिरबुद्धि परलोकसे भीरु (डरनेवाला) धर्मिष्ठ उद्योगी और क्रोधसे रहित हो ॥ ३६ ॥

यदाविप्रोनविद्वान्स्यात्क्षत्रियंतत्रियोजयेत् ।
वैश्यंवाधर्मशास्त्रज्ञंशूद्रंयत्नेनवर्जयेत् ।३७॥

यदि विद्वान् ब्राह्मण न मिले तो क्षत्री, क्षत्री न मिले तो धर्मशास्त्रके ज्ञाता वैश्यको उस पदपर नियत करे शूद्रको तो यत्नसे वर्ज दे ॥ ३७ ॥

यद्वर्णजोभवेद्राजायोज्यस्तद्वर्णजःसदा ।
तद्वर्णएवगुणिनःप्रायशःसंभवंतिहि ॥ ३८॥

जिस वर्णका राजा हो उसी वर्णके मनुष्यको नियत करे क्योंकि उसी वर्णमें प्रायः गुणवान् मनुष्य होते हैं ॥ ३८ ॥

व्यवहारविदःप्राज्ञावृत्तशीलगुणान्विताः ।
रिपौमित्रेसमायेचधर्मज्ञाःसत्यवादिनः ॥३९

व्यवहारके ज्ञाता आचारशील और गुणोंसे संयुक्त शत्रु और मित्रमें समान धर्मज्ञ सत्यवादी जो हों ॥ ३९ ॥

निरालसाजितक्रोधकामलोभाःप्रियंवदाः।
राज्ञानियोजितव्यास्तेसभ्याःसर्वासुजातिषु॥

निरालसी क्रोध काम लोभ ये जिन्होंने जीते हों, प्रियवादी हों ऐसे सभासद सब जातियोंमेंसे राजाने नियुक्त करने ॥ ४० ॥

कीनाशाःकारुकाःशिल्पिकुसीदिश्रेणनर्तकाः
लिंगिनस्तस्कराःकुर्युःस्वेनधर्मेणनिर्णयेत्॥

किसान, कारीगर, ( शिल्पी ) व्यवहारी नर्तक सन्यासी चोर ये सब अपने धर्मसे निर्णय करे ॥ ४१ ॥

अशक्योनिर्णयोह्यन्यैस्तज्जैरेवतुकारयेत्।
आश्रमेषुद्विजातीनांकार्येविवदतांमिथः॥ ४२

क्योंकि इनके निर्णयको अन्य नहीं कर सकते इन्हींकी जातिसे निर्णय करावे जो द्विजाति अपने आश्रमोंके कार्योंमे परस्पर विवाद करते हों ॥ ४२ ॥

नविब्रूयान्नृपोधर्मंचिकीर्षुर्हितमात्मनः।
तपस्विनांतुकार्याणित्रैविद्यैरेवकारयेत्॥४३॥

वहां अपने हित चाहनेवाला राजा धर्मके विरुद्ध न कहे और तपस्वियोंके कार्योंको तीनो वेदपाठी ब्राह्मणोंसे करावे ॥ ४३ ॥

मायायोगविदांचैवनस्वयंकोपकारणात्।
सम्यग्विज्ञानसंपन्नेनोपदेशंप्रकल्पयेत् ॥४४
उत्कृष्टंजातिशीलानांगुर्वाचार्यतपस्विनाम्।

मायावी और योगियोंके कार्यको क्रोधके डरसे राजा स्वयं न करे और भलीप्रकार ज्ञानवान् मनुष्यको उपदेश न करे उत्तम जाति तथा शीलवाले और गुरु आचार्य तपस्वियोंके भी ॥ ४४ ॥

आरण्यास्तुस्वकैःकुर्युःसार्थिकाःसार्थिकैःसह।

वनके वासी और सार्थिक ( साझी ) इनके कार्य्य इनके ही सङ्ग मिलकर करे ॥ ४५ ॥

सैनिकाःसैनिकैरेवग्रामेप्युभयवासिभिः।
अभियुक्ताश्चयेयत्रयन्निबंधंनियोजयेत्॥

सैनिकों (सेनाके योद्धा) के कार्य्य सैनिकोंके संग और ग्रामवासियोंके कार्य्य ग्राम और वनवासियोंके संग बैठकर करे जिसपदपर जो नियुक्तहो उनका निबन्ध जो राजाने नियत कर दिया हो ॥ ४६ ॥

तत्रत्यगुणदोषाणांतएवहिविचारकाः।
राजातुधार्मिकान्सभ्यान्नियुंज्यात्सुपरीक्षितान्॥ ४७॥

उसके गुण और दोषोंके विचार करनेवाले वे ही होते हैं परंतु राजा धार्मिक और भलीप्रकार परीक्षा करनेवाले सभासदोंको नियत करे ॥ ४७ ॥

व्यवहारधुरंवोढुंयेसक्ताःपुंगवाइव।
लोकवेदज्ञधर्मज्ञाःसप्तपंचत्रयोपिवा॥ ४८॥

जो व्यवहारके बोझा उठानेमें ऐसे समर्थ हों कि जैसे बैल और जो लोक वेद धर्म इनके ज्ञाता हों और सात पांच तीन हों ॥ ४८ ॥

यत्रोपविष्टाविप्राःस्युःसायज्ञसदृशीसभा।
श्रोतारोवणिजस्तत्रकर्तव्याःसुविचक्षणाः॥

जिससभामें ब्राह्मण बैठे हों वह सभा यज्ञसमान होती है और उससभामें अच्छे पंडित कार्योंके सुननेवाले वैश्य राजाने नियत करने ॥ ४९ ॥

अनियुक्तोनियुक्तोवाधर्मज्ञोवक्तुमर्हति।
दैवींवाचंसवदतियःशास्त्रमुपजीवति॥ ५०॥

राजाका नियुक्त हो वा अनियुक्त धर्मज्ञाता सभामें बोल सकता है क्योंकि जो शास्त्रको जानता है वह देवीवाणीको कहता है ॥ ५० ॥

सभावानप्रवेष्टव्यावक्तव्यंवासमंजसम्।
अब्रुवन्विब्रुवंश्चापिनरोभवतिकिल्बिषी॥

यातो मनुष्य सभामें जाय नहीं और जाय तो यथार्थ कहे क्योंकि न बोलने विरुद्ध बोलनेसे मनुष्यको पातक लगता है ॥ ५१ ॥

राज्ञायेविदिताःसम्यक्कुलश्रेणिगणादयः।
साहसस्तेयवर्ज्यानिकुर्युःकार्याणितेनृणाम्॥
विचार्यश्रेणिभिःकार्यंकुलैर्यन्नविचारितम्।
गणैश्चश्रेण्यविज्ञातंगणाज्ञातंनियुक्तकैः५३॥

जिन कुलश्रेणी गण आदिको राजा भली प्रकार जानता हो वे मनुष्योंके उन कार्योंको करे जिनमे साहस (हित) चोरीका सम्बंध न हों ॥ ५२ ॥ जिस कार्य्यका विचार कुलवालोंकी बुद्धिमे न आयाहो उस कार्यको विचारकर श्रेणी करे श्रेणियोंके विना जाने कार्य्य को गण करे गणके विना जानेको राजाका अधिकारी पुरुष करे ॥ ५३ ॥

कुलादिभ्योधिकाःसभ्यास्तेभ्योध्यक्षोऽधिकः
कृतः।सर्वेषामधिकोराजाधर्माधर्मनियोजकः।

कुलसे अधिक सभासद और सभासदोंसे अधिक अधिपति (मन्त्री) और सबसे अधिक धर्म अधर्मका नियुक्त करनेवाला राजा होता है ॥ ५४ ॥

उत्तमाऽधममध्यानांविवादानांविचारणात्
उपर्युपरिबुद्धीनांचरंतीश्वरबुद्धयः ॥ ५५ ॥

उत्तम मध्यम अधम जो विवाद उनके विचार करनेसे सब बुद्धियोंके ऊपर ईश्वर (राजा) की बुद्धि विचरती है ॥ ५५ ॥

एकंशास्त्रमधीयानोनविंद्यात्कार्यनिर्णयम्।
तस्माद्बह्वागमःकार्योविवादेयूत्तमोनृपैः ॥

एक शास्त्रका पढा हुआ मनुष्य कार्यके निर्णयको नहीं जानसकता तिससे राजा विवादोंके निर्णयार्थ एस उत्तम मनुष्यको नियत करै जिसने बहुत शास्त्र पढे हों ॥ ५६ ॥

सब्रूतेयंसधर्मःस्यादेकोवाध्यात्मचिन्तकः।
एकद्वित्रिचतुर्वारंव्यवहारानुचिंतनम् ॥५७॥

वह और अध्यात्म (ब्रह्म) की चिंता करनेवाला एकभी जिसको कहै वह धर्म होता है और एक दो तीन चार बार व्यवहारोंका अनुचिंतन ॥ ५७ ॥

कार्यंपृथक्पृथक्सभ्यैराज्ञाश्रेष्ठोत्तरैः सह।
अर्थिप्रत्यर्थिनौसभ्यैर्लेखकप्रेक्षकांश्चयः५८॥

पृथक् २ क्रमसे श्रेष्ठ सभासदोंके संग बैठकर करै और अर्थिप्रत्यर्थि (मुद्दई मुद्दाले) सभासद लेखक और देखने वालोंको जो ॥ ५८ ॥

धर्मवाक्यैरंजयतिसभ्यस्तारयिताभयात्।
नृपोधिकृतसभ्याश्चस्मृतिर्गणकलेखकौ ५९

धर्मके वाक्योंसे प्रसन्न करै वह सभासदोंको भयसे निवृत्त करता है राजा अधिकारी (मंत्री), सभासद, धर्मशास्त्र, गणक, लेखक ॥ ५९ ॥

हेमाग्न्यंबुस्वपुरुषाःसाधनांगानिवैदश।
एतद्दशांगकरणंयस्यामध्यास्यपार्थिवः॥६०॥

सुवर्ण, अग्नि, जल और राजाके पुरुष (सिपाही) ये दश कार्यसिद्धिके अंग हैं इस दश अंगरूप सामग्री सहित राजा जिसमे बैठकर ॥ ६० ॥

न्यायान्यायेकृतमतिःसासभाध्वरसन्निभा
दशानामपिचैतेषांकर्मप्रोक्तंपृथक्पृथक् ६१॥

न्याय और अन्यायमे बुद्धिको करता है वह सभा यज्ञके तुल्य है और इन दशोंका कर्मभी पृथक् २ कहा है ॥ ६१ ॥

वक्ताध्यक्षोनृपःशास्तासभ्याःकार्यपरीक्षकाः
स्मृतिर्विनिर्णयंब्रूतेजयंदानंदमंतथा ॥६२॥

अध्यक्ष (मंत्री) पढकर सुनावे राजा शिक्षादे, सभासद कार्यकी परीक्षा करैं धर्मशास्त्र उसके निर्णयको और जय दान दमको कहता है ॥ ६२ ॥

शपथार्थेहिरण्याग्नीअंबुतृषितक्षुब्धयोः।
गणकोगणयेदर्थंलिखेन्न्यायंचलेखकः ॥

शपथ (सौगंध) के लिये सुवर्ण, अग्नि, तृषावान् और क्रोधीके लिये जल गणक अर्थ (द्रव्य आदि) को गिने और लेखक न्यायको लिखे ॥ ६३ ॥

शब्दाभिधानतत्त्वज्ञौगणनाकुशलौशुची ।
नानालिपिज्ञौकर्तव्यौराज्ञागणकलेखकौ ॥

शब्द बोलने तत्त्वको जाननेवाले, गिनतीमें कुशल और शुद्ध अनेक लिपिके ज्ञाता जो हो ऐसे गणक और लेखक राजाको नियत करने ॥ ६४ ॥

धर्मशास्त्रानुसारेणअर्थशास्त्रविवेचनम् ।
यत्राधिक्रियतेस्थानेधर्माधिकरणंहितत् ॥

जिस स्थानमे धर्मशास्त्रके अनुसार अर्थशास्त्र ( व्यवहार ) का विवेचन होनेका अधिकरण ( प्रस्ताव) हो उस स्थानको धर्माधिकरण कहते हैं ॥ ६५ ॥

व्यवहारान्दिदृक्षुस्तुब्राह्मणैःसहपार्थिवः ।
मंत्रज्ञैर्मंत्रिभिश्चैवविनीतःप्रविशेत्सभाम् ६६ ॥

व्यवहार देखनेका अभिलाषी राजा नम्र होकर ब्राह्मण और मंत्रके ज्ञाता मंत्रियों सहित सभामे प्रवेश करे ॥ ६६ ॥

धर्मासनमधिष्ठायकार्यदर्शनमारभेत् ।
पूर्वोत्तरसमोभूत्वाराजापृच्छेद्विवादिनोः ६७

राजा धर्मासन ( राजगद्दी ) पर बैठकर कार्योंके देखनेका प्रारंभ करे और प्रारंभ तथा अंतमे समान ( इकसा ) होकर विवादियोंको पूछे ॥ ६७ ॥

प्रत्यहंदेशदृष्टैश्चशास्त्रदृष्टैश्चहेतुभिः ।
जातिजानपदान्धर्माञ्छ्रेणिधर्मास्तथैवच ॥

प्रतिदिन देश तथा शास्त्रमे देखे हेतुओंसे जाति देश और श्रेणियोंके धर्मोंको ॥ ६८ ॥

समीक्ष्यकुलधर्मांश्चस्वधर्मंप्रतिपालयेत् ।
देशजातिकुलानांचयेधर्माःप्राक्प्रवर्तिताः ॥

और कुलके धर्मोंको देखकर अपने धर्मकी पालना करे और देश जाति कुल इनके जो धर्म पूर्व वर्णन किये हैं ॥ ६९ ॥

तथैवतेपालनीयाःप्रजाप्रक्षुभ्यतेन्यथा ।
उद्ह्यतेदाक्षिणात्यैर्मातुलस्यसुताद्विजैः ७० ॥

उनकी पालना उसी प्रकार करैं क्योंकि उनके अन्यथा करनेसे प्रजा क्षोभको प्राप्त हो जाती है दक्षिण देशके द्विज मातुलकी कन्याको विवाह लेते हैं ॥ ७० ॥

मध्यदेशेकर्मकराःशिल्पिनश्चगराशिनः ।
मत्स्यादाश्चनराःसर्वेव्यभिचाररताःस्त्रियः ॥

मध्यदेशमे द्विज कर्म ( सेवा ) करते हैं शिल्पी हैं और विषको खाते हैं और सब नर मत्स्योंको खाते है, स्त्री व्यभिचारमें रत है ॥ ७१ ॥

उत्तरेमद्यपानार्यःस्पृश्यानृणांरजस्वला ।
खशजाताःप्रगृह्णंतिभ्रातृभार्यामभर्तृकाम् ७२

उत्तरकी स्त्री मदिरा पीती है, मनुष्य रजस्वला स्त्रियोंको स्पर्श करते है । खश देशके मनुष्य अपने भ्राताकी विधवा स्त्रीको ग्रहण कर लेते है ॥ ७२ ॥

अनेनकर्मणानैतेप्रायश्चित्तदमार्हकाः ।
येषांपरंपराप्राप्ताःपूर्वजैरप्यनुष्ठिताः ॥ ७३ ॥

इस पूर्वोक्त अपने २ कर्मसे ये प्रायश्चित्त और दंडके योग्य नहीं है जिनके जो कर्म परंपरासे चले आये हों और पहिले पुरुषोंने भी किये हों ॥ ७३ ॥

तएवतैर्नदुष्येयुराचारान्नेतरस्यतु ।
न्यायान्पश्येत्तुमध्याह्नेपूर्वाह्णेस्मृतिदर्शनम् ॥

उनही कर्मोंसे व दूषित नहीं होते और इतरके कर्मोंसे दूषित होतेही हैं राजा मध्याह्नके समय न्याय देखे और पूर्वाह्नमे स्मृति ( धर्मशास्त्र ) को देखे ॥ ७४ ॥

मनुष्यमारणेस्तेयेसाहसेत्तेयिकेसदा ।
नकालनियमस्तत्रसद्यएवविवेचनम् ॥७५॥

मनुष्य मारना, चोरी, साहस और आवश्यक कार्यमें समयका कोई नियम नहीं है किन्तु उसी समय विवेचन करे ॥ ७५ ॥

धर्मासनगतंदृष्ट्वाराजानंमंत्रिभिः सह ।
गच्छेन्निवेद्यमानंयत्प्रतिरुद्धमधर्मतः ॥७६॥

मंत्रियों सहित राजाको धर्मासनपर बैठा देखकर जाय और जो निवेदन करना हो उसको अधर्मके त्यागपूर्वक (सत्य २) कहै ॥ ७६ ॥

यथासत्यंचिंतयित्वालिखित्वावाममादितः
नत्वावाप्रांजलिःप्रह्वोह्यर्थीकार्यंनिवेदयेत् ॥

सत्यके अनुसार विचार कर, सावधानी से लिखकर और नवकर हाथ जोड़कर नमस्कार करके अर्थी (मुद्दई) अपने कार्यको निवेदन करै ॥ ७७ ॥

यथार्हमेनमभ्यर्च्यब्राह्मणैःसहपार्थिवः।
सांत्वेनप्रशमय्यादौस्वधर्मंप्रतिपादयेत् ७८।

इस अर्थीको ब्राह्मणोंसहित राजा यथायोग्य सत्कार करके और प्रथम शांतिके वाक्योंसे समझाकर अपने धर्मको कहै ॥७८॥

कालेकार्यार्थिनंपृच्छेत्प्रणतंपुरतःस्थितम्।
किंकार्यंकाचतेपीडामाभैषीर्ब्रूहिमानव ७९।

नमन किये और आगे खडे हुए कार्यार्थीको समयपर पूछे कि तेरा क्या कार्य है और तुझे क्या पीड़ा (दुःख) है तू कह और हे मनुष्य! भय मत कर ॥ ७९ ॥

केनकस्मिन्कदाकस्मात्पीडितोसिदुरात्मना
एवंपृष्टःस्वभावोक्तंतस्यसंशृणुयाद्वचः ८०॥

किस दुरात्माने किस जगह किस समय और किस कारणसे तुझे दुःख दिया है इस प्रकार पूछकर उस अर्थीके स्वभावसे कहे हुए वचनको भली प्रकार सुने ॥ ८० ॥

प्रसिद्धलिपिभाषाभिस्तदुक्तंलेखकोलिखेत्
अन्यदुक्तंलिखेदन्यद्योर्थिप्रत्यर्थिनांवचः ॥

प्रसिद्ध लिपि (अक्षर) और भाषामें उस अर्थीके कहे हुएको लेखक लिखे जो (लेखक) अर्थिप्रत्यर्थिके अन्य कहे वचनको अन्य लिखे ॥ ८१ ॥

चौरवत्त्रासयेद्राजालेखकंद्रागतंद्रितः।
लिखितंतादृशंसभ्यानविब्रूयुः कदाचन८२।

उस लेखकको राजा चोरके समान उसी समय सावधान होकर दंड दे और सभासद जो लिखा हो उसके विरुद्ध कदाचित् न भी कहै ॥ ८२ ॥

बलाद्गृह्णंतिलिखितंदंडयेत्तांस्तुचौरवत्।
प्राड्विवाकोनृपाभावेपृच्छेदेवसभागतम् ॥

जो बलसे लिखकर ग्रहण करै उन सभासदोंको चोरके समान दंड दे और राजाके न होनेपर सभामें आये मनुष्यको प्राड्विवाक पूछे ॥ ८३ ॥

वादिनौपृच्छतिप्राड्याविवाकोविविनक्त्यतः
विचारयतिसभ्यैर्वाधर्माऽधर्मौविवक्तिवा ॥

वादी विवादीको पूछनेसे प्राड् और सत्य असत्यके विवेक करनेसे विवाक अथवा सभासदोंके संग विचार और धर्म अधर्मके विवेकसे प्राड्विवाक (वकील) को कहते हैं ॥ ८४ ॥

सभायांयेहितायोग्याःसभ्यास्तेचापिसाधवः
स्मृत्याचारव्यपेतेनमार्गेणाधर्षितः परैः ॥

जो सभासद सभामें हित और योग्य हों वे साधु (अच्छे) होते हैं, धर्मशास्त्र और लोकाचारसे भिन्न जो मार्ग उस रीतिसे अन्य मनुष्य जिसको दुःख दे और ॥ ८५ ॥

आवेदयतिचेद्राज्ञेव्यवहारपदंहितत्।
नोत्पादयेत्स्वयंकार्यंराजानाप्यस्यपूरुषः ॥

वह राजाके यहां आकर निवेदन करे वही व्यवहार (झगडा) का स्थान होना है और राजा वा राजाका कोई मनुष्य स्वयं व्यवहारको पैदा न करै ॥ ८६ ॥

नरागेणनलोभेननक्रोधेनग्रसेन्नृपः।
परैरप्रापितानर्थान्नचापिस्वमनीषया ॥८७॥

राजा भी प्रीति लोभ क्रोधसे व्यवहार न ग्रसे (छिपावे) और दूसरोंसे नहीं प्राप्त हुए अर्थोंको अपनी बुद्धिसे न उठावे ॥ ८७ ॥

छलानिचापराधांश्चपदानिनृपतेस्तथा।
स्वयमेतानिगृह्णीयान्नृपस्त्वावेदकैर्विना ॥

छल अपराध और राजाकी पदवी इनको तो राजा निवदन करनेवालोंके विना भी ग्रहण करले ॥ ८८

**सूचकस्तोभकाभ्यांवाश्रुत्वाचैतानितत्त्वतः ।**
**शास्त्रेणनिंदितस्त्वर्थीनापिराज्ञाप्रचोदितः ॥**

सूचक ( चुगुल ) स्तोभक ( बहकानेवाला ) से इनके यथार्थ तत्त्वको सुनकर जो अर्थी शास्त्रसे निंदित और राजाने जिसको कुछ कहा न हो ॥ ८९ ॥

**आवेदयतियत्पूर्वंस्तोभकःसउदाहृतः ।**
**नृपेणाविनियुक्तोयःपरदोषानुवीक्षणे ॥९०॥**

और राजाके प्रति, प्रथम ही निवेदन करै उसे स्तोभक कहते हैं और राजाने जिसको दूसरोंके अपराध देखनेके लिये नियत कर रक्खा हो ॥ ९० ॥

**नृपंसंसूचयेज्ज्ञात्वासूचकःसउदाहृतः ।**
**पथिभंगीपराक्षेपीप्राकारोपरिलंघकः ॥९१॥**

और जो जानकर राजाको बता देता है वह सूचक कहा है, मार्गका भंजक, दूसरेकी निंदा, परकोटेका लंघन इनको जो करै ॥९१॥

**विपानस्यविनाशीचतथाचायतनस्यच ।**
**परिखापूरकश्चैवराजच्छिद्रप्रकाशकः ॥९२॥**

जो चौबच्चा और घरको नष्ट करै और खाईको मिट्टीसे भर दे और जो राजाके छिद्र ( बुराइ ) को प्रकाश करै ॥ ९२ ॥

**अंतःपुरंवासगृहंभांडागारंमहानसम् ।**
**प्रविशत्यनियुक्तोयोभोजनंचनिरीक्षते ९३॥**

अन्तःपुर ( रनवास ) बसनेका स्थान, पात्रोंका घर और भोजन बनानेका स्थान इनमे जो विना कहे चल जाय और जो भोजनको देखे ॥ ९३ ॥

**विण्मूत्रश्लेष्मवातानांक्षेप्ताकामान्नृपाग्रतः ।**
**पर्यंकासनबंधीचाप्यग्रस्थानविरोधकः ॥**

और जो विष्ठा मूत्र थूक अधोवायु इनको जानकर राजाके आगे फेके और पलंगपर आसन लगाकर बैठे और राजाके मुख्य स्थानका विरोध करै ॥ ९४ ॥

**नृपातिरिक्तवेषश्चविधृतःप्रविशेत्तुयः ।**
**यश्चोपद्वारेणविशेदवेलायांतथैवच ॥ ९५ ॥**

राजाके विरुद्ध वेषको धारण करै और धारण करके प्रवेश करै और जो प्रसिद्ध द्वारसे अन्यद्वारसे अथवा असमयपर प्रवेश करै ॥ ९५ ॥

**शय्यासनेपादुकेचशयनासनगेहणे ।**
**राजन्यासन्नशयनेयस्तिष्ठतिसमीपतः॥९६॥**

और जो राजाकी शय्यापर सोतेके समय शय्या आसन खडाऊँ अपने शय्यापर राजाके समीप बैठे ॥ ९६ ॥

**राज्ञोविद्विष्टसेवीचाप्यदत्तविहितासनः ।**
**अन्यवस्त्राभरणयोःस्वर्णस्यपरिधायकः ॥**

जो राजाके विरोधीसे मिल विना दियें आसन पर बैठे अन्यके वस्त्र भूषण सुवर्ण इनको धारण करै ॥ ९७ ॥

**स्वयंग्राहेणतांबूलंगृहीत्वाभक्षयेत्तुयः ।**
**अनियुक्तप्रभाषीचनृपाक्रोशकएवच ९८॥**

और जो पानको विना दिये स्वयं लेकर भक्षण करै, राजाकी आज्ञाके विना सम्भाषण करै और राजाकी निन्दा करै ॥ ९८ ॥

**एकवस्त्रस्तथाभ्यक्तोमुक्तकेशोवगुंठितः ।**
**विचित्रितांगःस्रग्वीचपरिधानविधूनकः ॥**

एकवस्त्र धारण किये, उबटना किये, केशोंको खोलकर, घूँघट लगायकर, अंगको चीतकर, माला पहनकर और वस्त्रोंको हिलाकर जो राजाके समीप जाय ॥ ९९ ॥

**शिरःप्रच्छादकश्चैवच्छिद्रान्वेषणतत्परः ।**
**आसंगीमुक्तकेशश्चघ्राणकर्णाक्षदर्शकः ॥**

शिरको ढके छिद्रोंको जो ढूँढे जिसका मन दूसरे काममे लगा हो, जिसके केश खुले हों जो नाक कान नेत्र इनको दिखावे ॥६००॥

**दंतोल्लिखनकश्चैवकर्णनासाविशोधकः ।**
**राज्ञःसमीपेपंचाशच्छलान्येतानिसंतिहि १।**

दांतोंके मैलको जो निकासे कान नाकके मैलको निकासे, ये पूर्वोक्त पचास ५० छल राजाके समीप होते हैं ॥ १ ॥

आज्ञोल्लंघनकर्तारःस्त्रीवधोवर्णसंकरः।
परस्त्रीगमनंचौर्यंगर्भश्चैवपतिंविना ॥ २ ॥
आज्ञाका अवलंघन करनेवाले, स्त्रीकी हत्या, वर्णोंका संकर, पराई स्त्रीका गमन, चोरी, पतिके विना गर्भकी स्थिति ॥ २ ॥

वाक्पारुष्यमवाच्यायदंडपारुष्यमेवच।
गर्भस्यपातनंचैवेत्यपराधादशैवतु ॥ ३॥
कठोर वाणी निन्दाके अयोग्यको कठोर दंड, गर्भका पातन ये दश अपराध होते हैं ॥ ३ ॥

उत्कृतीसस्यघातीचाप्यग्निदश्चतथैवच।
राज्ञोद्रोहप्रकर्ताचतन्मुद्राभेदकस्तथा ॥ ४ ॥
अन्नको जो काटे सस्य ( घास ) को नष्ट करै, अग्नि लगावे, राजाका जो द्रोह करै, राजाकी मुद्रा (मोहर) को जो नष्ट करै ॥ ४ ॥

तन्मंत्रस्यप्रभेत्ताचबद्धस्यचविमोचकः।
अस्वामिविक्रयंदानंभागंदंडंविचिन्वति॥५॥
राजाके मन्त्रको जो नष्ट करै बद्ध ( कैदी ) को जो छोड दे विना स्वामीके जो बेच दे वा दान करै, दंडके भागको जो ढूंढे ॥ ५ ॥

पटहाघोषणाच्छादिद्रव्यमस्वामिकंचयत्।
राजावलीढद्रव्यंचयच्चैवागोविनाशनम् ॥६॥
ढंडोरेके शब्दको जो छिपावे, विना स्वामीके द्रव्यको और राजाके मिलाने योग्य द्रव्य ( कर आदि ) को जो ले और जो अपराधीके अपराधको नष्ट करै ॥ ॥ ६ ॥

द्वाविंशतिपदान्याहुर्नृपज्ञेयानिपंडिताः।
उद्धतःक्रूरवाग्वेषोगर्वितश्चंडएवहि ॥ ७ ॥
हे पंडितो ये बाईस २२ पद राजाके जानने योग्य हैं और जो उद्धत ( उदंड ) कठोर बाणी तथा बेषवाला हो अभिमानी और क्रोधी हो ॥ ७ ॥

सहासनश्चातिमानीवादीदंडमवाप्नुयात्।
अर्थिनाकथितंराज्ञेतदावेदनसंज्ञकम् ॥ ८ ॥
जो एक आसनपर बैठे, अति अभिमानी, विवादी हो वह दंड देने योग्य है जो विषय अर्थी राजाके आगे आकर कहै उसे आवेदन ( अर्जी ) कहते हैं ॥ ८ ॥

कथितंप्राड्विवाकादेःसाभाषाखिलबोधिनी।
सपूर्वपक्षःसभ्यादिस्तंविमृश्ययथार्थतः ॥९॥
और प्राड्विवाक आदिसे कहै उसे भाषा कहते हैं उसीसे सबको बोध होता है उसी पूर्वपक्षको सभ्य आदि यथार्थ रीतिसे विचार करे ॥ ९ ॥

अर्थितःपूरयेद्धीनंतत्राक्ष्यधिकंत्यजेत्।
वादिनश्चिह्नितंसाक्ष्यंकृत्वाराजाविमुद्रयेत् ॥
उसमे जो काम हो उसको अर्थी ( मुद्दई ) से पूछकर पूर्ण करै और उसकी अधिक साक्षियोंको त्यागदे वादीके हस्ताक्षरसे चिह्नित कराकर राजाकी मुद्रासे अंकित करै ( मोहर लगा दे ) ॥ १० ॥

अशोधयित्वापक्षंयेह्युत्तरंदापयंतितान्।
रागाल्लोभाद्भयाद्वापिस्मृत्यर्थेवाधिकारिणः॥
विना पूर्वपक्षको शुद्ध किये जो उत्तर दिवाते हैं उनको और प्रीति लोभ भयसे जो धर्मशास्त्रके अधिकारी विरुद्ध करैं ॥ ११ ॥

सभ्यादीन्दंडयित्वातुह्यधिकारान्निवर्तयेत्।
ग्राह्याग्राह्यंविवादंतुसुविमृश्यसमाश्रयन् १२
उन सभासद आदिकोंको दंड दिवाकर उनके अधिकारोंको छीन ले और ग्रहण करने योग्य और अयोग्य विवादको भली प्रकार विचार कर राजा करै ॥ १२ ॥

संजातपूर्वपक्षंतुवादिनंसंनिरोधयेत्।
राजाज्ञयासत्पुरुषैःसत्यवाग्भिर्मनोहरैः १३॥
जब वादीका पूर्वपक्ष पूरा होले तब उस वादीको राजाकी आज्ञाके अनुसार सज्जन सत्यवादी मनोहर पुरुष रोक दें ॥ १३ ॥

निरालसैंगितज्ञैश्चदृढशस्त्रास्त्रधारिभिः।
वक्तव्येह्यतिष्ठंतमुत्क्रामंतंचतद्वचः ॥ १४॥
और जो आलस्यरहित चेष्टाके ज्ञाता दृढ

शस्त्र अस्त्रोंको जो धारण किये हों, जो वादी कहने योग्य अर्थमें न टिके अथवा अपने कहे वचन न अवलंबन करे ॥ १४ ॥

आसेधयेद्विवादार्थीयावदाह्वानदर्शनम् ।
प्रत्यर्थिनंतुशपथैराज्ञयावानृपस्यच ॥ १५ ॥

उसको तबतक रोक दे जबतक राजाकी आज्ञा न हो और प्रत्यर्थी ( मुद्दाले ) को सौगंध और राजाकी आज्ञासे रोके ॥ १५ ॥

स्थानासेधःकालकृतःप्रवासात्कर्मणस्तथा ।
चतुर्विधःस्यादासेधोनासिद्धस्तंविलंघयेत ॥

और वह आसेध स्थान काल, परदेश और कर्मसे पैदा होनेसे चार प्रकारका होता है उस आसेधको प्राप्तहुआ मनुष्य आसेधका अवलंघन न करे ॥ १६ ॥

यस्त्विंद्रियनिरोधेनव्याहारोच्छासनादिभिः ।
आसेधयेदनासेधैःसदंड्योनत्वतिक्रमी ॥ १७ ॥

जो मनुष्य इंद्रियोंके रोकने, वाणी, ऊर्ध्व-श्वास आदि अनासेधरूपोंमें आसेध करे वही दंड देने योग्य होता है और अवलंघन करने वाला दंड्य नहीं होता ॥ १७ ॥

आसेधकालआसिद्धआसेधंयोनिवर्तते ।
सविनेयोन्यथाकुर्वन्नासेद्धादंडभाग्भवेत् १८

आसेधके समयपर आसेधको प्राप्तहुआ जो मनुष्य आसेधसे हटता है अन्यथा करने पर वहदंड देने योग्य होता है आसेध करानेवाला दंडका भागी नहीं होता ॥ १८ ॥

यस्याभियोगंकुरुतेतत्त्वेनाशंकयाथवा ।
तमेवाह्वानयेद्राजामुद्रयापुरुषेणवा ॥ १९ ॥

जिस मनुष्यपर अपराधकी शंका हो वा जो यथार्थ अपराधी हो उस मनुष्यको ही राजा अपने पुरुष अथवा मुद्रासे बुलावे ॥ १९ ॥

शंकाऽसतांतुसंसर्गादनुभूतकृतेस्तथा ।
वोढाभिदर्शनात्तत्त्वंविज्ञास्यंतिविचक्षणाः २०

दुष्टोंके संबन्धसे अथवा बारंबार कार्यके देखनेसे शंका होती है और अपराधियोंके संग गमनसे पंडितजन तत्वको जानलेते हैं ॥ २० ॥

अकल्पबालस्थविरविषमस्थक्रियाकुलान् ।
कार्यातिपातिव्यसनिनृपकार्योत्सवाकुलान् ।

असमर्थ, बालक, वृद्ध, कठिण, काममें व्याकुल, कार्यमे अत्यंत आसक्त, व्यसनी, राजाके कार्य और उत्सवोंमें व्याकुल ॥ २१ ॥

मत्तोन्मत्तप्रमत्तार्तभृत्यान्नाह्वानयेन्नृपः ।
नहीनपक्षांयुवतींकुलेजातांप्रसूतिकाम् ॥ २२ ॥

मत्त, उन्मत्त, प्रमत्त, रोगी ऐसे भृत्योंसे अपराधियोंको राजा न बुलावे और हीन ( दुर्वल ) जिसका पक्ष हो उस स्त्रीको कुलीन स्त्री और प्रसूता स्त्रीकोभी राजा न बुलावे ॥ २२ ॥

सर्ववर्णोत्तमांकन्यांनज्ञातिप्रमुखाः स्त्रियः ।
निर्वेष्टुकामोरोगार्तोयियक्षुर्व्यसनेस्थितः ॥

ब्राह्मणकी कन्या और जातिमें मुख्य स्त्री इनकोभी न बुलावे विवाहमें उद्यत ( लगा ), रोगसे दुःखी, यज्ञका कर्ता, विपत्तिमें स्थित ॥ २३ ॥

अभियुक्तस्तथान्येनराजकार्योद्यतस्तथा ।
गवांप्रचारेगोपालाःसस्यवापेकृषीवलाः ॥

और अन्यके संग जिसका विरोध हो जो राजाके काममें लगा हो. जो गोपाल गौओंको चुगा रहे हों और जो किसान खेत बो रहे हों ॥ २४ ॥

शिल्पिनश्चापितत्कालमायुधीयाश्वविग्रहे ॥
अव्याप्तव्यवहारश्चदूतोदानोन्मुखोव्रती २५

जो शिल्पी हो और जो तत्कालमें लडाईमें आयुध धारण किये हों जो व्यवहारको न जानता हो, दूत, दान देनेको जो उद्यत हो और जो व्रतमें आसक्त हो ॥ २५ ॥

विषमस्थाश्चनासेयानचैतानाह्वयेन्नृपः ।
नदीसंतारकांतारदुर्देशोपप्लवादिषु ॥ २६ ॥

जो विषय ( भयानक ) स्थानमें बैठे हों इनका आसेद न करे ( न पकडे ) न राजा इनको बुलावे नदीका तिरना वन और भयानक देशके उपद्रव आदिमें ॥ २६ ॥

असिद्धस्तंपरासेधमुत्क्रामन्नापराध्नुयात् ।
कालंदेशंचविज्ञायकार्याणांचबलाबलम् ॥
जो मनुष्यको पकडे और वह उसके पकडनेको रोके तो अपराधी नहीं होता कार्य और देशको और कार्योंके बल अबलको जानकर ॥ २७ ॥

अकल्पादीनपिशुनान्यानैराह्वानयेन्नृपः ।
ज्ञात्वाभियोगंयेपिस्युर्वनेप्रव्रजितादयः ॥२८
असमर्थ और सज्जन आदिको राजा यान (सवारी) मे बुलवावे और जो वनमे संन्यासी आदि हों अपराध जानकर ॥ २८ ॥

तानप्याह्वानयेद्राजागुरुकार्येष्वकोपयन् ।
व्यवहारानभिज्ञेनह्यन्यकार्याकुलेनच॥२९॥
उनकोभी गुरु (भारी) कामके लिये इस प्रकार बुलावे जैसे वे कुपित न हों जो व्यवहारको न जानताहो अथवा अन्य कार्यमे व्याकुल हो ॥ २९ ॥

प्रत्यर्थिनार्थिनातज्ज्ञःकार्यःप्रतिनिधिस्तदा।
अप्रगल्भजडोन्मत्तवृद्धस्त्रीबालरोगिणाम् ॥
ऐसा प्रत्यर्थी और अर्थी व्यवहारके ज्ञाता प्रतिनिधि (मुखत्यार) को सदैव करले जो प्रगल्भ न हो, जड, उन्मत्त, वृद्ध, स्त्री, बालक, रोगी ॥ ३० ॥

पूर्वोत्तरंवदेद्बंधुर्नियुक्तोवाथवानरः ।
पितामातासुहृद्बंधुर्भ्रातासंबंधिनोपिच ॥३१
इनके पूर्व और उत्तर पक्षको बन्धु अथवा नियुक्त (मुखत्यार) मनुष्य अथवा पिता माता, मित्र, भ्राता वा सम्बन्धी कहैं ॥ ३१ ॥

यदिकुर्युरुपस्थानंवादंतत्रप्रवर्तयेत् ।
यःकश्चित्कारयेत्किंचिन्नियोगाद्येनकेनचित्
जो ये उपस्थान (पूर्वपक्ष) ठीक २ कर दे तो वहां विवादको प्रवृत्त करै, जो मनुष्य जिस किसीसे नियुक्त करके अपने किंचित् कार्यको कराले ॥ ३२ ॥

तत्तेनैवकृतंज्ञेयमनिवर्त्यंहितत्स्मृतम् ।
नियोगितस्यापिभृतिंविवादात्षोडशांशिकीम्
वह कार्य उसीका किया समझना वह हट नहीं सकता और जिस मनुष्यको नियत करै उसको सोलह भाग भृति (नोकरी) दे ॥ ३३ ॥

अन्यथाभृतिगृह्णंतंदंडयेच्चनियोगिनम् ।
कार्योनित्योनियोगीचनृपेणस्वमनीषया॥
जो नियुक्त किया मनुष्य अन्यथा भृतिको ग्रहण करता है उसको दंड दे और राजाभी सदाके लिये अपनी बुद्धिसे एक नियुक्त मनुष्य करै ॥ ३४ ॥

लोभेनत्वन्यथा कुर्वन्नियोगीदंडमर्हति ।
योनभ्रातानचपितानपुत्रोननियोगकृत् ॥
यदि नियुक्त मनुष्य लोभसे अन्यथा करै तो दंडके योग्य होता है जो भ्राता, पिता, पुत्र ये नियोगको न करैं और ॥ ३५ ॥

परार्थवादीदंड्यःस्याद्व्यवहारेषुविब्रुवन् ॥
तदधीनकुटुंबिन्यःस्वैरिण्योगणिकाश्चयाः॥
निष्कुलायाश्चपतितास्तासामाह्वानमिष्यते ।
पराये अर्थको कहै व्यवहारमें विरुद्ध कहता हुआ वह दंडके योग्य होता है और जिन स्त्रियोंके आधीन कुटुम्ब हो और जो व्यभिचारिणी और वेश्या हों ॥ ३६ ॥ जिनके कुल न हों और पतित हो ऐसी स्त्रियोंका बुलाना श्रेष्ठ है ॥

प्रवर्तयित्वावादंतुवादिनोतुमृतौयदि ॥३७॥
तत्पुत्रोविवदेत्तज्ज्ञोह्यन्यथातुनिवर्तयेत् ।
यदि विवादको लगाकर दोनों वादी मरगये हों ॥ ३७ ॥ तो व्यवहारका ज्ञाता उसका पुत्र विवाद करै यदि पुत्र न करै तो विवादको निवृत्त करदे ॥

मनुष्यमारणेस्तेयेपरदाराभिमर्शने ॥३८॥
अभक्ष्यभक्षणेचैवकन्याहरणदूषणे ।
प्रातिनिधिर्नदातव्यःकर्तातुविवदेत्स्वयम् ।
पारुष्येकूटकरणेनृपद्रोहेचसाहसे ॥३९॥
मनुष्यके मारना, चोरी, पराई स्त्रीके स्पर्शमें ॥ ३८ ॥ अभक्ष्य वस्तुके भक्षणमें

कन्याके हरने या दोष लगानेमें, कठोर वचन कहने, झूठ करने, राजाके द्रोह और-साहसमें प्रतिनिधिको न दे किंतु अपराध करनेवाला स्वयं विवाद करै ॥ ३९ ॥

आहूतोयत्रनोगच्छेद्दर्पाद्बंधुबलान्वितः ।
अभियोगानुरूपेणतस्यदंडंप्रकल्पयेत् ॥

जो बंधु और बलसे संयुक्त मनुष्य बुलाने पर न जाय तो अपराधके अनुसार उसके दंडकी कल्पना करै ॥ ४० ॥

दूतेनाह्वानितंप्राप्ताधर्षकंप्रतिवादिनम् ॥ ४१
दृष्ट्वाराज्ञातयोश्चिंत्योयथार्हप्रतिभूस्त्वतः ।
दास्याम्यदत्तमेतेनदर्शयामितवांतिके ॥ ४२

दूतके बुलानेसे प्राप्त हुये जो अपराधी और प्रतिवादी उनको ॥ ४१ ॥ देखकर राजा उन दोनोंके यथोचित साक्षीकी चिन्ता करै जो यह न देगा तो मैं दूंगा और आपके समीप पहुँचा दूँगा ॥ ४२ ॥

एनमाधिदापयिष्येह्यस्मात्तेनभयंक्वचित् ।
अकृतंचकरिष्यामिह्यनेनायंचवृत्तिमान् ॥

और इससे आधि (धरोहर) को दिवादूंगा इससे आपको कदाचित् भी भय न होगा जो इसने नहीं किया है उसे करादूंगा और यह आजीविकावाला है ॥४३॥

अस्तीतिनचमिथ्यैतदंगीकुर्यादतंद्रितः ।
प्रगल्भोबहुविश्वस्तश्चाधीनोविश्रुतोधनी ॥

यह कभी मिथ्या नहीं बोलेगा इस बातको निरालस होकर स्वीकार करै जो धनी प्रगल्भ हो जिसका अधिक विश्वास हो जो अधीन हो और विख्यात धनवान हो ॥ ४४ ॥

उभयोःप्रतिभूर्ग्राह्यःसमर्थःकार्यनिर्णये ।
विवादिनौसंनिरुध्यततोवादंप्रवर्तयेत् ॥ ४५

वादी और प्रतिवादीके ऐसे साक्षीको राजा ग्रहण करै जो कार्य निर्णय करनेमें समर्थ हो दोनों वादी प्रतिवादियोंको रोककर वादकी प्रवृत्तिको राजा करै ॥ ४५ ॥

स्वपुष्टौराजपुष्टौवास्वभृत्यापुष्टिरक्षकौ ॥
ससाधनौतत्त्वमिच्छुःकूटसाधनशंकया॥ ४६

जो स्वयं पोषण करै वा राजा जिसका पोषण करै अथवा अपनी भृति (नोकरी) से जो पोषण और रक्षा करै इन सबके साधन सहित तत्त्वकी इच्छाको राजा करै क्योंकि कोई साधन झूंठा न होजाय ॥ ४६ ॥

प्रतिज्ञादोषनिर्मुक्तंसाध्यंसत्कारणान्वितम् ।
निश्चितंलोकसिद्धंचपक्षंपक्षविदोविदुः ॥४७

प्रतिज्ञाके दोषोंसे रहित अच्छे कारणों सहित जो निश्चय किया और लोक सिद्ध साध्य, पक्षके जाननेवाले उसको पक्ष कहते हैं ॥ ४७ ॥

अन्यार्थमर्थहीनंचप्रमाणागमवर्जितम् ।
लेख्यहीनाधिकंभ्रष्टंभाषादोषाउदाहृताः ॥

जो अन्य अर्थवाला हो अथवा अर्थसे हीन (रहित) हो प्रमाण और आगमसे वर्जित हो लिखने योग्य बातसे हीन हो वा अधिक हो वा भ्रष्ट हो ये भाषा (अर्जी) के दोष कहे हैं ॥ ४८ ॥

अप्रसिद्धंनिराबाधंनिरर्थंनिष्प्रयोजनम् ।
असाध्यंवाविरुद्धंवापक्षाभासंविवर्जयेत् ॥

जो प्रसिद्ध न हो निराबाध हो निरर्थक हो निष्प्रयोजन हो असाध्य हो वा बिरुद्ध हो ऐसे पक्षाभास ( नामका पक्ष ) को बर्ज दे ॥ ॥ ४९ ॥

नकेनचिच्छ्रुतोदृष्टःसोऽप्रसिद्धउदाहृतः ।
अहंमूकेनसंशप्तोवंध्यापुत्रेणताडितः ॥५०॥

जो किसीने सुना न हो न देखा हो उसको अप्रसिद्ध कहते हैं, जैसे कि मुझे गूंगेने गाली दी और वंध्याके पुत्र [illegible]झे मारा ॥५०॥

अधीतेसुस्वरंगातिस्वेगेहेवि[illegible]रत्ययम् ।
धत्तेमार्गमुखद्वारंममगेहसमीपतः ॥ ५१ ॥

यह मनुष्य मेरे घरके समीप अपने घरमें बडे ऊंचे स्वरसे पढता है गाता है और अपने घरका दरवाजा भेडकर क्रीडा करता है ॥५१॥

इतिज्ञेयंनिराबाधंनिष्प्रयोजनमेवतत् ।
सदामद्दत्तकन्यायांजामाताविहरत्ययम् ॥

इसको निराबाध जानना और वही निष्प्रयोजन होता है, यह मेरा जमाई मेरी दी हुई कन्यामें सदैव विहार करता है ॥ ५२ ॥

गर्भंधत्तेनवंध्येयंमृतोयंनप्रभाषते ।
किमर्थमितितज्ज्ञेयमसाध्यंचविरुद्धकम् ॥

और गर्भ धारण करती है क्योंकि मेरी कन्या वंध्या नहीं है और मेरे संग मरा यह बोलता क्यों नहीं इसको असाध्य और विरुद्ध कहते हैं ॥ ५३ ॥

मद्दत्तदुःखसुखतोलोकोदुष्यतिनंदति ।
निरर्थमितिवाज्ञेयंनिष्प्रयोजनमेववा ॥५४॥

मेरे दिये दुःखसे जगत् दुःखी और सुखसे प्रसन्न होताहै इसको निरर्थक वा निष्प्रयोजन जानना ॥ ५४ ॥

श्रावयित्वातुयत्कार्यंत्यजेदन्यद्वदेदसौ ।
अन्यपक्षाश्रयाद्वादीहीनोदंडचश्चसस्मृतः ॥

जो यह पुरुष एक कार्यको सुना कर त्याग दे और अन्य कार्यको कहने लगे वह वादी अन्यपक्षके आश्रयसे हीन और दंड देने योग्य कहा है ॥ ५५ ॥

विनिश्चितेपूर्वपक्षेग्राह्याग्राह्यविशोधिते ।
प्रतिज्ञार्थेस्थिरीभूतेलेखयेदुत्तरंततः ॥५६॥

जब पूर्वपक्ष (अर्जी) का निश्चय हो जाय और ग्रहण करने योग्य वा अयोग्यका निश्चय होजाय और प्रतिज्ञा किया हुआ अर्थ स्थिर हो जाय उसके अनंतर उत्तरको लिखै ॥ ५६ ॥

तत्राभियोक्ताप्राक्पृष्टोह्यभियुक्तस्त्वनंतरम् ।
प्राड्विवाकसदस्याद्यैर्दाप्यतेह्युत्तरंततः ॥

उस समय वादीको प्रथम पूछे और प्रतिवादीको उसके अनंतर और फिर प्राड्विवाक और सभासद आदिसे उत्तर दिवावे ॥ ५७ ॥

श्रुतार्थस्योत्तरंलेख्यंपूर्वावेदकसन्निधौ ।
पक्षस्यव्यापकंसारमसंदिग्धमनाकुलम् ॥

सुने हुए अर्थका उत्तर वादीके सन्मुख लिखना चाहिये जो संपूर्ण पक्षका व्यापक (पूस) हो और सार, संदेहरहित व्याकुलतासे न दिया हो ॥ ५८ ॥

अव्याख्यागम्यमित्येतन्निर्दुष्टंप्रतिवादिना ।
संदिग्धमन्यत्प्रकृतादत्यल्पमतिभूरिच ॥

जो टीकाके विना समझाय और प्रतिवादी जिसमे कोई दोष न दे और जो उचित उत्तरसे भिन्न हो अथवा अत्यन्त अल्प और अत्यन्त अधिक हो वह संदिग्ध उत्तर कहाता है ॥ ५९ ।

पक्षैकदेशेव्याप्यंयत्तत्तुनैवोत्तरंभवेत् ।
नवाहूतोवदेत्किंचिद्धीनोदंडयश्चस स्मृतः ॥

जो उत्तर पूर्व पक्षके एकदेशका हो वह उत्तर नही होता और प्रतिवादी बुलाने पर कुछ न कहै वह हीन और दंड देने योग्य कहा है ॥ ६० ॥

पूर्वपक्षेयथार्थेतुनदद्यादुत्तरंतुयः ।
प्रत्यर्थीदापनीयःस्यात्सामादिभिरुपक्रमैः ॥

जो प्रतिवादी यथार्थभी पूर्वपक्षका उत्तर न दे वह शांति आदि उपायोसे दंड देने योग्य कहा है ॥ ६१ ॥

मोहाद्वायदिवाशाठ्याद्यन्नोक्तंपूर्ववादिना ।
उत्तरांतर्गतंवातत्प्रश्नैर्ग्राह्यंद्वयोरपि॥ ६२ ॥

मोह वा शठतासे जो बात पूर्व वादीने न कही हो,अथवा जो उत्तरमे ही आजाय वह बात पूँछकर दोनोंकी ग्रहण करने योग्य है ॥ ६२ ॥

सत्यंमिथ्योत्तरंचैवप्रत्यवस्कंदनंतथा ।
पूर्वन्यायविधिश्चैवमुत्तरंस्याच्चतुर्विधम् ६३ ॥

सत्य, मिथ्या, उत्तर और प्रत्यवस्कन्दन और पूर्वन्यायका विधान इन भेदोंसे उत्तर चार प्रकारका होता है ॥ ६३ ॥

अंगीकृतंयथार्थंयद्वाद्युक्तंप्रतिवादिना ।
सत्योत्तरंतुतज्ज्ञेयंप्रतिपत्तिश्चसास्मृता ६४॥

जिस वादीके कथनको प्रतिवादीने यथार्थ मानलियाहो उसको सत्योत्तर कहते हैं और वहां प्रतिपत्ति कही है ॥ ६४ ॥

श्रुत्वा भाषार्थमन्यस्तुयदितंप्रतिषेधति ।
अर्थतःशब्दतोवापिमिथ्यातज्ज्ञेयमुत्तरम् ॥

भाषा ( अर्जी ) के अर्थको सुनकर यदि उसका कोई अर्थ वा शब्दमें निषेध करै वह उत्तर मिथ्या जानना ॥ ६५ ॥

मिथ्यैतन्नाभिजानामितदातत्रमसन्निधिः ।
अजातश्चास्मितत्कालेइतिमिथ्याचतुर्विधम् ॥

यह मिथ्या है, मैं जानता नहीं, उस समय मैं वहां समीपमें नहीं था और उस समय मैं पैदाही नहीं हुआ था इस प्रकार मिथ्या चार प्रकारका है ॥ ६६ ॥

अर्थिनालिखितोह्यर्थःप्रत्यर्थीयदितंतथा ।
प्रपद्यकारणंब्रूयात्प्रत्यवस्कंदनंहितत् ॥६७॥

वादीने जो अर्थ लिखा हो उसको यदि वादी मानकर कोई कारण कहै उस उत्तरको प्रत्यवस्कन्दन कहते हैं ॥ ६७ ॥

अस्मिन्नर्थेममानेनवादःपूर्वमभूत्तदा ।
जितोऽयमस्तिचेद्ब्रूयात्प्राङ्न्यायःसउदाहृतः

इस विषयमें मेरा इनके संग पहिले विवाद हुआ था उसमें इसको पराजय कर चुकाहूं उस उत्तरको प्राङ्न्याय कहते हैं ॥ ६८ ॥

जयपत्रेणसभ्यैर्वासाक्षिभिर्भावयाम्यहम् ।
मयाजितःपूर्वमितिप्राङ्न्यायस्त्रिविधःस्मृतः

वह प्राङ्न्याय इन भेदोंसे तीन प्रकारका कहा है कि जयके पत्रसे वा सभासदोंसे वा साक्षियोंसे मैं भावना ( निश्चय ) कर सकताहूं ॥ ६९ ॥

अन्योन्ययोःसमक्षंतुवादिनोःपक्षमुत्तरम् ।
नहिगृह्णंतियेसभ्यादंड्यास्तेचौरवत्सदा ॥

जो सभासद दोनों वादी और प्रतिवादीके समक्ष ( सामने ) पक्ष वा उत्तरको ग्रहण न करैं वे सदैव चोरके समान दंड देने योग्य हैं ॥ ७० ॥

लिखितेशोधितेसम्यक्सतिनिर्दोषउत्तरे ।
अर्थिप्रत्यर्थिनोर्वापिक्रियाकारणमिष्यते ॥

तब दोनों वादी और प्रतिवादीकी क्रिया ( मुकद्दमा ) का करना अच्छा कहा है जब उत्तर लिखकर और शुद्ध होकर निर्दोष हो जाय ॥ ७१ ॥

पूर्वपक्षःस्मृतःपादोद्वितीयश्चोत्तरात्मकः ।
क्रियापादस्तृतीयस्तुचतुर्थोनिर्णयाभिधः ॥

और इन भेदोंसे न्याय चार प्रकारसे होता है प्रथम पाद पूर्वपक्ष, दूसरा पाद उत्तर, तीसरा पाद क्रिया और चौथा पाद निर्णय कहा है ॥ ७२ ॥

कार्यंहिसाध्यमित्युक्तंसाधनंतुक्रियोच्यते ।
अर्थीतृतीयपादेतुक्रियायाःप्रतिपादयेत् ॥

कार्यको साध्य कहते हैं और क्रियाको साधन और वादी क्रियारूप तीसरे पादमें साधनको कहै ॥ ७३ ॥

चतुष्पाद्व्यवहारःस्यात्प्रतिपत्त्युत्तरंविना ।
क्रमागतान्विवादांस्तुपश्येद्वाकार्यगौरवात् ॥

और प्रतिपत्ति उत्तरके विना व्यवहारके चार पाद होते हैं, और सभामें क्रमसे आये जो विवाद उनको कार्यके गौरवानुसार राजा देखै ॥ ७४ ॥

यस्यवाभ्यधिकापीडाकार्यंवाभ्यधिकंभवेत् ।
वर्णानुक्रमतोवापिनयेत्पूर्वंविवादयेत् ॥७५॥

जिसको अधिक पीडा हो अथवा जिसका कार्य अधिक हो अथवा जो चारों वर्णोंमें उत्तम हो उसकाही प्रथम न्याय वा विवादका निर्णय करै ॥ ७५ ॥

कल्पयित्वोत्तरंसभ्यैर्दातव्यैकस्यभावना ।
साध्यस्यसाधनार्थंहिनिर्दिष्टायस्यभावना ॥

सभासद उत्तरकी कल्पना करके यह देखैं कि देने योग्य वस्तुमें भावना किसकी है और साध्य वा साधनके लिये जिसकी भावना देखी हो ॥ ७६ ॥

विभावयेत्प्रतिज्ञातंसोऽखिलंलिखितादिना ।
नचैकस्मिन्विवादेतुक्रियास्याद्वादिनोर्द्वयोः॥

वही मनुष्य संपूर्ण प्रतिज्ञा कियेका लिखने आदिसे निश्चय करादे और एक विवादमें दो वादियोंकी क्रिया नहीं होती ॥ ७७ ॥

मिथ्याक्रियापूर्ववादेकारणेप्रतिवादिनि ।
प्राङ्न्यायकारणोक्तौ तुप्रत्यर्थीनिर्दिशेत्क्रियाम् ॥ ७८ ॥

पूर्व वादमें जो प्रतिवादी कारणको कहै वहां मिथ्याक्रिया होती है और प्रथम न्यायके कारणको प्रतिवादी कहै वहां प्रतिवादी ही उसका कारण दिखावे ॥ ७८ ॥

तत्त्वाच्छलानुसारित्वाद्भूतंभव्यंद्विधास्मृतम्
तत्त्वंसत्यार्थाभिधायिकूटाद्यभिहितंछलम् ॥

यथार्थ और छलके अनुसार भूत और भव्य दो प्रकारका कहा है जो सत्य अर्थका अभिधायी हो वह तत्त्व और जो कूटादिअर्थोंको कहै वह छल कहा है ॥ ७९ ॥

कारणात्पूर्वपक्षोपि उत्तरत्वं प्रपद्यते ।
ततोर्थीलेखयेत्सद्यःप्रतिज्ञातार्थसाधनम् ८०

किसी कारणसे पूर्वपक्ष भी उत्तर होजाता है, फिर अर्थी ( वादी ) अपने प्रतिज्ञा किये अर्थके साधनको लिखे ॥ ८० ॥

तत्साधनंतुद्विविधंमानुषंदैविकंतथा ।
त्रिधास्याल्लिखिताभुक्तिः साक्षिणश्चेतिमानुषम् ॥ ८१ ॥

वह साधन मानुष और दैविकभेदसे दो प्रकारका है तिनमें मानुष साधन इन भेदोंसे तीन प्रकारका होता है कि लिखा हुआ, वा भोगा हुआ अथवा जिसमें कोई साक्षीहो॥८१॥

दैवंघटादितद्भव्यंभूतालाभेनियोजयेत् ।
युक्त्यानुमानतोनित्यंसामादिभिरुपक्रमैः ८२

घट ( तोल ) आदि दैव होता है उसको भूत और भव्यके न मिलनेपर युक्ति अनुमान और साम आदि उपायोंसे नियुक्त करै ॥८२॥

नकालहरणंकार्यराज्ञासाधनदर्शने ।
महान्दोषोभवेत्कालाद्धर्मव्यापत्तिलक्षणः ॥

राजा साधनके देखनेमें विलंब न करै क्योंकि समयके विलम्बसे धर्मका नाशरूप महान् दोष होता है ॥ ८३ ॥

अर्थीप्रत्यर्थिप्रत्यक्षंसाधनानिप्रदर्शयेत् ।
अप्रत्यक्षंतयोर्नैवगृह्णीयात्साधनंनृपः ॥८४॥

वादी अपने साधनों ( सबूत ) को प्रतिवादीके सन्मुख दिखावे और राजा वादी और प्रतिवादीके अप्रत्यक्ष ( पीछे ) साधनको स्वीकार न करै ॥ ८४ ॥

साधनानांचयेदोषावक्तव्यास्तेविवादिना ।
गूढास्तुप्रकटाःसभ्यैःकालशास्त्रप्रदर्शनात् ॥

और प्रतिवादीके साधनोंमें जो दोष हों उनको वादी कहै और जो दोष गुप्त हों उनको काल और शास्त्रके अनुसार सभासद प्रगट करै ॥ ८५ ॥

अन्यथादूषयन्दंड्यःसाध्यार्थाद्धीयते ।
विमृश्यसाधनंसम्यक्कुर्यात्कार्यविनिर्णयम्

यदि वादी अन्यथा ( झूठा ) ही दोष दिखावे तो दंडदेने योग्य है और अपने साध्य अर्थको प्राप्त नहीं होता और राजा साधनको भलीप्रकार विचार कर कार्यका निर्णय करै ॥ ८६ ॥

कूटसाधनकारीतुदंड्यःकार्यानुरूपतः ।
द्विगुणंकूटसाक्षीतुसाक्ष्यलोपीतथैवच ८७॥

झूठा साधन करनेवालेको कार्यके अनुसार राजा दंड दे और झूँठे साक्षी और साक्षीके लोप करनेवालेको दूना दंड दे ॥ ८७ ॥

अधुनालिखितंवच्मियथावदनुपूर्वशः ।
अनुभूतस्मारकंतुलिखितंब्रह्मणाकृतम् ८८

अभी लिखे हुयेको क्रमसे यथार्थ कहता हूँ और जो अनुभूत ( बीती ) का जतानेवाला है वह लेख ब्रह्माका किया समझना ॥ ८८ ॥

राजकीयंलौकिकंचद्विविधंलिखितंस्मृतम् ।
स्वहस्तलिखितंवान्यहस्तेनापिविलेखितम् ॥

लेख दो प्रकारका होता है एक राजकीय और दूसरा लौकिक वह चाहै अपने हाथसे लिखा हो वा अन्यके हाथसे लिखा हो ॥ ८९ ॥

असाक्षिमत्साक्षिमच्चसिद्धिर्देशस्थितेस्तयोः।
भोगदानक्रियाधानसंविद्दासऋणादिभिः ॥

और चाहै वह साक्षीसे युक्त हो वा अयुक्तहो उसकी सिद्धि देशरीतिके अनुसार होती है और भोगन दान क्रिया आधान ( धरोहर ) संवित् ( करार ) दास और ऋण आदि भेदसे ॥ ९० ॥

सप्तधालौकिकंचैतत्रिविधंराजशासनम् ।
शासनार्थज्ञापनार्थंनिर्णयार्थंतृतीयकम् ९१॥

लौकिक सात प्रकारका और राजाका शासन तीन प्रकारका है, शिक्षाके लिये जतानेके लिये और तीसरा निर्णयके लिये ॥ ९१ ॥

राज्ञास्वहस्तसंयुक्तंस्वमुद्राचिह्नितंतथा ।
राजकीयंस्मृतंलेख्यंप्रकृतिभिश्चमुद्रितम् ॥

जो राजाने अपने हाथसे लिखा हो अथवा जिसपर राजाके प्रकृति (मंत्री) आदिने अपनी राजमुद्रा लगा दी हो अथवा ॥ ९२ ॥

निवेश्यकालंवर्षंचमासंपक्षंतिथिंतथा ।
वेलाप्रदेशंविषयंस्थानंजात्याकृतिंवयः ९३

जिसमे संवत् ऋतु महीना पक्ष तिथि समय देश विषय स्थान जाति आकार और अवस्था और ॥ ९३ ॥

साध्यंप्रमाणंद्रव्यंचसंख्यांनामतथात्मनः ।
राज्ञांचक्रमशोनाम निवासंसाध्यनामच ९४

साध्य ( दावेका द्रव्य आदि ) प्रमाण द्रव्य संख्या अपना नाम और क्रमसे राजाओंका नाम निवास और साध्यका नाम और ॥९४॥

क्रमात्पितॄणांनामानिपितामहतृतीयकम् ।
क्षमालिंगानिचान्यानिपक्षेसंकीर्त्यलेखयेत्॥

पितरोंके नाम पितामह और प्रपितामहके नाम और क्षमाआदिके अन्य चिह्न इन सबको पक्ष ( अर्जी ) में कहकर लिखवावे ॥ ९५ ॥

यत्रैतानिनलिख्यंतेहीनंलेख्यंतदुच्यते ।
भिन्नक्रमंव्युत्क्रमार्थंप्रकीर्णार्थंनिरर्थकम् ॥

जिसमें ये सब न लिखे जांय उसको हीनलेख कहते हैं और क्रमरहित और जिसका क्रम उलटा हो वा जिसका अर्थ प्रकीर्ण ( कम ) हो अथवा निरर्थक हो ॥ ९६ ॥

अतीतकाललिखितंनस्यात्तत्साधनक्षमम् ।
अप्रगल्भेणचस्त्रियाबलात्कारेणयत्कृतम् ॥

जो समय ( मियाद ) बिताकर लिखा है वह लेख साधनके योग्य नहीं होता और जो अप्रगल्भ मनुष्यने अथवा स्त्रीने किया हो वह भी साधनयोग्य नहीं ॥ ९७ ॥

सद्भिर्लेख्यैःसाक्षिभिश्चभोगैर्दिव्यैः-
प्रमाणताम् ।
व्यवहारेनरोयातिचेष्टासुप्राप्नुतेसुखम् ९८॥

और अच्छे लेख, साक्षी, भोग ( वर्तना वा कबजा ) दिव्य इनसे मनुष्य व्यवहारमें प्रमाणताको प्राप्त होता है और चेष्टाओंमे सुखका भागी होता है ॥ ९८ ॥

स्वेतरःकार्यविज्ञानीयःससाक्षीत्वनेकधा ।
दृष्टार्थश्चश्रुतार्थश्चकृतश्चैवाऽकृतोद्विधा ९९॥

अपनेसे भिन्न जो कार्यका ज्ञाता वह साक्षी होता है उसके अनेक भेद है एक वह जिसने देखाहो और जिसने सुना हो और वह साक्षी दो प्रकारका होता है, किया हो वा न किया हो ॥ ९९ ॥

अर्थिप्रत्यर्थिसान्निध्यादनुभूतंतुप्राग्यथा ।
दर्शनैःश्रवणैर्येनससाक्षितुल्यवाग्यदि ७००

वादी और प्रतिवादीके समीप जैसा प्रथम जिसने देखने वा सुननेसे जाना हो वह साक्षी होता है यदि उसकी वाणी एकसी रहे ॥ ७०० ॥

यस्यनोपहताबुद्धिःस्मृतिःश्रोत्रंचनित्यशः।
सुदीर्घेणापिकालेनसवैसाक्षित्वमर्हति॥ १ ॥

जिसकी बुद्धि, स्मरण और श्रोत्र ये सदैव बहुतकालतक नष्ट नहों वह मनुष्य साक्षी होनेके योग्य होता है ॥ १ ॥

अनुभूतःसत्यवाग्यःसैकःसाक्षित्वमर्हति।
उभयानुमतःसाक्षीभवत्येकोपिधर्मवित्॥२॥

जिसको सब सच्चा जानते हों वह एकही साक्षी होने योग्य होता है वादी और प्रतिवादी दोनोंकी संमतिसे एकभी धर्मका जाननेवाला साक्षी हो सकता है ॥ २ ॥

यथाजातियथावर्णसर्वेसर्वेषुसाक्षिणः।
गृहिणोनपराधीनाःसूरयश्चाप्रवासिनः॥३॥

जाति और वर्णके अनुसार सबही सबके साक्षी होसकतेहैं जो गृहस्थी पराधीन नहों और जो शूरवीर परदेशमें न रहते हों वे और ॥३॥

युवानःसाक्षिणःकार्याःस्त्रियःस्त्रीषुचकीर्तिताः।
साहसेषुचसर्वेषुस्तेयसंग्रहणेषुच ॥ ४ ॥

जो युवा हों वे साक्षी करने और स्त्रियोंकी साक्षी स्त्री करनी कही हैं, और संपूर्ण साहस चोरी और संग्रहणोंमें और ॥ ४ ॥

वाग्दंडयोश्चपारुष्येनपरीक्षितसाक्षिणः।
बालोज्ञानादसत्यात्स्त्रीपापाभ्यासाच्चकूटकृत्

कठोर वाणी और कठोर दंडमें साक्षियोंकी परीक्षा न करै अज्ञानसे बालक और झूंठी स्त्री और पापके अभ्याससे छलका कर्ता ॥ ५ ॥

विब्रूयाद्बांधवःस्नेहाद्वैरनिर्यातनादरिः।
अभिमानाच्चलोभाच्चविजातिश्चशठस्तथा॥

बन्धु स्नेहसे और शत्रु वरसे विरुद्ध कह सकता है तथा अभिमानसे लोभसे विजाति और शठभी विरुद्ध कह सकते हैं ॥ ६ ॥

उपजीवनसंकोचाद्भृत्यश्चैतेह्यसाक्षिणः।
नार्थसंबंधिनोविद्यायोनसंबंधिनोपिन ॥ ७॥

उपजीवन (नौकरी) के संकोचसे भृत्य येसब साक्षी नहीं हो सकते और धनके सम्बन्धी विद्या और योनिक सम्बन्धी भी साक्षी नहीं हो सकते ॥ ७ ॥

श्रेण्यादिषुचवर्गेषुकश्चिच्चेद्द्वेष्यतामियात्।
तस्यतेभ्योनसाक्ष्यंस्याद्द्वेष्टारःसर्वएवते ॥

जो श्रेणी आदि समूहमें कोई वैरभावको प्राप्त हो जाय उनसे उसकी साक्षी नहीं हो सकती क्योंकि वे सब वैरी होते हैं ॥ ८ ॥

नकालहरणंकार्यंराज्ञासाक्षिप्रभाषणे।
अर्थिप्रत्यर्थिसान्निध्येसाध्यार्थेपिचसन्निधौ॥

राजा साक्षीके कथनमें समयको न बितावे और वादी प्रतिवादीके सामने और साध्य अर्थकी समीपतामें ॥ ९ ॥

प्रत्यक्षंवादयेत्साक्ष्यंनपरोक्षंकथंचन।
नांगीकरोतियःसाक्ष्येदंडचःस्याद्दिशितोयदि

प्रत्यक्ष साक्षीको कहावे परोक्षमें कदाचित् न कहावे जो साक्षीको अंगीकार न करै वह साध्यके दंड देनेयोग्य है ॥ १० ॥

यःसाक्षान्नैवनिर्दिष्टोनाहूतोनैवदेशितः।
ब्रूयान्मिथ्येतितथ्यंवादंडचःसोपिनराधमः॥

जिसको साक्षीके लिये न कहा हो न बुलाया हो न आज्ञा दी हो वह नीच नर मिथ्या वा सत्य जैसी साक्षी दे दंड देने योग्य है ॥ ११ ॥

द्वैधेबहूनांवचनंसमेषुगुणिनांवचः।
तत्राधिकगुणानांचगृह्णीयाद्वचनंसदा ॥ १२

जो साक्षीमें दो प्रकार हों तो जिस तरफ बहुतोंका वचन हो उसको सत्य ग्रहण करै यदि दोनों पक्षोंमें साक्षी बराबर हों तो गुणवालोंका वचन ग्रहण करै और गुणवालोंमें भी जो अधिक गुणवाले हों उनके वचन सदैव ग्रहण करै ॥ १२ ॥

यत्रानियुक्तोपीक्षेतशृणुयाद्वापिकिंचन।
पृष्टस्तत्रापिसब्रूयाद्यथादृष्टंयथाश्रुतम् ॥१३॥

जहां विना नियुक्त किया भी पुरुष देख

वा कुछ सुने वहां वह भी अपने देखे और सुनेके अनुसार साक्षीको कह सकता है ॥१३॥

विभिन्नकालेयज्ज्ञातंसाक्षिभिश्चागतःपृथक् ।
एकैकंवादयेत्तत्रविधिरेषसनातनः ॥१४॥

और भिन्न २ समयमें साक्षियोंने जहा पृथक् २ जाना होय वहा एक २ से साक्षीका कथन करावे यह सनातनिक विधि है ॥ १४ ॥

स्वभावोक्तंवचस्तेषांगृह्णीयान्नबलात्कचित् ।
उक्तेतुसाक्षिणासाक्ष्येनप्रष्टव्यंपुनःपुनः ॥१५॥

उनके स्वभावसे कहे हुए वचनको ग्रहण करे और बलसे कभी न करे जब साक्षी देनेवाला अपनी साक्षीको कहदे तब वारंवार न पूछे ॥ १५ ॥

आहूयसाक्षिणःपृच्छेन्नियम्यशपथैर्भृशम् ।
पौराणैःसत्यवचनधर्ममाहात्म्यकीर्तनैः ॥१६॥

साक्षियोंको बुलाकर गंगा आदिकी सोगंद दे पुराणके सत्य वचन, धर्मका माहात्म्य इनको कहकर पूछे ॥ १६ ॥

अनृतस्यातिदोषैश्चभृशमुत्त्रासयेच्छनैः ।
देशेकालेकथंकस्मात्किंदृष्टंवाश्रुतंत्वया ॥

झूठ बोलनेमें अत्यन्त दोषोंसे बारम्वार भय दिखावे और शनैः २ इस प्रकार पूछे कि किस देशमें किस कालमें किस प्रकार किस कारण से तैंने इस विषयमें क्या देखा क्या सुना॥१७॥

लिखितंलेखितंयत्तद्वदसत्यंतदेवहि ।
सत्यंसाक्ष्यंब्रुवन्साक्षीलोकानाप्नोतिपुष्कलान्

जो लिखा हो अथवा लिखवाया हो उसीको सत्य कहे साक्षीमें सच बोलता हुआ साक्षी उत्तम २ लोकोंको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

इहचानुत्तमांकीर्तिंवागेषाब्रह्मपूजिता ।
सत्येनपूज्यतेसाक्षीधर्मःसत्येनवर्धते ॥१९॥

इस लोकमें उत्तम कीर्ति होती है यह वाणी वेदमें भी पूजित कही है सत्यसे साक्षी पुजाता है सत्यसे धर्म बढता है ॥ १९ ॥

तस्मात्सत्यंहिवक्तव्यंसर्ववर्णेषुसाक्षिभिः ।
आत्मैवह्यात्मनःसाक्षीगतिरात्मैवह्यात्मनः ॥

तिससे सब वर्णोंमें साक्षी सत्य कहे अपनी आत्माका साक्षी आप है अपनी आत्माका गति आत्मा ही है ॥ २० ॥

मावमंस्थास्त्वमात्मानंनृणांसाक्षिणमुत्तमम् ।
मन्यन्तेवैपापकारीनकश्चित्पश्यतीतिमाम् ॥

मनुष्योंके यथार्थ साक्षी आत्माका अनादर तू मतकर पाप करनेवाला मनुष्य यह मानता है कि मुझे कोई नहीं देखता ॥ २१ ॥

तांश्चदेवाःप्रपश्यंतितथाह्यंतरपूरुषः ।
सुकृतंयत्त्वयाकिंचिज्जन्मांतरशतैःकृतम् ॥

उसको देवता और सबका अन्तर्यामी परमेश्वर देखता है सो जो अनेक जन्मोंमें तने कुछ पुण्य किया है ॥ २२ ॥

तत्सर्वंतस्यजानीहियंपराजयसेमृषा ।
समाप्नोषिचतत्पापंशतजन्मकृतंसदा ॥२३॥

वह सब पुण्य उसका जान जिसकी तू झूठी पराजय करता है, उसने जो सौ जन्मोंमें पाप किया है उसको तू प्राप्त होगा ॥ २३ ॥

साक्षिणंश्रावयेद्देवसभायामरहोगतम् ।
दद्याद्देशानुरूपंतुकालंसाधनदर्शने ॥ २४ ॥

इस प्रकार साक्षीको सभामें सबके सन्मुख सुनावे और देशके अनुसार साधन ( सबूत ) दिखानेके लिये समय दे ॥ २४ ॥

उपाधिंवासमीक्ष्यैवदैवराजकृतंसदा ।
विनष्टेलिखितेराजासाक्षिभोगैर्विचारयेत् ॥

और दैव राजाकी उपाधिको देखकर लिखित नष्ट हो जाय तो राजा साक्षी और भोग ( कबजा ) से विचार करै ॥ २५ ॥

लेखसाक्षिविनाशेतुसद्भोगादेवचिंतयेत् ।
सद्भोगाभावतःसाक्षीलेखतोविमृशेत्सदा ॥

लेख और साक्षी दोनों न मिले तो उत्तम भोगसे ही विचार करै और अच्छा भोग न होय तो साक्षी और लेखसे सदैव विचार करै ॥ २६ ॥

केवलेनचभोगेनलेखेनापिचसाक्षिभिः ।
कार्यंनचिंतयेद्राजालोकदेशादिधर्मतः॥२७।

केवल भोगसे या केवल लेख अथवा साक्षियोंमे राजा लोक और देशके धर्मानुसार कार्यकी चिन्ता करे ॥ २७ ॥

कुशलालेख्यबिंबानिकुर्वंतिकुटिलाःसदा ।
तस्मान्नलेख्यसामर्थ्यात्सिद्धिरैकांतिकी मता ॥ २८ ॥

कुशल और कुटिल जो लिखनेवाले है वे सदैव बनावटके लेख कर लेते है तिससे लेखके बलसे सिद्धिका निर्णय नही माने ॥ २८ ॥

स्नेहलोभभयक्रोधैःकूटसाक्षित्वशंकया ।
केवलैःसाक्षिभिर्नैवकार्यंसिध्यतिसर्वदा ॥ २९ ॥

स्नेह, लोभ, भय, क्रोध इनसे झूठी साक्षी की शंका होसकती है इससे केवल साक्षियोंसे ही कार्यसिद्धि नहीं होती ॥ २९ ॥

अस्वामिकंस्वामिकंवाभुंक्तेयद्बलदर्पितः ।
इतिशंकितभोगैर्नकार्यंसिध्यतिकेवलैः॥३०॥

बलके अभिमानवाला मनुष्य अपनी और पराईको भोग सक्ता है इस प्रकार केवल शंकावाले भोगोंसे ही कार्यसिद्धि नही हो सकती ॥ ३० ॥

शंकितव्यवहारेषुशंकयेदन्यथानहि ।
अन्यथाशंकितान्सभ्यान्दंडयेच्चौरवन्नृपः ॥

जिन व्यवहारोंमे शंका हो उनमे अन्यथा शंका न करे यदि राजाके समासद अन्यथा शंका करे तो राजा चोरके समान दंडदे ॥३१॥

अन्यथाशंकनान्नित्यमनवस्थाप्रजायते ।
लोकोविभिद्यतेधर्मोव्यवहारश्चहीयते ॥३२॥

अन्यथा शंका करनेसे व्यवहारकी अनवस्था होती है अर्थात् निवटेरा नहीं होता लोकमे धर्म और व्यवहार दोनों नष्ट होते हैं ॥ ३२ ॥

सागमोदीर्घकालश्चविच्छेदोपरमोज्झितः ।
प्रत्यर्थिसंनिधानश्चभुक्तोभोगःप्रमाणवत् ॥

आगम (लेख) और दीर्घकाल और दूसरेका छोडा हुआ विच्छेद (भोगका अभाव) और प्रत्यर्थीकी समीपता इस प्रकार भोगाहुआ भोग प्रामाणिक होता है ॥ ३३ ॥

संभोगंकीर्तयेद्यस्तुकेवलंनागमंक्वचित् ।
भोगच्छलापदेशेनविज्ञेयःसतुतस्करः ॥३४॥
आगमेपिबलंनैवभुक्तिःस्तोकापियत्रनो ।

जो मनुष्य केवल भोगको बतावे और आगमको न बता दे वह भोगके छलके बहानेमे तस्कर (चोर) जानना वह आगम भी बलवान नहीं होता जहां कुछभी भोग न होय ॥ ३४ ॥

यंकंचिद्दशवर्षाणिसंनिधौप्रेक्षतेधनी ॥३५॥
भुज्यमानंपरैरर्थंनसतंलब्धुमर्हति ।

धनवाला मनुष्य जिस किसीको दश वर्षतक अपने समीप यह देखता है कि ॥३५॥ इसने पैदा हुये धनको दूसरे भोग रहे हैं उस धनको वह धनवान नहीं लेसक्ता ॥

वर्षाणिविंशतिर्यस्यभूर्भुक्तातुपरैरिह ॥३६॥
तिष्ठतिसमर्थस्यतस्यसेहननसिध्यति ।

जिस मनुष्यकी भूमिको २० बीस वर्षतक भोगाहो राजा विद्यमान और भूमिका स्वामी भी समर्थ होय उसकी वह भूमि सिद्ध नहीं हो सकती ॥ ३६ ॥

अनागमंतुयोभुंक्तेबहून्यब्दशतान्यपि॥३७॥
चौरदंडेनतंपापंदण्डयेत्पृथिवीपतिः ॥

और आगमके विना जो बहुतसे सैकडों वर्ष भी भोगे ॥ ३७ ॥ उस पापीको राजा चोरके समान दंड दे ॥

अनागमापियाभुक्तिर्विच्छेदोपरमोज्झिता ।
षष्टिवर्षात्मिकासापहर्तुंशक्यानकेनचित् ३८

और विना आगमभी निरंतर जो भोग॥३८॥ आठ वर्षतक होय उसको कोई नही छीन सकता है ॥

आधिःसीमाबालधनंनिक्षेपोपनिधिःस्त्रियः ।
राजस्वंश्रोत्रियस्वंचनभोगेनप्रणश्यति ।

उपेक्षांकुर्वतस्तस्यतूष्णीभूतस्यतिष्ठतः॥४०॥
कालेतिपन्नेपूर्वोक्तेतत्फलंनाप्नुतेधनी।
भोगःसंक्षेपतश्चोक्तस्तथादिव्यमथोच्यते४१

आधि ( धरोहर ) सीमा ( ग्रामपर्याप्त ) बालकका धन, सौंपना, स्त्री ॥ ३९ ॥ और राजा वेदपाठीका द्रव्य ये भोग ( वर्तना ) सेवन नहीं होता यदि वह उपेक्षा करे और चुपका बैठा रहे ॥ ४० ॥ तो पूर्वोक्त मर्यादाके बीतनेपरभी धनका स्वामी उसके फलको प्राप्त होता है सक्षेपसे भोग वर्णन किया अब दिव्य वर्णन करते हैं ॥ ४१ ॥

प्रमादाद्धनिनोयत्रत्रिविधंसाधनंनचेत्।
अर्थश्चापह्नुतेवादीतत्रोक्तस्त्रिविधोविधिः॥

यदि धनवालेके प्रमादसे जहां पर तीन प्रकारका साधन न होय और वादी अर्थ (धन)-को छिपाया चाहे तो वहां तीन प्रकारकी विधि कही है ॥ ४२ ॥

चोदनाप्रतिकालश्चयुक्तिलेशस्तथैवच।
तृतीयःशपथःप्रोक्तस्तैरेवंसाधयेत्क्रमात्४३॥

प्रेरणा समयका व्यत्यय और युक्तिका लेश और तीसरा शपथ ( सौगंद ) इन तीनसे कार्यकी सिद्धि राजा करे ॥ ४३ ॥

विशिष्टतर्कितायाचशास्त्रशिष्टाविरोधिनी।
योजनास्वार्थसंसिद्ध्यैसायुक्तिस्तुनचान्यथा

जो उत्तम तर्कना होय शास्त्र और शिष्टोंका जिसमे विरोध न होय और अपने अर्थकी सिद्धिका योग होय उसे युक्ति कहते है अन्यको नहीं ॥ ४४ ॥

दानंप्रज्ञापनाभेदःसंप्रलाभोक्रियाचया।
चित्तापनयनंचैवहेतवोहिविभावकाः॥४५॥

देना, समझना, फोडना, और उत्तम लोभ देना और मनको वशमे करना ये सब कार्यसिद्धिके हेतु होते हैं ॥ ४५ ॥

अभीक्ष्णंचोद्यमानोपिप्रतिहन्यान्नतद्वचः।
त्रिचतुःपंचकृत्वोवापरतोर्थंसदाप्यते॥४६॥

बारंबार प्रेरण करनेसे भी जो अपने बचनके तीन चार पांच बार कहनेसे न लौटे तो उसको प्रतिवादीसे धन मिल सकता है ॥ ४६ ॥

युक्तिष्वप्यसमर्थासुदिव्यैरेनंविमर्दयेत्।
यस्माद्देवैःप्रयुक्तानिदुष्करार्थेमहात्मभिः॥

जहां युक्ति भी असमर्थ होय (नचले) वहां दिव्योंसे मनुष्यका मर्दन करे क्योंकि देवता और महात्माओंने दुष्कर कर्मके लिये दिव्य कहे है ॥ ४७ ॥

परस्परविशुद्ध्यर्थंतस्माद्दिव्यानिवाप्यतः।
सप्तर्षिभिश्चभीत्यर्थैंस्वीकृतान्यात्मशुद्धये४८

परस्पर कार्यकी शुद्धिके लिये दिव्य उपाय होते हैं और डरानेके लिये सप्तर्षियोंनेभी आत्मशुद्धिके लिये दिव्योंको स्वीकार किया है ॥ ४८ ॥

स्वमहत्त्वाच्चयोदिव्यंनकुर्याज्ज्ञानदर्पतः।
वसिष्ठाद्याश्रितंनित्यंसनरोधर्मतस्करः॥४९॥

जो अपने महत्वसे और ज्ञानके अभिमानसे वसिष्ठआदि ऋषियोंके स्वीकार किये दिव्यको न माने वह मनुष्य धर्मका तस्कर होता है ॥ ४९ ॥

प्राप्तेदिव्येपिनशपेद्ब्राह्मणोज्ञानदुर्बलः।
संहरान्तिचधर्मार्धंतस्यदेवानसंशयः॥५०॥

ज्ञानका दुर्बल ब्राह्मण दिव्यकी प्राप्तिके समय निदान कर जो सौगन्द न करै तो देवता उसके आधे धर्मको हर लेते है ॥ ५० ॥

यस्तुस्वशुद्धिमन्विच्छन्दिव्यंकुर्यादतंद्रितः।
विशुद्धोलभतेकीर्तिंस्वर्गंचैवान्यथानहि ५१॥

जो मनुष्य अपनी शुद्धिकी इच्छा करताहुआ आलस्यको छोडकर दिव्यका स्वीकार करता है, विशुद्ध हुआ वह कीर्ति और स्वर्गको प्राप्त होता है अन्यथा नहीं होता ॥ ५१ ॥

अग्निर्विषंघटस्तोयंधर्माधर्मौचतंडुलाः।
शपथाश्चैवनिर्दिष्टामुनिभिर्दिव्यनिर्णये॥५२॥

अग्नि, विष, तुला, जल, धर्म, अधर्म, चावल और सौगंद ये सब दिव्यके निर्णयमे मुनियोंने कहे हैं ॥ ५२ ॥

पूर्वंपूर्वंगुरुतरंकार्यंदृष्ट्वानियोजयेत् ।
लोकप्रत्ययतःप्रोक्तंसर्वंदिव्यंगुरुस्मृतम् ॥

इनमें पहिला २ अधिक होता है और इनको कार्यको देखकर नियुक्त करै और जगत्की प्रतीतिसे कहा हुआ दिव्य संपूर्णही गुरु कहा है ॥ ५३ ॥

तप्तायोगोलकंधृत्वागच्छेन्नैवपदंकरे ।
तप्तांगारेषुवागच्छेत्पद्भ्यांसप्तपदानिहि ॥

तपाये हुए लोहेका गोला हाथपर रखनेसे यदि चिह्न न पडे अथवा जो मनुष्य सात पदतक तपाये हुए अंगारों पर गमन करै॥५४॥

तप्ततैलगतंलोहमाषंहस्तेननिर्हरेत् ।
सुतप्तलोहपत्रंवाजिह्वयासँल्लिहेदपि ॥५५॥

तपाये हुए तेलमें डाले हुए मासे भर लोहको हाथसे उठाले अथवा तपाये हुए लोहके पत्रको जिह्वासे चाटले ॥ ५५ ॥

गरंप्रभक्षयेद्धस्तैःकृष्णसर्पंसमुद्धरेत् । कृत्वा
स्वस्यतुलासाम्यंहीनाधिक्यंविशोधयेत् ॥

विषको भक्षण कर ले अथवा हाथसे काले सापको ले ( यदि इन पूर्वोक्तोंसे न मरे अथवा हानि न होय तो जानना कि सच्चा है ) अथवा तुलामें अपनी बराबरके पदार्थको रखकर हीन और अधिकताकी जांच करै ॥ ५६ ॥

स्वेष्टदेवस्नपनजमद्यादुदकमुत्तमम् ।
यावन्नियमितःकालस्तावदंबुनिमज्जनम् ॥

अपने इष्ट देवके स्नानके उत्तम जलका पान करै अथवा नियमित कालतक जलमें डूबा रहै ॥ ५७ ॥

अधर्मधर्ममूर्तीनामदृष्टहरणंतथा ।
कर्षमात्रांस्तंडुलांश्चचर्वयेच्चविशंकितः ५८।

अधर्म और धर्मकी मूर्तियोंको न देखे न हरै और एक तोलाभर चावल शंकाको त्याग कर चाब ले ॥ ५८ ॥

स्पर्शयेत्पूज्यपादांश्चपुत्रादीनांशिरांसिच ।
धनानिसंस्पृशेद्वाक्नुसत्येनापिक्षिपेत्तथा ॥

अपने पूज्य पिता आदिके चरणोंका, पुत्र आदिके शिरोंका अथवा धनका स्पर्श करै और शीघ्रही सत्यसे सौगंदको ग्रहण करै ॥ ५९ ॥

दुष्कृतंप्राप्नुयामद्यनश्येत्सर्वंतुसत्कृतम् ।
सहस्रेपहृतेचाग्निःपादोनेचविषंस्मृतम् ॥

मुझे आज पाप प्राप्त हो और सपूर्ण सत्कर्म नष्ट हो जाय हजारकी चोरी पर अग्नि और इससे चौथाइ कमपर विषदेना कहा है ॥६०॥

त्रिभागोनेधटःप्रोक्तोह्यर्धेचसलिलंतथा ।
धर्माधर्मौतदर्धेचह्यष्टमांशेचतंडुलाः ॥६१॥

त्रिभागसे कममें धट ( तुला ) आधेमें जल और इससे आधेमें धर्म और अधर्म आठवें अंशकी चोरीमें चावल ॥ ६१ ॥

षोडशांशेचशपथाएवंदिव्यविधिःस्मृतः ।
एषांसंख्यानिकृष्टानांमध्यानांद्विगुणास्मृता

और सोलहवें भागमें शपथ ( सौगंद ) इस प्रकार दिव्य प्रमाणकी विधि कही है और निकृष्टोंकी यह सख्या है म यम दिव्योंकी संख्या दूनी कही है ॥ ६२ ॥

चतुर्गुणोत्तमानांचकल्पनीयापरीक्षकैः ।
शिरोवर्तियदानस्यात्तदादिव्यंनदीयते ६३।

और परीक्षक जन उत्तम दिव्योंकी चौगुनी संख्याको कल्पना करै जब शिरोवर्ति अर्थात् शिरका कांपना न हो तो उस समयमें दिव्य प्रमाणको न दे ॥ ६३ ॥

अभियोक्ताशिरःस्थानेदिव्येषुपरिकीर्त्यते ।
अभियुक्तायदातव्यंदिव्यंश्रुतिनिदर्शनात् ॥

अभियोक्ता ( अर्जी देनेवाला ) का शिर भी दिव्योंमें गिना है, श्रुतिकी आज्ञासे अभियुक्त ( मुद्दायले ) को भी दिव्य देना ॥ ६४ ॥

नकश्चिदभियोक्तारंदिव्येषुविनियोजयेत् ।
इच्छयात्वितरःकुर्यादितरोवर्तयेच्छिरः ॥

कोई भी न्याय करने वाला अभियोक्ता ( मुद्दई ) को दिव्य प्रमाणोंमें नियुक्त न करै अर्थात् उससे दिव्य न लेवावे और इतर अपनी इच्छासे दिव्यको करै और दूसरा शिरको हिलादे ॥ ६५ ॥

पार्थिवैःशंकितानांचनिर्दिष्टानांचदस्युभिः ।
आत्मशुद्धिपराणांचादिव्यंदेयंशिरोविना ॥

जिन मनुष्योंपर राजाओंकी शंका हो और जो चोरोंके संग देखे हों और जो अपराधी अपनी शुद्धि चाहते हों उन सबको दिव्य देना परन्तु शिरके विना ॥ ६६ ॥

परदाराभिशापेचह्यगम्यागमनेषुच ।
महापातकशस्तेचदिव्यमेवचनान्यथा ६७॥

पराई दाराके अभिशाप ( गालीदेना)गमन के अयोग्य स्त्रीका गमन, महापातकी, इतने अपराधियोंको दिव्य प्रमाण दे अन्यथा नदे६७॥

चौर्याभिशंकायुक्तानांतप्तमाषोविधीयते ।
प्राणांतिकविवादेतुविद्यमानेपिसाधने॥६८॥

जो प्राणी चोरीकी शंकासे युक्त हैं उनको तपाये हुये मासभर सोनेका दिव्य कहा है जो विवाद प्राणांतिक ( खूनके ) हों उनमें चाहे साधनभी विद्यमान हो ॥ ६८ ॥

दिव्यमालंबतेवादीनपृच्छेत्तत्रसाधनम् ।
सोपधंसाधनंयत्रतद्राज्ञेश्राविवंयदि ॥६९॥

वहांपर वादी दिव्यप्रमाणको आलंबन ( स्वीकार ) करे तो ऐसे स्थलमें न्याय करनेवाला साधनको न पूछे यदि कहीं साधनमें कोई छल प्रतीत होय और वह राजाको सुना दिया होय तो ॥ ६९ ॥

शोधयेत्तत्तुदिव्येनराजाधर्मासनस्थितः ।
यन्नामगोत्रैर्यल्लेख्यतुल्यंलेख्यंयदाभवेत् ॥

धर्मासनपै बैठा हुआ राजा उसको दिव्यसे शोधन करे जो भाषा पत्रिका ( अर्जी ) लिखना नाम और गोत्रके तुल्य होय ॥ ७० ॥

अगृहीतधनेतत्रकार्योदिव्येननिर्णयः ।
मानुषंसाधनंनस्यात्तत्रदिव्यंप्रदापयेत् ७१।

और प्रतिवादीने धनको ग्रहण न किया होय तो वहांपर दिव्य प्रमाणसे निर्णय करे और जहा कोई लौकिक साधन न होय वहां पर भी दिव्यको दे ॥ ७१ ॥

अरण्येनिर्जनेरात्रावंतर्वेश्मनिसाहसे ।
स्त्रीणांशीलाभियोगेषुसर्वार्थापह्नवेषुच ७२॥

निर्ज्जन वनमें, रात्रि, गृहके भीतर, साहस (हिंसा आदि ) स्त्रियोंके आचरणका अभियोग और सर्वथा झूंठ इनमे ॥ ७२ ॥

प्रदुष्टेषुप्रमाणेषुदिव्यैःकार्यविशोधनम् ।
महापापाभिशप्तेषुनिक्षेपहरणेषुच ॥७३॥
दिव्यैःकार्यपरीक्षेतराजासत्स्वपिसाक्षिषु ॥

और जहां अन्य प्रमाणोंकी दुष्टता होगई हो वहां दिव्य प्रमाणोंसे शोधन करे महान् पापोंके अभिशाप ( लगाना ) में और निक्षेप (धरोहर ) हरनेमें ॥ ७३ ॥ चाहे साक्षीभी विद्यमान होय तो भी राजा दिव्योंमें ही झूठे सबकी परीक्षा करै ॥

प्रथमायत्रभिद्यंतेसाक्षिणश्चतथापरे ॥७४॥
परेभ्यश्चतथाचान्येतंवादंशपथैर्नयेत् ।

जिस बादमे पहिले साक्षी और दूसरे साक्षी भेदनको प्राप्त होजायँ ॥ ७४ ॥ और किसी प्रकार अन्यभी साक्षी टूट जायँ ऐसे बादको राजा शपथोंसे निर्णय करै ॥

स्थावरेषुविवादेषुयुगश्रेणीगणेषुच॥ ७५ ॥
दत्तादत्तेषुभृत्यानास्वामिनांनिर्णयेसति ।
विक्रियादानसंबंधेक्रीत्वाधनमयच्छति ॥
साक्षिभिर्लिखितेनाथभुक्त्याचैतान्प्रसाधयेत् ।

स्थावरोंके विवादोंमें युगश्रेणी ( सला ) गणोंमे ॥ ७५ ॥ दिये और न दियेमें सेवक और स्वामीके देनेके और न देनेके निर्णयमें बेचने और दानके संबंधमें और पदार्थकोखरीदकर धनके न देनेमें ॥ इन सबका निर्णय साक्षियोंके लेखसे अथवा भुक्ति ( वर्त्तना ) से करै ॥ ७६ ॥

विवाहोत्सवद्यूतेषुविवादेसमुपस्थिते ७७॥
साक्षिणः साधनंतत्रनदिव्यंनचलेखकम् ।

विवाह उत्सव द्यूत ( जूआ ) यदि इनमें विवाद उपस्थित होय तो ॥ ७७ ॥ वहां साक्षी ही निर्णयके साधन होते हैं न दिव्य न लेख ॥

**द्वारमार्गक्रियाभोग्यजलवाहादिषुतथा ७८**
**भुक्तिरेवतुगुर्वीस्यान्नदिव्यंनचसाक्षिणः।**

द्वार मार्गका करना और जलके प्रवाह आदिके भोगमें ॥ ७८ ॥ भोगना ( वर्तना ) ही भारी प्रमाण है और न दिव्य है न साक्षी हैं ॥

**यद्येकोमानुषींब्रूयादन्योब्रूयात्तुदैविकीम्।**
**मानुषींतत्रगृह्णीयान्नतुदैवींक्रियांनृपः ७९॥**

जिस विवादमें एक मनुष्य मानुषी क्रियाको कहे और दूसरा दिव्य क्रियाको कहे वहांपर राजा मानुषी क्रियाको ग्रहण करे दैवीको नहीं ॥ ७९ ॥

**यद्येकदेशप्राप्तापिक्रियाविद्येतमानुषी।**
**साग्राह्यानतुपूर्णापिदैविकविदतांनृणाम ८०**

जो किसी एक देशमें भी मानुषी क्रिया मिल जाय तो विवाद करते हुए मनुष्योंमें उस मानुषीक्रियाको राजा ग्रहण करे और पूरी भी दिव्य क्रियाको ग्रहण न करे ॥ ८० ॥

**प्रमाणैर्हेतुचरितैःशपथेननृपाज्ञया।**
**वादिसंप्रतिपत्त्यावानिर्णयोष्टविधःस्मृतः ८१**

प्रमाण, हेतु आचरण, शपथ ( सौगंध ) राजाकी आज्ञा, वादीकी सम्प्रतिपत्ति (सन्तोष ) इस प्रकार पूर्वक निर्णय आठ तरहका कहा है ॥ ८१ ॥

**लेख्यंयत्रनविद्येतनभुक्तिर्नचसाक्षिणः।**
**नचदिव्यावतारोस्तिप्रमाणंतत्रपार्थिवः ८२**

जिस विवादमें न लेख होय, न भुक्ति होय और न साक्षी होय और न दिव्यका कोई निश्चय होय ऐसे स्थलमें राजा ही प्रमाण है ॥ ८२ ॥

**निश्चेतुंयेनशक्याःस्युर्वादाःसंदिग्धरूपिणः।**
**सीमाद्यास्तत्रनृपतिःप्रमाणंस्यात्प्रभुर्यतः॥**
**स्वतंत्रःसाधयन्नर्थान्राजापिस्याच्चकिल्बिषी ॥ ८४ ॥**

उसीसे सन्देहरूप विवाद निश्चय करनेको शक्य होते हैं ॥ ८३ ॥ सीमा आदि सन्देहके विवादमें भी राजा ही प्रमाण है क्योंकि वह प्रभु है जो राजा स्वतन्त्र होयके अर्थों (विवाद) को सिद्ध करता है वह भी पापी होजाहै ॥८४॥

**धर्मशास्त्राविरोधेनह्यर्थशास्त्रंविचारयेत्।**
**राजामात्यप्रलोभेनव्यवहारस्तुदुष्यति ८५**

धर्मशास्त्रके अविरोधसे राजा नीति शास्त्रको विचारे जिस व्यवहारमें राजा और मन्त्रीको लोभ होता है वह दूषित हो जाता है ॥ ८५ ॥

**लोकोपिच्यवतेधर्मात्कूटार्थंसंप्रवर्तते।**
**अतिकामक्रोधलोभैर्व्यवहारः प्रवर्तते ८६॥**

और जगत् भी धर्मसे गिर जाता है और कपटमें प्रवृत्त होजाता है अत्यन्त काम क्रोध लोभ इनसे ही व्यवहार (विवाद) प्रवृत्त होता है ॥ ८६ ॥

**कर्तृंस्तथासाक्षिणश्चसभ्यान्राजानमेवच।**
**व्याप्नोत्यतस्तुतन्मूलंछित्त्वार्तांविमृशन्नयेत् ॥**

और वह करनेवाला साक्षी सभासद राजा इन सबमें फलता है इससे राजा काम क्रोध लोभ मोह जो व्यवहारके मूल हैं उनको दूर करके विचारपूर्वक निर्णय करे ॥ ८७ ॥

**अनर्थंचार्थवत्कृत्वादर्शयंतिनृपाययेः।**
**अविचिंत्यनृपस्तथ्यंमन्यतेतैर्निदर्शितः ८८**

जो सभासद राजाको अनर्थका अर्थ दिखावें और इनके कहे हुएको राजा विना विचारे सत्य मानले ॥ ८८ ॥

**स्वयंकरोतितद्वत्तौभुञ्जतोष्टगुणंत्वघम्।**
**अधर्मतःप्रवृत्तंतंनोपेक्षेरन्सभासदः ८९**

वा अर्थ तथा अनर्थको राजा स्वयं करे तो वे दोनों आठगुने पापको भोगते हैं, अधर्ममें प्रवृत्त हुए राजाकी सभासद उपेक्षा न करें ॥ ८९ ॥

**उपेक्ष्यमाणाःसनृपानरकंयान्त्यधोमुखाः।**
**धिग्दंडस्त्वथवाग्दंडःसभ्यायत्तौतुतावुभौ ॥**

यदि उपेक्षा करें तौ राजा और सभासद नीचेको मुख करके नरकमें जाते हैं धिक्कार-

का दंड और वाणीका दंड ये दोनों सभासदों-के आधीन होते हैं ॥ ९० ॥

अर्थदंडवधावुक्तौराजायत्तावुभावपि ।
तीरितंचानुशिष्टंचयोमन्येतविधर्मतः ॥९१॥

धनका दंड और वध ये दोनों राजाके आधीन होते हैं जिस तीरित (हुक्म) और शिक्षाको राजा अधर्ममें की हुई माने ॥ ९१ ॥

द्विगुणंदंडमादायपुनस्तत्कार्यमुद्धरेत् ।
साक्षिसभ्यावसन्नानांदूषणंदर्शनेपुनः ९२॥

सभासदोंसे दूना दंड लेकर दुबारा उसकार्यका उद्धार ( प्रारंभ ) करे यदि साक्षी सभासद इनमें कोई दूषण पाया जाय तो भी पुनः उद्धार करे ॥ ९२ ॥

स्वचर्यावसितानांचप्रोक्तःपौनर्भवोविधिः ।
अमात्यःप्राड्विवाकोवायेकुर्युःकार्यमन्यथा

जो सभासद अपने कार्यमें भूल जाय तो भी कार्य्यकी विधि पुनः कही है यदि मन्त्री वा प्राड्विवाक (वकील) कार्यको अन्यथा करदे ॥ ९३ ॥

तंसर्वंनृपतिःकुर्यात्तान्सहस्रंतुदंडयेत् ।
नहिजातुविनादंडंकश्चिन्मार्गेवतिष्ठते ९४॥

उस सम्पूर्णकार्य्यको राजा करै और उन दोनोंको सहस्रमुद्रा दंड दे क्योंकि विना दंड कोई भी मार्गमें नहीं टिकता ॥ ९४ ॥

संदर्शितेसभ्यदोषेतदुद्धृत्यनृपोनयेत् ।
प्रतिज्ञाभावनाद्वाहिप्राड्विवाकादिपूजनात् ॥

यदि सभासदोंका कोई दोष दिखाया जाय तो उस दोषको निकाल कर राजा स्वयं न्याय करै प्रतिज्ञाकी सत्यता और प्राड्विवाक ( वकील ) आदिके पूजनसे ॥ ९५ ॥

जयपत्रस्यचादानाज्जयीलोकेनिगद्यते ।
सभ्यादिभिर्विनिर्णिक्तंविधृतंप्रतिवादिना ॥

और जयपत्रके ग्रहणसे जगत्में जीतनेवालेको जयी कहते हैं। जो सभासदोंने निर्णय किया हो और प्रतिवादीने मान लिया हो ॥ ९६ ॥

दृष्ट्वाराजातुजयिनेप्रदद्याज्जयपत्रकम् ।
अन्यथाह्यभियोक्तारंनिरुध्याद्बहुवत्सरम् ॥
मिथ्याभियोगसदृशमर्हयेदभियोगिनम् ।

ऐसे जयपत्रको देखकर राजा जीतनेवालेको दे । अन्यथा ( पूर्वोक्त न होय तो ) अभियोक्ता ( अरजी देनेवाले ) को बहुतवर्षतक कैद करै ॥ ९७ ॥ और मिथ्या अभियोग ( अर्जी ) के समान अभियोगी ( मुद्दायले ) का पूजन करै ॥

कामक्रोधौतुसंयम्ययोर्थान्धर्मेणपश्यति ॥
प्रजास्तमनुवर्ततेसमुद्रमिवसिंधवः ।
जीवतोरस्वतंत्रःस्याज्जरयापिसमन्वितः९९

जो राजा कामक्रोधको रोककर धर्मपूर्वक अर्थों ( दावे ) को देखता है ॥९८॥ उस राजाके अनुकूल प्रजा इस प्रकार होती है जैसे समुद्रके नदी । माता पिताके जीते हुए वृद्ध भी पुत्र स्वतंत्र नहीं होता ॥९९॥

तयोरपिपिताश्रेयान्बीजप्राधान्यदर्शनात् ।
अभावेबीजिनोमातातदभावेतुपूर्वजः ८००॥

उन दोनोंमेंभी बीजकी प्राधान्यता देखकर पिता श्रेष्ठ है, और पिताके अभावमें माता और माताके अभावमें जेठा भाई श्रेष्ठ होता है ॥ ८०० ॥

स्वातंत्र्यंतुस्मृतंज्येष्ठेज्यैष्ठ्यंगुणवयःकृतम् ।
याःसर्वाःपितृपत्न्यःस्युस्तासुवर्तेतमातृवत् ॥

जेठे भाईको स्वतंत्रता कही है और गुण अवस्थासे ज्येष्ठता होती है जो पिताकी सम्पूर्ण पत्नी हैं उन सबमें माताके समान वर्ताव करै ॥ १ ॥

स्वसमैकेनभोगेनसर्वास्ताःप्रतिपालयन् ।
अस्वतंत्राःप्रजाःसर्वाःस्वतंत्रःपृथिवीपतिः ॥

और अपने समान एक भागसे उन सबकी अच्छी पालना करै संपूर्णप्रजा अस्वतंत्र (पराधीन ) है और राजा स्वतंत्र है ॥ ८०२ ॥

अस्वतंत्रःस्मृतःशिष्यआचार्येतुस्वतंत्रता ।
सुतस्यसुतदाराणांवशित्वमनुशासने ॥३॥

शिष्य अस्वतंत्र है और आचार्य्य स्वतंत्र है शिक्षा देनेके लिये लडके और लडकेकी स्त्री पिताके वशमें होती है ॥ ३ ॥

विक्रयेचैवदानेचवशित्वंनसुतेपितुः।
स्वतंत्राःसर्वएवैतेपरतंत्रेषुनित्यशः ॥ ४ ॥

बेचने और दानके लिये लडका पिताके वशमें नहीं होता पराधीनके विषे भी ये सब स्वतंत्र होते हैं ॥ ४ ॥

अनुशिष्टौविसर्गेवाविसर्गेचेश्वरोमतः।
मणिमुक्ताप्रवालानांसर्वस्यैवपिताप्रभुः ॥

शिक्षा, दान और अदानमें ये स्वतंत्र कहे हैं मणि, मोती, मूगा इन सबका स्वामी (मालिक) पिता होता है ॥ ५ ॥

स्थावरस्यतुसर्वस्यनपितानपितामहः ॥
भार्यापुत्रश्चदासश्चत्रयएवाधनाःस्मृताः ६॥

सम्पूर्ण स्थावर धनका स्वामी न पिता है न पितामह है। भार्या, पुत्र, दास ये तीनों अधन अर्थात् धनके अस्वामी कहे हैं ॥ ६ ॥

यत्तेसमधिगच्छंतियस्यैतेतस्यतद्धनम् ॥
वर्ततेयस्ययद्धस्तेतस्यस्वामीसएवन ॥ ७ ॥

जो इनको मिलता है वह भी धन उसीका होता है जिसके ये तीनों होते हैं. जो धन जिसके हाथमें वर्ते उसका स्वामी वही नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

अन्यस्वमन्यद्धस्तेषुचौर्याद्यैःकिन्नदृश्यते।
तस्माच्छास्त्रतएवस्यात्स्वाम्यंनानुभवादपि॥

क्योंकि चोरी करनेसे अन्यका धनभी अन्यके हाथ दीखता है, तिससे शास्त्रसे ही धनका स्वामी होता है अनुभवसे नहीं ॥ ८ ॥

अस्यापहृतमेतेननयुक्तंवक्तुमन्यथा।
विदितोर्थागमःशास्त्रेतथावर्णःपृथक्पृथक् ॥

अन्यथा यह कहना अयोग्य होगा कि इसका धन इसने हरा धनका आगम और पृथक् २ वर्ण शास्त्रमें विदित है ॥ ९ ॥

शास्तितच्छास्त्रधर्म्यंयन्म्लेच्छानामपितत्सदा
पूर्वाचार्यैस्तुकथितंलोकानांस्थितिहेतवे ॥

उस शास्त्रने जिस धर्मकी शिक्षा दी है वही धर्म म्लेच्छ आदिपर्यंत सदासे होता है क्योंकि पहिले आचार्योंने जगत्‌की मर्यादाके लिये कहा है ॥ १० ॥

समानभागिनःकार्याःपुत्राःस्वस्यचवैस्त्रियः।
स्वभागार्धहराकन्यादौहित्रस्तुतदर्धभाक् ॥

पिता अपने पुत्र और स्त्रियोंको समान भाग दे और कन्याओंको आधाभाग और कन्याओंसे दौहित्रको आधा भाग दे ॥ ११ ॥

मृतेधिपेपिपुत्राद्याउक्तमार्गहराःस्मृताः।
मात्रेदद्याच्चतुर्थांशंभगिन्यैमातुरर्धकम् ॥

पिताके मरेपरभी पुत्र आदि सम भाग लेनेवाले ही कहे हैं माता को चौथा भाग और मातासे आधा भाग भगिनीको दे ॥ १२ ॥

तदर्धंभागिनेयायशेषंसर्वंहरेत्सुतः।
पुत्रोनसाधनंपत्नीहरेत्पुत्रीचतत्सुतः ॥१३॥

भगिनीसे आधा भानजेको दे और शेष सब, को पुत्र ग्रहण करे पुत्र न होय तो पत्नी पत्नी न होय तो पुत्री पुत्री न होय तो दौहित्र धनको ग्रहण करे ॥ १३ ॥

मातापिताचभ्राताचपूर्वालाभेचतत्सुतः।
सौदायिकंधनंप्राप्यस्त्रीणांस्वातंत्र्यमिष्यते॥

माता, पिता, भाई, भाई न होय तो उसका पुत्र धनको ग्रहण करे जो धन स्त्रियोंको सौदायिक मिलता है उस धनमें स्त्री स्वतंत्र होती है ॥ १४ ॥

विक्रयेचैवदानेचयथेष्टंस्थावरेष्वपि।
ऊढयाकन्ययावापिपत्युःपितृगृहाच्चयत् ॥

चाहे उसे बेचे और दान करे और वह धन स्थावर हो या जंगम विवाही हुइ कन्याको पतिसे और पिताके घरसे जो धन मिले ॥ १५ ॥

मातृपित्रादिभिर्दत्तंधनंसौदायिकंस्मृतम्।
पित्रादिधनसंबंधहीनंयद्यदुपार्जितम् ॥१६॥

अथवा माता, पिता, जो दें उस धनको सौदायिक कहते हैं, जो पुत्र पिताके धनको न लगाकर धनका संचय करले ॥ १६ ॥

सयेनकाममश्नीयादविभाज्यंधनंहितत् ।
जलतस्कर राजाग्निव्यसनेसमुपस्थिते ॥

वह पुत्र उसधनको अपनी इच्छाके अनुसार भोगे और अपने भाइयोंको न बांटे यदि जल चौर, राजा, अग्नि इनकी विपत्ति पिताके धन पर पडे ॥ १७ ॥

यस्तुस्वशक्त्यासंरक्षेत्तस्यांशोदशमःस्मृतः ।
हेमकारादयोयत्रशिल्पंसंभूयकुर्वते ॥ १८ ॥

जो पुत्र अपनी शक्तिसे उस धनकी रक्षा करै तो उसको दशवां भाग उसमेंसे मिलना कहा है जो सुनार आदि मिलकर कारीगरी करते हैं ॥ १८ ॥

कार्यानुरूपंनिर्वेशंलभेरंस्तेयथार्हतः ।
संस्कर्तातत्कलाभिज्ञःशिल्पीप्रोक्तोमनीषिभिः ॥ १९ ॥

वे अपने अपने कार्यके अनुसार नोकरीको यथायोग्य प्राप्त होते हैं, संस्कार करनेवाला जो कार्यकी कलाको भली प्रकार जानता हो उसको बुद्धिमान् शिल्पी कहते हैं ॥ १९ ॥

हर्म्यंदेवगृहंवापिवाटिकोपस्कराणिच ।
संभूयकुर्वतांतेषांप्रमुख्योद्व्यंशमर्हति ॥२०॥

महल, देवताओंका मंदिर, वाटिका और उपस्कर, इनको जो मनुष्य मिलकर करते हों उसमें जो मुख्य हो उसे दो भाग मिलने योग्य हैं ॥ २० ॥

नर्तकानामेवधर्मःसद्भिरेवउदाहृतः ।
तालज्ञोलभतेर्धोर्धंगायनास्तुसमांशिनः ॥

नाचनेवालोंका यह सनातन धर्म सज्जनोंने कहा है कि तालके जाननेवालेको चौथाई भाग और गानेवालोंको सम ( बराबर ) मिलता है ॥ २१ ॥

परराष्ट्राद्धनंयत्स्याच्चौरैःस्वाम्याज्ञयाहृतम् ।
राज्ञेषष्ठांशमुद्धृत्यविभजेरन्समांशकम् ॥२२॥

पराये राज्यमेंसे जिस धनको अपने स्वामी की आज्ञासे चोर हरलावे उसका छठा भाग स्वामीको देकर शेष भागको समान बाटले २२

तेषांचेत्प्रसृतानांचग्रहणंसमवाप्नुयात् ।
तन्मोक्षार्थंचयद्दत्तंवहेयुस्तेसमांशतः ॥२३॥

उनके उस कामके करनेमें जो कोई बन्धन को प्राप्त हो जाय उसके छुटानेमें जो धन दिया हो उसको भी समभागमें बॉटकर भुगतलें ॥ २३ ॥

प्रयोगंकुर्वतेयेतुहेमाद्यन्यरसादिना ।
समन्यूनाधिकैरंशैर्लाभस्तेषांतथाविधः ॥

जो मनुष्य सुवर्ण आदि वा अन्य रस आदि से प्रयोग रसोंको बनाया करते हैं उन सबको समान न्यून वा अधिक अंशोंसे उसी प्रकार लाभ होता है कि ॥ २४ ॥

समोन्यूनोधिकोह्यंशोयेनाक्षिप्तस्तथैवसः ।
व्ययंदद्यात्कर्मकुर्याल्लाभंगृह्णीतचैवहि ॥२५

जिसने समान न्यून वा अधिक जैसा अंश व्ययको दिया हो वैसाही वह खर्च करै कामको करै और लाभको ग्रहण करें ॥ २५ ॥

वणिजानांकर्षकाणामेषएवविधिःस्मृतः ।
सामान्यंयाचितंन्यासमाधिर्दासश्चतद्धनम् ॥

यह विधि व्यापारी और किसानोकी कही है सामान्य, याचित न्यास ( सौंपाहुआ द्रव्य ) आधि (धरोहर) दास ( दासका धरन ) ॥२६॥

अन्वाहितंचनिक्षेपःपर्वस्वंचान्वयेसति ।
आपत्स्वपिनदेयानिनववस्तूनिपंडितैः ॥२७

अन्वाहित, निक्षेप और सब धन इन वस्तुओंको पंडित जन आपत्तिके समयमें भी न दे यदि अपने वंशमें कोई सन्तान होय ॥२७॥

अदेयंयश्चगृह्णातियश्चादेयंप्रयच्छति ।
तावुभौचौरवच्छास्यौदाप्यौचोत्तमसाहसम् ।

जो मनुष्य देनेके अयोग्यको ग्रहण करता है अथवा देता है वे दोनों चौरके समान शिक्षा देने योग्य हैं और राजा उनको उत्तम साहसका दंड दे ॥ २८ ॥

अस्वामिकेभ्यश्चौरेभ्योविगृह्णातिधनंतुयः ।
अव्यक्तमेवक्रीणातिसदंडचश्चौरवन्नृपैः ॥

जिसका कोई स्वामी न होय ऐसे चौरोंसे जो धनको लेता है और छिपकर खरीदता है उसको राजा चोरके समान दंड दे ॥ २९ ॥

ऋत्विग्याज्यमदुष्टंयस्त्यजेदनपकारिणम्।
अदुष्टश्चर्त्विजोयाज्योविनेयौतावुभावपि ॥

जो ऋत्विक् ( यज्ञ करनेवाला ) निरपराधी और अदुष्ट यज्ञ करनेवालेको त्याग दे और जो यज्ञ करनेवाला अदुष्ट सज्जन ऋत्विजको त्याग दे उन दोनोंको राजा शिक्षा दे ॥ ३० ॥

द्वात्रिंशांशंषोडशांशंलाभंपण्येनियोजयेत्।
तान्यथातद्व्ययंज्ञात्वाप्रदेशाद्यनुरूपतः ॥

बत्तीसवां या सोलहवां लाभ दंड ( बाजार ) में राजा नित्य करै। देश और कालके अनुरूप उसके व्यय ( खर्च ) को जानकर अन्यथा न करै ॥ ३१ ॥

वृद्धिंदित्वाह्यर्थंधनैर्वाणिज्यंकारयेत्सदा।
मूलात्तुद्विगुणावृद्धिर्गृहीताचाधमर्णिकात् ॥

वृद्धि ( नफा ) को छोडकर व्यापारियोंसर आये धनसे सदैव व्यापार करावे यदि उत्तमर्ण ( देनेवाला ) ने अधमर्ण ( करजलेनेवाले ) से मूलसे दूना व्याज ले लिया हो ॥ ३२ ॥

तदोत्तमर्णमूलंतुदापयेन्नाधिकंततः।
धनिकाश्चक्रवृद्ध्यादिमिषतस्तुप्रजाधनम् ॥

तो उत्तमर्णके मूलको ही राजा दिलवावे उससे अधिक नहीं, क्योंकि धनी मनुष्य चक्रवृद्धि ( सूदपरसूद ) के बहानेसे प्रजाके धनको ॥ ३३ ॥

संहरंतिह्यतस्तेभ्योराजासंरक्षयेत्प्रजाम्।
समर्थःसनदद्गातिगृहीतंधनिकाद्धनम् ३४॥

हरते हैं, इससे राजा उनसे प्रजाकी भली प्रकार रक्षा करै। जो समर्थ होकर धनीसे लिये हुए धनको न दे ॥ ३४ ॥

राजासंदापयेत्तस्मात्सामदंडविकर्षणैः।
लिखितंतुयदायस्यनष्टंतेनप्रज्ञापितम् ३५॥

उससे राजा साम, दंड, भेदसे धनको दिलवाय दे और जिसका लिखा हुआ नष्ट हो जाय उसने नष्ट हुए लिखितको राजाको जता दिया हो ॥ ३५ ॥

विज्ञायसाक्षिभिःसम्यक्पूर्ववद्दापयेत्तदा।
अदत्तंयश्चगृह्णातिसुदत्तंपुनरिच्छति ॥३६॥

तो साक्षियोंसे भलीप्रकार जान कर पूर्वके समान राजा दिवादे जो विना दिये हो ले ले अथवा भली प्रकार देने पर भी पुनः इच्छा करे ॥ ३६ ॥

दंडनीयावुभावेतौधर्मज्ञेनमहीक्षिता।
कूटपण्यस्यविक्रेतासदंड्यश्चौरवत्सदा ३७॥

तो धर्मका ज्ञाता राजा इन दोनोंको दंड दे जो खोटी वस्तुको बेचे उसे राजा चोरके समान दंड दे ॥ ३७ ॥

दृष्ट्वाकार्याणिचगुणान्शिल्पिनांभृतिमावहेत्।
पंचमांशंचतुर्थांशंतृतीयांशंतुकर्षयेत् ३८॥

कारीगरोंके कार्य्य और गुणोंको देखकर भृति ( नौकरी ) दे पाचवा, चौथा वा तीसरा, भाग रूपका देकर खेती करावे ॥ ३८ ॥

अर्धंवाराजताद्राजानाधिकंतुदिनेदिने।
विद्रुतंतुहीनंस्यात्स्वर्णंपलशतंशुचि ३९॥

अथवा आधा देकर कराये अधिक नहीं यह प्रमाण एक दिनकी भृतिका है जो सौपल सोना गलानेसे कम न होय वह शुद्ध होता है ॥ ३९ ॥

चतुःशतांशंरजतंताम्रंन्यूनंशतांशकम्।
वंगंचजसदंसीसंहीनंस्यात्षोडशांशकम् ॥

और चार सौ पल चांदी सौ पल तांबा और वंग जस्त शीसा सोलह पल गलाये जायँ तो प्रत्येकमें एक २ पल कम हो जाता है ॥४०

अयोष्टांशंत्वन्यथातुदंड्यःशिल्पीसदानृपैः।
सुवर्णद्विशतांशंतुरजतंचशतांशकम् ॥४१॥

लोहेमें आठवा भाग कम होता है इससे अधिक कम हो जाय तो राजा शिल्पीको दंड देने योग्य समझे सुवर्णके दो सौ तोलेमें और चांदीके सौ तोलेमें एक तोला ॥ ४१ ॥

हीनंसुघटितेकार्येसुसंयोगेतुवर्धते।
षोडशांशंत्वन्यथाहिदंड्यःस्यात्स्वर्णकारकः

कम होता है और उसकी कोई वस्तु ( गहना ) वनवाया जाय तो सोलहवां भाग बढता है इससे अन्यथा होय तो सुनार दंड देने योग्य समझना ॥ ४२ ॥

संयोगघटनंदृष्ट्वावृद्धिंहासंप्रकल्पयेत् ।
स्वर्णस्योत्तमकार्येतुभृतिस्त्रिंशाशकीमता ॥

संयोग जोडोंकी घटनाको देखकर वृद्धि और भृतिकी कल्पना करे, सोनेके उत्तम कामोंके बनानेकी भृति ( नौकरी ) तीसवा भाग कही है ॥ ४३ ॥

षष्ट्यंशकीमध्यकार्येहीनकार्येतदर्धकी ।
तदर्धाकटकेज्ञयाविद्रुतेतुतदर्धकी ॥४४॥

मध्यम कामकी भृति साठवें भागकी और हीन ( सुगम ) कामोंकी भृति उससे आधी कही है और उससे भी आधी कडे बनानेकी और उससे भी आधी सोनेके गलानेकी कही है ॥ ४४ ॥

उत्तमेराजतेत्वर्धा तदर्धामध्यमास्मृता ।
हीनेतदर्धाकटकेतदर्धासंप्रकीर्तिता ॥४५॥

चांदीके उत्तम कामोंकी भृति आधी और मध्यमकामोंकी चौथाई और हीन कामोंकी उससे आधी और उससे भी आधी कडा बनानेमें कही है ॥ ४५ ॥

पादमात्राभृतिस्ताम्रेवंगेचजसदेतथा ।
लोहेर्धावासमावापिद्विगुणात्रिगुणाथवा ॥

तांबेके कामोंकी भृति चौथाई और तिसी प्रकार रंग और जस्तके कामोंमें होती है, लोहेकी भृति आधी वा बराबर दूनी वा तिगुनी होती है ॥ ४६ ॥

धातूनांकूटकारीतुद्विगुणोदंडमर्हति ।
लोकप्रचारैरुत्पन्नोमुनिभिर्विधृतःपुरा ४७॥

जो कारीगर धातुओंमें कपट करे वह दूने दंडके योग्य होता है लोकके प्रचारसे उत्पन्न हुआ और मुनियोंने पहिले कहा हुआ ॥ ४७ ॥

व्यवहारोनंतपथःसवक्तुंनैवशक्यते ।
उक्तंराष्ट्रप्रकरणंसमासात्पंचमंतथा ॥४८॥

व्यवहार अनेक हैं उनको कोई नहीं कह सकता। यह पांचवां राष्ट्र ( राज्य ) प्रकरण सक्षेपसे वर्णन किया ॥ ४८ ॥

अत्रानुक्तागुणादोषास्तेज्ञेयालोकशास्त्रतः ।
षष्ठंदुर्गप्रकरणंप्रवक्ष्यामिसमासतः ॥४९॥

इसमें जो गुण वा दोष नहो कहे वे लोक और शास्त्रसे जानने। अब छठे दुर्ग ( किला ) प्रकरणको संक्षेपसे कहता हूं ॥ ४९ ॥

खातकंटकपाषाणैर्दुष्पथंदुर्गमैरिणम् ।
परितस्तुमहाखातंपारिखंदुर्गमेवतत् ॥५०॥

खात, कांटे, पत्थर, गुप्तमार्ग और ऊखर भूमि जिसके समीप होय उसे ऐरिण दुर्ग कहते हैं। जिसके चारों तरफ बडी खाई खुदी होय उसे पारिख दुर्ग कहते हैं ॥ ५० ॥

इष्टकोपलमृद्भित्तिप्राकारंपारिघंस्मृतम् ।
महाकंटकवृक्षौघैर्व्याप्तंतद्वनदुर्गमम् ॥५१॥

ईंट, पत्थर, मिट्टी, भीत इनका जिसमें परकोटा हो उसे पारिघ दुर्ग कहते हैं बडे २ कांटोंके वृक्षोंके समूहसे जो व्याप्त हो उसे वनदुर्ग कहते है ॥ ५१ ॥

जलाभावस्तुपरितोधन्वदुर्गप्रकीर्तितम् ।
जलदुर्गस्मृतंतज्ज्ञैरासमंतान्महाजलम् ५२॥

जिसके चारों तरफ जलका अभाव हो उसे धन्वदुर्ग कहते हैं और जिसके चारों तरफ बडा जल हो उसे शास्त्रके ज्ञाता जल दुर्ग कहते है ॥ ५२ ॥

सुवारिपृष्ठोच्चधरंविविक्तेगिरिदुर्गमम् ।
अभेद्यंव्यूहविद्वीरव्याप्तंतत्सैन्यदुर्गमम् ५३॥

जो जलके स्थानमें बडा ऊचा एकान्तमें बनाया जाय उसे गिरिदुर्ग कहते हैं जिसमें कवायदके ज्ञाता बहुतसे शूरवीर हों और जो भेदनके अयोग्य हो उसे सैन्यदुर्ग कहते हैं॥५३

सहायदुर्गतज्ज्ञेयंशूरानुकूलबांधवम् ।
पारिखादैरिणंश्रेष्ठंपारिघंतुततोवनम् ॥५४॥

जिसमें शूरवीरोंके अनुकूल बन्धुजन रहते हों उसे सहायदुर्ग कहते हैं, पारिखदुर्गसे

गेरिण और ऐरिणसे पारिघ और उससे वन-दुर्ग श्रेष्ठ होता है ॥ ५४ ॥

ततोधन्वंजलंतस्माद्गिरिदुर्गततःस्मृतम् ।
सहायसैन्यदुर्गेतुसर्वदुर्गप्रसाधिके ॥ ५५ ॥

उससे धन्वदुर्ग, धन्वमें जलदुर्ग और उससे गिरिदुर्ग श्रेष्ठ कहा है, सहायदुर्ग और सैन्यदुर्ग ये दोनों तो सब दुर्गोंके साधन होते हैं ॥ ५५ ॥

ताभ्यांविनान्यदुर्गाणिनिष्फलानिमहीभुजाम्
श्रेष्ठंतुसर्वदुर्गेभ्यःसेनादुर्गंस्मृतंबुधैः॥ ५६ ॥

क्योंकि इन दोनोंके विना अन्य सब राजाओंके दुर्ग निष्फल होते हैं और सब दुर्गमें श्रेष्ठ तो पंडितजनोंने सेना दुर्ग कहा है ॥५६॥

तत्साधकानिचान्यानितद्रक्षेन्नृपतिःसदा ।
सेनादुर्गंतुयस्यस्यात्तस्यवश्यातुभूरियम्५७

अन्य सब दुर्ग सेनाके ही साधक होते हैं इससे राजा सदैव सेनाकी रक्षा करे जिस राजाके सेनादुर्ग होता है उसके वशमें ही यह भूमि होती है ॥ ५७ ॥

विनातुसैन्यदुर्गेणदुर्गमन्यत्तुबंधनम् ।
आपत्कालेन्यदुर्गाणामाश्रयश्चोत्तमोमतः ॥

सैन्यदुर्ग बिना अन्यदुर्ग बन्धन होते हैं और आपत्तिके समयमें अन्य दुर्गोंका आश्रय उत्तम कहा है ॥ ५८ ॥

एकःशतंयोधयतिदुर्गस्थोऽस्त्रधरोयदि ।
शतंदशसहस्राणितस्माद्दुर्गंसमाश्रयेत् ५९

जो दुर्गमें टिका हुआ एक भी शस्त्रधारी हो तो वह सौ योधाओंके संग युद्ध करे और सौ योधा १० सहस्र योधाओंके संग युद्ध करें इससे राजा दुर्गका आश्रय ले ॥ ५९ ॥

शूरस्यसैन्यदुर्गस्यसर्वंदुर्गमिवस्थलम् ।
युद्धसंभारपुष्टानिराजादुर्गाणिधारयेत् ६०॥

और शूरवीर सैन्यदुर्गको तो सम्पूर्ण स्थल (मैदान) भी दुर्गके समान है राजा ऐसे दुर्गोंको धारण करे युद्धके सम्भारों (सामग्री) से पुष्ट (मजबूत) हों ॥ ६० ॥

धान्यवीरास्त्रपुष्टानिकोशपुष्टानिवैतथा ।
सहायपुष्टंयद् दुर्गंतत्तुश्रेष्ठतरंमतम् ॥ ६१ ॥

और अन्न, शूरवीर, अस्त्र, कोश इनसे भी पुष्ट हों और जो दुर्ग सहायकोंसे पुष्ट हो वह अत्यन्त श्रेष्ठ कहा है ॥ ६१ ॥

सहायपुष्टदुर्गेणविजयोनिश्चयात्मकः ।
यद्यत्सहायपुष्टंतुतत्सर्वंसफलंभवेत् ॥ ६२ ॥

सहायसे पुष्ट जो दुर्ग उससे विजय निश्चयमें होता है और जो २ सहायसे पुष्ट होता है वह संपूर्ण सफल होता है ॥ ६२ ॥

परस्परानुकूल्यंतुदुर्गाणांविजयप्रदम् ।
दौर्गसंक्षेपतःप्रोक्तंसैन्यंसप्तममुच्यते ॥६३॥

दुर्गोंकी जो परस्पर अनुकूलता है वह विजय देनेवाली होती है, यह संक्षेपमें दुर्ग-वर्णन किया अब सातवे सैन्य प्रकरणको कहते हैं ॥ ६३ ॥

सेनाशस्त्रास्त्रसंयुक्तामनुष्यादिगणात्मिका ।
स्वगमान्यगमाचेतिद्विधासैवपृथक्त्रिधा ॥

शस्त्र अस्त्रोंसे संयुक्त मनुष्योंके समूहको सेना कहते हैं। वह स्वगम (पियादे) और अन्यगम (सवार) भेदसे दो प्रकारकी और वही पृथक् २ तीन प्रकारकी होती है ॥ ६४ ॥

दैव्यासुरीमानवीचपूर्वपूर्वबलाधिका ।
स्वगमायास्वयंगंत्रीयानगाऽन्यगमास्मृता ॥

दैवी, आसुरी, मानुषी, इन तीनोंमें पहली२ सेना बलमें अधिक होती है जो सेना अपने पैरोंसे चले वह स्वगमा और जो यानमें चले वह अन्यगमा कहाती है ॥ ६५ ॥

पादातंस्वगमंवान्यद्रथाश्वगजगंत्रिधा ।
सैन्याद्विनानैवराज्यंनधनंनपराक्रमः ॥ ६६॥

अथवा पदातियोंकी सेना स्वगम और दूसरी रथ, अश्व, हाथीपर चलनेसे तीन प्रकारकी होती है, सेनाके विना न राज्य है न धन है और न पराक्रम ॥ ६६ ॥

बलिनोवशगाःसर्वेदुर्बलस्यचशत्रवः ।
भवंत्यल्पजनस्यापिनृपस्यतुनकिंपुनः॥६७॥

बलवान (सेनावाला) के संपूर्ण वशमें होते हैं और दुर्बलके संपूर्ण शत्रु हो जाते हैं चाहे वह साधारणभी मनुष्य हो राजाके तो क्यों न होंगे ॥ ६७ ॥

शारीरंहिबलंशौर्यबलंसैन्यबलंतथा।
चतुर्थमास्त्रिकबलंपंचमंधीबलंस्मृतम्॥६८॥

प्रथम बल शरीरका, २ बल शूर वीरताका, ३ बल सेनाका, ४ बल अस्त्रका, ५ बल बुद्धिका कहा है ॥ ६८ ॥

षष्ठमायुर्बलंत्वेतैरुपेतोविष्णुरेवसः।
नबलेनविनाप्यल्पंरिपुंजेतुंक्षमःसदा ॥ ६९॥

छटा बल अवस्थाका है, इन छः बलोंसे युक्त राजा साक्षात् विष्णुरूप होता है, और बलके विना अल्पभी शत्रुके जीतनेमें सदामें समर्थ नही होता ॥ ६९ ॥

देवासुरनरास्त्वन्योपायैर्नित्यंभवंतिहि।
बलमेवरिपोर्नित्यंपराजयकरंपरम ॥ ७० ॥

देवता असुर और नर ये तीनों तो अन्य २ उपायोंसे नित्य होते हैं और शत्रुका ही बल नित्य पराजय करनेवाला होता है ॥ ७० ॥

तस्माद्बलममोघंतुधारयेद्यत्नतोनृपः।
सेनाबलंतुद्विविधंस्वीयंमैत्रंचतद्द्विधा॥७१॥

तिसमें राजा अमोघ (सफल) बलको यत्नसे धारण करै और सेनाका बल अपनी और मित्रकी सेनाके भेदसे दोप्रकारका होता है ॥ ७१ ॥

मौलसाद्यस्कभेदाभ्यांसारासारंपुनर्द्विधा।
अशिक्षितंशिक्षितंचगुल्मीभूतमगुल्मकम् ॥

मौल (सदाका) और साद्यस्क (तुरंतका) भेदसे दो प्रकारका है और वे दोनों भी सार और असार भेदसे दो प्रकारका है १अशिक्षित (न सीखी) और २ शिक्षित सीखीहुई और गुल्मवाली बिना गुल्मवाली ॥ ७२ ॥

दत्तास्त्रादिस्वशस्त्रास्त्रंस्ववाहिदत्तवाहनम्।
सौजन्यात्साधकंमैत्रंस्वीयंभृत्याप्रपालितम्॥

१ दत्तास्त्र जिसको राजाने अस्त्र दिये हो २ स्वशस्त्रास्त्र जिसके पास अपनेही शस्त्र अस्त्र हों, १ स्ववाही जिसपर अपनी सवारी हो २ दत्तवाहन (जिसको राजाने सवारी दी हो जो सेना सौजन्य (स्नेह) से कार्यसिद्धि करै वह मैत्र और जो भृति (नौकरी) देकर पाली हो वह स्वीय (अपनी) कहाती है ॥ ७३ ॥

मौलंबह्वनुबंधिस्यात्साद्यस्कंयत्तदन्यथा।
सुयुद्धकामुकंसारमसारंविपरीतकम्॥ ७४ ॥

जो सेना बहुत दिनकीहो वह मौल और इससे अन्यथा हो वह साद्यस्क कहाती है, जो सेना उत्तम युद्धकी इच्छा करै वह सार और इससे जो विपरीत वह असार कहाती है ॥ ७४ ॥

शिक्षितंव्यूहकुशलंविपरीतमशिक्षितम्।
गुल्मीभूतंसाधिकारिस्वस्वामिकमगुल्मकम्

जो सेना व्यूह (कवायद) में कुशल हो वह शिक्षित और इससे विपरीत अशिक्षित होती है, जिसका अधिकारी दूसरा हो वह गुल्मीभूत और जिसका स्वामी अन्य न हो वह अगुल्मीभूत होती है ॥ ७५ ॥

दत्तास्त्रादिस्वामिनायत्स्वशस्त्रास्त्रमतोन्यथा।
कृतगुल्मंस्वयंगुल्मंतद्वच्चदत्तवाहनम् ॥७६॥

स्वामीने जिसको अस्त्र आदि दिये हों वह दत्तास्त्र और इससे विपरीत स्वशस्त्रास्त्र होती है, १ कृतगुल्म, २ स्वयंगुल्म और ३ दत्तवाहन ॥ ७६ ॥

आरण्यकंकिराताद्यिस्वाधीनंस्वतेजसा ।
उत्सृष्टंरिपुणावापिभृत्यवर्गेनिवेशितम् ७७॥

भील आदि जो अपने तेजसे स्वाधीन होते हैं उनकी सेना आरण्यक (वनकी) होती है जो सेना शत्रुने छोड़दीहो और अपने भृत्योंमें मिला ली हो ॥ ७७ ॥

भेदाधीनंकृतंशत्रोःसैन्यंशत्रुबलंस्मृतम्।
उभयंदुर्बलंप्रोक्तंकेवलंसाधकंनतत् ॥ ७८ ॥

वा जो शत्रुकी सेना भेदसे अपने आधीन करली हो वह शत्रुकी सेना कही है ये दोनों

दुर्बल कही है और अकेली ये दोनों कार्य-सिद्धिको नहीं कर सकतीं ॥ ७८ ॥

समैर्नियुद्धकुशलैर्व्यायामैर्नतिभिस्तथा।
वर्धयेद्बाहुयुद्धार्थभोज्यैःशारीरकैर्बलम् ७९

समान जो निरंतर युद्धमें कुशल उनके परस्पर युद्धसे, व्यायाम ( कसरत ) और नती ( प्रार्थना ) से और शरीरके पोषक उत्तम २ खानेके पदार्थोंसे बाहुयुद्धके लिये सेनाको बढावे ॥ ७९ ॥

मृगयाभिस्तुव्याघ्राणांशस्त्रास्त्राभ्यासतःसदा
वर्धयेच्छरसंयोगात्सम्यक्छौर्यबलंनृपः ८०

सिंहोंकी मृगया, सदैव शस्त्र अस्त्रके अभ्यास और बाणोंके सयोग ( चलाना ) से राजा भली भाँति शूरवीरोंकी सेनाको बढावै ॥८०॥

सेनाबलंसुभृत्यातुतपोभ्यासैस्तथास्त्रिकम्।
वर्धयेच्छास्त्रचतुरसंयोगाद्धीबलंसदा ८१ ॥

अच्छीभृति ( नौकरी ) से सेनाके बलको और तपके अभ्याससे अस्त्रके बलको शास्त्र और चतुरोंके सत्सगसे बुद्धिके बलको सदैव बढावे ॥ ८१ ॥

सत्क्रियाभिश्चिरस्थायिनित्यंराज्यंभवेद्यथा
स्वगोत्रेतुतथाकुर्यात्तदायुर्बलमुच्यते ॥८२॥

अच्छे २ कर्मोंसे अपने गोत्रकी परम्परा राज्य चिरकालतक जिस प्रकार स्थिर रहे उस प्रकारही राजा आचरण करै उसको आयुर्बल कहते है ॥ ८२ ॥

यावद्गोत्रेराज्यमस्तितावदेवसजीवति।
चतुर्गुणंहिपादातमश्वतोधारयेत्सदा ॥८३॥

जबतक राजाके गोत्रमे राज्य रहै तबतकही वह राजा जीता है, और सवारोंसे चौगुनी पदातियोंकी सेना राजा सदैव रक्खै ॥ ८३ ॥

पंचमांशांस्तुवृषभानष्टांशांश्चक्रमेलकान्।
चतुर्थांशान्गजानुष्ट्रान्गजार्धांश्चरथान्सदा ॥

पांचवे अंशके बैल और आठवे अंशके खच्चर चौथाई हाथी तथा ऊंट और हाथियोंसे आधे रथ सदैव रक्खै ॥ ८४ ॥

रथात्तुद्विगुणंराजाबृहन्नालद्वयंतथा।
पदातिबहुलंसैन्यंमध्याश्वंतुगजाल्पकम् ८५

रथोंसे दूने दो बडे तोपखाने राजा रक्खे जिसमें पदाति बहुत हो, घोडे मध्यम और हाथी अल्प हों उसे सैन्य कहते है ॥ ८५ ॥

तथावृषोष्ट्रसामान्यंरक्षेन्नागाधिकंनहि।
सवयःसारवेषोच्चशस्त्रास्त्रंतुपृथक्छतम्।

तिसी प्रकार बैल और ऊंट जिसमें सामान्य हों उस सेनाकी राजा रक्षा करै और जिसमें हाथी अधिक हों उसकी नहीं जवान, उत्तम वेषधारी, उत्तम २ शस्त्र और अस्त्रधारी ये सब पृथक् २ सौ २ रक्खे ॥ ८६ ॥

लघुनालिकयुक्तानांपदातीनांशतत्रयम्।
अशीत्यश्वान्रथंचैकंबृहन्नालद्वयंतथा ८७॥

बन्दूकवाले पदाति तीनसौ हों, अस्सी घोडे, एक रथ और बडी दो तोप ॥ ८७ ॥

उष्ट्रान्दशगजौद्वौतुशकटौषोडशर्षभान्।
तथालेखकषट्कंहिमंत्रित्रितयमेवच ८८॥

दश ऊंट, दो हाथी, दो गाडे सोलह बैल और छ लिखारी और तीन मन्त्री होने चाहिये ॥ ८८ ॥

धारयेन्नृपतिःसम्यग्वत्सरेलक्षकर्षभाक्।
संभारदानभोगार्थंधनंसार्धसहस्रकम् ॥८९॥

इन सबको राजा भली प्रकार रक्खै और एक वर्षमे एक लक्ष रुपयोंका संचय करै सामान दान और भोगके लिये डेढ सहस्र रुपया प्रतिमासमे रक्खै ॥ ८९ ॥

लेखकार्थेशतंमासिमंत्र्यर्थेतुशतत्रयम्।
त्रिशतंदारपुत्रार्थेविद्वदर्थेशतद्वयम् ॥९०॥

लिखनेके काममे सौ रुपये, मन्त्रीके काममें तीनसौ रुपये, स्त्री और पुत्रोंके लिये तीन सौ रुपये, तथा पंडितोंके लिये दो सौ रुपये प्रति मासमें खर्च करे ॥ ९० ॥

साद्यश्वपदगार्थंहिराजाचतुःसहस्रकम्।
गजोष्ट्रवृषनालार्थंव्ययीकुर्याच्चतुःशतम् ॥

सवार, घोडे, पदाति इनके लिये चार सहस्र रुपये और हाथी, ऊंट, बैल और तोपखाना इनके लिये चार सो रुपये प्रति-मासमे राजा खर्च करै ॥ ९१ ॥

शेषंकोशेधनंस्थाप्यंव्ययीकुर्यान्नचान्यथा।
लोहसारमयश्चक्रसुगमोमंचकासनः ९२ ॥

शेष धनको कोश ( खजाना ) मे स्थापन करै और अन्य किसी वृथा रीतिसे खर्च न करै जिस रथका चक्र लोहसार ( उत्तमलोहा ) का हो जिसकी गति ( चलना ) अच्छी हो और जिसमें बैठनेका आसन मंचक(खट्वा) के समान हो ॥ ९२ ॥

स्वादोलायितरूढस्तुमध्यमासनसारथिः।
शस्त्रास्त्रसंधार्युदरइष्टच्छायोमनोरमः ॥९३॥

जिसकी दोला ( कमानी ) ऊपर सारथी बैठ व मध्यम आसन हो और जिस रथके भीतर शस्त्र अस्त्र सब आजायं और जिसकी छाया अच्छी हो और जो देखनमे सुन्दर हो ॥ ९३ ॥

एवंविधोरथोराज्ञारक्ष्योनित्यंसदश्वकः।
नीलतालुर्नीलजिह्वोवक्रदंतोह्यदंतकः ॥९४॥

ऐसे उत्तम अश्ववाले रथकी राजा सदैव रक्षा करै और जिसकी तालु और जिह्वा नीली हो और दांत टेढे हों और जिसके दांत न हों ॥ ९४ ॥

दीर्घद्वेषीक्रूरमदस्तथापृष्ठविधूनकः।
दशाष्टोननखोमंदोभूविशोधनपुच्छकः ९५

जिसको बडा वैर हो, जिसमे बहुत मद हो और जिसकी पीठ कंपती हो और जिसके अठारहसे कम नख हों जो मंद हो और जिसकी पूछ भूमि पर लटकती हो ॥ ९५ ॥

एवंविधोऽनिष्टगजोविपरीतःशुभावहः।
भद्रोमंद्रमृगोमिश्रोगजोजात्याचतुर्विधः ॥

ऐसा जो हाथी वह अनिष्ट होता है और इससे विपरीत शुभदायी होता है और भद्र-मद्र, मृग, मिश्र इन चार जातियोंसे हाथी चार प्रकारका होता है ॥ ९६ ॥

मध्वाभदंतःसबलःसमांगोवर्तुलाकृतिः।
सुमुखोवयवश्रेष्ठोज्ञेयोभद्रगजःसदा ९७ ॥

जिसका दांत मधुके समान हो, जो बलवान् हो, जिसके अंग सम हों, जिसका आकार गोल हो, सुन्दर मुख हो, अंग अच्छे हों ऐसे गजको सदैव भद्र कहते है ॥ ९७ ॥

स्थूलकुक्षिःसिंहदृक्चबृहत्त्वग्गलशुंडकः।
मध्यमावयवोदीर्घकायोमंद्रगजःस्मृतः ९८

जिसकी कोख स्थूल हो, सिहके समान दृष्टि हो, गला और शुण्ड बडे हों, अंग मध्यम हों, लम्बी काया हो उस हाथीको मंद्र कहते है ॥ ९८ ॥

तनुकंठदंतकर्णशुंडःस्थूलाक्षएवहि।
सुहृत्स्वाधरमेद्रस्तुवामनोमृगसंज्ञकः ॥९९॥

जिसके कण्ठ, दांत, कान, शुण्ड, ये सब पतले हों और नेत्र स्थूल ( बडे ) हों, हृदय ओष्ठ और लिंग ये सब सुन्दर हों और जो वामन ( छोटा ) हो उस हाथीको मृग कहते है ॥ ९९ ॥

एषांलक्ष्मैर्विमिलितोगजोमिश्रइतिःस्मृतः।
भिन्नंभिन्नंप्रमाणंतुत्रयाणामपिकीर्तितम् ॥

इनके सबके चिह्न जिसमे मिलें वह गज मिश्र कहा है और तीनोंका प्रमाणभी भिन्न २ कहा है ॥ १०० ॥

गजमानेह्यंगुलंस्यादष्टभिस्तुयवोदरैः।
चतुर्विंशत्यंगुलैस्तैःकरःप्रोक्तोमनीषिभिः ॥

हाथीके प्रमाणमे ऐसा अगुल होता है जिसके बीचमें आठ जौ जो जाय उन चौबीस अगुलोंका बुद्धिमान मनुष्योंने कर(हाथ) कहा है ॥ १०१ ॥

सप्तहस्तोन्नतिर्भद्रेह्यष्टहस्तप्रदीर्घता।
परिणाहोदशकरउदरस्यभवेत्सदा ॥२॥

भद्र हाथीकी ऊँचाई सात हाथकी लम्बाई आठ हाथकी और उदरका विस्तार दश हाथका सदैव रहता है ॥ २ ॥

प्रमाणंमंद्रमृगयोर्हस्तहीनंक्रमादतः।
कथितंदैर्घ्यसाम्यंतुमुनिभिर्भद्रमंद्रयोः ॥३॥

मंद्र और मृग नामके हाथियोंका प्रमाण इससे एक हाथ कम होता है और चौडाईमें भद्र और मंद्रकी साम्यता (बराबरी) ही मुनियोंने कही है ॥ ३ ॥

बृहद्भ्रूगंडमालस्तुधृतशीर्षगतिःसदा।
गजःश्रेष्ठस्तुसर्वेषांशुभलक्षणसंयुतः॥ ४ ॥

जिसकी भृकुटी गंडस्थल और मस्तक ये तीनों बडे हों और शिरकी गतिभी जिसकी सदैव अच्छी हो और जो उत्तम २ लक्षणोंमें युक्त हो ऐसा हाथी सब हाथियोंमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ४ ॥

पंचयवांगुलेनैववाजिमानंपृथक्स्मृतम्।
चत्वारिंशांगुलमुखोवाजीयश्चोत्तमोत्तमः॥

पाच जौके अंगुलसे घोडोंका प्रमाण भी पृथक् २ कहा है, चालीस अंगुलका जिसका मुख हो ऐसा जो घोडा वह उत्तमसे उत्तम होता है ॥ ५ ॥

षट्त्रिंशदंगुलमुखोह्युत्तमःपरिकीर्तितः।
द्वात्रिंशदंगुलमुखोमध्यमःसउदाहृतः॥६॥

छत्तीस अंगुलका जिसका मुख हो वह उत्तम और बत्तीस अंगुलका जिसका मुख हो वह मध्यम कहा है ॥ ६ ॥

अष्टाविंशत्यंगुलोयोमुखेनीचःप्रकीर्तितः।
वाजिनांमुखमानेनसर्वावयवकल्पना॥७॥

जिस घोडेका मुख अट्ठाईस अंगुलका हो वह नीच कहा है और घोडोंके मुखसेही संपूर्ण अवयवोंकी कल्पना होती है कि ॥ ७ ॥

औच्चंतुमुखमानेनत्रिगुणंपरिकीर्तितम्।
शिरोमणिसमारभ्यपुच्छमूलांतमेवहि॥ ८॥

मुखके प्रमाणसे तिगुनी उंचाई कही है और शिरकी मणिसे लेकर पूंछके मूल पर्यंत ॥ ८ ॥

तृतीयांशाधिकंदैर्घ्यंमुखमानाच्चतुर्गुणम्।
परिणाहस्तूदरस्यत्रिगुणस्त्र्यंगुलाधिकः॥

तीसरा अंश अधिक (चौगुणी) लंबाई होती है और वह मुखके प्रमाणसे चौगुणी समझनी और उदरका विस्तार तिगुना और तीन अंगुल होता है ॥ ९ ॥

श्मश्रुहीनमुखःकांतःप्रगल्भोतुंगनासिकः।
दीर्घोद्धतग्रीवमुखोह्रस्वकुक्षिखुरश्रुतिः॥१०॥

जिसके मुखपर श्मश्रु (बाल) नहों, सुन्दर, प्रगल्भ हो और जिसकी नासिका ऊंची हो. जिसकी ग्रीवा और मुख ऊपरको ऊंचे उठ रहते हों और जिसकी कुक्षि छोटी हो और जिसके खुरोंका शब्द सुनता हो ॥ १० ॥

तुरप्रचंडवेगश्चहंसमेघसमस्वनः।
नातिक्रूरोनातिमृदुर्देवसत्वोमनोरमः॥११॥

शीघ्रतामें जिसका वेग प्रचंड हो, हंस और मेघके समान जिसका शब्द हो और जो न अत्यन्त क्रोधी और न अत्यन्त कोमल हो और जो देवके समान बलवान हो और सुन्दर हो ॥ ११ ॥

सुकांतिगंधवर्णश्चसद्गुणभ्रमरान्वितः।
भ्रमतस्तुद्विधावर्तोवामदक्षिणभेदतः॥ १२॥

जिसकी कांति गंध वर्ण ये सुन्दर हों और उत्तम गुण और भौंवरी हों, वाम और दक्षिण की तरफ भ्रमणके समय जिसके दो प्रकार आवर्त (भौंवरीं) पडें ॥ १२ ॥

पूर्णोऽपूर्णःपुनर्द्वेधादीर्घोह्रस्वस्तथैवच।
स्त्रीपुंदेहेवामदक्षौयथोक्तफलदौक्रमात् १३॥

और पूर्ण और अपूर्ण और तिसी प्रकार दीर्घ और ह्रस्व भौंवरी हों और घोडी और घोडा के देहमें बाईं और दाहिनी तरफक्रमसे फलदायक होते है ॥ १३ ॥

नतथाविपरीतौतुशुभाशुभफलप्रदौ।
नीचोर्ध्वतिर्यङ्मुखतःफलभेदोभवेत्तयोः॥

और इससे विपरीत शुभ और अशुभ फलदायक नहीं होते नीचे ऊपर और तिरछे मुखसे उनके फलका भेद हो जाता है ॥ १४ ॥

शंखचक्रगदापद्मवेदिस्वस्तिकसन्निभः।
प्रासादतोरणधनुःसुपूर्णकलशाकृतिः॥१५॥

शंख, चक्र, गदा, पद्म, वेदी स्वस्तिक (सतिया) इनके समान अथवा मंदिर,तोरण, धनुष, पूर्णकलश इनके तुल्य जिसका आकार हो ॥ १५ ॥

स्वस्तिकस्रड्मीनखड्गश्रीवत्साभःशुभोऽगमः

स्वस्तिक, माला, मीन, खड्ग श्रीवत्स इनकी कांतिके समान जो हो वह भौंवरी शुभ है।

नासिकाग्रललाटेचशंखेकंठेचमस्तके ॥१६

आवर्तोजायतेयेषांतेधन्यास्तुरगोत्तमाः ।

नासिकाके अग्रभागमे ललाटमे शखमे कठमें और मस्तकमें ॥ १६ ॥ जिन वाजियोंके आवर्त (भ्रमर) हो वे घोडोंमें उत्तम धन्य है ॥

हृदिस्कंधेगलेचैवकटिदेशेतथैवच ॥ १७ ॥

नाभौकुक्षौचपार्श्वाग्रेमध्यमाःसंप्रकीर्तिताः ।

हृदयमे कांधेपर गलेमें और कमरमे ॥ १७ ॥ और नाभि, कुक्षि और पार्श्वोंका अग्र भाग इनमें जिनके आवर्त हो वे घोडे मध्यम कहे हैं ॥

ललाटेयस्यचावर्तद्वितयस्यसमुद्भवः ॥१८॥

मस्तकेस्तृतीयस्यपूर्णहर्षोयमुत्तमः ।

जिसके ललाटमें दो आवर्त हों और मस्तकमे तीसरा आवर्त हो और आनंदसे पूर्ण हो वह घोडा उत्तम होता है ॥ १८ ॥

पृष्ठवंशेयदावर्तोयस्यैकःसंप्रजायते ॥ १९ ॥

संकरोत्यश्वसंघातान्स्वामिनःसूर्यसंज्ञकः ।

जिसकी पीठके बांसमें एक आवर्त हो वह सूर्य नामका घोडा अपने स्वामीके यहां घोडोंके समूहोंको इकट्ठे करता है ॥ १९ ॥

त्रयोयस्यललाटस्थाआवर्तास्तिर्यगुत्तराः ॥

त्रिकूटःसपरिज्ञेयोवाजिवृद्धिकरः सदा ।

और जिसके ललाटमें तीन आवर्त हों और बामकी तरफका आवर्त तिरछा हो उस घोडेको त्रिकूट कहते हैं और वह भी सदैव घोडोंकी वृद्धि करनेवाला होता है ॥ २० ॥

एवमेवप्रकारेणत्रयोग्रीवासमाश्रिताः ॥२१॥

समावर्तास्सवाजीशोजायते नृपमंदिरे ।

इसी प्रकार तीन ग्रीवामे उत्तम आवर्त होय तो वह घोडोंका स्वामी बाजी, राजाके मंदिरमे होता है ॥ २१ ॥

कपोलस्थौयदावर्तौदृश्येतेयस्यवाजिनः ॥

यशोवृद्धिकरौप्रोक्तौराज्यवृद्धिकरौमतौ ।

जिस घोडेके कपोलों पर दो आवर्त दीखैं वे दोनों आवर्त यश और राज्यकी वृद्धि करने वाले कहे है ॥ २२ ॥

एकोवाथकपोलस्थोयस्यावर्तःप्रदृश्यते२३॥

शर्वनामासविख्यातःसइच्छेत्स्वामिनाशनम् ।

अथवा जिसके कपोल पर एकही आवर्त दीखै उस घोडेका नाम शर्वा विख्यात है और वह अपने स्वामीका नाश करता है ॥ २३ ॥

गंडसंस्थोयदावर्तोवाजिनोदक्षिणाश्रितः ॥

संकरोतिमहासौख्यंस्वामिनःशिवसंज्ञकः ।

तद्वद्वामाश्रितः क्रूरः प्रकरोति धनक्षयम् ॥

जिस घोडेके दक्षिण गंडस्थल पर आवर्त हो ।२४॥ शिवनामक वह घोडा अपने स्वामी को महान् सुख करता है और जिसके बांये गंडस्थलमे आवर्त हो क्रूरनामक वह घोडा स्वामीके धनको नाश करता है ॥ २५ ॥

इंद्राभौतावुभौशस्तौनृपराज्यविवृद्धिदौ ।

कर्णमूलेयदावर्तौस्तनमध्येतथापरौ ॥ २६॥

विजयाख्यावुभौतौतुयुद्धकालेयशःप्रदौ ।

यदि येदोनो गडोके आवर्त इंद्रके समान होंय तो उत्तम राजाकी वृद्धिके देनेवाले होते है, जिसके कान और स्तनोंके मध्यमे दो २ आवर्त हों विजय नामके वे दोनों घोडे युद्धके समय यशके दाता होते हैं ॥ २६ ॥

स्कंधपार्श्वेयदावर्तोसभवेत्पद्मलक्षणः ॥ २७॥

करोतिविविधांपद्मांस्वामिनःसततंसुखम् ।

स्कन्ध और पार्श्वोंमें जो आवर्त हो उसको पद्म लक्षण कहते हैं वह घोडा अपने स्वामीके यहां नाना प्रकारकी लक्ष्मी और निरन्तर सुख करता है ॥ २७ ॥

नासामध्येयदावर्तएकोवायदिवात्रयम् ॥ २८॥
चक्रवर्तीसविज्ञेयोवाजीभूपालसंज्ञकः ।

जिसकी नाकमें एक वा तीन आवर्त हो उस घोडेका नाम भूपाल होता है और वह राजा चक्रवर्ती जानना ॥ २८ ॥

कंठेयस्यमहावर्तएकःश्रेष्ठःप्रजायते ॥२९॥
चिंतामणिःसविज्ञेयश्चिंतितार्थसुखप्रदः ।
शुक्लाख्यौभालकंबुस्थौआवर्तौवृद्धिकीर्तिदौ

जिसके कण्ठसे एक उत्तम आवर्त हो उस घोडेको चिन्तामणि कहते हैं वह घोडा चिंतित अर्थ और सुख देनेवाला होता है यदि मस्तक और ग्रीवामें सफेद आवर्त हो, तो वृद्धि और कीर्तिके दाता होते हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥

यस्यावर्तौवक्रगतौकुक्ष्यंतेवाजिनोयदि ।
सनूनंमृत्युमाप्नोतिकुर्याद्वास्वामिनाशनम् ॥

जिस घोडेकी कुक्षिके अन्तमें तिरछे आवर्त हों वह घोडा या तो निश्चय मर जाय अथवा अपने स्वामीका नाश करे ॥ ३१ ॥

जानुसंस्थाअथावर्ताःप्रवासक्लेशकारकाः ।
वाजिमेढ्रेयदावर्तोविजयश्रीविनाशनः ॥ ३२॥

जिसके घोटुओंपर तीन आवर्त हो वह घोडा प्रवास ( परदेश ) में क्लेशकारक होता है यदि घोडेके लिंगमें आवर्त होय तो विजय और श्रीका नाश करता है ॥ ३२ ॥

त्रिकसंस्थोयदावर्तस्त्रिवर्गस्यप्रणाशनः ।
पुच्छमूलेयदावर्तोधूमकेतुरनर्थकृत् ॥३३॥

जिसको पीठकी हड्डीमें आवर्त हो वह धर्म अर्थ कामका नाश करता है, यदि पूंछके मूलमें आवर्त हो तो धूमकेतु वह घोडा अनर्थको करता है ॥ ३३ ॥

गुह्यपुच्छत्रिकावर्तःसकृतांतोभयप्रदः ।
मध्यदंडात्पार्श्वगमास्तेवशतपदीकचैः ॥३४॥

जिसकी गुदा पूंछ और पीठकी हड्डीमें आवर्त होय तो कालरूप वह घोडा भयका दाता होता है जिस घोडेकी शतपदी ( पूछ ) के बाल मध्य दंडसे पार्श्वोंकी तरफ जायँ ॥३४॥

अतिदुष्टांगुष्ठमितादीर्घाऽदुष्टायथायथा ।
अश्रुपाताहनुगंडहृद्गलप्रोथबस्तिषु ॥३५॥

और वह अगूठेके समान पतली होय तो अत्यन्त दुष्ट होती है, और जितनी २ मोटी हो उतनी ही उत्तम होती है जिसके ठोडी, गंडस्थल, हृदय, गला, प्रोथ ( पेट ) और बस्तिपर आसू गिरे ॥ ३५ ॥

कटिशंखजानुमुष्कककुन्नाभिगुदेषुच ।
दक्षकुक्षौदक्षपादेत्वशुभोभ्रमरःसदा ॥३६॥

कमर, शंख, गोडे, अंडकोश, डांट, नाभि, गुदा, दक्षिणकोख, दक्षिणपाद इनमें भ्रमर होय तो सदैव अशुभ कहा है ॥ ३६ ॥

गलमध्येपृष्ठमध्येउत्तरोष्ठेऽधरेतथा ।
कर्णनेत्रांतरेवामकुक्षौचैवतुपार्श्वयोः ॥३७॥

गलेमें, पीठ और दोनों ओष्ठ, कान, नेत्र और बाई कोख और दोनों पार्श्वोंमें ॥ ३७ ॥

ऊरूषुचशुभावर्तौवाजिनामग्रपादयोः ।
आवर्तौसांतरौभालेसूर्यचंद्रौशुभप्रदौ ३८॥

दोनों ऊरु ( जंघा ) ओंमें और अगले पैरोंमें जो आवर्त हैं वे शुभ कहे हैं और मस्तकके बीचमें जो खाली आवर्त हैं वे सूर्यचन्द्र कहाते हैं और शुभदायक होते हैं ॥ ३८ ॥

मिलितौतौमध्यफलौह्यतिलग्नौतुदुष्फलौ ।
आवर्तत्रितयंभालेशुभंचोर्ध्वतुसांतरम् ३९॥

जो वे दोनों आवर्त आपसमें कुछ मिले होंय तो मध्यफल और अत्यन्त मिले होंय तो बुराफल देते हैं, और मस्तकके ऊपर तीन आवर्त फरकसे होंय तो शुभ होते हैं ॥ ३९ ॥

अशुभंचातिसंलग्नमावर्तद्वितयंतथा ।
त्रिकोणत्रितयंभालेआवर्तानांतुदुःखदम् ॥

और अत्यन्त मिले हुऐ अशुभ होते हैं और ऐसे ही दो आवर्त समझने और मस्तकमें

त्रिकोने तीन आवर्त दुःखदायी होते है ॥ ४० ॥

**गलमध्येशुभस्त्वेकःसर्वाशुभनिवारणः ।**
**अधोमुखःशुभःपादेभालेचोर्ध्वमुखोभ्रमः ॥**

गलेके मध्यमे एक आवर्तसम्पूर्ण अशुभोंका नाशक होनेसे शुभ होता है और पैरोंमे अधो मुख और मस्तकमे ऊर्ध्वमुख आवर्त शुभ होते हैं ॥ ४१ ॥

**नचैवात्यशुभापृष्ठमुखीशतपदीमता ।**
**मेढ्रस्यपश्चाद्भ्रमरीस्तनीवाजीसचाशुभः ॥**

पीछेको मुखवाली पूंछ अत्यन्त अशुभ नही कही, जिसके लिङ्गके पीछे और स्तनोंमे भौंरी हो वह घोडा भी अशुभ होता है ॥ ४२ ॥

**भ्रमाःकर्णसमीपेतुशृंगीचैकःसनिंदितः ।**
**ग्रीवोर्ध्वपार्श्वेभ्रमरीह्येकरश्मिःसचैकतः ॥**

जो कानोंके समीप एक सींगवाला आवर्त होय तो वह भी निन्दित है । ग्रीवाके ऊपरके पार्श्वमे जो एक रस्सीकी भौंरी हो और वह एक तरफ होय तो निन्दित होती है ॥ ४३ ॥

**पादोर्ध्वमुखभ्रमरीकीलोत्पाटीसनिंदितः ।**
**शुभाशुभौभ्रमौयस्मिन्सवाजीमध्यमःस्मृतः**

पैरोंमे जो ऊर्ध्वमुख भौंरी है उसको कीलोत्पाटी कहते हैं और वह भी निन्दित होती है, जिस घोडेमे शुभ और अशुभ दोनो आवर्त हों वह घोडा मध्यम होता है ॥ ४४ ॥

**मुखपत्सुसितःपंचकल्याणोऽश्वोसदामतः ।**
**सएवहृदयेस्कंधेपुच्छेश्वेतोष्टमंगलः ॥४५॥**

जिसका मुख और पैर सुफेद हो वह घोडा सदैव पचकल्याण कहा है, यदि वही हृदय स्कन्ध और पुच्छमे सुफेद होय तो अष्ट मङ्गल होता है ॥ ४५ ॥

**कर्णेश्यामःश्यामकर्णःसर्वतस्त्वेकवर्णभाक्**
**तत्रापिसर्वतःश्वेतोमध्यःपूज्यःसदैवहि ४६॥**

जिसके कर्ण श्याम हों और सब एक ही रंग हो वह श्यामकर्ण उसमें भी जो सम्पूर्ण श्वेत हो वह मध्यम और सदैव पूजने योग्य होता है ॥ ४६ ॥

**वैडूर्यसन्निभेनेत्रेयस्यस्तोजयमंगलः ।**
**मिश्रवर्णस्त्वेकवर्णःपूज्यःस्यात्सुन्दरोयदि**

जिसके नेत्र वैडूर्य मणिके तुल्य हों वह जयमङ्गल होता है और जो घोडा अनेक वर्ण हो अथवा एकही वर्ण हो और सुन्दर भी होय तो पूजनेयोग्य होता है ॥ ४७ ॥

**कृष्णपादोहरिर्निद्यस्तथाश्वेतैकपादपि ।**
**रूक्षोधूसरवर्णश्चगर्दभाभोपिनिंदितः ॥४८॥**

जिस घोडेके पैर काले हों अथवा एक ही पैर सपेद होय तो वह भी निंदित होता है और जो रूखा गधेके समान धूसर वर्णका हो वह भी निंदित होता है ॥ ४८ ॥

**कृष्णतालुःकृष्णजिह्वःकृष्णोष्ठश्चविनिंदितः**
**सर्वत्रःकृष्णवर्णोयःपुच्छेश्वेतःसनिंदितः ॥**

जिसके तालु, जिह्वा और ओष्ठ ये सब काले हों वहभी अत्यन्त निंदित होता है और जो सब कृष्णवर्ण और पूंछमे सुफेद हो वहभी निंदित है ॥ ४९ ॥

**उच्चैःपदन्यासगतिर्द्विपव्याघ्रगतिश्चयः ।**
**मयूरहंसतित्तीरपारावतगतिश्चयः ॥५०॥**

जिस घोडेकी गति ( चाल ) ऊँचे २ पैर उठाकर हो अथवा गैंडा, सिंह, मोर, हंस, तित्तिर और कबूतर इनके समान जिसकी गति हो ॥ ५० ॥

**मृगोष्ट्रवानरगतिःपूज्योवृषगतिर्हयः ।**
**अतिभुक्तोतिपीतोऽपियथासादीनपीडयेत् ॥**

मृग ऊंट, बन्दर अथवा बैल इनके समान जिसकी गति हो वह घोडा पूजने योग्य होता है, जो घोडा अत्यन्त भूखा वा अत्यन्त प्यासा अपने सवारको पीडा न दे ॥ ५१ ॥

**श्रेष्ठागतिस्तुसाज्ञेयासश्रेष्ठस्तुरगोमतः ।**
**सुश्वेतभालतिलकोविद्धोवर्णांतरेणच ५२॥**

वह गति उत्तम जाननी और वही घोडा श्रेष्ठ माना है जिस घोडेके मस्तकका सुफेद तिलक दूसरे रंगसे बिंधा हो अर्थात् उसमें कोई अन्य वर्णभी हो ॥ ५२ ॥

सवाजीदलभंजीतुयस्यतस्यातिनिंदितः।
संहन्याद्वर्णजान्दोषान्स्निग्धवर्णोभवेद्यदि॥

वह घोडा सेनाको नष्ट करनेवाला होता है और जिसका वह घोडा हो वहभी अत्यन्त निंदित होता है यदि घोडेका वर्ण स्निग्ध (चिकना) होय तो वर्णके जितने दोष हैं उन सबको नष्ट करता है॥ ५३॥

बलाधिकश्चगतिर्महान्सर्वांगसुंदरः।
नातिक्रूरःसदापूज्योभ्रमाद्यैरपिदूषितः ५४॥

जिस घोडेमें बल अधिक हो और अच्छी गति हो और मोटा और सब अंगोंमें सुन्दर हो जो अत्यन्त क्रोधी नहीं वह चाहै आवर्त आदिसे दूषितभी हो तोभी सदैव पूजने योग्य है॥ ५४॥

वाजिनामत्यवहनात्तुदोषाःसंभवंतिहि।
कृशोव्याधिपरीतांगोजायतेत्यंतवाहनात्५५

घोडोंसे जो सवारी न लेना उससे बहुतसे दोष होते हैं, जो घोडा दुबला, रोगी, अत्यन्त जोतनेसे हो जाय॥ ५५॥

अवाहितोभवेन्मंदःसर्वकर्मसुनिंदितः।
अपोषितोभवेत्क्षीणोरोगीचात्यंतपोषणात्॥

और विना जोते मंद हो जाय वह सब कामोंमें निंदित होता है और जो विना पोषण (खवाये) क्षीण (थकना) होजाय और अत्यंत पोषणसे रोगी होजाता है॥ ५६॥

सुगतिर्दुर्गतिर्नित्यंशिक्षकस्यगुणागुणैः।
जान्वधश्चलपादःस्यादृजुकायःस्थिरासनः॥

और जिसकी शिक्षकके गुण और अवगुणसे सुगति और दुर्गति होजाय और गोडेके नीचे जिसके पैर हलते हों और काया कोमल और आसन स्थिर हो॥ ५७॥

तुलाधृतखलीनःस्यात्कालेदेशेसुशिक्षकः।
मृदुनानातितिक्ष्णेनकशाघातेनताडयेत् ५८

जो समय और देशके अनुसार एकसी खलीन (लगाम) को धारण करे वह अच्छा शिक्षक होना है जो कशा (कोरडा) कोमल हो और अतिकठिन न हो उससे ही घोडेकी ताडना करै॥ ५८॥

ताडयेन्मध्यघातेनस्थानेस्वश्वंसुशिक्षकः।
हेषितेकक्षयोर्हन्यात्स्खलितेपक्षयोस्तथा५९

उत्तम शिक्षा देनेवाला श्रेष्ठघोडेको मध्यमरीतिसे उचित अंगमे ताडना दे, हिंसनेमें कोख और गिरनेके समय पंखोंमे ताडना दे॥५९॥

भीतेकर्णांतरेचैवग्रीवामुन्मार्गगामिनि।
कुपितेबाहुमध्येचभ्रांतचित्तेतथोदरे॥६०॥

डरनेपर कानोंमें कुमार्ग चलनेपर ग्रीवामें क्रोध होनेपर भुजाके मध्यमें, चित्तके भ्रम होनेपर पेटमे घोडेको ताडना दे॥ ६०॥

अश्वःसंताड्यतेप्राज्ञैःनान्यस्थानेषुकर्हिचित्
अथवाहेषितेस्कंधंस्खलितेजघनांतरम्॥६१

बुद्धिमान् मनुष्य किसी अन्य स्थानमें कभी भी ताडना न दे अथवा हिंसने पर स्कंधों और पडनेपर जघाओंके मध्यमें ताडना दे॥ ६१॥

भीतेवक्षस्थलंहन्याद्वक्त्रमुन्मार्गगामिनि।
कुपितेपुच्छसंध्यंनेभ्रान्तेजानुद्वयंतथा॥६२॥

घोडेके डरजानेपर छातीपर कुमार्ग चलनेपर मुखमें, कोप होनेपर पूछके समीपमें और भ्रम होनेपर दोनों गोडोंमें ताडना दे॥ ६२॥

नासकृत्ताडयेदश्वमकालेचविदेशके।
अकालास्थानघातेनवाजीदोषांस्तनोतिच॥

वारंवार और कुसमयमें और कोमल देशमें अश्वको ताडना न दे क्योंकि कुसमय और विदेशकी ताडना देनेपर घोडा दोषोंको करता है अर्थात् अपने सवारके दाबमें नहीं रहता॥ ६३॥

तावद्भवंतितेदोषायावज्जीवत्यसौहयः।
दुष्टंदंडेनाभिभवेन्नारोहेद्दंडवर्जितः॥६४॥

और वे दोष तबतक रहते हैं जब तक यह घोडा जीता है दुष्ट घोडेका दंडसे तिरस्कार करै और दंडके विना सवारभी न हो॥ ६४॥

गच्छेत्षोडशमात्राभिरुत्तमोश्वाधनुःशतम्।
यथायथान्यूनगतिरश्वोहीनस्तथातथा॥६५

जो घोडा सोलह मात्राओंके उच्चारण कालमें सौ धनुष चले वह उत्तम होता है इससे जितना २ न्यूनगति जिसकी हो उतना २ ही वह हीन होता है ॥ ६५ ॥

महस्रचापप्रमितंमंडलंगतिशिक्षणे ।
उत्तमंवाजिनोमध्यंनीचमर्धतदर्धकम् ६६

और गतिकी शिक्षा देनेके समय सहस्र मंडल, धनुषकी गतिका प्रमाण उत्तम घोडेका है उससे आधी गतिवाला मध्यम और उससे भी आधी गति जिसकी हो वह घोडा नीच होता है ॥ ६६ ॥

अल्पंशतधनुःप्रोक्तमत्यल्पंचतदर्धकम् ।
शतयोजनगंतास्यादिनैकेनयथाहयः ६७॥

सौ धनुषकी गति अल्प और पचास धनुषकी गति अत्यल्प होती है, जैसे घोडा एक दिनमे सौ योजन चलनेवाला होजाय ॥ ६७ ॥

गतिंसंवर्धयेन्नित्यंतथामडलविक्रमैः ।
सायंप्रातश्चहेमंतेशिशिरेकुसुमागमे ॥६८॥

उस प्रकार नित्य गतिको मंडल और बढावे, विक्रम (चाल) से हेमंत (जाडा) ऋतुमे सायंकाल और प्रातःकाल और शिशिर और वसंत ऋतुमे ॥ ६८ ॥

सायंग्रीष्मेतुशरदिप्रातरश्वंवहेत्सदा ।
वर्षासुनवहेदीषत्तथाविषमभूमिषु ॥६९॥

सायंकालको, ग्रीष्म (गरमी) और शरद ऋतुमें प्रातःकालके समय घोडेको नित्य चलावे और वर्षा तथा विषम भूमिमें कदाचित् भी न चलावे ॥ ६९ ॥

सुगत्याग्निर्बलंदार्ढ्यमारोग्यंवर्धतेहरेः ।
भारमार्गपरिश्रांतंशनैःश्वंक्रामयेद्धयम् ॥७०

उत्तम गतिसे घोडेकी अग्निबल दृढता और आरोग्य बढते हैं और भार और मार्गसे थके हुवे घोडेको शनैः २ चलावे (फेरे) ॥ ७० ॥

स्नेहंसंपादयेत्पश्चाच्छर्करासक्तुमिश्रितम् ।
हरिमंथाश्चमाषाश्चभक्षणार्थमकुष्टकान् ७१

फिर खांड और सत्तूओंमें मिलाकर घीको खिलावे चने उडद और मठा ये सब घोडेके भक्षणके लिये हित हैं ॥ ७१ ॥

शुष्कानार्द्रांश्चमांसानिसुस्विन्नानिप्रदापयेत्
यद्यत्रस्खलितंगात्रंतत्रदंशंमपातयेत् ७२ ॥

सूखे और गीले पके हुए मांसोंको भी दे जो गात्र घोडका घाव आदिसे गिर जाय उस जगह मांसको भरदे ॥ ७२ ॥

नावतीरितपल्याणंहयंमार्गसमागतम् ।
दत्त्वागुडंसलवणंबलसंरक्षणायच । ॥७३॥

जिस घोडेका पलाण नावसे उतारा हो और मार्गसे चलकर आया हो उसको लवण और गुड बलकी रक्षाके लिये देकर ॥ ७३ ॥

गतस्वेदस्यशांतस्यसुरूपमुपतिष्ठतः ।
मुक्तपृष्ठादिबंधस्यखलीनमवतारयेत् ॥७४॥

जब स्वेद (पसीना) शांत हो जाय, अपने स्वरूपमें स्थित हो जाय और उसकी पीठका बंधन उतारकर खलीन (लगाम) को उतार ले ॥ ७४ ॥

मर्दयित्वातुगात्राणिपांसुमध्येविवर्तयेत् ।
स्नानपानावगाहैश्चततःसम्यक्प्रपोषयेत्७५

और अंगोंको मलकर ऐसी जगह फेरे जहां धूली हो फिर स्नान, पान और मलकर भली प्रकार पुष्ट करे ॥ ७५ ॥

सर्वदोषहरोश्वानांमद्यजांगलयोरसः ।
शक्त्यासंपादयेत्क्षीरंघृतंवावारिसक्तुकम् ॥

मदिरा और जंगलीमांसका रस घोडोंके सब रोगोंको हरता है और यथाशक्ति दूध, घी और जलमिले सत्तुओंको खिलावे ॥ ७६ ॥

अन्नंभुक्त्वाजलंपीत्वातत्क्षणाद्वाहितोहयः ।
उत्पद्यंतेतदाश्वानांकासश्वासादिकागदाः ॥

अन्नको खिलाकर और जलको पिलाकर उसी क्षणमे चलाया हुआ जो घोडा उसके कास और श्वास आदि अनेक रोग पैदा होते है ॥ ७७ ॥

यवाश्चचणकाःश्रेष्ठामध्यामाषामकुष्ठकाः ।
नीचामसूरामुद्गाश्चभोजनार्थंतुवाजिनः ७८

घोडेको जौ और चने श्रेष्ठ, उडद और माठा मध्यम होते हैं और मसूर और मूंग भोजनके लिये निंदित होते हैं ॥ ७८ ॥

पादैश्चतुर्भिरुत्प्लुत्यमृगवत्साप्लुतागतिः।
असंवलितपद्भ्यांतुसुव्यक्तंगमनंतुरम् ॥७९

जो घोडा चारों पैरोंसे मृगके समान कूद कर चले वह गति प्लुत होती है और पैरोंको नहीं मिलाकर जो प्रगट रीतिसे चले उस गतिको तुर ( वेगवती ) कहते हैं ॥ ७९ ॥

धौरीतकंचतज्ज्ञेयंरथसंवाहनेवरम्।
प्रसंवलितपद्भ्यांयोमयूरोद्धृतकंधरः ॥ ८० ॥

जो घोडा रथके ले चलनेमें उत्तम हो उसे धौरीतक कहते हैं जो घोडा मिले हुए पैरोंसे कंधरा उठाय ले उसे मयूर कहते हैं ॥ ८० ॥

दोलायितशरीरार्धकायोगच्छतिवल्गितम्।
गतयःषड्विधाधारास्कंदितंरेचितंप्लुतम् ॥

जो घोडा आधे शरीरको हिंडोलेके समान उठाकर चलै उसकी गतिको वल्गित कहते हैं और घोडे की गति छः प्रकारकी होती है धारा, आस्कंदित, रेचित, प्लुत ॥ ८१ ॥

धौरीतकंवल्गितंचतासांलक्ष्मपृथक्पृथक्।
धारागतिःसाविज्ञेयायातिवेगतरामता ॥८२

धौरीतक और वल्गित, उनके लक्षणभी पृथक् २ हैं जो अत्यन्त वेगसे हो वह गति धारा जाननी ॥ ८२ ॥

पार्ष्णितोदातितुदितोयस्यांभ्रांतोभवेद्धयः।
आकुंचिताग्रपादाभ्यामुत्प्लुत्योत्प्लुत्यया गतिः ॥ ८३ ॥

पार्ष्णि ( एडी ) के लगानेसे अत्यन्त प्रेरित किया घोडा अत्यन्त भ्रांत होजाता है किंचित् सुकडे हुए अगले पैरोंसे कूद २ कर जो गति है ॥ ८३ ॥

आस्कंदिताचसाज्ञेयागतिविद्भिस्तुवाजिनाम्।
ईषदुत्प्लुत्यगमनमखंडंरेचितंहितत् ॥८४॥

उसको घोडोंकी गतिके ज्ञाता आस्कंदित कहते हैं किंचित् कूदकर जो अखंड गति है उसको रेचित कहते हैं ॥ ८४ ॥

परिणाहोवृषमुखादुदरेतुचतुर्गुणः।
सककुत्रिगुणोच्चस्तुसार्धत्रिगुणदीर्घता ॥

बैलके मुख विस्तारसे उदरका चौगुणा बिस्तार होता है और ककुद (ढाठ) सहित तिगुनी ऊँचाई और साढे तीनगुनी लम्बाई होतीहै ८५॥

सप्ततालोवृषःपूज्योगुणैरेभिर्युतोयदि।
नस्थायीनचवैमंदःसुवोढाह्यंगसुंदरः ॥८६॥

यदि पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त होय तो सात तालका बैल पूजने योग्य होता है और जो न स्थायी ( खडा रहे ) हो और न मंद हो और जिसके सब अंग सुन्दर हों ॥ ८६ ॥

नातिक्रूरःसुपृष्ठश्चवृषभःश्रेष्ठउच्यते।
त्रिंशद्योजनगंतावाप्रत्यहंभारवाहकः ॥८७॥

और जो भारको ले चले जो न अत्यन्त क्रूर हो और जिसकी पीठ सुन्दर हो वह बैल श्रेष्ठ कहा है और प्रतिदिन तीस योजन भारको लेकर चल सके ॥ ८७ ॥

नवतालश्चसुदृढःसुमुखोष्ट्रःप्रशस्यते।
शतमायुर्मनुष्याणांगजानांपरमंस्मृतम् ॥८८

नौ ताल जिसका प्रमाण हो और मुख सुन्दर हो ऐसा ऊंट श्रेष्ठ कहा है मनुष्य और हाथियोंकी अवस्था सौ वर्षकी परम कहीहै ॥८८

मनुष्यगजयोर्बाल्यंयावद्विंशतिवत्सरम्।
नृणांहिमध्यमंयावत्षष्टिवर्षवयःस्मृतम् ॥

मनुष्य और हाथीकी बाल्य अवस्था बीस वर्षतक होती है और मनुष्योंकी मध्यम अवस्था साठवर्षतक कही है ॥ ८९ ॥

अशीतिवत्सरंयावद्गजस्यमध्यमंवयः।
चतुस्त्रिंशत्तुवर्षाणामश्वस्यायुःपरंस्मृतम्।

अस्सी वर्षतक हाथीकी मध्यम अवस्था होती है चौंतीस वर्षकी अवस्था घोडेकी परम पूरी होती है ॥ ९० ॥

पंचविंशतिवर्षंहिपरमायुर्वृषोष्ट्रयोः।
बाल्यमश्ववृषोष्ट्राणांपंचसंवत्सरं मतम् ॥

बैल और ऊंटकी पूरी अवस्था पच्चीस वर्षकी होती है और घोडा बैल ऊंट इनकी बाल्य अवस्था पांच वर्षकी कही है ॥ ९१ ॥

मध्यंवावत्षोडशाब्दंवार्धक्यंतुततःपरम्।
दंतानामुद्गमैर्वर्णैरायुर्ज्ञेयंवृषाश्वयोः ॥ ९२॥

सोलह वर्षतक मध्यम आयु और उससे परे वृद्ध अवस्था होती है और दांतोंके निकलने और वर्ण (आकार) से बैल और घोडेकी अवस्था जाननी ॥ ९२ ॥

अश्वस्यषट्सिताद्दंताःप्रथमाब्देभवंतिहि।
कृष्णलोहितवर्णास्तुद्वितीयेब्देह्यधोगताः ॥

घोडेके छः दात सपेद पहिले वर्षमे और दूसरे वर्षमें काले और लाल वर्णके और नीचेकी तरफ ही होते है ॥ ९३ ॥

तृतीयेब्देतुसदृशौक्रमात्कृष्णौषडब्दतः।
नवमाब्दात्क्रमात्पीतौसितौद्वादशाब्दतः॥

तीसरे वर्षमें क्रमसे बराबर हो जाते है और छठे वर्षमें काले हो जाते है और नवे वर्षमें पीले और बारहवें वर्षमे सुफेद हो जाते हैं ॥ ९४ ॥

दशपंचाब्दतस्तौतुकाचाभौक्रमतःस्मृतौ।
अष्टादशाब्दतस्तौहिमध्वाभौभवतःक्रमात्॥

और पंद्रहवे वर्षमे वे दोनों दांत काचके समान और अठारहवे वर्षमे मधु ( शहद ) के समान क्रमसे होजाते हैं ॥ ९५ ॥

शंखाभौचैकविंशाब्दाच्चतुर्विंशाब्दतःसदा।
छिद्रंसंचलनंपातोदंतानांचत्रिकेत्रिके ॥९६॥

इक्कीसवे वर्षमे शंखके समान हो जाते है और चौबीस वर्षसे तीसरे २ वर्षमे दांतोंमे छेद हिलना और पडना होने लगता है ॥९६॥

प्रोथेसवलयस्तिस्रःपूर्णायुर्यस्यवाजिनः।
यथायथातुहीनास्ताहीनमायुस्तथातथा ॥

जिस घोडेकी नाकके आगे त्रिवली होय उसकी पूर्ण अवस्था होती है और जैसी २ त्रिवली कम होय उतनीही कम होती है ९७॥

जानुस्थातात्वोष्ठवाद्योधूतपृष्ठोजलासन।
गतिमध्यासनःपृष्ठपातीपश्चाद्गमोर्ध्वपात् ॥

गौडेसे जो घोडा खडा होय और होठ जिसके बजे पीठ कंपे जलमें बैठ जाय गति जिसकी मध्यम हो पीठ जिसकी लगती होय पीछे को हटता होय, ऊपरको पैर उठाता होय और ॥ ९८ ॥

सर्पजिह्वश्चर्क्षकांतिर्भीरुरश्वोतिनिंदितः।
सच्छिद्रभालतिलकोनिंद्यआश्रयकृत्तथा ॥

सांपके समान जिह्वा और रीछकीसी कांति डरपोक होय ऐसा घोडा अत्यन्त निंदित होता है जिसके मस्तकके तिलकमें छिद्र होय और जो ढीला और आश्रय चाहता होय वह घोडा भी निंदित होता है ॥ ९९ ॥

वृषस्याष्टौसितादंताश्चतुर्थेब्देऽखिलाःस्मृताः
द्वावंत्यौपतितोत्पन्नौपंचमेब्देहितस्यवै ॥

बैलके दांत चौथे वर्षमे आठ और सपेद होते हैं और पांचवे वर्षमे पिछले दो टूटकर पैदा होते हैं ॥ १००० ॥

पृष्ठेतूपांत्यौभवतःषष्ठमेतत्समीपगौ।
अष्टमेपतितोत्पन्नौमध्यमौदशनौखलु ॥

और उनके पासके दो दात छठे वर्षमे और उनके भी पासके दो दात सातवे वर्षमे और बीचके दोनों आठवे वर्षमे गिरकर दुबारा पैदा होते है ॥ १००१ ॥

कृष्णपीतसितारक्तशंखच्छायौद्विकेद्विके।
क्रमादब्देचभवतश्चलनंपतनंततः॥१००२॥

और दो दो वर्षके अन्तरसे दांतोंकी कालि काली, पीली, सपेद,लाल और शंखके समान हो जाती है और उसके बाद दांतोंका हिलना और पड़ना होने लगता है ॥ १००२ ॥

उष्ट्रस्योक्तप्रकारेणवयोज्ञानंतुवाभवेत्।
प्रेरकाऽऽकर्षकमुखोऽङ्कुशोगजविनिग्रहे ॥

ऊंटकी भी अवस्थाका ज्ञान पूर्वोक्त प्रकारसे होता है, हाथीको शिक्षा देनेके लिये ऐसा अंकुश हो जिसका मुख तिरछा हो और जो घुस सके ॥ ६ ॥

हास्तिपकैर्गजस्तेनविनेयःसुगमोयदि।
खलीनस्योर्ध्वखंडौद्वौपार्श्वगौद्वादशांगुलौ ॥

उस अंकुशसे भली प्रकार चलनेके लिये पीलवान हाथीको शिक्षादे खलीन (लगाम) के

ऊपर लोखंडके दोनों बाजू बारह २ अंगुलके होते हैं ॥ ४ ॥

तत्पार्श्वांतर्गताभ्यांतुसुदृढाभ्यांतथैवच ।
वारकाकर्षखंडाभ्यांरज्ज्वर्थवलयैर्युतौ ॥५॥

और वे दोनों ऐसे होयं जिनके पासमें लगे हुए और बडे दृढ हटाने और खींचनेके खड लगे होयँ और रस्सीको डोरभी लगी होय ॥ ५ ॥

एवंविधखलीनेनवशीकुर्यात्तुवाजिनम् ।
नासिकाकर्षरज्ज्वातुवृषोष्ट्रंविनयेद्वशम् ॥

ऐसे खलीनसे घोडेको वशमें करै और नासिकामे लगी हुई खींचनेकी रस्सीसे बैल और ऊंटको वशमे करै ॥ ६ ॥

तीक्ष्णाग्रकःसप्तफालःस्यादेषांमलशोधने ।
सुताडनैर्विनेयाहिमनुष्यैःपशवःसदा ॥७।

और इनकी मलशुद्धिके लिये तीखे अग्रवाला सात फालोंकी दंताली करना, मनुष्य पशुओंको सदैव भली प्रकार ताडनासे शिक्षा दे ॥ ७ ॥

सैनिकास्तुविशेषेणनतेवैधनदंडतः ।
अनूपेतुवृषाश्वानागजोष्ट्राणांतुजांगले ॥८॥

और सेनाके मनुष्योंको तो विशेष कर ताडनासे शिक्षित करै धन दंडसे नहीं बैल और घोडोंको जलवाले देशमे हाथी और ऊंटोंको जंगलमें ॥ ८ ॥

साधारणेपदातीनांनिवेशाद्रक्षणंभवेत् ।
शतंशतंयोजनांतेसैन्यंराष्ट्रेनियोजयेत् ॥९॥

पदाति मनुष्योंको साधारण देशमें निवास करनेसे रक्षा होती है, राजा अपने राज्यमे योजनके अंतरपर सौसौ सेनाको नियुक्त करै अर्थात् छावनी डाले ॥ ९ ॥

गजोष्ट्रवृषभाश्वाःप्राक्श्रेष्ठाःसंभारवाहने ।
सर्वेभ्यःशकटाःश्रेष्ठावर्षाकालंविनास्मृताः ॥

हाथी, ऊंट, बैल, घोडे, इनमे पहिला २ बोझ लेचलनमें श्रेष्ठ होता है और वर्षाके समयको छोडकर सबसे उत्तम बोझ लेचलनेमें शकट (गाडी) होते हैं ॥ १० ॥

नचाल्पसाधनोगच्छेदपिजेतुमरिंलघुम् ।
महतात्यंतसाध्यस्तुबलेनैवसुबुद्धियुक् ११

थोडे सामानवाला राजा छोटेभी शत्रुके जीतनेके लिये गमन न करै वा बुद्धिमान् मनुष्य बडी सेनासे शत्रुओंके अंतको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

अशिक्षितमसारंचसाद्यस्कंबलवच्चतत् ।
युद्धंविनान्यकार्येषुयोजयेन्मतिमान्सदा १२

बुद्धिमान् राजा ऐसी सेनाको युद्धसे भिन्न कार्योंमें नियुक्त करै जो अशिक्षित, असार, साद्यस्क, (नवीन) बलवान् होय ॥ १२ ॥

विकर्तुंयततेऽल्पेपिप्राप्तेप्राणात्ययेऽनिशम् ।
नपुनःकिंतुबलवान्विकारकरणक्षमः ॥१३॥

छोटाभी शत्रु प्राणोंका नाश होना देखकर विरोध करनेके लिये जब यत्न करता है तो बलवान् मनुष्य विकार करनेको क्यों न समर्थ होगा ॥ १३ ॥

अपिबहुबलोऽशूरोनस्यातुंक्षमतेरणे ।
किमल्पसाधनाच्छूरःस्थातुं शक्तोऽरिणा समम् ॥ १४ ॥

अशूर (कायर) भी मनुष्य अधिक सेना होने पर संग्राममें टिकनेको समर्थ नहीं और अल्प सामानवाला शूर शत्रुके संग टिकनेको समर्थ क्या हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता ॥ १४ ॥

सुसिद्धाल्पबलःशूरोविजेतुंक्षमतेरिपुम् ।
महान्सुसिद्धबलयुक्छूरःकिन्नविजेष्यति १५

भली प्रकार सन्नद्ध थोडीभी सेनावाला शूरवीर शत्रुके जीतनेको समर्थ होता है और भलीप्रकार सन्नद्ध सेनावाला और महान् शूरवीर शत्रुकी सेनाको क्यों नहीं जीतेगा ॥१५॥

मौलशिक्षितसारेणगच्छेद्राजारणेरिपुम् ।
प्राणात्ययेपिमौलंनस्वामिनंत्यक्तुमिच्छति

मौल (पुश्तैनी नौकर) और सीखी सेनाको लेकर राजा रणमें शत्रुपर चढे क्योंकि मौल

सेना प्राणोंके नाश समयमें भी अपनेस्वामीको त्यागना नहीं चाहती ॥ १६ ॥

**वाग्दंडपरुषेणैवभृतिहासेनभीतितः।**
**नित्यंप्रवासायासाभ्यांभेदोवश्यंप्रजायते ॥**

कटु वचन और भृति ( नौकरी ) की न्यूनता करनेसे भयसे और प्रतिदिन परदेशमें भेजने और परिश्रमसे सेनाका अवश्य भेद ( फटना ) हो जाता है ॥ १७ ॥

**बलंयस्यतुसंभिन्नंमनागपिजयःकुतः।**
**शत्रोःस्वल्पापिसेनायाअतोभेदंविचिंतयेत् ॥**

जिस राजाकी थोडी ही सेना भिन्न हो गई होय उसकी जय कहा, इससे शत्रुके थोडीभी सेनाके भेदकी चिंता करै ॥ १८ ॥

**यथाहिशत्रुसेनायाभेदोवश्यंभवेत्तथा।**
**कौटिल्येनप्रदानेनद्राक्कुर्यान्नृपतिःसदा१९**

जैसी शत्रुकी सेनाका अवश्य भेद होय तिसप्रकार कुटिलाई और द्रव्यके देनेसे राजा शीघ्र आचरण करै ॥ १९ ॥

**सेवयाऽत्यंतप्रबलंनत्याचारिंप्रसाधयेत्।**
**प्रबलंमानदानाभ्यांयुद्धैर्हीनबलंतथा ॥२०**

अत्यन्त प्रबल शत्रुको सेवा और नति(नवना) से साधे, प्रबलको मान और दानसे और हीन बलको युद्धसे सिद्धकरै ॥ २० ॥

**मैत्र्याजयेत्समबलंभेदैःसर्वान्विशंनयेत्।**
**शत्रुसाधनोपायोनान्यःसुबलभेदतः ॥२१॥**

समान बलवाले शत्रुको मित्रतासे जीते और सब प्रकारके शत्रुओंको भेदोंसे वशमें करै सेनाके भलीप्रकार भेदसे इतर शत्रुओं के जीतनेका उपाय नहीं है ॥ २१ ॥

**तावत्परोनीतिमान्स्याद्यावत्सुबलवान्स्वयम्**
**मित्रंतावच्चभवतिपुष्टाग्नेःपवनोयथा ॥२२॥**

इतने राजा दृढ बलवान् रहै इतने नीतिमें तत्पर रहै और इतने ही मित्र होता है जैसे प्रबल अग्निका पवन ॥ २२ ॥

**त्यक्तंरिपुबलंधार्यंनसमूहंसमीपतः।**
**पृथङ्नियोजयेत्प्राग्वायुद्धार्थंकल्पयेच्चतत् ॥**

शत्रुकी त्यागी हुई सेनाके समूहको अपने समीप न रक्खे यातो उसे अपनी सेनासे पृथक् काममें लगावे अथवा सबसे पहिले युद्धमें नियुक्त करै ॥ २३ ॥

**मैत्र्यमारात्पृष्ठभागेपार्श्वयोर्वाबलंन्यसेत्।**
**अस्यतेक्षिप्यतेयत्तुमंत्रयंत्राग्निभिश्चतत् २४**

मित्रकी सेनाको अपने समीप पीठके भागमें अथवा पार्श्व ( आसपास ) भागोंमें रक्खे जो मंत्र यंत्र अग्नि इन तीनोंसे चलाया जाय उसे ॥ २४ ॥

**अस्त्रंतदन्यतःशस्त्रमसिकुंतादिकंचयत्।**
**अस्त्रंतुद्विविधंज्ञेयंनालिकंमांत्रिकंतथा ॥२५॥**

अस्त्र कहते हैं उससे जो भिन्न तलवार भाला आदि हैं उनको शस्त्र कहते हैं अस्त्र दो प्रकारके होते हैं १ नालिक २ मांत्रिक ॥ २५ ॥

**यदातुमांत्रिकंनास्तिनालिकंतत्रधारयेत्।**
**सहशस्त्रेणनृपतिर्विजयार्थंतुसर्वदा ॥२६॥**

जो मांत्रिक अस्त्र न होय तो नालिक अस्त्रको शस्त्रसहित राजा विजयके लिये सदैव धारण करै ॥ २६ ॥

**लघुदीर्घाकारधाराभेदैःशस्त्रास्त्रनामकम्।**
**प्रथयंतिनवंभिन्नंव्यवहारायतद्विदः ॥२७॥**

लघु और बडे हो आकार और धाराभेदसे शस्त्र और अस्त्रोंके संग्रामके जाननेवाले नवीन, २ भिन्न २ नामोंसे विस्तार करते हैं ॥ २७ ॥

**नालिकंद्विविधंज्ञेयंबृहत्क्षुद्रविभेदतः।**
**तिर्यगूर्ध्वच्छिद्रमूलंनालंपंचवितस्तिकम् २८**

बडे और क्षुद्र ( छोटेके ) भेदसे नालिक दो प्रकारका है तिरछा ऊपरको छिद्र और जडके भेदसे पांच बिलस्तका नाल होता है ॥ २८ ॥

**मूलाग्रयोर्लक्ष्यभेदितिलबिंदुयुतंसदा।**
**यंत्राघाताग्निकृद्ग्रावचूर्णधृक्कर्णकम् २९**

मूल और अग्र भागसे जो ऐसे लक्ष्य ( निसान ) को जो तिल और बिन्दुके समान

हो भेदनेवाला जिसमें यन्त्रके दबानेसे अग्नि लगे और पिसाहुआ चून (दारू) पडा होय ॥ २९ ॥

सुकाष्ठोपांगबुध्नंचमध्यांगुलबिलांतरम् ।
स्वांतेग्निचूर्णसंधात्रीशलाकासंयुतंदृढम् ३०

जिसमें दृढ काठ हो भीतरसे एक अंगुल पोली हो जिसमें अग्निचूर्ण पडा हो और शलाका (लोहेका गज) से भी युक्त और दृढ होय ॥ ३० ॥

लघुनालिकमप्येतत्प्रधार्यंपत्तिसादिभिः ।
यथायथातुत्वक्सारंयथास्थूलबिलांतरम् ॥

ऐसी लघुनालिका (बंदूक) को पदाति और सवार धारण करैं और जितनी २ मोटी त्वचा होय और बीचका जितना २ बिल जिसका मोटा हो ॥ ३१ ॥

यथादीर्घंबृहद्गोलंदूरभेदितथातथा ।
मूलकीलभ्रमाल्लक्ष्यसमसंधानभाजियत् ॥

जितनी लम्बी होय और जितना बडा गोला आवै और दूरके निसानेको भी भेदन करै और मूलकी कील उखाडनेसे जो निशान समान लगे ॥ ३२ ॥

बृहन्नालिकसंज्ञंतत्काष्ठबुध्नविवर्जितम् ।
प्रवाह्यंशकटाद्यैस्तुसुयुक्तंविजयप्रदम् ३३॥

ऐसी बृहन्नालिका (तोप) जो काष्ठ बुध्न (ऊपरका काठ) से वर्जित हो और भलीप्रकार लगानेसे विजयको देनेवाली वह शकट आदिसे चलाने योग्य होती है ॥ ३३ ॥

सुवर्चिलवणात्पंचपलानिगंधकात्पलम् ।
अंतर्धूमविपकार्कस्नुह्याद्यंगारतःपलम् ३४॥

जिसमें पांच पल सोरेका लवण एकपल गंधक और अग्निसे पके हुए आक, स्नुही (सेहुड) वा केले इनके पलभर कोइले होयँ ॥ ३४ ॥

शुद्धात्संग्राह्यसंचूर्ण्यसंमील्यप्रपुटेद्रसैः ।
शुद्धार्काणां रसोनस्यशोषयेदातपेनच ३५॥

इन सबको शुद्ध २ लेकर पीसले आँक और रसौतके रसमें मिलाकर पुट दे और धूपमें सुखा ले ॥ ३५ ॥

पिष्ट्वाशर्करवच्चैतदग्निचूर्णंभवेत्खलु ।
सुवर्चिलवणाद्भागाःषड्वाचत्वारएववा ॥

यह अग्निचूर्ण पीसकर खांडके समान हो जाता है सोरेके लवणके ६ छः वा चार भाग ले ॥ ३६ ॥

नालास्त्रार्थाग्निचूर्णेतुगंधांगारौतुपूर्ववत् ।
गोलोलोहमयोगर्भगुटिकःकेवलोपिवा ॥

गंधक और कोयले पूर्वके समान तोपके लिये बारूद बनानेकी यह रीति है और हालनेका गोला सब लोहेका हो अथवा जिसके भीतर छोटी २ गोली हों ऐसा हो ॥ ३७ ॥

सीसस्यलघुनालार्थेह्यन्यधातुभवोपिवा ।
लोहसारमयंवापिनालास्त्रंत्वन्यधातुजम् ॥

बन्दूकके लिये सीसेका अथवा अन्यधातुका गोला होता है और तोपके लिये लोहसारका अथवा अन्यधातुका होता है ॥ ३८ ॥

नित्यसंमार्जनस्वच्छमस्त्रपातिभिरावृतम् ।
अंगारस्यैवगंधस्यसुवर्चिलवणस्यच ३९॥

उसको नित्य माजना स्वच्छ रखना और गोलदाजोंसे युक्त रखना चाहिये और कोयले गंधक सोरेका नोन ॥ ३९ ॥

शिलायाहरितालस्यतथासीसमलस्यच ।
हिंगुलस्यतथाकांतरजसःकर्परस्यच ॥४०॥

मनसिल, हरताल, सीसेका मल, हिंगुल, कांतिसार, लिहा, खपरिया ॥ ४० ॥

जतोर्नील्याश्चसरलनिर्यासस्यतथैवच ।
समन्यूनाधिकैरंशैरग्निचूर्णान्यनेकशः ४१॥

लाख वा राल नीऊ (देवदारु) सरलका गोंद इन सबके समान वा कम ज्यादे अशोंसे अनेक प्रकारकी दारू बनती है ॥ ४१ ॥

कल्पयंतिचतद्विदश्चंद्रिकाभादिमंतिच ।
क्षिपंतिचाग्निसंयोगाद्गोलंलक्ष्येसुनालगम् ॥

और दारूके जाननेवाले चांदनीके समान प्रकाश करनेवाली अनेक प्रकारकी दारूओंको

कल्पना करते हैं और तोपके गोलेको अग्निके संयोगसे निशानेपर फेकते हैं ॥ ४२ ॥

नालास्त्रंशोधयेदादौदद्यात्तत्राग्निचूर्णकम् ।
निवेशयेत्तंदंडेननालमूलेयथादृढम् ॥४३॥

पहिले तोपको भलीप्रकार शुद्ध करे फिर उसमे दारूको डालदे फिर उस दारूको दंड (गज)मे तोपकी जडमे दृढतासे जमादे ॥४३॥

ततःसुगोलकंदद्यात्ततःकर्णेग्निचूर्णकम् ।
कर्णचूर्णाग्निदानेनगोलंलक्ष्येनिपातयेत् ॥

फिर उसके ऊपर गोला रखदे फिर तोप के कानमें दारूको रखदे फिर कानके दारूमे अग्निको लगाकर गोलेको निसाने पर फेंक दे ॥ ४४ ॥

लक्ष्यभेदीयथाबाणोधनुर्ज्याविनियोजितः ।
भवेत्तथातुसंधायद्विहस्तश्चशिलीमुखः ४५॥

जैसे वाण धनुषज्यापर लगाया हुआ निशानेको बींधे, इसप्रकार दो हाथके वाणको धनुषपर रक्खे ॥ ४५ ॥

अष्टास्रापृथुबुध्नातुगदाहृदयसंमिता ।
पट्टीशात्मसमोहस्तबुध्नश्चोभयतोमुखः ४६॥

आठ कोनेकी मोटी छातीकी बराबर गदा होती है और पट्टी अपनी बराबर दोनों तरफ मुखवाला हाथमे रखनेके लिये होता है ॥४६॥

ईषद्वक्रश्चैकधारोविस्तारेचतुरंगुलः ।
क्षुरप्रांतोनाभिसमोदृढमुष्टिःसुचंद्ररुक् ४७॥

कुछ टेढा एक धारवाला और चार अंगुल चौडा नाभितक ऊंचा छूरीके समान पेना और दृढ जिसकी मूठ हो चन्द्रमाके समान कांति हो ॥ ४७ ॥

खड्गःप्रासश्चतुर्हस्तदंडबुध्नःक्षुराननः ।
दशहस्तमितःकुंतःफालाग्रःशंकुबुध्नकः ॥

ऐसा खड्ग होता है चार हाथ लम्बा छूरेके समान मुखवाला मोटा प्रास (फरसा) होता है दश हाथका भालेके समान जिसके अग्रभाग, आगेसे पेना कुन्त (भाला) होता है ॥ ४८ ॥

चक्रंषड्हस्तपरिधिःक्षुरप्रांतंसुनाभियुक् ।
त्रिहस्तदंडस्त्रिशिखोलोहरज्जुःसपाशकः ॥

छः हाथकी जिसकी परिधि (फर) हो छूरीके समान जिसका प्रान्त हो और अच्छी नाभि (घुरकी जगे) हो ऐसा चक्र होता है तीन हाथका जिसका दंड हो तीन शिखा हो और फांसी जिसमे हो ऐसी लोहेकी रज्जु होती है ॥ ४९ ॥

गोधूमसंमितस्थूलपत्रंलोहमयंदृढम् ।
कवचंसशिरस्त्राणमूर्ध्वकायविशोभनम् ५०॥

गेहूंके समान जिसके स्थूल पत्ते हों. जो सब लोहेका दृढ हो और शिरका त्राण (रक्षा) सहित हो ऊपरको ऊंचा और शोभित हो ऐसा कवच होता है ॥ ५० ॥

योवसुपुष्टसंभारस्तथाषड्गुणमंत्रवित् ।
बह्वस्त्रसंयुतोराजायोद्धुमिच्छेत्सएवहि ॥

जिस राजाके भलीप्रकार पुष्ट सामान हो जो षड्गुण मन्त्रको जानता हो जिसके यहा बहुतसे अस्त्र भी हों वही राजा युद्ध करनेकी इच्छा करे ॥ ५१ ॥

अन्यथादुःखमाप्नोतिस्वराज्याद्भ्रश्यतेपिच
शत्रुभावमागतयोरुभयोःसंयतात्मनोः ५२॥

अन्यथा दुःखको प्राप्त होता है और अपने राज्यसे भी जाता रहता है जो दोनों शत्रुभावको प्राप्त होगये हों और जिनके मनमें उद्योगभी हो और जिनके मनमे परस्पर लडाईके उद्योग हों ॥ ५२ ॥

अस्त्राद्यैःस्वार्थसिद्धयर्थंव्यापारोयुद्धमुच्यते
मंत्रास्त्रैर्दैविकंयुद्धंनालाद्यस्त्रैस्तथाऽऽसुरम् ॥

अपने प्रयोजनकी सिद्धिके लिये दोनोंके अस्त्र आदिसे परस्पर व्यापारको युद्ध कहते हैं. मन्त्रसे अस्त्रोंका जो युद्ध उसे दैविक और तोप आदि अस्त्रोंसे जो युद्ध उसे आसुर कहते है ॥ ५३ ॥

शस्त्रबाहुसमुत्थंतुमानवंयुद्धमीरितम् ।
एकस्यबहुभिःसार्धंबहूनांबहुभिश्चवा ५४॥

शत्रुओंकी परस्पर भुजाओंसे जो युद्ध उसे मानव कहते हैं और एकका बहुतोंके संग और बहुतोंका बहुतोंके संग ॥ ५४ ॥

एकस्यैकेनवाद्वाभ्यांद्वयोर्वातद्भवेत्खलु।
कालंदेशंशत्रुबलंदृष्ट्वास्वीयबलंततः ॥५५॥

वा एकका एकके संग वा दोका दोके संग जो युद्ध उसे मानव कहते हैं काल, देश, शत्रुका बल और अपना बल देख कर ॥ ५५ ॥

उपायान्षड्गुणंमंत्रंसंभूयाद्युद्धकामुकः।
शरद्धेमंतशिशिरकालोयुद्धेषुचोत्तमः ॥५६॥

छः है गुण जिसमे ऐसे मंत्रोंके उपायोंको युद्धकी कामनावाला मनुष्य संग्रह करै युद्ध के लिये शरत्, हेमन्त, शिशिरका समय उत्तम होता है ॥ ५६ ॥

वसंतोमध्यमोज्ञेयोऽधमोग्रीष्मःस्मृतःसदा।
वर्षासुनप्रशंसंतियुद्धंसामस्मृतंतदा ॥ ५७ ॥

वसंत मध्यम जानना और ग्रीष्म सदैव अधम कहा है, वर्षाके समय युद्धकी कोई भी प्रशंसा नहीं करते क्योंकि उस समय शांति करना ही कहा है ॥ ५७ ॥

युद्धसंभारसंपन्नोयदाधिकबलोनृपः।
मनोत्साहीसुशकुनोत्पातीकालस्तदाशुभः॥

जब तक राजा युद्धके सामानसे संपन्न हो अधिक बलवान हो मनमे उत्साही हो और अच्छे शकुन होते हों उस कालको शुभ जानना ॥ ५८ ॥

कार्येऽत्यावश्यकेप्राप्तेकालोनोचेद्यदाशुभः।
विधायहृदिविश्वेशंगेहेचिह्नमियात्तदा ॥५९
नकालनियमस्तत्रगोस्त्रीविप्रविनाशने।

जब अत्यंत आवश्यककार्य आन पडे और समयभी शुभ न हो तो हृदयमे परमेश्वरकी स्थापना करके और घरमें परमेश्वरके चिह्न बनाकर गमन करे ॥ ५९ ॥ गौ स्त्री ब्राह्मण इनके विनाशमे और पूर्वोक्तकालमें समयका नियम नहीं है ॥

यस्मिन्देशेयथाकालंसैन्यव्यायामभूमयः।
परस्यविपरीतश्चस्मृतोदेशःसउत्तमः ॥६०॥

जिस देशम समयके अनुसार अपनी सेना के कवायदकी अच्छी भूमिहो ।।६०।। शत्रुकी इससे विपरीत हो वह देश लडाईके लिये उत्तम कहा है ॥

आत्मनश्चपरेषांचतुल्यव्यायामभूमयः ॥६१
यत्रमध्यमउद्दिष्टोदेशःशास्त्रविचिंतकैः।

जिस देशमे अपनी और पराई सेनाकी कवायदके लिये समान भूमि हो ॥६१ वहदेश शास्त्र की चिन्ता करने वालोंने मध्यम कहा है।

आरातिसैन्यव्यायामसुपर्याप्तमहीतलः॥६२
आत्मनोविपरीतश्चसदेशोऽधमःस्मृतः।

जिस देशमें शत्रुकी सेनाकेलिये कवायदकी भूमि पूरी हो ॥ ६२ ॥ और अपनी सेनाकी उससे विपरीत होय उस देशको अधम कहाहै॥

स्वसैन्यात्तुतृतीयांशहीनंशत्रुबलंयदि ॥६३॥
अशिक्षितमसारंवासाद्यस्कंस्वजयायन।

यदि अपनी सेनाके तीसरा भाग कम शत्रुकी सेना हो ॥ ६३ ॥ और अपनी सेना अशिक्षित होय सारहीन वा नई हो तो अपना जय न हो सकेगा ॥

पुत्रवत्पालितंयत्तुदानमानविवर्द्धितम् ॥६४
युद्धसंभारसंपन्नंस्वसैन्यंविजयप्रदम्।

जो सेना पुत्रके समान पाली हो दान और मानसे बडाई हो ॥ ६४ ॥ युद्धकी सामग्रियोंसे युक्त हो ऐसी सेना विजय देने वाली होती है ॥

संधिंचविग्रहंयानमासनंचसमाश्रयम् ॥६५
द्वैधीभावंचसंविद्यान्मंत्रस्यैतांस्तुषड्गुणान्।

संधि, विग्रह, यान (चढाई), आसन, समाश्रय (आधीन होना) ॥ ६५ ॥ द्वैधी-भाव (भेद) इन मंत्रके छः गुणोंको राजा भली प्रकार जाने ॥

याभिःक्रियाभिर्बलवान्मित्रतांयातिवैरिणः॥
साक्रियासंधिरित्युक्ताविमृशेतांतुयत्नतः।

जिन कामोंके करनेसे बलवान्भी वैरी मित्र होजाय ॥ ६६ ॥ उस क्रिया ( कर्म ) को संधि कहते हैं उसको यत्नसे राजा विचारे ॥

विकर्षितःसनाधीनोभवेच्छत्रुस्तुयेनवै ॥६७॥
कर्मणाविग्रहस्तंतुचिंतयेन्मंत्रिभिर्नृपः।

जिस कामसे भेदन किया हुआ शत्रु अपने आधीन होजाय ॥ ६७ ॥ उस विग्रह ( लडाई ) को मंत्रियोंके संग राजा विचारे ॥

शत्रुनाशार्थगमनंयानंस्वाभीष्टसिद्धये ॥६८
स्वरक्षणंशत्रुनाशोभवेत्स्थानात्तदासनम्।

अपने अभीष्ट सिद्धिके लिये शत्रुके नाशार्थ मनुष्यसे यान ( चढाई ) कहते हैं ॥६८॥ अपनी रक्षा शत्रुका नाश ( जिस स्थानसे बैठ रहना ) होय उसको आसन कहते हैं ॥

यैर्गुप्तोबलवान्भूयाद्दुर्बलोपिसआश्रयः॥
द्वैधीभावःस्वसैन्यानांस्थापनंगुल्मगुल्मतः।

जिनकी रक्षासे दुर्बलभी बलवान होजाय उसे आश्रय कहते हैं ॥६९॥ गुल्म २ ( मौका ) पर अपनी सेनाओंको टिकानेको द्वैधीभाव कहते हैं ॥

बलीयसाभियुक्तस्तुनृपोनान्यप्रतिक्रियः॥
आपन्नःसंधिमन्विच्छेत्कुर्वाणःकालयापनम्।
एकएवोपहारस्तुसंधिरेषमतोहिनः॥ ७१ ॥

बलवान्का दबायाहुआ राजा जब अन्य प्रतिकार न करसके तो ॥ ७० ॥ विपत्तिको प्राप्त हुआ और कालको बिताता हुआ शत्रुके संग संधि ( मेल ) की इच्छा करे और दूसरेको भेट देदेना यह मुख्य संधि हमको भी सम्मत है ॥ ७१ ॥

उपहारस्यभेदास्तुसर्वेऽन्येमैत्रवर्जिताः।
अभियोक्ताबलीयस्त्वादलब्ध्वाननिवर्तते॥

मित्रताको छोडकर उपहारके अन्य भी भेद बहुतसे होते हैं जहां अभियोक्ता ( चढनेवाला ) शत्रु बलवान् होनेसे विना भेट लिये निवृत्त न होय ॥ ७२ ॥

उपहारादृतेयस्मात्संधिरन्योनविद्यते।
शत्रोर्बलानुसारेणउपहारंप्रकल्पयेत्॥ ७३॥

वहांपर उपहारसे दूसरी संधि नहीं होती किन्तु शत्रुके बलानुसार भेटको दे दे ॥ ७३ ॥

सेवांवापिचस्वीकुर्याद्दद्यात्कन्यांभुवंधनम्।
स्वसामंतांश्चसंधीयान्मंत्रेणान्यजयायवै ॥

अथवा शत्रुकी सेवाको स्वीकार करें व कन्या, भूमि, धन इनको शत्रुको दे दूसरेकी जयके लिये अपने सामन्तों ( समीपके राजा ) के संग संधि करै ॥ ७४ ॥

संधिःकार्योप्यनार्येणसंप्राप्योत्सादयेद्धिसः।
संघातवान्यथावेणुर्निबिडैःकंटकैर्वृतः॥७५॥

अनार्य्य मनुष्यकी कीहुई संधि शत्रुको उखाड देती है, जैसे सघन कांटोंसे रोका हुआ वेणु समूहवाला होकर ॥ ७५ ॥

नशक्यतेसमुच्छेत्तुंवेणुःसंघातवांस्तथा।
बलिनासहसंधायभयेसाधारणेयदि ॥ ७६॥

छेदनेको शक्य नहीं होता इसी प्रकार सन्धिवाला राजाभी उखाडनेके अयोग्य होता है, यदि राजाको साधारण भय होय तो बलवानके संग मिलकर ॥ ७६ ॥

आत्मानंगोपयेत्कालेबह्वमित्रेषुबुद्धिमान्।
बलिनासहयोद्धव्यमितिनास्तिनिदर्शनम्॥

बहुत शत्रओंके होनेपर बुद्धिमान् राजा उस कालमें अपने आत्माकी रक्षा करे क्योंकि यह शास्त्रमें नही लिखा कि बलवानके संग युद्ध करना ॥ ७७ ॥

प्रतिवातंहीनघनःकदाचिदापसर्पति।
बलीयसिप्रणमतांकालेविक्रमतामपि ॥७८॥

क्योंकि छोटा बादल पवनके सामने कदाचित् भी नहीं चलता जो राजा बलवान् शत्रुको मानते हैं और समयपर पराक्रम भी करते हैं ॥ ७८ ॥

संपदोनविसर्पंतिप्रतीपमिवनिम्नगाः।
राजानगच्छेद्विश्वासंसंधितोपिहिबुद्धिमान्॥

उनकी सम्पदा इस प्रकार कही नहीं जाती जैसे ऊँचेपर नदी, बुद्धिमान् राजा मेल होने पर भी शत्रुका विश्वास न करे ॥ ७९ ॥

अद्रोहसमयंकृत्वावृत्रमिंद्रःपुराऽवधीत् ।
आपन्नोभ्युदयाकांक्षीपीड्यमानःपरेणवा ॥

क्योंकि स्नेहकी प्रतिज्ञा करके भीपूर्वकालमें इन्द्रने वृत्रासुरको मार दिया था आपत्तिको प्राप्त हुआ शत्रुसे पीडित राजा अपना उदय चाहे तो ॥ ८० ॥

देशकालबलोपेतःप्रारभेतचविग्रहम् ।
प्रहीनबलमित्रंतुदुर्गस्थंद्वयंतरागतम् ८१॥

देश, काल, बल, इनसे जब युक्त हो उस समय लडाईका प्रारम्भ करै जिस शत्रुके बल और मित्र हीन हों दुर्गमे टिका हो दो शत्रुओंके बीच हो ॥ ८१ ॥

अत्यन्तविषयासक्तंप्रजाद्रव्यापहारकम् ।
भिन्नमंत्रिबलंराजापीडयेत्परिवेष्टयन् ८२॥

अत्यन्त विषयोंमें आसक्त हो प्रजाके द्रव्यको हरता हो मंत्री और सेना जिसे फटी हो ऐसे शत्रुको चारों तरफसे लपटकर पीडित ( दबाव ) करै ॥ ८२ ॥

विग्रहःसचविज्ञेयोह्यन्यश्चकलहःस्मृतः ।
बलीयसाल्पबलःशूरेणनचविग्रहम् ॥

इसीको विग्रह कहते हैं इससे अन्य कलह कहा है बलवानके संग अल्प बलवाले शूरवीर के संग जो लडाई ॥ ८३ ॥

कुर्याच्चविग्रहेपुंसांसर्वोनाशःप्रजायते ।
एकार्थाभिनिवेशित्वंकारणंकलहस्यवा ॥

कर्त्ता है उस लडाईमे पुरुषोंका सर्वनाश होता है एक वस्तुकी अभिलाषा करनी इसीको लडाईका कारण कहते हैं ॥ ८४ ॥

उपायांतरनाशेतुततोविग्रहमाचरेत् ।
विगृह्यसंधायतथासंभूयाथप्रसंगतः ॥८५॥

जब दूसरा कोई उपाय न होय तो लडाईको करै लडाईके लिये मिलकर इकट्ठा होकर और प्रसंगसे ॥ ८५ ॥

उपेक्षयाचनिपुणैर्यानंपंचविधंस्मृतम् ।
विगृह्ययातिहियदासर्वाञ्छत्रुगणान्बलात्

उपेक्षासे यह पांच प्रकारका यान (चढाई) विद्वानोंने कहा है जब शत्रुओंके गणके ऊपर बलसे लडाई करके गमन करै उसको ॥ ८६ ॥

विगृह्ययानंयानज्ञैस्तदाचार्यैःप्रचक्षते ।
अरिमित्राणिसर्वाणिस्वमित्रैःसर्वतोबलात्

यानके जाननेवाले आचार्य विगृह्ययान कहते हैं अथवा संपूर्ण शत्रुके मित्रोंको अपने सब मित्रोंके संग बलसे ॥ ८७ ॥

विगृह्यचारिभिर्गंतुंविगृह्यगमनंतुवा ।
संधायान्यत्रयात्रायांपार्ष्णिग्राहेणशत्रुणा ॥

लडाकर शत्रुपर जो चढना उसको विगृह्य गमन कहते है अन्यपर चडाईके समय पीछेके शत्रुके साथ सन्धि करके जो गमन ॥ ८८ ॥

संधायगमनंप्रोक्तंतज्जिगीषोःफलार्थिना ।
एकोभूपोयदैकत्रसामंतैःसांपरायिकैः ८९॥

उसे जीतनेवाले फलके अभिलाषी राजाका सन्ध्यागमन कहते हैं जब एक राजा अपने सामंत साथी उन राजाओंके संग ॥ ८९ ॥

शक्तिशौर्ययुतैर्यानंसंभूयगमनंहितत् ।
अन्यत्रप्रस्थितःसंगादन्यत्रैवचगच्छति ॥

मिलकर गमन करै जो सामर्थ्य और बलमे युक्त होय उसे सभूय गमन कहते हैं यदि अन्यपर चढाईके लिये प्रस्थित राजा संगसे अन्यत्र हीचला जाय ॥ ९० ॥

प्रसंगयानंतत्प्रोक्तंयानविद्भिश्चमंत्रिभिः ।
रिपुंयातस्यबलिनःसंप्राप्यविकृतंफलम् ॥

जो यानके ज्ञाता मंत्रीजन उसे प्रसगयान कहते हैं, जो बलवान् राजा शत्रुपर गमन करै वहा विपरीत फल मिल जाय ॥ ९१ ॥

उपेक्ष्यतस्मिन्तद्यानमुपेक्षायानमुच्यते ।
दुर्वृत्तेऽप्यकुलीनेतोबलंदातारिरज्यते ९२॥

तो उसकी उपेक्षा ( छोडना ) करनेको उपेक्षायान कहते हैं, जो दुराचारी कुलहीन

होय ऐसे राजापर बल करना अच्छा होता है ॥ ९२ ॥

हृष्टंकृत्वास्वीयबलंपारितोष्यप्रदानतः।
नायकःपुरतोयायात्प्रवीरपुरुषावृतः ॥९३॥

अपनी सेनाको प्रसन्न और धन आदि देनेसे उनको सन्तोष करके बडे २ वीर पुरुषोंसे युक्त सेनाका नायक ( सेनापति ) सबसे आगे चले ॥ ९३ ॥

मध्येकलत्रंकोशश्चस्वामीफल्गुचयद्धनम्।
ध्वजिनींचसदोद्युक्तःसंगोपायेद्दिवानिशम् ॥

सेनाके बीचमें स्त्री, कोश स्वामी और सामान्य धन, इनको रक्खे और रात्रि दिन सदैव बडे यत्नसे अपनी सेनाकी रक्षा करै ॥ ९४ ॥

नद्यद्रिवनदुर्गेषुयत्रयत्रभयंभवेत्।
सेनापतिस्तत्रतत्रगच्छेद्व्यूहकृतैर्बलैः ॥९५॥

नदी, पर्वत, वन, दुर्ग, आदिमें जहां २ भय होय वहां २ सेनाके व्यूह बनाकर सेनापति गमन करै ॥ ९५ ॥

यायाद्व्यूहेनमहतामकरेणपुरोभये।
श्येनेनोभयपक्षेणसूच्यावाधीरवक्त्रया ९६॥

यदि सेनाके आगे भय होय तो बडे मकरके आकारके व्यूहसे सेनापति चले अथवा शिखरके दोनों पक्षके समान व्यूहसे अथवा बडी पेनी है धार जिसकी ऐसी सूचीके व्यूहसे सेनापति गमन करै ॥ ९६ ॥

पश्चाद्भयेतुशकटंपार्श्वयोर्वज्रसंज्ञिकम्।
सर्वतःसर्वतोभद्रंचक्रंव्यालमथापिवा ॥९७॥

यदि पीछे भय हो तो शकटव्यूहसे, पार्श्वोंमें ( दोनों तरफ ) भय हो तो वज्रव्यूहसे चारों तरफसे भय हो तो सर्वतोभद्रव्यूहसे अथवा सर्प व्यूहसे सेनापलि गमन करे ॥ ९७ ॥

यथादेशंकल्पयेद्वाशत्रुसेनाविभेदकम्।
व्यूहरचनसंकेतान्वाद्यभाषासमीरितान् ॥

देशक अनुसार शत्रुकी सेनाके भलीप्रकार भेद ( तोडने ) का यत्न करै और पूर्वोक्त व्यूहोंकी रचनाके ऐसे संकेत ( इशारे ) जो बाजोंके बजनेसे मालूम हो सकें ॥ ९८ ॥

स्वसैनिकैर्विनाकोपिनजानातितथाविधान्।
नियोजयेच्चमतिमान्व्यूहान्नानाविधान्सदा॥

और उन संकेतोंको अपनी सेनाक मनुष्योंसे इतर कोई भी न जाने और बुद्धिमान् राजा सदैव अनेक प्रकारके व्यूहोंको नियत करै ॥ ९९ ॥

अश्वानांचगजानांचपदातीनांपृथक्पृथक्।
उच्चैःसंश्रावयेद्व्यूहसंकेतान्सैनिकान्नृप ॥

सवार, हाथीवान्, पदाति इनको और सेनाके इतर मनुष्योंको राजा व्यूहके सकतोंको ऊंच शब्दमें सुनवा दे ॥ १०० ॥

वामदक्षिणसंस्थोवामध्यस्थोवाग्रसंस्थितः।
श्रुत्वातान्सैनिकैःकार्यमनुशिष्टंयथातथा १॥

राजा वाम, दक्षिण वा मध्य वा अग्रभागमें स्थित रहै सेनाक मनुष्य उन संकेतोंको सुनकर यथाथ रीतिसे उक्तसंकेतोंके अनुसार राजाकी शिक्षाके अनुसार कामको करै ॥ १ ॥

संमीलनंप्रसरणंपरिभ्रमणमेवच।
आकुंचनंतथायानंप्रयाणमपयानकम् ॥२॥

संमीलन ( मिलना ) प्रसरण ( चलना ) चारोंतरफ घूमना आकुंचन ( सुकुडना ) शनैः २ गमन अच्छी रीतिसे गमन अपयान ( उलटा चलना ) ॥ २ ॥

पर्यायेणचसांमुख्यंसमुत्थानंचलुंठनम्।
संस्थानंचाष्टदलवच्चक्रवद्गोलतुल्यकम् ॥३॥

क्रमसे गमन, सन्मुख गमन, खडा होना, लोटना, आठ दलके समान टिकना अथवा चक्रकी गोलाईके तुल्य टिकना ॥ ३ ॥

सूचीतुल्यंशकटवदर्धचंद्रसमंतुवा।
पृथग्भवनमल्पाल्पैःपर्यायैःपंक्तिवेशनम् ४॥

मुईके समान, शकट वा आधे चन्द्रके समान अथवा थोडी २ सेनाको पृथक् करना, या क्रमसे पंक्तियोंमें बैठाना ॥ ४ ॥

शस्त्रास्त्रयोर्धारणंचसंधानंलक्ष्यभेदनम् ।
मोक्षणंचतथास्त्राणांशस्त्राणांपरिवातनम् ५॥

शस्त्र अस्त्रका धारण संधान (धनुषपर बाण लगाना) निशानेका भेदन अस्त्रोंका छोडना और शस्त्रोंका चलाना ॥ ५ ॥

द्राक्संधानपुनःपातोग्रहोमोक्षःपुनःपुनः ।
स्वगूहनंप्रतीघातःशस्त्रास्त्रपदविक्रमैः ॥ ६ ॥

बाणोंका शीघ्र लगाना, छोडना, फिर ग्रहण करना, वारंवार फिर छोडना, शस्त्र, अस्त्र, पैरोंके उठावसे अपना गूहन (छिपना) और शत्रुको मारना ॥ ६ ॥

द्वाभ्यांत्रिभिश्चतुर्भिर्वापंक्तितोगमनंततः ।
तथाप्राक्भवनंचापसरणंतूपसर्जनम् ॥ ७ ॥

फिर दो २ तीन २ वा चार २ की पंक्ति बनाकर गमन करना और कभी सेनामें आगे होना कभी पीछे कभी पृथक् होजाना ॥ ७ ॥

अपसृत्यास्त्रसिद्धयर्थमुपसृत्यविमोक्षणे ।
प्राक्भूत्वामोचयेदस्त्रंव्यूहस्तःसैनिकःसदा ८

अस्त्रोंकी सिद्धिके लिये पीछे हटना और अस्त्रोंके छोडनेके लिये आगे जाना, व्यूहमें टिकाहुआ युद्ध करनेवाला सैनिक सदैव अस्त्रको छोडे ॥ ८ ॥

आसीनःस्याद्विमुक्तास्त्रः प्राग्वाचापसरेत्पुनः
प्रागासीनंतूपसृतोदृष्ट्वास्वास्त्रंविमोचयेत् ९॥

अस्त्रके छोडनेपर खडा होजाय अथवा फिर सेनाके आगे चला जाय और आगे जाकर अपने सन्मुख खडे हुये शत्रुको देखकर अस्त्रको छोडे ॥ ९ ॥

एकैकशोद्विशोवापिसंघशोबोधितोयथा ।
क्रौंचानांखेगतिर्यादृक्पंक्तितःसंप्रजायते १०

जैसे आकाशमें क्रौञ्च पक्षियोंकी गति एक २ दो दो वा समूह २ से पंक्तीसेही होती है उसी प्रकार संकेतमे सेनाके मनुष्य चलैं॥१०॥

तादृक्संरचयेत्क्रौंचव्यूहंदेशबलंयथा ।
सूक्ष्मग्रीवंमध्यपुच्छंस्थूलपक्षंतुपंक्तितः ११॥

उसी प्रकार देश और बलके अनुसार क्रौंच व्यूहकी रचनाको सेनापति रचै जिसकी ग्रीवा सूक्ष्म होय पूंछ मध्यम और पक्ष मोटे हों ऐसी पंक्ति बनावै ॥ ११ ॥

बृहत्पक्षंमध्यगलपुच्छंश्येनंमुखेतनु ।
चतुष्पान्मकरोदीर्घस्थूलवक्त्रद्विरोष्ठकः १२॥

जिसके पक्ष बडे हों गल और पूंछ मध्यम हो मुख सूक्ष्म हो उसे सेनाव्यूह कहते हैं जिसके चौपायेका आकार हो लम्बा हो स्थूलमुख हो और दो ओष्ठ हों उस व्यूहको मकर कहते हैं ॥ १२ ॥

सूचीसूक्ष्ममुखोदीर्घसमदंडांतरंध्रयुक् ।
चक्रव्यूहश्चैकमार्गोह्यष्टधाकुंडलीकृतः १३॥

जिसका सूक्ष्म मुख हो, समान लम्बा विस्तार हो और बीचमें खाली उसे सूचीव्यूह कहते है जिसका एक मार्ग हो और आठ कुंडली हों उसे चक्रव्यूह कहते हैं ॥ १३ ॥

चतुर्दिक्ष्वष्टपरिधिःसर्वतोभद्रसंज्ञकः ।
आमार्गश्चाष्टवलयीगोलकःसर्वतोमुखः ॥

जिसकी चारों दिशाओंमें आठ परिधि(फेर) हों उस व्यूहको सर्वतोभद्र कहते हैं ॥१४॥

शकटःशकटाकारोव्यालोव्यालाकृतिःसदा ।
सैन्यमल्पंबृहद्वापिदृष्ट्वामार्गंरणस्थलम्॥१५॥

जिस सेनाका आकार शकट (गाडा) के समान हो उसे शकट और जिसका सर्पके समान हो उसे व्यालव्यूह कहते हैं सेनाकी अल्पता वा अधिकता को और रणभूमिको देखकर ॥ १५ ॥

व्यूहैर्व्यूहेनव्यूहाभ्यांसंकरेणापिकल्पयेत् ।
यंत्रास्त्रैःशत्रुसेनायाभेदोयेभ्यःप्रजायते १६॥

सेनाके अनेक, एक वा दो व्यूहोंकी वा संकर (इकट्ठी) की रचनाको करै, जहां यंत्रके अस्त्रोंसे शत्रुकी सेनाका भेद (पराजय) हो जाय ॥ १६ ॥

स्थलेभ्यस्तेषुसंतिष्ठेत्ससैन्योह्यासनंहितत् ।
तृणान्नजलसंभारायेचान्येशत्रुपोषकाः १७॥

ऐसे स्थलोंमे जो सेना सहित राजाका टिकना उसको आसन कहते हैं तृण, अन्न और जलके संचय और जो शत्रुके पोषण करनेवाले पदार्थ हैं ॥ १७ ॥

सम्यङ्निरुध्यतान्यत्नात्परितश्चिरमासनात ।
विच्छिन्नविविधासारंप्रक्षीणयवसेंधनम् १८॥

उन सबको चारों तरफसे चिरकालतक आसनमें टिका हुआ राजा भलीप्रकार रोके और शत्रुके भार ढोनेके विविध ( बॅहिगी ) इनको और मुसई घनको और मार्गको नष्ट कर दे ॥ १८ ॥

विगृह्यमाणप्रकृतिंकालेनैववशंनयेत् ।
अरेश्वविजिगीषोश्चविग्रहेहीयमानयोः॥ १९॥

और शत्रुकी प्रजामें जिस समय राजाके संग लडाई देखे उस समय शत्रुको वशमें करले, जब शत्रु जीतनेवाला ये दोनों लडाईमे हीन होजायं ॥ १९ ॥

संधाययदवस्थानंसंधायासनमुच्यते ।
उच्छिद्यमानोबलिनानिरुपायप्रतिक्रियः ॥

उस समय मिलकर जो बैठ रहना, उसे मिलाया आसन कहते हैं बलवाले शत्रुका उखाडा हुआ उपाय और प्रतीकार करनेमे असमर्थ राजा ॥ २० ॥

कुलोद्भवंसत्यमार्यमाश्रयेतबलोत्कटम् ।
विजिगीषोस्तुमाह्यार्थाःसुहृत्संबंधिबांधवाः॥

कुलीन, सत्यवादी, सज्जन और अपनेसे बलमें अधिकका आश्रय ले जीतनेवाले राजाकेही मित्र संबंधी और बांधव सहायक होते हैं ॥ २१ ॥

प्रदत्तभृतिकाह्यन्येभूपाअंशप्रकल्पिताः ।
सेवाश्रयस्तुकथितोदुर्गाणिचमहात्माभिः ॥

जिनको राजाने वेतन दियाहो वा और कोई राजा, अथवा जिन्हें भूमिका भाग दियाहो उनका जो आश्रय लेना अथवा किलेमें बैठरहना उसीको महात्मा लोग आश्रय कहते हैं ॥२२॥

अनिश्चितोपायकार्यःसमयानुचरोनृपः ।
द्वैधीभावेनवर्तेतकाकाक्षिवदलक्षितम् ॥२३॥

जब राजाको समयके अनुसार अपने कार्यका उपाय निश्चित न हो उस समय काकके नेत्रसमान द्वैधीभावसे वर्ते और किसीको प्रतीत न हो ॥ २३ ॥

प्रदर्शयेदन्यकार्यमन्यमालंबयेच्च वा ।
सदुपायैश्वसन्मंत्रैःकार्यसिद्धिरथोद्यमैः २४॥

अन्य कामको दिखावे और अन्यको ग्रहण करे अच्छे उपाय, अच्छे मन्त्र और उद्यमोंसे कार्य्यकी सिद्धि ॥ २४ ॥

भवेदल्पजनस्यापिकिंपुनर्नृपतेर्नहि ।
उद्योगेनैवसिध्यंतिकार्याणिनमनोरथैः २५॥

तुच्छ जनकी भी होजाती है राजाकी तो क्यों न होगी उद्योगसे कार्य सिद्ध होते हैं मनोरथ करनेसे नहीं ॥ २५ ॥

नहिसुप्तमृगेंद्रस्यनिपतंतिगजामुखे ।
अयोभेद्यमुपायेनद्रवतामुपनीयते ॥ २६ ॥

क्योंकि सोते हुए सिंहके मुखमें हाथी नहीं गिरते जो पदार्थ लोहेसे बिंधता है वह भी उपायसे द्रव ( पतला ) होजाता है ॥ २६ ॥

लोकप्रसिद्धमेवैतद्वारिवह्नेर्नियामकम् ।
उपायोपगृहीतेनतेनैतत्परिशोष्यते ॥ २७ ॥

यह बात जगतमें प्रसिद्ध है कि जलसे अग्नि शान्त होती है यदि उपाय किया जाय तो अग्निही जलको शोष लेती है ॥ २७ ॥

उपायेनपदंमूर्ध्निन्यस्यतेमत्तहस्तिनाम् ।
उपायेषूत्तमोभेदःषड्गुणेषुसमाश्रयः॥२८॥

उन्मत्त हाथियोंके मस्तकपर भी उपायसे चरण रक्खा जाता है सब उपायोंमें उत्तम गुण भेद है और६गुणोंमें उत्तम गुण समाश्रय है२८

कार्यौद्वौसर्वदातौतुनृपेणविजिगीषुणा ।
ताभ्यांविनानैवकुर्याद्युद्धंराजाकदाचन॥२९॥

इन दोनोंको विजयकी इच्छावाला राजा सदैव करे इन दोनोंके विना युद्धको कदाचित् भी न करै ॥ २९ ॥

परस्परंप्रातिकूल्यंरिपुसेनपमंत्रिणाम् ।
भवेद्यथातथाकुर्यात्तत्प्रजायाश्चतात्स्त्रियाः ॥

जिस प्रकार शत्रुका सेनापति और मन्त्री ये परस्पर प्रतिकूल (विरुद्ध) हो जायँ और शत्रुकी प्रजा तथा स्त्रियोंमें भी प्रतिकूलता हो ऐसे आचरण राजा करे ॥ ३० ॥

उपायान्षड्गुणान्वीक्ष्यशत्रोःस्वस्यापिसर्वदा
युद्धंप्राणात्ययेकुर्यात्सर्वस्वहरणेसति ३१॥

शत्रुके और अपने उपाय और ६ गुणोंको सदैव देखकर और सर्वस्वके हरने पर प्राणोंके नाश आनेपर युद्धको करे ॥ ३१ ॥

स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौचगोविनाशेपिब्राह्मणैः ।
प्राप्तेयुद्धेक्वचिन्नैवभवेदपिपराङ्मुखः ३२॥

यदि स्त्री ब्राह्मण इनको विपत्ति हो गौओंका नाश हो ब्राह्मणोंका परस्पर युद्ध हो ऐसे समयमें कभी भी युद्धसे न हटे ॥ ३२ ॥

युद्धमुत्सृज्ययोयातिसदेवैर्हन्यतेभृशम् ।
समोत्तमाधमैराजात्वाहूतःपालयन्प्रजाः ॥
ननिवर्तेतसंग्रामात्क्षात्रधर्ममनुस्मरन् ।

जो राजा युद्धको छोडकर भागता है उसको देवता सदैव नष्ट करते है, प्रजाओंकी पालना करते हुए राजाको यदि युद्धके लिये समान उत्तम अधम बुलावे तो ॥ ३३ ॥ क्षत्रियोंके धर्मका स्मरण करता हुआ राजा संग्रामसे न हटे ॥

राजानंचापयोद्धारंब्राह्मणंचाप्रवासिनम् ३४
निगीलतिभूमिरेतौसर्पोबिलशयानिव ।

जो राजा होकर युद्ध न करे और ब्राह्मण होकर परदेशमें न जाय ॥ ३४ ॥ इन दोनोंको भूमि इस प्रकार ग्रस लेती है जैसे सांप बिलमे सोने वालों (चूहों) को ॥

ब्राह्मणस्यापिचापत्तौक्षत्रधर्मेणवर्ततः ३५॥
प्रशस्तंजीवितंलोकेक्षत्रंहिब्रह्मसंभवम् ।

ब्राह्मण आपत्तिमें जो क्षत्रियोंके धर्म (युद्धादि) से वर्तता है ॥ ३५ ॥ जगतमें उसका ही जीवन श्रेष्ठ है क्योंकि ब्राह्मण से ही क्षत्रियोंकी उत्पत्ति है ॥

अधर्मःक्षत्रियस्यैषयच्छय्यामरणंभवेत् ॥
विसृजञ्श्लेष्मपित्तानिकृपणंपरिदेवयन् ।

क्षत्रियका यह महान अधर्म है कि शय्यापर पडे पडे मरन ॥३६॥ जो क्षत्री अपने देहमेंसे कफ और पित्तको गेरता और दीन वचन कहता हुआ ॥

अविक्षतेनदेहेनप्रलयंयोधिगच्छति ॥३७॥
क्षत्रियोनास्यतत्कर्मप्रशंसंतिपुराविदः ।

देहमें घाव आये विना जो मर जाता है ॥ ३७॥ पुरातन ऋषि उस क्षत्रीके इस कर्मकी प्रशंसा नहीं करते ॥

नगृहेमरणंशस्तंक्षत्रियाणांविनारणात् ३८॥
शौंडीराणामशौंडीरमधर्मंकृपणंचयत् ।

क्योंकि रणके विना क्षत्रियोंका घरमें मरना अच्छा नहीं ॥ ३८ ॥ और शस्त्रमें कुशलोंके मध्यमे अकुशलता करनी अधर्म और कृपणता भी क्षत्रियोंको अच्छा नहीं ।

रणेषुकदनंकृत्वाज्ञातिभिःपरिवारितः ३९॥
शस्त्रास्त्रैःसुविनिर्भिन्नःक्षत्रियोवधमर्हति ।

रणमें शत्रुओंका कदन (हिंसा) करके अपनी जातिके परिवारसहित और शस्त्र और अस्त्रोंसे भली प्रकार विंधा हुआ क्षत्रीमारनेके योग्य होता है ॥ ३९ ॥

आहवेषुमिथोन्योन्यंजिघांसंतोमहीक्षितः ॥
युध्यमानाःपरंशक्त्यास्वर्गंयांत्यपराङ्मुखाः

संग्राममें परस्पर मारते हुए राजा शक्तिके अनुसार युद्धको करते और न हटते हुए स्वर्गमे जाते हैं ॥ ४० ॥

भर्तुरर्थेचयःशूरोविक्रमेद्वाहिनीमुखे ॥४१॥
भयान्नविनिवर्तेततस्यस्वर्गोह्यनंतकः ।

जो शूरवीर अपने स्वामीके लिये सेनाके मुखपर पराक्रम करता है ॥ ४१ ॥ और भयसे हटता नहीं उसको अनन्त स्वर्ग मिलता है ॥

आहवेनिहतंशूरंनशोचेतकदाचन ॥४२॥
निर्मुक्तःसर्वपापेभ्यःपूतोयातिसलोकताम्।

संग्राममें मरे हुए शूरवीरको कदाचित् भी न सोचे ॥ ४२ ॥ क्योंकि सब पापोंसे निवृत्त और पवित्र हुआ वह अच्छे लोकोंमें जाता है।

वराप्सरःसहस्राणिशूरमायोधनेहतम् ४३॥
त्वरमाणाःप्रधावंतिममभर्ताभवेदिति।

और संग्राममें मरे हुए शूरवीरके लिये हजारों उत्तमोत्तम अप्सरा ॥ ४३ ॥ शीघ्रतासे दौडती हैं कि यह मेरा भर्त्ता हो ॥

मुनिभिर्दीर्घतपसाप्राप्यतेयत्पदंमहत ४४॥
युद्धाभिमुखनिहतैःशूरैस्तद्द्रागवाप्यते।

चिरकालतक तप करनेसे मुनिलोग जिस महान्पदको प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥ वही पद युद्धमें सन्मुख रहते हुए शूरवीरको शीघ्र मिलता है।

एतत्तपश्चपुण्यंचधर्मश्चैवसनातनः ॥४५॥
चत्वारआश्रमास्तस्ययोयुद्धेनपलायते।

यह ही तप यह ही पुण्य यह ही सनातन धर्म है ॥ ४५ ॥ और उसीके ४ आश्रम हैं जो युद्धमसे नहीं हटता ॥

नहिशौर्यात्परंकिंचित्त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥
शूरःसर्वंपालयतिशूरेसर्वंप्रतिष्ठितम्।

तीनों लोकोंमें शूरवीरतासेही पर और कोई उत्तम नहीं है ॥४६॥ शूरवीर ही सबकी पालना करता है और शूरवीरकेही सब आश्रय रहते हैं ॥

चराणामचराअन्नंअदंष्ट्रादंष्ट्रिणामपि४७॥
अपाणयःपाणिमतामन्नंशूरस्यकातराः॥

चरों ( मनुष्य ) के अन्न स्थावर और दाढवालोंके अन्न विना दाढवाले होते हैं॥४७॥ हाथवालोंके अन्न विना हाथवाले और शूरवीर के अन्न कायर होते हैं ॥

द्वाविमौपुरुषौलोकेसूर्यमंडलभेदिनौ ४८॥
परिव्राड्योगयुक्तोयोरणेचाभिमुखंहतः।

ये दो पुरुष सूर्य्यमंडलको भेदन करनेवाले होते हैं कि ॥ ४८ ॥ योगसे युक्त संन्यास और संग्राममें सन्मुख मरा हुआ शूरवीर ॥

आत्मानंगोपयेच्छक्तोवधेनाप्याततायिनः॥
सुविद्योब्राह्मणगुरुर्युयुधेश्रुतिदर्शनात्।

और समर्थ मनुष्य आततायी ( शस्त्रधारी ) के मारनेसे अपने आत्माकी रक्षा करे ॥ ४९ ॥ क्योंकि वदकी आज्ञासे विद्यावान और ब्राह्मण भी द्रोणाचार्यने युद्ध किया ॥

आततायित्वमापन्नोब्राह्मणःशूद्रवत्स्मृतः॥
नाततायिवधेदोषोहंतुर्भवतिकश्चन।

ब्राह्मण भी आततायी शूद्रके समान कहा है ॥ ५० ॥ आततायीके मारनेमें मारनेवालेको कोई भी दोष नहीं होता ॥

उद्यम्यशस्त्रमायातंभ्रूणमप्याततायिनम्॥
निहत्यभ्रूणहानस्यादहत्वाभ्रूणहाभवेत्।

जो आततायी शस्त्र उठाकर आता हो चाहे वह भ्रूण ( बालक ) भी हो ॥५१॥ उसको मारकर भ्रूणहत्या नहीं लगती और न मारे तो लगती है ॥

अपसर्पतियोयुद्धाज्जीवितार्थीनराधमः ५२॥
जीवन्नेवमृतःसोपिभुंक्तेराष्ट्रकृतंत्वघम्।

जो मनुष्योंमें नीच जीनेके लिये युद्धसे हटता है ॥ ५२ ॥ वह जीवता हुआही मरा है और सब देशके पापको भोगता है ॥

मित्रंवास्वामिनंत्यक्त्वानिर्गच्छतिरणाच्चयः
सोंतेनरकमायातिसजीवोनिंद्यतेऽखिलैः।

जो मनुष्य मित्र वा अपने स्वामीको त्यागकर रणमेंसे भागता है ॥ ५३ ॥ जीते हुए उसकी सब निंदा करते हैं और अंत समयमें नरकको जाता है ॥

मित्रमापद्गतंदृष्ट्वासहायंनकरोतियः ॥५४॥
अकीर्तिलभतेसोऽत्रमृतोनरकमृच्छति।

जो मनुष्य अपने मित्रकी आपत्ति देखकर सहायता नहीं करता ॥ ५४ ॥ वह इस लोकमें अकीर्तिको प्राप्त होता है और मरकर नरकमें जाता है ॥

विस्रंभाच्छरणंप्राप्तंयःसंत्यजतिदुर्मतिः॥५५
सयातिनरकेघोरेयावदिंद्राश्चतुर्दश।

जो दुर्मति मनुष्य विश्वाससे शरण आयेको त्यागता है ॥ ५५ ॥ वह चौदह इन्द्रोंके राज्य तक घोर नरकमें जाता है ॥

सुदुर्वृत्तंयदाक्षत्रंनाशयेयुस्तुब्राह्मणाः॥५६
युद्धंकृत्वापिशस्त्रास्त्रैर्नतदापापभाजिनः।

यदि दुराचारी क्षत्रीको ब्राह्मण नष्ट कर दे ॥ ५६ ॥ उस समय शस्त्र और अस्त्रोंसे युद्ध करके भी ब्राह्मण पापके भागी नहीं होते ॥

हीनंयदाक्षत्रकुलंनीचैर्लोकःप्रपीड्यते॥५७
तथापिब्राह्मणायुद्धेनाशयेयुस्तुतान्ध्रुवम्।

और जब क्षत्रियोंका कुल हीन ( असमर्थ ) हो जाय और नीच जगत्को पीडा देते हों ॥ ५७ ॥ उस समयमेंभी युद्ध करके ब्राह्मण उन नीचोंको अवश्य नष्ट करें ॥

उत्तमंमांत्रिकास्त्रेणनालिकास्त्रेणमध्यमम्॥
शस्त्रैःकनिष्ठयुद्धंतुबाहुयुद्धंततोऽधमम्।

मंत्रके अस्त्रोंसे युद्धको उत्तम और तोपके अस्त्रोंसे युद्धको मध्यम ॥ ५८ ॥ और शस्त्रोंके युद्धको कनिष्ठ और भुजाओंके युद्धको अधम॥

मंत्रेरितमहाशक्तिबाणाद्यैःशत्रुनाशनम्॥
मांत्रिकास्त्रेणतद्युद्धंसर्वयुद्धोत्तमंस्मृतम्।

मंत्रसे फेंकी हुई महा शक्ति ( बरछी ) और बाणोंसे जो शत्रुका नाश ॥ ५९ ॥ मंत्रके अस्त्रोंसे किये हुए उस उद्यमको सब युद्धोंमें उत्तम कहते हैं ॥

नालाग्निचूर्णसंयोगाल्लक्ष्येगोलनिपातनम्॥
नालिकास्त्रेणतद्युद्धंमहाह्रासकरंरिपोः।

तोपमें दारुके संयोगसे जो लक्ष्य पर गोलेका गेरना ॥ ६० ॥ नालिक अस्त्रसे किया हुआ वह युद्ध शत्रुकी बडी हानि करता है ॥

कुंतादिशस्त्रसंघातैरिपूणांनाशनंचयत्॥
शस्त्रयुद्धंतुतज्ज्ञेयंनालास्त्राऽभावतःसदा।

कुंत आदि शस्त्रोंके समूहसे जो शत्रुओंको नष्ट करना ॥ ६१ ॥ नाल अस्त्रोंके न होने पर किये हुए युद्धको सदैव शस्त्रयुद्ध कहते हैं ॥

कर्षणैःसंधिमर्माणांप्रतिलोमानुलोमतः॥
बंधनैर्घातनंशत्रोर्युक्त्यातद्बाहुयुद्धकम्।

उलट पलट शत्रुकी सन्धिके मर्मों को जो खींचना ॥ ६२ ॥ और युक्तिसे बांध कर शत्रुको मारना उसे बाहुयुद्ध कहते हैं ॥

नालास्त्राणिपुरस्कृत्यलघूनिचमहांतिच॥
तत्पृष्ठगांश्चपादातान्गजाश्वान्पार्श्वयोःस्थितान्
कृत्वायुद्धंप्रारभेतभिन्नामात्यबलारिणा॥

छोटे और बडे नालास्त्रोंको आगे कर॥६३॥ उनके पीछे पदातियोंको और दोनों तरफ आसपासमें हाथी और घोडोंको करके ऐसे शत्रुके संग युद्धका प्रारंभ करै जिसके मंत्री फटगये हों ॥ ६४ ॥

सांख्येनसुप्रपातेनपार्श्वाभ्यामपयानतः।
युद्धानुकूलभूमेस्तुयावल्लाभस्तथाविधम्॥

सांख्य ( मोरचा ) से और भली प्रकार प्रपात ( फेर ) से और पार्श्वोंकी तरफसे लोटनेसे युद्ध करे, जिस प्रकारकी युद्धके अनुकूल और जितनी भूमि मिले ॥ ६५ ॥

सैन्यार्धांशेनप्रथमंसेनयोर्युद्धमीरितम्।
अमात्यगोपितैःपश्चादमात्यैःसहतद्भवेत्॥

उसमें सेनाके आधे २ भागसे दोनों सेनाओंका युद्ध कहा है और पीछेसे मंत्री की सेना वा मंत्रियोंके संग युद्ध होता है ॥ ६६ ॥

नृपसंगोपितैःपश्चात्स्वतःप्राणात्ययेचतत्।
दीर्घाध्वनिपरिश्रांतंक्षुत्पिपासाहितश्रमम्॥

फिर राजाके सेवकोंके संग और पीछेसे प्राणोंका नाश होता दीखै तो स्वयं राजाकोही युद्ध करना कहा है, मार्गसे थकित हो अथवा क्षुधा और तृषासे युक्त हो ॥ ६७ ॥

व्याधिदुर्भिक्षमरकैःपीडितंदस्युविद्रुतम्।
पंकपांसुजलंस्कंधव्यस्तंवासातुरंतथा॥६८॥

अथवा व्याधि, अकाल और मरीसे पीडित हो अथवा चोरोंकी भगायी हुई हो वा कीच और धूलका जल पीती हो जिसके स्कंध अस्त व्यस्त हों और जिसका वासभी अच्छा न हो ॥ ६८ ॥

प्रसुप्तंभोजनेव्यग्रमभूमिष्ठमसंस्थितम् ।
घोराग्निभयवित्रस्तंवृष्टिवातसमाहतम् ॥ ६९

सोती हो अथवा भोजन करती हो, भूमिमें टिकी न हो, बिगडी हो, घोर अग्निमे दुखी हो अधिक वृष्टि वा पवनसे पीडित हो ॥६९॥

एवमादिषुजातेषुव्यसनेश्वसमाकुलम् ।
स्वसैन्यंसाधुरक्षेत्तुपरसैन्यंविनाशयेत् ॥ ७०

इत्यादि पूर्वोक्त कारण होनेपर और व्यसनोंसे युक्त अपनी सेनाकी तो राजा रक्षा करै और पराई सेनाको नष्ट करे ॥ ७० ॥

उपायान्षड्गुणान्मंत्रंशत्रोःस्वस्यापिचिंतयेत्
धर्मयुद्धैःकूटयुद्धैर्हन्यादेवरिपुंसदा ॥ ७१ ॥

शत्रुके और अपने उपाय और छः गुणोंवाले मन्त्रीकी चिंता करै ( विचारै ) धर्मके अथवा छलके युद्धोंसे सदैव शत्रुको मारै ॥ ७१ ॥

यानेसपादभृत्यातुस्वभृत्यावर्धयन्नृपः ।
स्वदेहंगोपयन्युद्धेचर्मणाकवचेनच ॥ ७२ ॥

यानके समयमे योद्धाओंकी भृति ( नौकरी) को एक चौथाई बढावे और युद्धके समयमें चर्म ( ढाल ) और कवचसे अपने देहकीभी रक्षा करै ॥ ७२ ॥

पाययित्वामदंसम्यक्सैनिकाञ्छौर्यवर्धनम् ।
नालास्त्रेणचखड्गाद्यैःसैनिकैर्दारयेदरीन् ॥

सेनाके वीरोंकी जिसमें शूरवीरता बढै ऐसे मद ( मदिरा ) को पिलाकर नालास्त्र ( तोप ) से और खड्ग ( तलवार ) आदिसे सैनिकों पर शत्रुओंको मरवावे ॥ ७३ ॥

कुंतेनसादिवाणेनरथिनंरथगोपिच ।
गजोगजेनयातव्यस्तुरगेणतुरंगमः ॥ ७४ ॥

भालावाला सवारके संमुख और रथवाला रथवानके, हाथी हाथीके और घोडा घोडेके सामने चले ॥ ७४ ॥

रथेनचरथोयोज्यःपत्तिनापत्तिरेवच ।
एकेनैकश्चशस्त्रेणशस्त्रमस्त्रेणवास्त्रकम् ॥ ७५

रथके संग रथको और पदातिके संग पदातिको एकके संग एकको और शस्त्रके संगशस्त्रको और अस्त्रके सग अस्त्रको मिलावे ॥७५॥

नचहन्यात्स्थलारूढंनक्लीबंनकृतांजलिम् ।
नमुक्तकेशमासीनंनतवास्मीतिवादिनम् ॥

स्थल ( मैदान ) मे खडे और नपुंसक और कृतांजलि ( हाथ जोडे हुए ) को और जिसके केश खुले हों और जो स्वस्थ बैठा हो और जो तेराही मे हूं ऐसे कहता हो ॥ ७६ ॥

नसुसन्नंविसन्नाहंननग्नंननिरायुधम् ।
नयुध्यमानंपश्यंतंयुध्यमानंपरेणच ॥ ७७ ॥

बहुत थकाहुआ कवचहीन नग्न आयुधरहित हो जो युद्ध करते हुए किसीको देखता हो अथवा दूसरेके संग युद्ध करता हो ॥ ७७ ॥

पिबंतंनचभुंजानमन्यकार्याकुलंचन ।
नभीतंनपरावृत्तंसतांधर्ममनुस्मरन् ॥ ७८ ॥

और जो जल पीता हो भोजन करता हो अथवा किसी अन्य कार्यमें व्याकुल हो भयभीत हो युद्धसे जो पराङ्मुख (हटा ) हो इतने शत्रुओंको सत्पुरुषोंके धर्मको स्मरण करता हुआ राजा कभी न मारे ॥ ७८ ॥

वृद्धोबालोनहंतव्योनैवस्त्रीकेवलोनृपः ।
यथायोग्यंहिसंयोज्यनिघ्नन्धर्मोनहीयते ॥

वृद्ध, बालक, स्त्री, अकेला राजा इनको भी न मारे योग्यसे योग्यको मिलाकर शत्रुके मारनेमें धर्म नष्ट नहीं होता ॥ ७९ ॥

धर्मयुद्धेतुकूटेवैनसंतिनियमाअमी ।
नयुद्धंकूटसदृशंनाशनंबलवद्रिपोः ॥ ८० ॥

ये नियम धर्मयुद्धमे हैं छलके युद्धमें कोई नियम नहीं है बलवान् शत्रुको नष्ट करनेवाले कूटयुद्धके समान और युद्ध नहीं है ॥ ८० ॥

रामकृष्णेंद्रादिदेवैःकूटमेवादृतंपुरा ।
कूटेननिहतोवालिर्यवनोनमुचिस्तथा ॥ ८१ ॥

पहले भी राम कृष्ण इन्द्र आदि देवताओंने कूट युद्धकाही आदर किया है बाली कालयवन नमुचि ये सब कूटयुद्धसेही मारे हैं ॥८१॥

प्रफुल्लवदनेनैवतथाकोमलयागिरा।
क्षुरधारेणमनसारिपोश्छिद्रंसुलक्षयेत् ॥

मुँहकी प्रफुल्लता और कोमलवानी छूरेकी धारा समान मन इनसे शत्रुके छिद्रको भली प्रकार देखै ॥ ८२ ॥

मंचासीनः शतानीकःसेनाकार्यंविचिंतयन्
सदैवव्यूहसंकेतवाद्यशब्दांतवर्तिनः ॥८३॥

मंचपर बैठा हुआ सेनापति सेनाके कार्यको विचारे व्यूहके संकेतोंके जो बाजे उनके शब्दोंके अनुसार ॥ ८३ ॥

संचरेयुःसैनिकाश्चराजराष्ट्रहितैषिणः।
भेदितांशत्रुणादृष्ट्वास्वसेनांयातयेच्चताम् ॥

सैनिक राजा और देशके हितको चाहते हुए विचारै, शत्रुसे भेदन की हुई अपनी सेनाको देखकर यत्नसे रक्षा करै ॥८४॥

प्रत्यग्रेकर्मणिकृतेयोधैर्दद्याद्धनंचतान्।
पारितोष्यंवाधिकारंक्रमेतान्हिनृपःसदा ८५॥

सेनाके योद्धाओंमे यदि कोई योद्धा किसी भारी कामको करै तो उसको धन दे अथवा पारितोषिक वा उत्तम अधिकार क्रमसे सदैव दे ॥ ८५ ॥

जलान्नतृणसंरोधैःशत्रून्संपीडच्यत्नतः।
पुरस्ताद्विषमेदेशेपश्चाद्धन्यात्तुवेगवान् ८६॥

जल अन्न तृण इनके रोकनेसे यत्न पूर्वक शत्रुओंको दुःखी करके अपने आगे विषमदेशमे टिके शत्रुको पीछेसे सेनाका वेग बढाकर नष्ट करै ॥ ८६ ॥

कूटस्वर्णमहादानैर्भेदयित्वाद्विषद्बलम्।
नित्यंविस्रंभसंसुप्तंप्रजागरकृतश्रमम् ८७॥

झूठे सोनेका महान् दान देदेकर शत्रुकी सेनाको तोडे और प्रतिदिन विश्वाससे सोती और जागनेके श्रमसेयुक्त ॥ ८७ ॥

विलोभ्यापिपरानीकमप्रमत्तोविनाशयेत्।
तत्सहायबलंनैवव्यसनाप्तमपिक्वचित् ८८॥

शत्रुकी सेनाको विशेष लोभ देकर भी सावधान राजा नष्ट करै शत्रुके सहायककी सेनाको सङ्कटके समयमें कदाचित् भी न मारे ॥ ८८ ॥

स्वसमीपतरंराज्यंनान्यस्माद्ग्राहयेत्क्वचित्।
क्षणंयुद्धायसज्येतक्षणंचापसरेत्पुनः ॥८९॥

जो राज्य अपने राज्यके अत्यन्त समीप हो उसको दूसरे राजाको कदाचित् न लेने दे क्षण मात्रमेंही युद्धकेलिये तैयार हो जाय और फिर क्षणमात्रमेंही युद्धसे हटजाय ॥ ८९ ॥

अकस्मान्निपतेद्दूराद्दस्युवत्परितः सदा।
रूप्यंहेमचकुप्यंचयोयज्जयतितस्यतत् ९०

और अचानक दूरसेही चोरके समान चारों तरफ सदैव प्रहार करै, चांदी सोना और धन ये सब जिस योधाने जीते हों उसकेही होते है ॥ ९० ॥

दद्यात्कार्यानुरूपंचहृष्टोयोधान्प्रहर्षयन्।
विजित्यैवरिपूनेवंसमादद्यात्करंतथा ॥९१॥

प्रसन्न हुआ योधाओंकी प्रसन्नताके लिये कामके अनुसार वस्तुओंको दे इसप्रकार राजा शत्रुओंको जीतकर उनसे करका ग्रहण करै ॥ ९१ ॥

राज्यांशंवासर्वराज्यंनंदयातिततः प्रजाः।
तूर्यमंगलघोषेणस्वकीयंपुरमाविशेत् ९२॥

वह कर जो राज्यका भाग अथवा सम्पूर्ण राज्य हो फिर शत्रुकी प्रजाको प्रसन्न करै और मंगलके बाजे बजाता हुआ अपने पुरमें प्रवेश करै ॥ ९२ ॥

तत्प्रजाःपुत्रवत्सर्वाःपालयीतात्मसात्कृताः॥
नियोजयेन्मंत्रिगणमपरंमंत्रचिंतने ॥ ९३ ॥

उस शत्रुकी सम्पूर्ण प्रजाको अपने अधीन करके पुत्रके समान पालन करै और मन्त्रके विचारमें दूसरे मन्त्रियोंके समूहको नियुक्त करै ॥ ९३ ॥

देशेकालेचपात्रेचह्यादिमध्यावसानतः ।
भवेन्मंत्रफलंकीदृगुपायेनकथंत्विति ॥९४॥

देश काल पात्र आदि मध्य अन्त इनमें किस प्रकार उपाय करनेमें मन्त्रका फल क्या होगा इसको ॥ ९४ ॥

मंत्र्याद्यधिकृतःकार्यंयुवराजायबोधयेत् ।
पश्चाद्राज्ञेतुतैःसाकंयुवराजानिवेदयेत् ९५॥

मन्त्री आदि अधिकारी इस कार्यको युवराजको कहैं फिर मन्त्री आदि सहित युवराज राजाके प्रति निवेदन करै ॥ ९५ ॥

राजासंशासयेदादौयुवराजंततस्तुसः ।
युवराजोमंत्रिगणान्राजाग्रेतेधिकारिणः ॥

राजा प्रथम युवराजको शिक्षा दे फिर युवराज मन्त्री आदि समूहको शिक्षित करै क्योंकि राजाके आगे वेही अधिकारी होते हैं ॥ ९६ ॥

सदसत्कर्मराजानंबोधयेद्धिपुरोहितः ।
ग्रामाद्बहिःसमीपेतुसैनिकान्धारयेत्सदा ९७

राजाके सत असत कर्मका पुरोहित बोधन करै और ग्रामसे बाहर समीपमेही सैनिकोंको सदैव टिकावे ॥ ९७ ॥

ग्राम्यसैनिकयोर्नस्यादुत्तमर्णाधमर्णता ।
सैनिकार्थंतुपण्यानिसैन्येसंधारयेत्पृथक् ॥

ग्रामके निवासी और सैनिकोंका उत्तमर्ण अधमर्ण व्यवहार ( लेन देन ) न होने दे सैनिकोंके लिये सेनामेही पृथक् बाजार बनवावे ॥ ९८ ॥

नैकत्रवासयेत्सैन्यंवत्सरंतुकदाचन ।
सेनासहस्रंसज्जंस्यात्क्षणात्संशासयेत्तथा ॥

एक स्थानपर एक वर्ष सेनाको कदाचित् न बसावे जिस प्रकार हजारों सेना एक क्षणमेंही तयार होजायँ ऐसी शिक्षा दे ॥ ९९ ॥

संशासयेत्स्वनियमान्सैनिकानष्टमेदिने ।
चंडत्वमाततायित्वंराजकार्येविलंबनम् ॥

और आठवे दिन सैनिनिकोंको अपने यमकी शिक्षा देता रहै कि क्रोध आततायी राजाके कार्यमें विलम्ब ॥ १२०० ॥

अनिष्टोपेक्षणंराज्ञःस्वधर्मपरिवर्जनम् ।
त्यजंतुसै निकानित्यंसंल्लापमपिचापरैः ॥

राजाकेअनिष्टकी उपेक्षा अपने धर्मका परित्याग शत्रुओंके संग सम्भाषण इन सबको सेनाके मनुष्य प्रतिदिन त्याग दे ॥ १२०१ ॥

नृपाज्ञयाविनाग्रामंनविशेयुःकदाचन ।
स्वाधिकारिगणस्यापिह्यपराधंदिशंतुनः ॥

राजाकी आज्ञाके विना कदाचित् ग्राममें न जायँ और अपने अधिकारी गणका जो अपराध हो उसे न कहै ॥ १२०२ ॥

मित्रभावेनवर्तध्वंस्वामिकृत्येसदाऽखिलाः ।
सूज्ज्वलानिचरक्षंतुशस्त्रास्त्रवसनानिच ॥

और स्वामीके कार्य्यमें सम्पूर्ण सदैव मित्रभावसे वर्ताव करै । अपने शस्त्र अस्त्र और वस्त्रोंको उज्ज्वल रक्खे और रक्षा करैं ॥ ३ ॥

अन्नंजलंप्रस्थमात्रंपात्रंबह्वन्नसाधकम् ।
शासनादन्यथाचारान्विनेष्यामियमालयम्

अन्न और जल ये प्रस्थभर और जिसमे बहुत अन्न आजाय ऐसा पात्र हो जो मेरी शिक्षाका भंग करेगा उसे यमराजके स्थानपर पहुँचाऊंगा ॥ ४ ॥

भेदयित्वारिपुधनंगृहीत्वादर्शयंतुमाम् ।
सैनिकैरभ्यसेन्नित्यंव्यूहाद्यनुकृतिंनृपः ५॥

भेदन किये हुए शत्रुके धनको ह... दिखाओ राजा भी सैनिकोंके संग सेनाके व्यूहोंका प्रतिदिन अभ्यास करै ॥ ५ ॥

तथाऽयनेऽयनेलक्षमस्त्रपातैर्विभेदयेत् ।
सायंप्रातःसैनिकानांकुर्यात्संगणनंनृपः ६ ॥

तिसी प्रकार अयन २ ( मौके २ ) पर अस्त्रोंको फेककर लक्षको बीधै और सायंकाल और प्रातः कालके समय राजा सैनिकोंकी गिनती करै ॥ ६ ॥

जात्याकृतिवयोदेशग्रामवासान्विमृश्यच ।
कालंभृत्यवधिंदेयंदत्तंभृत्यस्यलेखयेत् ७॥

भृत्यकी जाति, आकार, अवस्था, देश, ग्राम को वास और समय भृतिकी अवधि दिया

हुआ और देने योग्य द्रव्य इन सबको लिखे ॥ ७ ॥

**कतिदत्तंहिभृत्येभ्योवेतनेपारितोषिकम् ।**
**तत्प्राप्तिपत्रंगृह्णीयाद्दद्याद्वेतनपत्रकम् ॥ ८ ॥**

वेतनमें भृत्योंको कितना पारितोषिक दिया उसकी प्राप्तिका पत्र ( रसीद ) ले, और वेतन ( नौकरी ) का पत्र उसको दे दे ॥ ८ ॥

**सैनिकाःशिक्षितायेयेतेषुपूर्णाभृतिःस्मृता ।**
**व्यूहाभ्यासेनियुक्तायेतेष्वर्धांभृतिमावहेत् ॥**

जो सैनिक शिक्षित हैं उन २ की भृति ( नौकरी ) पूर्ण देनी कही है और जो सैनिक व्यूहके अभ्यासमें नियुक्त हैं उनको उनसे आधी भृतिको दे ॥ ९ ॥

**असत्कर्त्रीश्रितंसैन्यंनाशयेच्छत्रुयोगतः ।**
**नृपस्यासद्गुणरताःकेगुणद्वेषिणोनराः॥१०**

शत्रुके योग ( बहकाना )से जो सेना असत् कामको करे उसको नष्ट करे राजाकी बुराईमें कौन तत्पर है और कौन मनुष्य राजाके गुणोंका द्वेष करते हैं ॥ १० ॥

**असद्गुणोदासीनाःकेहन्यात्तान्विमृशन्नृपः**
**सुखासक्तांस्त्यजेद्भृत्यान्गुणिनोऽपिनृपःसदा।**

कौन असद्गुणी है और कौन उदासीन है उन सबको विचार २ कर राजा नष्ट करे, जो भृत्य सुखमें आसक्त हों वे चाहै गुणवान भी हों तथापि राजा उनको सदैव त्याग दे ॥ ११ ॥

**सुस्वांतलोकविश्वस्तायोज्यास्त्वंतःपुरादिषु।**
**धार्याःसुस्वांतविश्वस्ताधनादिव्ययकर्मणि ॥**

भली प्रकार स्वयं जांचे और जगत्में विश्वास वाले जो भृत्य उनको अन्तःपुर ( रनवास ) में नियत करे और भलीप्रकार स्वयं जिनका विश्वास कर लिया हो उनको धनके व्यय ( खर्च ) करनेमें नियुक्त करे ॥ १२ ॥

**तथाहिलोकोविश्वस्तोबाह्यकृत्येनियुज्यते।**
**अन्यथायोजितास्तेतुपरिवादायकेवलम् १३**

इसी प्रकार जगत्के विश्वासीको बाहिरके कृत्यमें नियुक्त करे यदि इन पूर्वोक्तोंको अन्यथा नियुक्त करे तो केवल अपयशके लियेही होते हैं ॥ १३ ॥

**शत्रुसंबंधिनोयेयेभिन्नामंत्रिगणादयः ।**
**नृपदुर्गुणतोनित्यंहतमानगुणाधिकाः॥१४॥**

जो २ भृत्य शत्रुके सम्बन्धी हों और जो २ मंत्रियोंके भिन्न गण ( फटे ) हों राजाके दुष्ट गुणोंसे गुणोंमें अधिक भी उनके मान(सत्कार) को हरले ॥ १४ ॥

**स्वकार्यसाधकायेतुसुभृत्याःपोषयेच्चतान् ।**
**लोभेनासेवनाद्भिन्नास्तेष्वर्धांभृतिमावहेत् ॥**

जो अच्छे भृत्य अपने कार्यके साधक हों उनका पोषण करे जो लोभसे और सेवा करनेसे भिन्न ( विमुख ) हों उनको आधी भृति दे ॥ १५ ॥

**शत्रुत्यक्तान्सुगुणिनःसुभृत्यान्पालयेन्नृपः ।**
**परराष्ट्रेहृतेदद्याद्भृतिंभिन्नावधिंतथा ॥१६॥**

जिन अच्छे गुणवालोंको शत्रुने त्याग दिया हो उनकी अच्छी भृति देकर पालना करे जिस समय पराया देश लिया जाय उससमय भिन्नावधि ( भत्ता )और भृति उसको दे॥१६॥

**दद्यादर्धंतस्यपुत्रेस्त्रियैपादमितांकिल ।**
**हृतराज्यस्यपुत्रादौसद्गुणेपादसंमितम् ॥**

और उसके पुत्रको आधी और उसकी स्त्रीको चौथाई दे, जिसका राज्य हरा हो अच्छे गुणी उसके पुत्र आदिको चौथाई राज्य दे ॥ १७ ॥

**दद्याद्वातद्राज्यतस्तुद्वात्रिंशांशंप्रकल्पयेत् ।**
**हृतराज्यस्यनिचितंकोशंभोगार्थमाहरेत् १८**

अथवा उसके राज्यमेंसे बत्तीसवां भाग और जिसका राज्य हरा हो उसके संचित कोश ( खजाना ) को भोगनेके लिये ले आवे ॥ १८ ॥

**कौसीदंशतद्धनस्यपूर्वोक्तार्धंप्रकल्पयेत ।**
**तद्धनंद्विगुणंयावन्नतदूर्ध्वंकदाचन ॥ १९ ॥**

अथवा उसके धनमेंसे आधे धनको व्याज पूर्वोक्तसे आधा द्रव्य दे परन्तु इतने ही दे जबतक उसके धनसे दूना व्याज पहुंचे फिर उसके पीछे कदाचित् न दे ॥ १९ ॥

**स्वमहत्त्वद्योतनार्थंहृतराज्यान्प्रधारयेत् ।**
**प्राङ्मानैर्यदिसद्वृत्तान्दुर्वृत्तांस्तुप्रपीडयेत् ॥**

अपनी बडाईके जतानेके लिये जिनका राज्य हरा हो उनकीभी पालना करै यदि वे मान आदिसे पहिले सदाचारी हों यदि दुराचारी होंय तो पीडित करै ॥ २० ॥

**अष्टधादशधावापिकुर्यात्द्वादशधापिवा ।**
**यामिकार्थमहोरात्रंयामिकान्वीक्ष्यनान्यथा ॥**

आठ वा दश, अथवा बारह यामिकोंको (पहरेदार) देखकर यामिक ( पहरा ) के लिये रातदिन मे नियत करै ॥ २१ ॥

**आदौप्रकल्पितानंशान्भजेयुर्यामिकास्तथा**
**आद्यःपुनस्त्वंतिमांशःस्वपूर्वांशंततोपरे २२।**

नियत होनेके समय जितना भाग पहरेके लिये नियत हुआ हो उसकी सब यामिक पालना करैं, पहिले भागको पहिला उससे अगले भागको दूसरा और अपनेसे पूर्व अंशको लेवे जो अन्य हैं ॥ २२ ॥

**पुनर्वायोजयेत्तद्वद्द्वायेंत्यंचांतिमेततः ।**
**स्वपूर्वांशंद्वितीयेह्निद्वितीयादिःक्रमागतम ॥**

अथवा फिर ( बदली ) अन्त्य ( पिछला ) को आद्य समयमे और आद्यको अन्त्यसमयमे दूसरे दिन अपने पूर्व अशमें द्वितीय आदि क्रमसे नियत करै ॥ २३ ॥

**चतुर्भ्यस्त्वधिकानित्यंयामिकान्योजयेद्दिने।**
**युगपद्योजयेद्दृष्ट्वाबहून्वाकार्यगौरवम् २४॥**

एक दिनमें चारसे अधिक यामिकोंको सदैव नियत करै और कार्यका गौरव (भारी) देखकर एक वारही बहुत यामिकोंको नियत करै ॥ २४ ॥

**चतुरूनान्यामिकांस्तुकदानैवनियोजयेत ।**
**यद्रक्ष्यमुपदेक्ष्यंयदादेश्यंयामिकायतत २५**

और चारसे कम यामिकोंको तो कदाचित् भी नियुक्त न करै, जिसकी रक्षा करनी हो अथवा जो उपदेशके योग्य हो उसे यामिकों को बताय दे ॥ २५ ॥

**तत्समक्षंहिसर्वस्याद्यामिकोपिचतत्तथा ।**
**कीलकोष्ठेतुस्वर्णादिरक्षेन्नियमितावधि २६॥**

उसीके सामने सब हो और यामिक भी उसे उसी प्रकार करै और जिसमें कील लगी हो ऐसे कोठेमें नियमसे स्वर्ण आदिकी रक्षा करै ॥ २६ ॥

**स्वांशःतदर्शयेदन्ययामिकंतुयथार्थकम् ।**
**क्षणेक्षणेयामिकानांकार्यंदूरात्सुबोधनम् २७**

पहिला यामिक अपने भागके अन्तमे दूसरे यामिकको यथार्थ रीतिसे दिखादे, क्षण २ मे यामिकोंके कार्यको दूरसेही समझा दे ॥ २७ ॥

**सत्कृतान्नियमान्सर्वान्यदासंपालयेन्नृपः ।**
**तदैवनृपतिःपूज्योभवेत्सर्वेषुनान्यथा ॥२८॥**

जब राजा अपने किये हुए सब नियमोंकी पालना करता है तभी राजा सब मनुष्योंके बीचमें पूजा ( बडाई ) के योग्य होता है अन्यथा नहीं होता ॥ २८ ॥

**यस्यास्तिनियतंकर्मनियतःसद्ग्रहोयदि ।**
**नियतोऽसद्ग्रहत्यागोनृपत्वंसोऽश्नुतेचिरम्॥**

जिस राजाका काम नियत है और जिसका आग्रह भी अच्छा ही नियत है और असत् ( बुरा) आग्रहका त्यागभी नियत है वही राजा चिरकलतक राज्यको भोगता है ॥ २९ ॥

**यस्यानियमितंकर्मसाधुत्वंवचनंत्वपि ।**
**सदैवकुटिलःसस्तुस्वपदाद्राग्विनश्यति३०॥**

जिस राजाके कामका नियम नहीं उसके चाहे वचन अच्छे भी हों तो भी वह सदैव कुटिल है और वह अपने पद ( राजगद्दी ) से शीघ्रही पतित ( गिरना ) होता है ॥ ३० ॥

**नापिव्याघ्रागजाःशक्तामृगेंद्रंशासितुंयथा ।**
**नतथामंत्रिणःसर्वेनृपंस्वच्छंदगामिनम्३१॥**

जैसे भिडा और हाथी सिंहको शिक्षा देने के लिये समर्थ नहीं होते तिसी प्रकार संपू-

मंत्रियोंके गण स्वच्छंदचारी राजाको शिक्षा नहीं दे सकते ॥ ३१ ॥

निभृताधिकृतास्तेननिःसारत्वंहितेष्वतः।
राजानिबध्यतेनैवतूलभारसहस्रकैः ॥३२॥

वे मंत्री राजानेही पाले हैं और राजानेही उनको अधिकार दिया है इससे उनमें सब (दृढता) नहीं होता रुईके सहस्रों भारोंसेभी हाथी नहीं बांधा जा सकता ॥ ३१ ॥

उद्धर्तुंद्रागगजः शक्तःपंकलग्नंगजंबली।
नीतिभ्रष्टनृपंत्वन्यंनृपउद्धारणक्षमः ॥३३॥

और बलवान् हाथी पंक (कीच) में फसे हुए दूसरे हाथीको जैसे शीघ्रही उद्धार कर सकता है इसी प्रकार नीतिसे भ्रष्ट (हीन) राजाकोभी अन्य राजा उद्धार करनेको समर्थ होता है ॥ ३३ ॥

बलवन्नृपभृत्येऽल्पेऽपिश्रीस्तेजोयथाभवेत्।
तथानहीननृपतौतन्मंत्रिष्वपिनोतथा ॥३४॥

बलवान् राजाके पीछे भी भृत्यमें जैसे लक्ष्मी और तेज होता है वैसा तेजहीन राजामें और उसके मन्त्रियोंमें भी नहीं होता ॥३४

बहूनामैकमत्यंहिनृपतेर्बलवत्तरम्।
बहुसूत्रकृतोरज्जुःसिंहाद्याकर्षणक्षमः॥३५॥

बहुत मन्त्री आदिकी जो एकमति वही राजाका अधिक बल है क्योंकि बहुतसे सूतोंकी बनाई हुई रज्जु (रस्सी) सिंह आदिके भी खींचनेमें समर्थ होती है ॥ ३५ ॥

हीनराज्योरिपोर्भृत्योनसैन्यंधारयेद्बहु।
कोशवृद्धिंसदाकुर्यात्स्वपुत्राद्यभिवृद्धये ॥

जिसका राज्य छीन गया हो और शत्रुकी सेवा करता हो ऐसा राजा अधिक सेनाको न रक्खे और राजा अपने पुत्र आदिकी वृद्धिके लिये कोश (खजाना) की वृद्धि सदैव करै ॥ ३६ ॥

क्षुधयानिद्रयासर्वमशनंशयनंशुभम्।
भवेद्यथातथाकुर्यादन्यथाशुदरिद्रकृत ३७॥
दिशानयाव्ययंकुर्यान्नृपोनित्यंनचान्यथा।

क्षुधा होनेपर भोजन और निद्राके आनेपर भलीप्रकार शयन जैसे होय तैसेही करै इससे जो अन्यथा करता है वह शीघ्रही दरिद्री होता है ॥ ३७ ॥ इसीप्रकार राजा सदा व्यय (खर्च) को करै अन्यथा न करै ॥

धर्मनीतिविहीनायेदुर्बलाअपिवैनृपाः ३८॥
सुधर्मबलयुग्राज्ञादंड्यास्तेचौरवत्सदा।

जो दुर्बल राजा धर्म और नीतिसे हीन हैं ॥ ३८ ॥ उन सबको उत्तम बल और धर्मसे युक्त राजा सदैव चौरके समान दंडदे ॥

सर्वधर्मावनान्नीचनृपोपिश्रेष्ठतामियात् ३९
उत्तमोपिनृपोधर्मनाशनान्नीचतामियात्।

सबके धर्मकी रक्षा करनेसे नीच राजाभी श्रेष्ठ होजाता है ॥ ३९ ॥ और उत्तम भी राजा सबके धर्म नाश करनेसे नीचताको प्राप्त होता है।

धर्माधर्मप्रवृत्तौतुनृपएवहिकारणम् ॥४०॥
सहिश्रेष्ठतमोलोकेनृपत्वंयःसमाप्नुयात्।

क्योंकि धर्म और अधर्मकी प्रवृत्तिमें राजा ही कारण होता है ॥ ४० ॥ वही जगतमें अत्यन्त श्रेष्ठ है जो राज्यको प्राप्त होता है ॥

मन्वाद्यैराद्दतोयोर्थस्तदर्थोभार्गवेणवै॥४१॥
द्वाविंशतिशतंश्लोकानीतिसारेप्रकीर्तिताः ॥

जो अर्थ मनु आदिने मानेहैं वेही अर्थ शुक्राचार्यने माने हैं ॥ ४१ ॥ इस नीति सारमें २२०० बाईससो श्लोक कहे हैं ॥

शुक्रोक्तनीतिसारंयश्चिंतयेदनिशंनृपः॥४२॥
व्यवहारधुरंवोढुंसशक्तोनृपतिर्भवेत।

शुक्रके कहे हुए इस नीतिसारको जो राजा रात दिन चिन्ता (विचार) करता है ॥४२॥ वही राजा व्यवहारके भार उठानेमें समर्थ होता है ॥

नकवेःसदृशीनीतिस्त्रिषुलोकेषुविद्यते ४३॥
काव्यैवनीतिरन्यातुकुनीतिर्व्यवहारिणाम्।

शुक्रनीतिके समान इतर कोई नीति तीनों लोकोंमें नहीं है ॥ ४३ ॥ व्यवहारी मनु-

क्योंके लिये शुक्रकी नीतिही है और सब कुनीति हैं ॥

नाश्रयंतिचयेनीतिंमंदभाग्यास्तुतेनृपाः ४४
कातर्याद्धनलोभाद्वास्युर्वैनरकभाजनाः ।
इतिशुक्रनीतौचतुर्थेमिश्रप्रकरणं समाप्तम् ।

जो राजा इस नीतिका आश्रय नही लेते वे मन्दभागी जानने ॥४४॥ और कायर पन और धनके लोभसे वे नरकगामी होते हैं । शुक्रनीतिमें यह चौथा मिश्र प्रकरण समाप्त हुआ ॥४५

नीतिशेषंखिलेवक्ष्येह्यखिलेशास्त्रसंमतम् ।
सप्तांगानांतुराज्यस्यहितंसर्वजनेषुवै ॥४६॥

अब सब शास्त्रोंका सम्मत और सम्पूर्ण नीतिका जो शेष है उसको कहता हूं । जिस प्रकार सब मनुष्योंका हित हो उसी प्रकार राज्यके सातों अङ्गोंको रक्खे ॥ ४६ ॥

शतसंवत्सरांतेपिकरिष्याम्यात्मसाद्रिपुम् ।
इतिसंचित्यमनसारिपोश्छिद्राणिलक्षयेत् ॥

और मनसे यह विचार कर शत्रुके छिद्रोंको देखै कि १०० सौ वर्षके अंततक भी शत्रुको अपने आधीन ( वशमें ) करूंगा ॥ ४७ ॥

राष्ट्रभृत्यविशंकीस्याद्धीनमंत्रबलोरिपुः ।
युक्त्यातथाप्रकुर्वीतसुमंत्रबलयुक्स्वयम् ॥

श्रेष्ठ मंत्र और बलसे युक्त राजा युक्तिपूर्वक ऐसा यत्न करे कि शत्रुको राज्य और भृत्योंकी शंका हो और मंत्र तथा सेनासे रहित हो जाय ॥ ४८ ॥

सेवयावाणिग्वृत्त्यारिपुराष्ट्रंविमृश्यच ।
दत्ताभयस्सावधानोव्यसनासक्तचेतसम् ४९

सेवा वा व्यापारकी वृत्तिसे शत्रुके देशको विचार ( देख ) कर और शत्रुको अभयदान देकर सावधान हुआ राजा व्यसनमें लगा है चित्त जिसका ऐसे शत्रुको ॥ ४९ ॥

मार्जारलुब्धकइवसंतिष्ठन्नाशयेदरिम् ।
सेनांयुद्धेनियुंजीतप्रत्यनीकविनाशिनीम् ॥

इस प्रकार टिककर शत्रुको नष्ट करे जैसे बिलावको लुब्धक ( व्याध ) और युद्धमें ऐसी सेनाको नियुक्त करे जो शत्रुकी सेनाको नष्ट कर सके ॥ ५० ॥

नयुंज्याद्रिपुराष्ट्रस्थांमिथःस्वद्वेषिणीञ्च ।
ननाशयेत्स्वसेनांतुमहसायुद्धकामुकः५१॥

शत्रुके देशकी और परस्पर वैर करनेवाली सेनाको नियुक्त न करे युद्धकी इच्छावाला राजा विना विचारे अपनी सेनाको नष्ट न करे ॥ ५१ ॥

दानमानैर्वियुक्तोपिनभृत्योभूपतिंत्यजेत् ।
समयेशत्रुमान्नैवगच्छेज्जीवधनाशया ॥५२॥

दान और मानसे हीनभी भृत्य अपने राजाको न त्यागै जीव और धनकी इच्छासे समय पर शत्रुके आधीन न होवे ॥ ५२ ॥

मेघोदकैस्तुयापुष्टिःसाकिंनद्यादिवारितः ।
प्रजापुष्टिर्नृपद्रव्यैस्तथाकिंधनिनांधनात् ॥

जो पुष्टि मेघके जलोंसे होती है वह पुष्टि क्या नदी आदिके जलसे होती है? प्रजाकी जो पुष्टि राजाके द्रव्योंसे होती है क्या वह पुष्टि धनियोंके धनसे होतीहै ? ॥५३॥

दर्शयन्मार्दवंनित्यंमहावीर्यबलोपिच ।
रिपुराष्ट्रेप्रविश्यादौतत्कार्यसाधकोभवेत् ॥

महान् वीर्य और बलवालाभी राजा प्रतिदिन नम्रता दिखाता हुआ प्रथम शत्रुके राज्यमें प्रविष्ट होकर शत्रुके कार्योंका साधक हो जाय ॥ ५४ ॥

संजातबद्धमूलस्तुतद्राज्यमखिलंहरेत् ।
अथतद्द्विष्टदायादान्सेनपानंशदानतः५५॥

और जब वह मूल ( जड ) बध जाय तो उसके सब राज्यको हरले फिर शत्रुके वैरी और दायाद ( रिस्तेदार ) और सेनापति इनको वह कुछ भाग देनेसे ॥ ५५ ॥

तद्राज्यस्यवशीकुर्यान्मूलमुन्मूलयन्बलात् ।
तरोःसंक्षीणमूलस्यशाखाःशुष्यंतिवैयथा ५६

वशमें करे जो शत्रुके राज्यकाही हो और बलसे उनके मूलको उखाड दे. जैसे जिसका मूल कटगया हो उस वृक्षकी शाखा सूख जाती हैं ॥ ५६ ॥

सद्यः केचिच्च कालेन सेनपाद्याः पतिं विना ।
राज्यवृक्षस्य नृपतिर्मूलं स्कंधाश्च मंत्रिणः ५७॥

इसी प्रकार सेनापति आदि संपूर्ण कोई शीघ्र और समय पाकर राजाके विना सूख जाते हैं, राज्यरूपी वृक्षका मूल राजा होता है और मन्त्री स्कन्ध ( डाले ) होते है ॥ ५७ ॥

शाखाः सेनाधिपाः सेनाः पल्लवाः कुसुमानि च ।
प्रजाः फलानि भूभागा बीजं भूमिः प्रकल्पिता॥

सेनाके अधिप शाखा, सेना पत्ते, प्रजा फूल और पृथिवीके भाग फल, भूमि बीज होती है ॥ ५८ ॥

विश्वस्तान्यनृपस्यापि न विश्वासं समाप्नुयात्
नैकांतेन गृहे तस्य गच्छेदल्पसहायवान् ५९॥

विश्वासके योग्यभी दूसरे राजाका विश्वास कदाचित् न करै और अल्प सहायक होने पर एकांत समयमे शत्रुके घरमे न जाय॥५९॥

स्ववेषरूपसदृशान्निकटे रक्षयेत्सदा ।
विशिष्टचिह्नगुप्तः स्यात्समयेऽन्यादृशो भवेत्॥

अपने समान वेष और रूपवाले भृत्योंकी अपने निकट सदैव रक्षा करे और विशिष्ट (श्रेष्ठ) चिह्नसे अपनी रक्षा करै और युद्ध आदिके समय अन्य अन्य रूपोंको धारण करे ॥६०॥

वेश्याभिश्च नटैर्मद्यैर्गायकैर्मोहयेदरिम् ।
सुवस्त्राभरणैर्नैव न कुटुंबेन संयुतः ॥ ६१ ॥

शत्रुको वेश्या, नट, मदिरा, गानेवाले इनसे मोहित करै उत्तम वस्त्र, आभूषण और कुटुंब इनको लेकर युद्धमे कदाचित् प्रवृत्त नहो ॥६१॥

विशिष्टचिह्नितो भीतो युद्धे गच्छेन्न वै क्वचित् ।
क्षणं नासावधानः स्याद्भृत्यस्त्रीपुत्रशत्रुषु ६२

विशिष्ट चिह्न ( राजा ) को धारण किये और डरता हुआ युद्धमे कदाचित्भी न जाय, और भृत्य स्त्री पुत्र और शत्रु इनमे क्षण मात्रभी असावधानी न करै ॥ ६२ ॥

जीवन्सन्स्वामितां पुत्रे न दद्यात्प्यखिलां क्वचित्।
स्वभावसद्गुणे यस्मान्महाऽनर्थमदावहा ६३

जीवता हुआ राजा अपनी स्वामिता पूरी २ अपने पुत्रको कदाचित न दे क्योंकि स्वभावसे सद्गुणोंको भी स्वामिता महान् अनर्थ और मदको देती है ॥ ६३ ॥

विष्ण्वाद्यैरपि नो दत्ता स्वपुत्रे स्वाधिकारता ।
स्वायुषः स्वल्पशेषे तु सत्पुत्रे स्वाम्यमादिशेत्॥

विष्णु आदिकोंनेभी अपना अधिकार अपने पुत्रको नहीं दिया किन्तु जब अपनी अवस्था अल्प रहे उस समय सज्जन पुत्रको अपनी स्वामिता दे ॥ ६४ ॥

नाराजकं क्षणमपि राष्ट्रं धर्तुं क्षमाः किल ।
युवराजादयः स्वाम्यलोभचापलगौरवात् ६५

युवराज आदि विना राजाके क्षणमात्रभी राष्ट्र (देश)के धारण ( पालन ) करनेको समर्थ नहीं होते और स्वामिताका लोभ, चपलता गौरव ( बडाई ) से ॥ ६५ ॥

प्राप्योत्तमं पदं पुत्रः सुनीत्या पालयन्प्रजाः ।
पूर्वामात्येषु पितृवद्गौरवं संप्रधारयेत् ॥ ६६ ॥

पुत्र उत्तम पदको प्राप्त होकर और उत्तम नीतिसे प्रजाओंका पालन करता हुआ पहिले मंत्रियोंका पूर्वके समान गौरव ( बड़ाई ) माने ॥ ६६ ॥

तस्यापि शासनं तैस्तु प्रधार्यं पूर्वतोऽधिकम् ।
युक्तं चेदन्यथा कार्यं निषेध्यं कालक्षेपनैः ६७॥

और मंत्री आदिभी उसकी आज्ञाको पूर्वसे भी अधिक माने यदि अन्यथा करे तो काल विलंब आदिसे निषेध करैं ॥ ६७ ॥

तदनीत्या न वर्तेयुस्तेन साकं धनाशया ।
वर्तंते यदनीत्या ते तेन साकं पतंत्यरात् ॥६८॥

राजाकी अनीतिमे उसके संग मंत्री आदि धन लोभसे न वर्ते यदि वे अनीतिसे वर्ताव करें तो राजाके संग शीघ्रही नरकमें जाते है ॥ ६८ ॥

कुलभक्तांश्च यो द्वेष्टि नवीनं भजते जनम् ।
स गच्छेच्छत्रुसाद्राजा धनप्राणैर्वियुज्यति ६९

अपने कुलके भक्तों ( पाले हुओं ) से जो युवराज वैर करता है और नवीन जनको

सेवता है वह राजा शत्रुके आधीन हो जाता है और धन और प्राणोंसे वियुक्त हो जाता है ॥ ६९ ॥

गुणीसुनीतिर्नव्योपिपरिपाल्यस्तुपूर्ववत् ।
प्राचीनैःसहतंकार्येष्वनुभूयनियोजयेत् ७०॥

गुणी नीतिका ज्ञाता नवीन जनको भी पूर्वके समान पालकर प्राचीन मंत्री आदिकों के संग देखभालकर कार्योंमे नियत करे ॥७०॥

अतिमृदुस्तुतिनतिसेवादानप्रियोक्तिभिः ।
मायिकःसेव्यतेयावत्कार्यनित्यंतुसाधुभिः॥

अत्यन्त कोमल, स्तुति, नमन, सेवा, दान और प्रिय वचन इनसे जबतक मायावी सेवे तबतक उस कार्यको करें जिसे साधुजन कहें ॥ ७१ ॥

प्रत्यक्षंवापरोक्षंवासत्यवाग्भिर्नृपोऽपिच ।
याथार्थ्यंतस्तयोरीदृगंतरखंभुवोर्यथा ॥७२॥

प्रत्यक्ष ( सामने ) वा परोक्ष ( पीछेसे ) सत्य वाणियोंसे उनके इस प्रकार अन्तर ( फरक ) को राजाभी जान ले जैसे आकाश और भूमिका अन्तर होता है ॥ ७२ ॥

मायायाजनकाधूर्तजारचोरबहुश्रुताः ।
प्रतिष्ठितोयथाधूर्तोनतथातुबहुश्रुतः ॥ ७३ ॥

मायाके पैदा करनेवाले, धूर्त, जार, चोर और बहुश्रुत ( जिसने बहुत बाते सुनी हों ) ये होते हैं और जैसा मायावी प्रतिष्ठित धूर्त होता है ऐसा बहुश्रुत नहीं होता ॥ ७३ ॥

परस्वहरणेलोकेजारचोरौतुनिंदितौ ।
तावप्रत्यक्षंहरतःप्रत्यक्षंधूर्तएवहि ॥७४॥

जगतमें पराये धन हरनेवाले चोर और जार ये दोनों निन्दित कहे है परन्तु ये दोनों अप्रत्यक्ष ( पीछे ) हरते हैं धूर्त तो सामनेही धनको हरता है ॥ ७४ ॥

हितंत्वहितवच्चांतेअहितंहितवत्सदा ।
धूर्ताःसंदर्शयित्वाऽज्ञंस्वकार्यंसाधयंतिते७५॥

धूर्तजन समीप हितको भी अहितके समान और अहितको हितके समान मूर्खको दर्शा कर अपने कार्यको सिद्ध करते है ॥ ७५ ॥

विस्रंभयित्वाचात्यर्थंमाययाघातयन्तिते ।
यस्यचाप्रियमन्विच्छेत्तस्यकुर्यात्सदाप्रियम्

और वे मायासे अत्यन्त विश्वास देकर मार देते हैं, जिसके अप्रियकी इच्छा करै उसका सदैव प्रिय करै ॥ ७६ ॥

व्याधोमृगवधंकर्तुंगीतंगायतिसुस्वरम् ।
मायांविनामहाद्रव्यंद्राङ्नसंपाद्यतेजनैः ७७

मृगोंका वध करता हुआ व्याध उत्तम स्वरसे गीत गाता है और मायाके विना मनुष्योंको अत्यन्त धन नहीं मिलता ॥ ७७ ॥

विनापरस्वहरणान्नकश्चित्स्यान्महाधनः ।
माययातुविनातद्धिनसाध्यंस्याद्यथेप्सितम् ॥

पराये धनके हरने बिना कोई भी महाधनी नहीं होता और मायाके विना वह धन अपनी इच्छाके अनुसार मिलभी नहीं सकता ॥७८॥

स्वधर्मंपरमंमत्वापरस्वहरणंनृपाः ।
परस्परंमहायुद्धंकृत्वाप्राणांस्त्यजंत्यपि७९॥

पराये धनके हरनेको अपना परम धर्म मानकर राजा लोग परस्पर महायुद्ध करके प्राणोंको भी त्याग देते हैं ॥ ७९ ॥

राज्ञोयदिनपापंस्याद्दस्यूनामपिनोभवेत् ।
सर्वपापंधर्मरूपंस्थितमाश्रयभेदतः ॥ ८० ॥

यदि राजाको पाप न होय तो चोरोंको भी न होना चाहिये इससे सम्पूर्ण पाप आश्रय ( कर्ता ) के भेदसे धर्मरूपसे स्थित हैं ॥८०॥

बहुभिर्यस्तुतोधर्मोनिंदितोऽधर्मएवसः ।
धर्मतत्त्वंहिगहनंज्ञातुंकेनापिनोचितम् ॥८१॥

जिसकी बहुत जन स्तुति करैं वह धर्म और जिसकी निन्दा करैं वह अधर्मही है धर्मके गहन ( गहरा ) तत्वको कोई भी नहीं जान सकता ॥ ८१ ॥

प्रतिदानतपःसत्ययोगोदार्यक्रुत्त्विह ।
धर्मार्थौयत्रनस्यातांतद्वाक्यमंनिरर्थकम् ८२॥

अत्यन्त दान देना, तप, सत्य बोलना ये सब इस जगत्मे दरिद्रता करनेवाले है, जिस काममे धर्म वा अर्थ (धन) न हो वह निरर्थक (वृथा) है ॥ ८२ ॥

अर्थस्यपुरुषोदासोदासस्त्वर्थोनकस्यचित्।
अतोर्थाययतेतैवसर्वदायत्नमास्थितः ८३ ॥

यह पुरुष अर्थका दास है और अर्थ किसी का भी दास नहीं है इससे यत्नमे तत्पर मनुष्य अर्थके लिये अवश्य यत्न करे ॥ ८३ ॥

अर्थाद्धर्मश्चकामश्चमोक्षश्चापिभवेन्नृणाम्।
शस्त्रास्त्राभ्यांविनाशौर्यंगार्हस्थ्यंतुस्त्रियंविना

अर्थसे धर्म काम और मोक्ष ये तीनों मनुष्योंको प्राप्त होते हैं, शस्त्र और अस्त्रके विना शूर वीरता, और स्त्रीके विना गृहस्थ ॥ ८४ ॥

ऐकमत्यंविनायुद्धंकौशल्यंग्राहकंविना।
दुःखायजायतेनित्यंसुसहायंविनाविपत्८५।

एक मतिके विना युद्ध और ग्राहक (करदान) के विना कुशलता और पदातियों के विना अच्छी सहायता ये सदा दुःखदायी ही होते हैं ॥ ८५ ॥

न विद्यतेतुविपदिसुसहायंसुहृत्समम्।
लघोरप्यपमानस्तुमहावैरायजायते ॥८६॥

और विपत्तिके समय मित्रके समान दूसरा सहायक नहीं होता, तुच्छ मनुष्यका भी अपमान महान् वैरके लिये होता है ॥८६॥

दानंमानंसत्यशौर्येमृदुताहिसुहृत्करम्।
सर्वानापदिरहसिसमाहूयलघून्गुरून् ८७॥

दान, मान, सत्य, शूरता, मृदुता, (कोमलपना) मित्रका कार्य इन सबको आपत्तिके समय सब लघु गुरु (छोटे बडे) ओंको॥८७॥

भ्रातॄन्बंधूंश्चभृत्यांश्चज्ञातीन्सभ्यान्पृथक्पृथक्
यथार्हंपूज्यविनतंस्वाभीष्टंयाचयेन्नृपः ॥८८

और भाइ, बन्धु, भृत्य, ज्ञाति, सभासद इन सबको यथायोग्य पृथक् २ पूजा कर नम्र हुआ राजा अपने अभीष्ट (मनोरथ) को याचना करे ॥ ८८ ॥

आपदंप्रतरिष्यामोयूयंयुक्त्यावदिष्यथ।
भवंतोममभित्राणिभवत्सुनास्तिभृत्यता ८९

जिस प्रकार आपत्तिसे पार हों वह युक्ति आप लोग कहो तुम मेरे मित्र हो और भृत्यपना तुममे नहीं है ॥ ८९ ॥

नभवत्सदृशास्त्वन्येसहायाःसंतिमेह्यतः।
तृतीयांशंभृतेर्गोह्यमर्धवाभोजनार्थकम् ९०

जिससे तुम्हारे समान अन्य कोई मेरे सहायक नहीं हैं अब भोजनके लिये अपनी भृति (नोकरी) का तीसरा वा आधा भाग आप लोग ग्रहण करो ॥ ९० ॥

दास्याम्यापत्समुत्तीर्णःशेषंभृत्युपकारवित्।
भृतिंविनास्वामिकार्यंभृत्यःकुर्यात्समाष्टकम्

इस आपत्तिसे पार होकर शेष भृतिको उपकारको जाननेवाला मैं दूंगा, अपने स्वामीके कामको भृतिके विनाभी आठ वर्ष तक भृत्य करे ॥ ९१ ॥

षोडशाब्दंधनीयःस्यादितरोर्थानुरूपतः।
निर्धनेरन्नवस्त्रंतुनृपाद्ग्राह्यंनचान्यथा ९२॥

जो भृत्य धनवान् हो वह सोलह वर्षतक करे और उससे इतर अपने धनके अनुसार करे और निर्धन भृत्य राजासे अन्न वस्त्रको ही ग्रहण करे अन्यथा न करे ॥ ९२ ॥

यतोभुक्तंसुखंसम्यक्तद्दुःखैर्दुःखितोनचेत्
विनिंदतिकृतघ्नस्तुस्वामीभृत्योन्यएववा ९३

जिससे भली प्रकार सुख भोगा हो उसके दुःखोंसे दुःखी न हो तो उसको स्वामी वा अन्य भृत्य यह निन्दा करते हैं कि यह कृतघ्न है ॥ ९३ ॥

सकृत्सुभुक्तंयस्यापितदर्थंजीवितंत्यजेत्।
भृत्यःसएवसुश्लोकोनापत्तौस्वामिनंत्यजेत्॥

जिसका एक वार भी खाया हो उसके लिये भी जीवित (प्राण) को त्याग दे, वही भृत्य प्रशंसाके योग्य होता है जो आपत्तिके समय स्वामीको न त्यागे ॥ ९४ ॥

स्वामीसएवविज्ञेयोभृत्यार्थेजीवितंत्यजेत् ।
नरामसदृशोराजापृथिव्यांनीतिमानभूत् ९५

और स्वामी भी वही जानना जो भृत्यके लिये जीवितको त्याग दे, रामचन्द्रके समान कोई भी राजा पृथिवीमें नीतिवाला नही हुआ ॥ ९५ ॥

सुभृत्यतातुयन्नीत्यावानरैरपिस्वीकृता ।
अपिराष्ट्रविनाशायचोराणामेकचित्तता ॥

और उनकी श्रेष्ठ भृत्यता भी नीतिसे वानरोंने स्वीकारकी जब देशके नष्ट करनेके लिये चोरोंका भी एक चित्त हो जाता है तो ॥९६॥

शक्ताभवेन्नकिंशत्रुनाशायनृपभृत्ययोः ।
नकूटनीतिरभवत्श्रीकृष्णसदृशोनृपः ९७॥

क्या स्वामी और भृत्यकी एकता शत्रुके नाशार्थ न होगी और कूट ( झूठी ) नीतिवाला राजा श्रीकृष्णचन्द्रके समान कोई नही हुआ ॥ ९७ ॥

अर्जुनात्ग्राहितास्वस्यसुभद्राभगिनीछलात्
नीतिमतांतुसायुक्तिर्याहिस्वश्रेयसेखिला९८

अपनी बहिन भी सुभद्रा जिन्होंने छलसे अर्जुनको विवाह दी, नीतिमान् राजाओंकी जो युक्ति है वही सब अपने कल्याणके लिये होती है ॥ ९८ ॥

नात्मसंगोपनेयुक्तिंचिन्तयेत्सपशोर्जडः ।
जारसंगोपनेछद्मसंश्रयंतिस्त्रियोऽपिच ९९॥

जो मनुष्य अपनी रक्षा की युक्तिको न विचारै वह जड और पशु है स्त्री भी जार मनुष्यके छिपानेमे छल करती हैं ॥ ९९ ॥

युक्तिश्छलात्मिकाप्रायस्तथान्यायोजनात्मिका ।
यच्छद्मचारिभवतितेनछद्मसमाचरेत् ॥

और युक्ति प्रायः सब छलरूप होती है दूसरी युक्ति योजन ( मिलाप ) रूप होती है जो मनुष्य छल करै उसके संग आप भी छल करै ॥ १३०० ॥

अन्यथाशीलनाशायमहतामपिजायते ।
अस्तिबुद्धिमतांश्रेणिर्नत्वेकोबुद्धिमानतः ॥

अन्यथा छल करना बडोंके भी शीलको नष्ट करता है और बुद्धिमान् मनुष्योंकी भी श्रेणी ( बहुत ) है एक ही मनुष्य बुद्धिमान् नहीं होता ॥ १३०१ ॥

देशेकालेचपुरुषेनीतियुक्तिमनेकधाम् ।
कल्पयंतिचतद्विद्यांदृष्ट्वारुद्धांतुप्राक्तनाम् २॥

उस बुद्धिके ज्ञाता देश और कालके अनुसार अनेक प्रकारकी उन नीति और युक्तियोंको देख कर कल्पना कर लेते हैं जो पुरानी हैं परन्तु छिपी हैं ॥ १३०२ ॥

मंत्रौषधिपृथग्वेषकालवागर्थसंश्रयात् ।
छद्मसंजनयंतीहतद्विद्याकुशलाजनाः ॥३॥

छलकी विद्यामे कुशल जन मन्त्र, औषध, पृथक वेष, काल, वाणी अर्थ इनके आश्रयसे छलको पैदा कर लेते है ॥ ३ ॥

लोकोऽधिकारीप्रत्यक्षंविक्रीतंदत्तमेववा ।
वस्त्रभांडादिकंक्रीतंस्वचिह्नैरंकयेच्चिरम् ॥४॥

जगत्में जो जिसका अधिकारी है वह अपने बेचे और दिये वस्त्र पदार्थको भांड आदि सबके सामने अपने नामके चिन्होंसे अंकित कर दे ॥ ४ ॥

स्तेनकूटनिवृत्त्यर्थंराजज्ञानंसमाचरेत् ।
जडांधबालद्रव्याणांदद्याद्वृद्धिंनृपःसदा ५

चोरीके और छलके पदार्थ जैसे प्रतीत न हों उस प्रकार राजाको भी ज्ञात करा दे और जड अन्ध बाल इनके जो द्रव्य उनको सदैव वृद्धि ( व्याज ) को राजा दे ॥ ५ ॥

स्वीयातथाचसामान्यापरकीयातुस्त्रीयथा ।
त्रिविधोभृतकस्तद्वदुत्तमोमध्यमोऽधमः ६॥

जैसी अपनी पराई और सामान्य ये तीन प्रकारकी स्त्री होती है इसी प्रकार उत्तम मध्यम अधमरूप तीन प्रकारका भृत्य होता है ॥ ६ ॥

स्वामिन्येवानुरक्तोयोभृतकस्तूत्तमःस्मृतः ।
सेवतेपुष्टभृतिदंप्रकरंसचमध्यमः ॥ ७ ॥

जो भृत्य अपने स्वामीमेंही प्रीति रखता हो वह उत्तम कहा है जो उसी समूहकी सेवा

करै जो अधिक भृति (नौकरी) दे वह मध्यम होता है ॥ ७ ॥

पुष्टोपिस्वामिनाऽव्यक्तंभजतेन्यंसचाधमः ।
उपकरोत्यपकृतोप्युत्तमोप्यन्यथाधमः॥ ८ ॥

जो अपने स्वामीने पुष्टभी किया हो तो भी छिपकर दूसरेकी सेवा करै वह अधम होता है और जो तिरस्कार करने परभी उपकार करै वह उत्तम और अन्य अधम होता है॥८॥

मध्यमःसाम्यमन्विच्छेदपरःस्वार्थतत्परः ।
नोपदेशंविनासम्यक्प्रमाणैर्ज्ञायतेखिलम् ॥

जो अपनी समानताको चाहै वह मध्यम और जो अपने स्वार्थमें तत्पर हो वह अधम होता है और उपदेशके विना किसी प्रमाणसे भी सबका ज्ञान नहीं होता ॥ ९ ॥

बाल्यंवाप्यथतारुण्यंप्रारंभितसमाप्तिदम् ।
प्रायोबुद्धिमतोज्ञेयंनवार्धक्यंकदाचन ॥१०॥

बालपन अथवा वृद्धपन ये दोनों प्रारम्भ किये कामकी समाप्तिके होनेसे बुद्धिमान मनुष्यके जानने योग्य होते हैं और वृद्धता कदाचित्भी नहीं होती ॥ १० ॥

आरंभंतस्यकुर्याद्धियत्समाप्तिंसुखंव्रजेत् ।
नारंभोबहुकार्याणामेकदैवसुखावहः॥११॥

उसी कामका प्रारम्भ करै जिसकी सुखसे समाप्ति हो जाय एक बारही बहुतसे कामोंका आरम्भ सुखदायी नहीं होता ॥ ११ ॥

नारंभितसमाप्तिंतुविनाचान्यंसमाचरेत् ।
संपाद्यतेनपूर्वंहिनापरंलभ्यतेयतः ॥ १२ ॥

प्रारम्भ किये हुए कार्योंकी समाप्तिके विना अन्य कामको न करै क्योंकि यदि प्रथम ही काम न हुआ तो दूसरा भी न होगा ॥१२॥

कृतीतत्कुरुतेनित्यंयत्समाप्तिंव्रजेत्सुखम् ।
ईर्ष्यालोभोमदःप्रीतिःक्रोधोभीतिश्चसाहसम्

शक्तिके अनुसार प्रारम्भ किये कामकोनित्य करै जिससे उसकी सुखसे समाप्ति हो ईर्ष्या. लोभ, मद, प्रीति, क्रोध, भीति, और साहस ॥ १३ ॥

प्रवृत्तिच्छिद्रहेतूनिकार्येसप्तबुधाजगुः ।
यथाछिद्रंभवेत्कार्येतथैवेहसमाचरेत् ॥१४॥

ये सब प्रवृत्तिके छिद्रमें हेतु पंडित जनोंने कहे हैं इस जगतमें कामको उसी प्रकार करै जैसे उसमें कोई छिद्र न हो ॥ १४ ॥

अविसंवादिविद्वद्भिःकालेतीतेपिचापदि ।
दशग्रामीशतानीकापरिचारकसंयुतौ ॥१५॥

और सत्यवादी विद्वानोंने कला बीतनेपर आपत्तिके समयमें पूर्वोक्त छिद्रका न होना कहा है दशग्रामोंका स्वामी और सौ सैनिकोंका सेनापति ये दोनों अपने सेवकों समेत ॥ १५ ॥

अस्वस्थौविचरेयातांग्रामपाद्यपिचाश्वगाः ।
साहस्रिकःशतग्रामीएकाश्वरथवाहनौ ॥१६॥

अस्वस्थ (व्याकुल) हुए और ग्रामके पति (चौधरी) और असवार नित्य विचार करै सहस्र मनुष्य और सौ ग्रामोंका स्वामी एक घोडेके यानमें बैठकर चलै ॥ १६ ॥

सहस्रग्रामपोनित्यंनरश्वद्यश्वयानगः ॥
आयुतिकोविंशतिभिःसेवकैर्हस्तिनाव्रजेत् ॥

सहस्र ग्रामोंका स्वामी नरयान (पालकी) वा अश्वयानमें बैठकर, और दश सहस्र सेनाओंका स्वामी बीस सेवकों समेत हाथीपर चढकर गमन करै । १७ ॥

अयुतग्रामपः सर्वयानैश्चचतुरश्वगैः ॥
पंचायुतीसेनपोपिसंचरेद्बहुसेवकः॥ १८ ॥

दश सहस्रग्रामोंका स्वामी चारघोडोंके सब यानोंमें बैठकर गमन करै और पचास सहस्र सेनाओंका स्वामी भी बहुतसे सेवकों सहित विचरै ॥ १८ ॥

यथाधिकाधिपत्यंतुवीक्ष्याधिक्यंप्रकल्पयेत् ।
कल्पयेच्चयथाधिक्यंधनिकेषुगुणिष्वपि १९॥

जितना अधिक अधिपति (स्वामी) हो उसको देखकर ही यान आदिकी अधिकताको करै इसी प्रकार धनी और गुणवानोंमें भी धन गुणकी अधिकता देखकर यान आदिकी अधिकता करै ॥ १९ ॥

श्रेष्ठोनमानहीनःस्यान्न्यूनोमानाधिकोपिन।
राष्ट्रेनित्यंप्रकुर्वीतश्रेयोर्थीनृपतिस्तथा २० ॥

श्रेष्ठ जन मानसे हीन और न्यून ( छोटा ) जन अधिक मानवाला न हो यह रीति अपने राज्यमें कल्याणका अभिलाषी राजा करे २०॥

हीनमध्योत्तमानांतुग्रामेभूमिंप्रकल्पयेत्।
कुटुंबिनांगृहार्थंतुपत्तनेपिनृपः सदा ॥२१॥

जो गाममें हीन मध्यम उत्तम हों उनके लिये ग्राममें कुछ भूमि नियत करे और कुटुंबियोंके घरके लिये तो राजा सदेव पत्तन ( शहर ) ऐसी भूमिको नियत करे ॥ २१ ॥

द्वात्रिंशत्प्रमितैर्हस्तैर्दीर्घार्धविस्तृताधमा।
उत्तमादिगुणामध्यासार्धमानायथार्हतः २२

जो बत्तीस हाथ लम्बी और सोलह हाथ चौडी हो वही उत्तम कही है और उससे आधे प्रमाणकी जो हो वह यथायोग्य मध्यम और अधम होती है ॥ २२ ॥

कुटुंबसंस्थितिसमानन्यूनानाधिकापिन।
ग्रामाद्बहिर्वसेयुस्तेयेयेत्वधिकृतानृपैः २३॥

वह भूमि कुटुंबकी स्थितिके सम (बराबर) हो, न उससे न्यून हो और कमही, जिन जिनको राजा अधिकार दिया हो वे सब ग्रामसे बाहिर बसैं॥ २३ ॥

नृपकार्यंविनाकश्चिन्नग्रामेसैनिकोविशेत्।
तथानपीडयेत्कुत्रकदापिग्रामवासिनः २४॥

राजाके कार्यके विना कोई भी सैनिक ग्राम म न घसे, और तिसी प्रकार किसीभी ग्रामवासीको पीडा ( दुःख ) न दे ॥ २४ ॥

सैनिकैर्नव्यवहरेन्नित्यंग्राम्यजनोपिच।
श्रावयेत्सैनिकान्नित्यंधर्मंशौर्यविवर्धनम् २५

और ग्रामके जनभी सैनिकोंके संग प्रति दिन व्यवहार न करैं, और सेनाके मनुष्यों को शूरवीरता बढानेवाले धर्मको नित्य श्रवण करवावे ॥ २५ ॥

सुवाद्यनृत्यगीतानिशौर्यवृद्धिकराण्यपि।
युद्धक्रियांविनाशौर्येयोजयेन्नान्यकर्माणि २६

श्रेष्ठ बाजे, नृत्य, गीत इनकोभी ऐसोंकोही सुनावे जिनसे शूरवीरताकी वृद्धि हो और युद्धके काम बिना शूरवीरको किसी अन्य काममें न लगावे ॥ २६ ॥

सत्याचारास्तुधनिकाव्यवहारेहतायदि।
राजासमुद्धरेत्तांस्तुतथान्यांश्चकृषीवलान् २७

जो सत्य आचरण करनेवाले धनवान व्यवहारमे बिगड गये हों उनका और अन्य वैसेही किसानोंका राजा उद्धार करे अर्थात् धन देकर उनकी सहायता करे ॥ २७ ॥

येसैन्यधनिकास्तेभ्योयथार्हांभृतिमावहेत्।
सारदेश्यंचत्रिंशांशमधिकंतद्धनव्ययात् २८॥

जो सेनाके मनुष्य धनवान हों उनसे यथा योग्य भृति ले. जो परदेशी हो उनके तीसवां भाग वा अधिक धनके व्यय (खर्चा) के अनुसार ले ॥ २८ ॥

धनंसंरक्षयेत्तेषांयत्नतःस्वात्मकोशवत्।
संहरेद्धनिकात्सर्वंमिथ्याचाराद्धनंनृपः २९॥

और उनके धनकी अपने कोशके समान बडे यत्नसे रक्षा करे और जो धनवान् मनुष्य मिथ्याचारी हो राजा उसके सब धनको हर ले ॥ २९ ॥

मूलाच्चतुर्गुणावृद्धिर्गृहीताधनिकेनच।
अधमर्णान्नदातव्यंधनिनेतुधनंतदा ॥ ३० ॥

जब धनवान् मनुष्यने अधर्मसे मूल धनकी अपेक्षा चौगुनी वृद्धि ( व्याज ) लेली हो तो वह धनीको कुछ भी न दे ॥ १३३० ॥

इति शुक्रनीति समाप्ता।

---

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

**खेमराज श्रीकृष्णदास**
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
बम्बई नं० ४

**गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,**
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बम्बई.